त्यायनीय-ऋक्सर्वानुक्रमणी

(रुशिष्य-विरचितया वृत्त्या सहिता)

सम्पादकः-

डा॰ विजयपालः

कात्यायनीय-ऋक्सर्वानुक्रमणी

(षड्गुरुशिष्य-विरचितया कृत्स्नवृत्त्या सहिता)

सम्पादकः—

डा० विजयपालः

प्रकाशकः—
सावित्रीदेवी बागड़िया ट्रस्ट
५, लेनिन सरणी,
कलकत्ता–७०००१३

वितरकः—
रामलाल कपूर ट्रस्ट
बहालगढ़ (पिन १३१०२१)
(सोनीपत-हरयाणा)

प्रथमवार—५००
सं० २०४२
सन् १९८५
मूल्य १००-००

मुद्रकः—
शान्तिस्वरूप कपूर
रामलाल कपूर ट्रस्ट प्रेस
बहालगढ़ (सोनीपत)

समर्पण

व्यापार के क्षेत्र में सत्य-व्यवहार को प्राण-पण से निभाने वाले
तथा
श्रीमती सावित्रीदेवी बागड़िया ट्रस्ट के
संस्थापक सदस्य



श्री रामेश्वरलाल जी अग्रवाल
[जन्म- माघ बदी १३, सं० १९७५; निधन –मार्गशीर्ष बदी ६ सं० २०४१]
की
पवित्र स्मृति में
सादर समर्पित
मोहनलाल बागड़िया

स्व० श्रेष्ठिवर श्री रामेश्वरलाल जी का
संक्षिप्त परिचय

स्व० श्री रामेश्वरलाल जी अग्रवाल का जन्म हरियाणा के अन्तर्गत जिला भिवानी के 'सांवड़' ग्राम में माघ वदी १३ सं० १९७५ में एक साधारण वैश्य परिवार में हुआ था। आपके पिता श्री सन्तलाल जी और माता श्रीमती जयदेवी जी बहुत सीधे और सहृदय व्यक्ति थे। श्री सन्तलाल जी तो 'यथानाम तथागुण' कहावत के अनुसार पूरे सन्त ही थे। सच्चाई उनके रोम-रोम में समाई हुई थी। वे कहा करते थे – 'जिस दिन मैं सच्चाई को छोड़कर किसी के साथ बेईमानी करूं, भगवान् मुझे नमक के समान गला दे।' वे सहनशील इतने थे कि जिन भाइयों ने उन को धोखा दिया और उनके साथ अन्याय किया, उनकी भी रात-रात जाग कर सेवा करते थे।

श्री रामेश्वरलाल जी श्री सन्तलाल के चौथे पुत्र थे। वैसे तो सभी पुत्र बुद्धिमान् थे, परन्तु रामेश्वरलाल जी तो बचपन से ही विशेष प्रतिभावान् थे। देखने में गौरवर्ण और शरीर से स्वस्थ हट्टे-कट्टे थे। प्रत्येक काम को शीघ्र सीख लेते थे। स्वभाव से बहुत चञ्चल थे। माता को प्रायः परेशान करते थे, पिता ही के वश में आते थे। पिता इनसे बहुत प्रसन्न रहते थे। सब लोग कहते थे—'सन्तलाल तेरा यह लड़का तेरा नाम रोशन करेगा। तेरे पूरे परिवार को तार देगा। तेरी सारी तकलीफें दूर हो जायेंगी'।

कुछ वर्ष पश्चात् सन्तलाल जी सांबड़ से सपरिवार धनवाद (बिहार) आ गये। रामेश्वरलाल जी के पश्चात् इनका एक भाई और दो बहनें और हुईं। घर की स्थिति साधारण थी। पढ़ाई के लिये भी पूरे पैसे नहीं मिल पाते थे, परन्तु रामेश्वर-लाल जी की प्रतिभा से प्रसन्न होकर स्कूल के अध्यापक इन पर बड़ा स्नेह रखते थे और पढ़ा दिया करते थे। सदा परीक्षा में प्रथम आते थे। अतः इनको छात्रवृत्ति मिलती रही। आपने मैट्रिक परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की। फिर ये उच्च अध्ययन के लिये कलकत्ता चले गये। वहां पोद्दार छात्रावास में रहते थे और साथ में कुछ काम करके द्रव्यार्जन भी करते रहते थे। उसमें से पढ़ाई का खर्च निकाल कर कुछ घर भी भेजते थे।

१८ वर्ष की अवस्था में श्री रामेश्वरलाल जी का श्रीमती उमरावतीदेवी के साथ विवाह हुआ। वह भी रूप और गुणों में इनके अनुरूप ही थीं। इन्होंने पति के संघर्षमय जीवन में सदा साथ दिया। विवाह के समय उमरावतीदेवी की अवस्था

१३ वर्ष की थी, परन्तु घर में आते ही इस स्वल्प आयु में भी पूरे घर की जिम्मेवारी अपने ऊपर लेकर आपने विवाह के समय में प्राप्त गहनों और वस्त्रों का मोह त्याग कर उनके द्वारा पूरे परिवार को संभाला। दो ननन्द और एक देवर कुंवारा था उनका विवाह किया और श्वशुर का कर्जा चुकाया। इस उदारता से ये पूरे परिवार पर इस तरह छा गईं, जैसे अन्धकार में कोई प्रकाश की रेखा व्याप्त हुई हो।

ननदों के विवाह में भाइयों ने पिता की मदद करने से इन्कार कर दिया, फिर भी इन्होंने अपने गहने गिरवी रखकर दोनों ननदों का विवाह किया। श्वसुर तो करुणार्द्र होकर रोने लग जाते थे और धरती से धूल उठाकर माथे पर लगाकर कहते थे कि यह बहू नहीं साक्षात् लक्ष्मी है। इसने मेरी लाज रखली, नहीं तो मैं कहीं का भी नहीं रहता।

जब बी० ए० पास करके श्री रामेश्वरलाल जी कलकत्ता आये थे, तब उनके हाथ में कोई विशेष काम नहीं था। पूंजी भी पास में नहीं थी, जिससे कोई काम आरम्भ किया जा सके। एक भाई जो इनसे पहले था, उनकी मृत्यु हो चुकी थी। वह एक तीन महीने का बच्चा तथा पत्नी को छोड़ गये थे। इससे इनका मन बहुत खिन्न था। ऐसे दुःख के समय भी भाइयों ने सहायता करने से इन्कार कर दिया। पिताजी के पास कुछ था नहीं। उस समय इनकी पत्नी ने २०० रु० जुगाड़ कर दिये। उन रुपयों से श्री रामेश्वरलाल जी ने इलैक्ट्रिक के तार खरीदे और उनको बेचा। इस धन्धे में पर्याप्त लाभ हुआ। पूरी तन्मयता से काम में लग गये। और धीरे-धीरे आपने इस काम को बढ़ाया। व्यवहार में सचाई और ईमानदारी तो इन्हें अपने पिता से बपौती के रूप में प्राप्त थी ही। इससे अतिशीघ्र ये पूरे कोयला क्षेत्र पर छा गये। धनबाद झरिया आदि अनेक स्थानों में कई दुकानें चलने लगीं। सन् १९५७ तक जितने भी सिंदरी आदि कारखाने कोयला क्षेत्र में बने, उन सब में बिजली का काम आपने ही करवाया था।

इसी के मध्य बड़े भाई और भाभी भी एक बच्चे को छोड़कर चल बसे। सन् १९५२ में पिता श्री सन्तलाल जी का भी स्वर्गवास हो गया। सारे परिवार का भार अकेले इन पर ही था। इनके घर में भी तीन लड़कियों और दो लड़कों ने जन्म लिया। सन् १९५७ में आप किसी काम से अकेले कलकत्ता आये थे, वहीं उनको हृदय रोग का दौरा पड़ा। छः महीने विस्तर पर रहे। डाक्टर ने अब अति परिश्रम करने के लिये मना कर दिया था। तब से धनवाद नहीं गये, कलकत्ते ही रह गये। यहां अपने कार्यालय में काम करते थे। बीमार होते हुए भी आप में आत्मबल बहुत था। आप स्वयं तो सत्य के पुजारी थे ही, अपने सब बच्चों को भी पूरी तरह सच्चाई में ढाला। पूरा परिवार मनसा वाचा कर्मणा एक था।

आप जीवन भर सब की सहायता करते रहे, कभी किसी से सहायता नहीं ली। जीवन भर कभी आराम नहीं किया, काम ही करते रहे। अन्तिम दिन मार्ग-शीर्ष वदी ६ सं० २०४१ १४-११-१९८४ को भी प्रातः भ्रमण करने गये, शाक-भाजी और फल खरीद के लाये। ९-३० साढ़े नौ बजे डीलक्स से अपनी पत्नी तथा बहन के साथ भाई की लड़की के विवाह में सम्मिलित होने के लिये धनबाद गये और जैसे ही धनबाद पहुंचे, उतरने के लिये चलकर गाड़ी के द्वार तक पहुंचते-पहुंचते गाड़ी में गिर गये और आपका प्राणान्त हो गया। इस समय आपकी आयु ६६ वर्ष की थी।

आप अपने दामाद श्री मोहनलाल जी बागड़िया द्वारा स्थापित **'श्रीमती सावित्रीदेवी बागड़िया ट्रस्ट'** (कलकत्ता) के संस्थापक सदस्य (Founder Turstee) थे।

हा हन्त !!

वैदिक-धर्म-प्रेमी श्रेष्ठिप्रवर

श्री मोहनलाल जी बागड़िया का आकस्मिक निधन

अभी श्री रामेश्वरलाल जी अग्रवाल (श्वशुर-श्री मोहनलाल जी बागड़िया) को दिवंगत हुए लगभग ६ मास ही हुए थे कि श्री मोहनलाल जी बागड़िया का स्वल्पकालिक रोग से अल्प आयु में ही अचानक ५ मई १९८५ को स्वर्गवास हो गया। आप वैदिक धर्म और वैदिक संस्कृति के अनन्य भक्त थे। उसके प्रचार-प्रसार के लिये आपने 'श्रीमती सावित्री देवी बागड़िया ट्रस्ट' की स्थापना की थी। इसके द्वारा आपने अल्प समय में ही वैदिक वाङ्मय के प्राचीन दुर्लभ ग्रन्थों एवं वैदिक-धर्म और संस्कृति में सहायक अनेक ग्रन्थों का प्रकाशन किया था।

आपने न केवल अपने जीवन को, अपितु पूरे परिवार को वैदिक-जीवन-पद्धति के अनुसार ढालने का एक अनुपम उदाहरण उपस्थित किया है। ऐसे वैदिक धर्म एवं वैदिक संस्कृति के अनन्य उपासक के अचानक स्वर्गवास से आर्यजगत् की जो हानि हुई है, वह अपूरणीय है।

युधिष्ठिर मीमांसक

श्रीमती सावित्रीदेवी बागड़िया ट्रस्ट कलकत्ता

द्वारा

प्रकाशित वैदिक साहित्य

श्री पण्डित युधिष्ठिर जी मीमांसक की प्रेरणा से सन् १९७८ में 'श्रीमती सावित्रीदेवी बागड़िया ट्रस्ट' की ओर से प्राचीन दुर्लभ वैदिक ग्रन्थों के तथा वैदिक धर्म और संस्कृति के प्रचार में सहायक ग्रन्थों के प्रकाशन का निश्चय किया। इस कार्य में ट्रस्ट अभी तक ५५ हजार रुपया लगा चुका है। इस समय तक ट्रस्ट द्वारा निम्न ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं—

१. **गोपथ-ब्राह्मण**—(मूल मात्र)। डा० श्री विजयपाल जी विद्यावारिधि ने पूर्व मुद्रित संस्करणों तथा हस्तलेखों से मिलान करके इसका सम्पादन किया है।

२. **निरुक्त-श्लोकवार्त्तिकम्**—यह केरलदेशीय नीलकण्ठ गार्ग्य विरचित निरुक्त की श्लोकबद्ध विस्तृत व्याख्या है। इसका एकमात्र हस्तलेख मलयालम लिपि में ताड़-पत्र पर उपलब्ध है। इस दुर्लभ ग्रन्थ का सम्पादन भी डा० श्री विजयपाल जी विद्यावारिधि ने किया है।

३. **कात्यायनीय ऋक्सर्वानुक्रमणी**—(षड्गुरुशिष्य विरचित वृत्ति सहित) डा० मैक्डानल् द्वारा सम्पादित इस ग्रन्थ का प्रकाशन ७५ वर्ष पूर्व हुआ था। उसमें वृत्ति का पूरा पाठ नहीं दिया गया था। इस बार डा० विजयपाल जी विद्यावारिधि ने अनेक हस्तलेखों के आधार पर इस का सम्पादन किया है और वृत्ति का पूरा पाठ छापा गया है। विस्तृत भूमिका और अन्त में अनेक उपयोगी परिशिष्ट दिये गये हैं।

४. **ध्यान-योग-प्रकाश**—ऋषि दयानन्द के योग-विद्या के शिष्य स्वामी लक्ष्मणानन्द जी ने इस ग्रन्थ में अति सरल रूप में योग के आठों अङ्गों का विस्तृत विवेचन किया है।

५. **वैदिक-जीवन**—लेखक—श्री पं० विश्वनाथ जी वेदोपाध्याय। इस ग्रन्थ में अथर्ववेद के आधार पर मनुष्य-जीवन के कर्त्तव्यों पर सुन्दर प्रकाश डाला है।

६. **ऋषि दयानन्द के शास्त्रार्थ और प्रवचन**—इस ग्रन्थ में पौराणिक विद्वानों तथा ईसाई मुसलमानों के साथ हुए ऋषि-दयानन्द के प्रामाणिक लिखित-शास्त्रार्थों तथा पूना और बम्बई में दिये गये व्याख्यानों का संग्रह है।

७. **Anthology of Vedic Hymns**—यह ग्रन्थ श्री स्वामी भूमानन्द सरस्वती ने अंग्रेजी पढ़े लिखे विद्वानों वा छात्रों में वैदिक धर्म एवं संस्कृति के प्रचार प्रसार के लिये अंग्रेजी भाषा में लिखा है।

विषय-सूची

उपोद्घातः

१. वेदः

ऋग्यजुःसामलक्षणात्मको मन्त्रराशिर्वेदपदभाग् भवति । वेदो भारतीयजनमानसस्य परमां श्रद्धां भजति । स्वयं वेद आत्मानं परमात्मदेवस्याजरममरं काव्यमुद्घोषयति—**देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति** (अथर्व० १०।८।३२) इति । **सर्वज्ञानमयो हि सः** (मनु० २।७), **सर्वं वेदात् प्रसिध्यति** (मनु० १२।९७) इत्यादिवचनानि वेदस्य सर्वज्ञाननिधित्वं प्रतिपादयन्ति । धर्मविषये श्रुतिरेव परमप्रमाणत्वेनाङ्गीक्रियत ऋषिभिरिति—**धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः** (मनु० २।१३) इत्यादिवचनैरभिव्यज्यते । आर्यजीवनं जन्मन आरभ्या मृत्योर्वेदाक्षं परितः परिभ्राम्यति । अत एव प्राचीनाचार्यैर्वेदाध्ययनं नित्यकृत्येषु प्रदिष्टम्—**स्वाध्यायोऽध्येतव्यः** (श० ब्रा० ११।५।७।२) इति । अतिपुरातनयुगे सर्वे लोकव्यवहारा वेदायत्ता आसन्, सर्वश्च कर्मवितानो वेदमन्त्रैरेव समपद्यत । तदेवं वेदः प्राचीनभारतीयसमाजे प्राणवद् ओतः प्रोतश्चासीत् ।

भारतीयसमाजः स्वोदयकालादेव यज्ञप्रधान आसीत् । किं बहुना, यज्ञशब्दो धर्मपर्यायो बभूव । तथा च ददर्श दीर्घतमाः—

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् (ऋ० १।१६४।५०) इति । कृतयुगे तावद् यज्ञानां स्वरूपमतीव सरलं, सुबोधं चासीत् । ततः समायाते त्रेतायुगे यज्ञा जटिलप्रक्रियाबहुला, बह्वायाससम्भारर्त्विक्साध्याश्च समपद्यन्त । व्यासादिवचनान्यत्रप्रमाणम् । तथा हि—

> **त्रेतादौ केवला वेदा यज्ञा वर्णाश्रमास्तथा** । महा० शां० २३८।१४॥
> **त्रेतायुगे विधिस्त्वेष यज्ञानां न कृते युगे** । महा० शां० २३२।३२॥
> **यथा त्रेतायुगमुखे यज्ञस्यासीत् प्रवर्त्तनम्** । वायु पु० ५७।८९॥
> **तदेतत् सत्यं मन्त्रेषु कर्माणि कवयो यान्यपश्यन्, तानि त्रेतायां बहुधा सन्ततानि** । मु० उप० १।२।१॥

यज्ञप्रसङ्गे द्रव्यदेवताकर्मस्मारका हि मन्त्रा इत्याहुः । तत्रानुष्ठीयमानस्य कर्मविशेषस्य सम्पत्तिर्न विना मन्त्रेण भवतीति श्रूयते । तथा हि—

> **एतद् वै यज्ञस्य समृद्धं यद् रूपसमृद्धं यत् कर्म क्रियमाणम् ऋग्यजुर्वाभिवदतीति** । गो० ब्रा० २।२।६॥

इत्थं च कर्मणां सम्बन्धो मन्त्रैः सह समजनि । एतच्च कर्ममन्त्रयोः पारस्परिक-

सम्बन्धप्रतिपादनं विनियोग इत्यभिधीयते। कर्मानुष्ठानकाले मन्त्राणाम् ऋषिदेवताछन्दोविनियोगाः पदे पदे ऽपेक्ष्यन्त इत्येषां प्रतिमन्त्रं बोध आवश्यको ऽनुष्ठातॄणाम्। तद्बोधमन्तरेण याजनमध्यापनं वा गर्ह्यतमाम्। तथा चोक्तं ब्राह्मणकारेण—

> यो ह वा अविदितार्षेयच्छन्दोदैवतब्राह्मणेन मन्त्रेण याजयति वाध्यापयति वा स्थाणुं वर्च्छति गर्तं वा पद्यति प्र वा मीयते पापीयान् भवति।.....तस्मादेतानि मन्त्रे मन्त्रे विद्यात्॥ आर्षेय ब्रा० १।१॥

२. ब्राह्मणम्

बहुदिवससाध्येषु सोमयागेषु ब्रह्मोद्यानि समायोज्यन्ते स्म, यत्र ब्रह्मर्त्विक्प्रमुखा अनूचानाः कर्मविशेषमधिकृत्य प्रवचनानि प्रास्ताविषुः। तान्येव प्रवचनानि ब्रह्मकर्तृकत्वाद् ब्राह्मणानीति नामधेयेन प्रसिद्धानि बभूवुः। तदेवं कर्म पौर्वापर्यप्रदर्शनं कर्मणि च विनियुक्तानां मन्त्राणाम् ऋषिदेवताछन्दउल्लेखपुरसरम् अधियज्ञं विवरणं ब्राह्मणग्रन्थानां प्रतिपाद्यो विषयः। तत्र विवरणे हेतुनिर्वचनादिविषयाः प्रसङ्गतो व्याह्रियन्ते। तथा च कर्मकाण्डम् अतिरिच्य नैके लौकिकवैदिकविषया ब्राह्मणग्रन्थपरिधौ समाविश्यन्ते। ब्राह्मणग्रन्थाः प्रसक्तानुप्रसक्तविवरणैस्तथा वितन्वन्ति विषयं यथा कर्मपौर्वापर्यबोध ऋषिदेवताछन्दोविनियोगादिज्ञानं च न झटिति जायते। अत्र व्याख्यानेषु मन्त्रस्थपदानाम् उच्चारणस्वरूप-निष्पत्ति-पदार्थाववोधस्य सुतरामवकाशो न लभ्यते खलु। एतत् काठिन्यम् अनुभूय परमकारुणिकैर्महर्षिभिर्नूतनः कश्चित् प्रयासो व्यधायि। तस्य धाराद्वयम्—वेदाङ्गानि वेदलक्षणानि चेति।

३. वेदाङ्गानि

वेदाङ्गप्रवृत्तिम आचिख्यासुर्यास्कः प्राह—

> साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवः। ते ऽवरेभ्यो ऽसाक्षात्कृतधर्मभ्य उपदेशेन मन्त्रान् प्रादुः। उपदेशाय ग्लायन्तो ऽवरे बिल्मग्रहणायेमं ग्रन्थं समाम्नासिषुर्वेदं च वेदाङ्गानि च। निरु० १।२०॥

इदमत्राकूतम्—ज्ञानचक्षुषा ज्ञातकर्मतद्विपाका ऋषय आदौ बभूवुः। ततस्तेऽवरकालोत्पन्नेभ्यः श्रुतर्षिभ्यो मन्त्रान् प्रतिपादयाम सुः। श्रुतर्षयस्त्ववरकालप्रभवानाम् अल्पसामर्थ्यमवेक्ष्य परमानुकम्पया चरणशाखाविवेकेन वेदाङ्गप्रणयनेन च वेदविद्यां प्रख्यापयामासुः। वेदाङ्गानां कालविशेषोऽत्र न निर्धारितः, केवलं प्रवृत्तिक्रमः प्रदर्शितः। कालविशेषस्तु प्रकारान्तरेण निश्चीयते विपश्चिद्भिः।

अत्राङ्गत्वं नामोपकारकत्वम्। तथा हि—शिक्षया वैदिकवर्णानां निर्दोषोच्चारणस्य, छन्दःशास्त्रेण गायत्र्यादिवैदिकछन्दसां, कल्पेन कर्मविशेषे मन्त्रविनियोगस्य कर्मपौर्वापर्यस्य च, व्याकरणेन वैदिकशब्दस्वरूपनिष्पत्तेः, निरुक्तेन मन्त्रार्थप्रतिपत्तेः

सन्दिग्धदैवतनिर्णयस्य च, ज्यौतिषेण च कर्माङ्गभूतकालस्य बोधात् तत्तदङ्गम् उपकारकं भवति।

४. वेदलक्षणानि

वेदाङ्गसमकालमेव वेदलक्षणग्रन्था अपि व्यरच्यन्त। तत्र प्रधानतो लक्षणानि द्विधा विभज्यन्ते—प्रातिशाख्यानि चानुक्रमण्यश्चेति।

४. १. प्रातिशाख्यानि

शाखायां शाखायां प्रति प्रतिशाखम्। प्रतिशाखं भवमिति प्रातिशाख्यमिति व्युत्पत्त्या चरणविशेषसम्बद्धानां सर्वासां शाखानां सन्ध्यादिविशेषप्रतिपादनपरो ग्रन्थः प्रातिशाख्यपदेनाभिधीयते। अत एवाहानन्तः—पञ्चदशसु शाखासु एकमेव कात्यायनसूत्रम् (वा० प्रा० १।१ अनन्तभाष्ये) इति। प्रातिशाख्यानां साधारणप्रतिपाद्यविषयाः सन्ति—वर्णोच्चारणं, पदपाठः, क्रमपाठः, सन्धिः, स्वरश्चेति। तैत्तिरीयप्रातिशाख्ये जटापाठः, ऋक्प्रातिशाख्ये च छन्दोविचितिरपि समुपलभ्यते। प्रातिशाख्यानां तत्सदृशेतरलक्षणग्रन्थानां च पुरा काले विपुलसंख्या समवर्ततेति सम्प्रत्युपलभ्यमानप्रातिशाख्यादिग्रन्थेषु स्मृतैर्नवपञ्चाशत् प्रवक्तृनामभिः सुतराम् अनुमीयते।

४. १. १. प्रातिशाख्यवाङ्मयम्

अथेमानि प्रातिशाख्यान्यद्यत्व उपलभ्यन्ते—

(१) ऋक्प्रातिशाख्यम्—शौनककृतोऽयं ग्रन्थो ऽतिप्राचीनः प्रामाणिकश्च। अष्टादशसु पटलेष्वत्र कारिकाभिः (किं वा सूत्रैः) ऋग्वेदस्य शाकलशाखासम्बन्धिनः स्वर-वर्ण-सन्धि-छन्दोविषयान् अधिकृत्य नियमा विहिताः। उवटकृतविशदभाष्यम् अत्रोपलभ्यते। विष्णुमित्रकृतवर्गद्वयवृत्तिरप्यस्य वर्गद्वये प्रकाशिता दृश्यते।

(२) वाजसनेयि-प्रातिशाख्यम्—कात्यायनप्रणीतोऽयं ग्रन्थो ऽष्टस्वध्यायेषु प्रविभक्तश्चत्वारिंशदुत्तरसप्तशतसूत्रैः शुक्लयजुर्वेदस्य वाजसनेयिचरणसम्बन्धिनः स्वरसंस्कारविषयान् प्रदर्शयति। अत्रोवटानन्तकृतं भाष्यद्वयं समुपलभ्यते।

(३) तैत्तिरीयप्रातिशाख्यम्—कृष्णयजुर्वेदस्य तैत्तिरीयचरणसम्बद्धमिदं प्रातिशाख्यं प्रश्नद्वये विभक्तम्। ततश्च प्रतिप्रश्नं द्वादशाध्यायाः। सूत्रात्मकोऽयं ग्रन्थः स्वचरणविषयकस्वरसन्धिविशेषान् जटादिविकृतीश्च प्रदर्शयति। तत्र माहिषेय-सोमयार्य-गोपालयज्वप्रणीतानि यथासंख्यं पदक्रमसदन-त्रिभाष्यरत्न-वैदिकाभरणाभिधानि भाष्याणि समुपलभ्यन्ते।

(४) ऋक्तन्त्रम्—सामवेदस्य कौथुमचरणसम्बद्धोऽयं ग्रन्थः शाकटायनप्रणीत ऋक्तन्त्रव्याकरणनाम्नापि प्रसिद्धः। तत्र त्रिशतकल्पानि सूत्राणि पञ्चसु प्रपाठकेषु विभक्तानि। सन्धिविशेषा अत्रोपादीयन्ते।

(५) पुष्पसूत्रम्—पुष्पप्रणीतोऽयं ग्रन्थो दशसु प्रपाठकेषु सामगानसम्बन्धि-विशेषान् प्रतिपादयति। अत्रोपाध्यायाजातशत्रुकृतं भाष्यम् अप्युपलभ्यते।

(६) अथर्ववेदप्रातिशाख्यम्—सूत्रात्मकोऽयं ग्रन्थो ऽथर्ववेदीयसन्ध्यादीन् विषयीकरोति। सूर्यकान्तेन सम्पादितमिदं प्रातिशाख्यम्।

(७) शौनकीया चतुरध्यायिका—ह्विटनीसम्पादितोऽयं ग्रन्थः।

(८) अथर्ववेदप्रातिशाख्यम्—विश्वबन्धुना सम्पादितम्।

४. २. अनुक्रमण्यः

याज्ञे कर्मणि पदे पद ऋषिदेवताछन्दोविनियोगानां परिज्ञानम् अपेक्ष्यते। तच्च ब्राह्मणग्रन्थेषु सविस्तरं प्रतिपादितम् इत्यभिहितं पुरस्तात्। ब्राह्मणतश्च ऋष्यादि-ज्ञानं न सुग्रहम् इत्यनुभवन्तः शौनकप्रमुखैर्ऋषिभिरन्यः प्रयासः प्रारब्धः। ते तत्र भवन्तो वेदानां पृथक् पृथक् प्रतिमन्त्रम् ऋष्यादीनां संकलनं विहितवन्तः। इमान्येव संकलनानि अनुक्रमणीनामभाञ्जि बभूवुः। अनुक्रमण्यः प्रधानतो ब्राह्मणान्युपजीवन्ति। इमे ग्रन्था वेदमात्रविषयाः, न तु वेदाङ्गवल् लोकवेदसाधारणाः।

४. २. १. अनुक्रमणी-कालः—

आपस्तम्बधर्मसूत्रे (१।३।२।६) अनुवाकानुक्रमणीं तावद् उद्ध्रियते, अतोऽस्या आपस्तम्बधर्मसूत्रात् पूर्ववर्तित्वं निश्चीयते। आपस्तम्बधर्मसूत्रं च खीस्ताब्दात् प्राक् तृतीयशताब्दीतो ऽर्वाङ् न शक्यते स्थापयितुमिति प्राध्यापको वूह्लरः प्रकृतधर्मसूत्रा-नुवादभूमिकायां प्रतिपादयाञ्चकार। किं च स भवांस्तत्रैवास्य धर्मसूत्रस्य प्रणयन-कालं खीस्तपूर्वपञ्चमशताब्दीं सम्भावयति। अतो ऽनुवाकानुक्रमणी-प्रणयनकालः खीस्तपूर्वपञ्चमी शताब्दी स्यादिति प्रत्यपीपदद् मैक्डानलः कात्यायनीय-सर्वानुक्र-मण्या आमुखे। अयमेव साधारणः कालो ऽन्यासाम् अप्यनुक्रमणीनाम्।

ऋग्यजुःसामाथर्वसम्बन्धिन्यो या अनुक्रमण्यः (तत्सदृशा वा ग्रन्थाः) सूच्यन्त उपलभ्यन्ते च, ता अधस्ताद् उल्लिख्यन्ते—

४. २. २. ऋग्वेदीयानुक्रमण्यः

षड्गुरुशिष्यः सर्वानुक्रमणीवृत्तिभूमिकायां शौनकप्रणीतान् दश ग्रन्थान् निर्दि-देश। तथा हि—

शौनकीया दश ग्रन्थास्तदा ऋग्वेदगुप्तये।
आर्षानुक्रमणीत्याद्या छान्दसी दैवती तथा॥
अनुवाकानुक्रमणी सूक्तानुक्रमणी तथा।
ऋक्पादयोर्विधाने च बार्हद्दैवतमेव च॥

प्रातिशाख्यं शौनकीयं स्मार्तं दशमसुच्यते ।
(मैक्समूलरः प्राचीनसंस्कृतवाङ्मयेतिहासे पृ० २११-२१२ चौ० सं०)

इमे ग्रन्था अत्राकूताः—आर्षानुक्रमणी, छन्दोऽनुक्रमणी, देवतानुक्रमणी, अनुवाकानुक्रमणी, सूक्तानुक्रमणी, ऋग्विधानम्, पादविधानम्, बृहद्देवता, ऋक्प्रातिशाख्यम्, शौनकीया स्मृतिः । अत्रान्त्यद्वयं विहाय सर्वा अनुक्रमण्य एव । षड्गुरुशिष्यस्तु सर्वानेवैतान् ग्रन्थान् अनुक्रमण्य इत्यभिधत्ते वेदार्थदीपिकायाम् (का० सर्वा० परि० १।१) । अथैता अनुक्रमण्यः समासतो विव्रियन्ते—

(१) **आर्षानुक्रमणी**—श्लोकात्मकोऽयं ग्रन्थः । अत्र राजेन्द्रलालसम्पादिते (बङ्गाल एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता) ग्रन्थे संयोज्य २९२ श्लोकाः प्रकाशिताः । मैक्डानलस्तु विंशत्युत्तरत्रिशतं श्लोकानां संख्यां सूचयामास कात्यायनीयसर्वानुक्रमणीभूमिकायाम् । अयं ग्रन्थः षड्गुरुशिष्येण वेदार्थदीपिकायां पञ्चदशकृत्व उद्धृतः ।

(२) **छन्दोऽनुक्रमणी**—अयमपि ग्रन्थः श्लोकात्मकः । अत्र हि राजेन्द्रलालसम्पादिते (बङ्गाल एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता) संस्करणे दशसु मण्डलेषु संयोज्य ३८८ श्लोकाः प्रकाशिताः । षड्गुरुशिष्यो वेदार्थदीपिकायां द्विः सस्मारेमाम् अनुक्रमणीम् । द्वे अप्युद्धरणे यथास्थानम् उपलभ्येते ।

(३) **देवतानुक्रमणी**—अस्य ग्रन्थस्य हस्तलिखितकोशा नोपलभ्यन्ते ऽद्य । ग्रन्थोऽयं पद्यात्मक आसीदिति षड्गुरुशिष्येण वेदार्थदीपिकायाम् उद्धृतैर्वचनैरनुमीयते । बृहद्देवतासन्निभो ऽयं ग्रन्थो लघुकलेवरः स्यादिति मैक्डानलः सम्भावयति ।

(४) **अनुवाकानुक्रमणी**—अयं ग्रन्थो ऽपि पद्यात्मक एव । षड्गुरुशिष्यो ऽस्य वृत्तिं रचयामास, वेदार्थदीपिकायां च त्रिः सस्मार । अस्या अनुक्रमण्या विशिष्टं विवरणम् अधस्तात् स्वतन्त्रपरिच्छेदे विधास्यते ।

(५) **सूक्तानुक्रमणी**—इयमनुक्रमणी केनचित् क्वचिद् उद्धृता न वेति न ज्ञायते । हस्तलिखितकोशाः खल्वप्यस्याः सम्प्रति नोपलभ्यन्ते । षड्गुरुशिष्यकालेऽस्या अस्तित्वं निर्विवादमेव । सूक्तानां प्रतीकसूचीरूपेयमनुक्रमणी स्यादिति कल्पयति मैक्डानलः, अत एवास्या उद्धरणानि नोपलभ्यन्ते ।

(६) **ऋग्विधानम्**—श्लोकात्मकोऽयं ग्रन्थो द्विः प्रकाशितः । सम्प्रत्युपलभ्यमानग्रन्थस्य शौनककर्तृत्वं नासंदिग्धमिति सम्पादकमतम् । अत्र हि केषाञ्चन ऋङ्मन्त्राणां विनियोगाः, विषयः, फलानि च प्रदिष्टानि । ग्रन्थः पञ्चस्वध्यायेषु विभज्यते, तत्र संयोज्य ७५८ श्लोकाः संगृह्यन्ते । षड्गुरुशिष्यो वेदार्थदीपिकायाम् अस्माद् ग्रन्थात् त्रिरुद्धरति । नैकग्रन्थेषूद्धृतत्वाद् इदमेव प्रामाणिकं न तु मुम्बईप्रकाशितमन्यद् ऋग्विधानम् इति सम्पादको जगदीशशास्त्री युक्तमभिमन्यते ।

(७) **पादविधानम्**—लघुकायो ऽयं ग्रन्थो ऽज्ञातकर्तृकेण पादविधानभाष्येण

सविधं नरहरिमहोदयेन सम्पाद्य 'अडयारग्रन्थागारपत्रिकायां' (१९५० ख्रीस्ताब्दे, १३-१४ अङ्कयोः) प्रकाशितः। गद्यपद्यात्मको ऽयं ग्रन्थः, अत्र श्लोकाश्चतुर्दश संख्यायन्ते। तत्र ३७९ यद्वा ३८१ सांशयिका ऋक्पादाः प्रतीकशो निर्दिश्यन्ते। हस्तलिखित-कोशभेदात् संख्याभेदो निरदेशि सम्पादकेन। षड्गुरुशिष्येण वेदार्थदीपिकायां (का० सर्वा० परि० ११।६) पञ्चश्लोका अस्यग्रन्थस्य समुद्धृताः। पादविधानभाष्ये पाद-प्रतीकानां पूर्त्ति, व्यवस्थां, संख्यानं चान्तरेण न कश्चिद् विशेष उपलभ्यते।

(८) **बृहद्देवता**—प्रकाशितो ऽयं ग्रन्थः सानुवादः। यद्यप्ययं ग्रन्थो ऽनुक्रमणी-नाम्ना नाभिधीयते, तथापि व्यवहारत इयमनुक्रमण्येव। षड्गुरुशिष्यः खल्वपि वेदार्थ-दीपिकायाम् (ऋ० १०।७१) इमं ग्रन्थम् अनुक्रमणीशब्देन व्यपादिक्षदिति मैक्डानलः। श्लोकात्मको ऽयं ग्रन्थो ऽष्टाध्यायपरिमितः पुनश्च वर्गेषु विभक्तः। द्वादशशतकल्पाः श्लोका अत्र संगृहीताः सन्ति। तत्रादौ सपादशतश्लोकात्मिका भूमिका सन्निबध्यते यत्र देवतास्वरूप-स्थान-वैलक्षण्यादिविषयमधिकृत्य विवरणं प्रस्तूयते। ततः प्रतिसूक्तं देवता निर्दिश्यन्ते, यथावसरं चाख्यानानि समुपस्थाप्यन्ते। अनेकत्र स्थलेषु शौनको यास्कीयमतमुपस्थापयति। अस्मिन् ग्रन्थे यास्क-शौनक-शाकटायन-शाकपूणि-गाल-वाचार्यणामैतरेयब्राह्मणस्य च मतानि बहुश उल्लिख्यन्ते।

(९) **कात्यायनीया सर्वानुक्रमणी**—शौनकीयानुक्रमणीभ्यो ऽन्यैकैवानुक्रमणी प्रसिद्ध ऋग्वेदस्य, सा च कात्यायनीया सर्वानुक्रमणी। अग्रिमे परिच्छेदे सा विवरीष्यत इत्यास्तां तावत्।

(१०) **शौनकीया स्मृतिः**—अयं ग्रन्थः शौनकेन स्वयमेव स्वशिष्यस्याश्व-लायनस्य प्रीत्यै विनाशित इति षड्गुरुशिष्यकथनादेव परिकल्प्यत उक्तचरेण पाद-विधानसम्पादकेन। तथा हि वेदार्थदीपिकाया उपोद्घाते षड्गुरुशिष्यः प्राह—

सहस्रखण्डं स्वकृतं सूत्रं ब्राह्मणसन्निभम्।
शिष्याश्वलायनप्रीत्यै शौनकेन विपाटितम्॥

(मैक्समूलरः प्राचीनसंस्कृतवाङ्मयेतिहासे पृ० २११ चौ० सं०)

४. २. ३. यजुर्वेदीयानुक्रमणी

कात्यायनप्रणीता शुक्लयजुर्वेदस्य वाजसनेयिचरणान्तर्गतमाध्यन्दिनशाखायाः सर्वानुक्रमणी प्रसिद्धा। सूत्रात्मको ऽयं ग्रन्थः पञ्चस्वध्यायेषु विभज्यते। अत्र ऋषि-देवताछन्दांसि कल्पकारोक्ताश्च विनियोगा अनुक्रम्यन्ते। अध्यायचतुष्टयेऽनुक्रमः समाप्यते, पञ्चमे ऽध्याये कात्यायनीयर्क्सर्वानुक्रमणीस्थं परिभाषाप्रकरणमनुक्रियते। ग्रन्थान्ते भाष्यकारो ऽनन्तदेवयाज्ञिकोऽपि पञ्चमाध्यायस्यास्वकीयत्वमेव प्रतिपादयति। अस्य ग्रन्थस्य शौनकशिष्यकात्यायनप्रणीतत्वं सन्दिग्धम्, यजुर्वेदभाष्यकृतो-वटेनानाश्रितत्वाद् अस्मृतत्वाच्च। तथा हि—स्वयजुर्वेदभाष्यारम्भ उवटः प्रावोचत्—

गुरुतस्तर्कतश्चैव तथा शातपथश्रुतेः ।
ऋषीन् वक्ष्यामि मन्त्राणां देवताश्छान्दसं च यत् ॥

यदि हि नामोवटः कात्यायनीयां यजुःसर्वानुक्रमणीं पर्यज्ञास्यत्, तर्हि तस्या अपि नामावश्यम् उपजीव्येषु निरदेक्ष्यत् । अतो ऽस्याः सर्वानुक्रमण्या अर्वाचीनत्वम् अनुमीयते ।

४. २. ४. सामवेदीयानुक्रमणी

सामवेदस्य कौथुमान्तर्गतनैगेयशाखाया अनुक्रमणी मुद्रितोपलभ्यते । अस्मिन् ग्रन्थे सामवेदीयमन्त्राणाम् ऋषयो देवताश्चानुक्रम्यन्ते । सप्तसु प्रपाठकेष्वार्चिकस्य द्वयोश्चोत्तरस्यर्षिदेवताः प्रतिपाद्यन्ते । ग्रन्थस्य नाम नैगेयशाखानुक्रमणीति निर्दिश्यते, परमस्य नामादिविषये किमपि न ज्ञायते । अत्र हि नैके ग्रन्था ग्रन्थकृतश्च स्मर्यन्ते, ग्रन्थान्तरीयाः सन्दर्भाश्चोद्ध्रियन्ते । तद् यथा—ऋग्वेद, ऐतरेय बह्वृच, आश्वलायन, शौनक, यजुर्वेदकाठक, शतपथब्राह्मण, निघण्टु, निरुक्त, यास्क, शाकपूणि नैदान काथ्य, शाकपूणि । यास्कीयनिरुक्तस्य बहूनि वचनान्युदध्रियन्ते ऽत्र । अपि च तस्य त्रयोदशचतुर्दशाध्यायाभ्यां परिशिष्टरूपाभ्यां सन्दर्भा आदीयन्ते । खीस्तीयप्रथमशताब्द्यां लब्धजन्मनो दुर्गस्य वृत्तौ निरुक्तस्य चतुर्दशाध्यायस्थवचनस्योद्वृतत्वाद् अनुमीयते—दुर्गतः पूर्वमेव चतुर्दशोऽध्यायो निरुक्ते सन्नियोजित आसीत् । अतो नैगेयशाखानुक्रमणी खीस्तीयप्रथमशताब्दीतः पूर्ववर्त्तिनीति निश्चकर्ष वेवरो नैगेयशाखानुक्रमण्या उपोद्घाते । ऋक्तन्त्रप्रातिशाख्यकारः पाणिनेरर्वाचीनो नैगेयशाखां सस्मार । तस्माद् इयं नैगेयशाखानुक्रमणी सुप्राचीनेति वेवरः ।

४. २. ५. अथर्ववेदीयबृहत्सर्वानुक्रमणी

अथर्ववेदीय (शौनकीय) मन्त्राणाम् ऋषिदेवताछन्दसां परिचायको ग्रन्थो ऽथर्ववेदीयबृहत्सर्वानुक्रमणीनाम्ना प्रसिद्धो द्विः प्रकाशित उपलभ्यते । अस्य ग्रन्थस्य कर्तृकालादिविषये न किमपि ज्ञायते । सायणोऽपि स्वाथर्ववेदभाष्ये न काम्यनुक्रमणीं तत्सदृशं वा ग्रन्थं समाशिश्रियत् । एतेन ज्ञायते सायणेनायं ग्रन्थो न पर्यज्ञायीति । ग्रन्थोऽयम् एकादशसु पटलेषु विभज्यते । तत्रापि विभागद्वयं स्पष्टं परिलक्ष्यते । आद्यदशके तावद् अथर्ववेदीयाद्यकोनविंशतिः काण्डानि विषयीक्रियन्ते, अन्त्ये चैकादशे पटले विंशं काण्डम् । दशमपटलान्ते 'भृग्वङ्गिरा ब्रह्मे ति भृग्वङ्गिरा ब्रह्मे ति' इति, पुनश्चैकादशपटलान्ते 'मेध्यातिथिर्मेध्यातिथिरिति' इत्यावृत्तिद्वयम् अनयोर्विभिन्नकर्तृकत्वम् अनुमापयति । क्वचिद् हस्तलिखितकोशे दशमपटलान्ते, क्वचिच्चैकादशपटलान्ते पुष्पिकालेखोऽपि तदेवोपोद्बलयति । अपि च, प्रतिपादनशैलीभेदो लक्ष्यते । आद्यदशके तावत् पूर्णवाक्यैः प्रतिपादनं विधीयते, यथा—'तत्र प्रथमं ये त्रिषप्ता इति त्रीणि सूक्तान्यथर्वापश्यत्' इति । एकादशे तु पटले सूत्रात्मकैर्वाक्यैर्विषयो विव्रियते, यथा—'आ याहि, इरिम्विठः, ऐन्द्रम्, गायत्रम्' इति ।

खिल (कुन्ताप) सूक्तरहितस्य विंशकाण्डस्यर्षिदेवताछन्दांसि तावद् ऋग्वेद-सर्वानुक्रमण्यां प्रकाशितान्येवेति मनसिकृत्याद्यपटलदशतयस्य प्रणेता स्वग्रन्थम् एकविंशतितमकाण्डान्ते पर्यवास्यदिति कल्पचते। कालान्तरे त्वन्यो ग्रन्थकार आश्वलायन-शाखीयः स्वशाखाम् अनुसृत्य खिलरहितविंशकाण्डस्थसूक्तानाम् ऋष्यादिनिर्देशं व्यधात्। तथा चैकादशपटलोदये सूत्रम्—'ऋषिदैवतछन्दांस्याश्वलायनानुक्रमानुसारेण व्यख्यास्यामः खिलान् वर्जयित्वा' इति।

५. १. कात्यायनीया सर्वानुक्रमणी

पूर्वोल्लिखिताः शौनकीया अनुक्रमण्यः सुविस्तृता आसन्। ताः संक्षिप्यैकस्मिन् ग्रन्थे निबवन्ध शौनकशिष्यः कात्यायनः। एतच्च कात्यायनीयसर्वानुक्रमणीं विवृण्वता षड्गुरुशिष्येण शौनकीयानुक्रमणीभ्यः शतशो वचनान्युद्धृत्य संवादयता प्रदर्शितं सुतराम्। अयमेव कात्यायनः श्रौतसूत्रप्रातिशाख्ययोः प्रवक्तेति सम्भावयति मक्डानलः स्वसम्पादितायाः कात्यायनीयसर्वानुक्रमण्या आमुखे। अत एवास्य ग्रन्थस्य रचनाकालः खीस्तपूर्वचतुर्थशताब्दीमध्यम इति निर्णयामास स तत्रैव। अन्ये तु सर्वानुक्रमण्यां प्रयुक्तानि छान्दसानि पदान्यनुनिशम्यास्य ग्रन्थस्यातिप्राचीनत्वं प्रतिपादयन्ति।

सूत्रात्मको ऽयं ग्रन्थो प्रकरणद्वये विभज्यते—परिभाषा सर्वानुक्रमश्चेति। तत्र ग्रन्थारम्भे द्वादशकण्डिका परिभाषा निबध्यते, ततश्च चतुःषष्टिषु कण्डिकासु शाकल-शाखीयर्ग्वेदाध्यायपरिमितासु प्रधानविषयो वर्ण्यते। हस्तलिखितग्रन्थेषु सूत्रसंख्या नोपलभ्यते। अस्मद्गणनया परिभाषाप्रकरणे ११७ सूत्राणि, सर्वानुक्रमप्रकरणे च १०६० सूत्राणीति संयोज्य ११७७ सूत्राणि कात्यायनकृतौ वर्तन्ते।

परिभाषाप्रकरणस्य प्रथमकण्डिकायां ग्रन्थस्य प्रतिपाद्यविषयस्तदध्ययनफलं च वर्ण्यते। द्वितीयाद्द्वादश्योः कण्डिकयोः सर्वानुक्रमप्रकरणस्थसन्देहस्थलनिवृत्त्यर्थाः परिभाषाः संगृह्यन्ते। तृतीयात आरभ्यैकादशीं कण्डिकां यावद् ऋग्वेदे प्रयुक्तानि छन्दांसि परिभाष्यन्ते। परिभाषाप्रकरणानन्तरं प्रधानग्रन्थः सर्वानुक्रमः प्रारभ्यते, यश्चतुःषष्टिं कण्डिका अध्यायान् वा व्याप्नोति। तत्रर्ग्वेदस्य शाकलशाखायाः प्रतिसूक्तं क्रमशः सूक्तप्रतीकम्, ऋक्संख्या, ऋषिनाम, देवता, छन्दश्च प्रस्तूयन्ते। सूक्तार्थस्पष्टीकरणम् उद्दिश्य यथावसरं तत्सम्बन्धीतिहासोऽपि समासतो व्याह्रियते। तं चेतिहासं षड्गुरुशिष्यः स्ववृत्तौ विशदीकरोति, बृहद्देवतायाश्च तद्विषयकमंशं संदृभ्नाति। सर्वानुक्रमप्रकरणेऽपि मध्ये मध्ये स्पष्टीकरणार्थाः काश्चन परिभाषा व्यरचयत् कात्यायनः।

कात्यायनीयसर्वानुक्रमण्याम् (१।१) आर्षेयब्राह्मणादेकः सन्दर्भः, ऋग्वेदाच्च (का० सर्वा० परि० २।७)द्वे ऋचौ समुद्ध्रियेते नामनिर्देशं विनैव। शाट्यायनस्य ताण्डकस्य (का० सर्वा० ३५।१३) च मते प्रदर्श्येते। सन्दर्भद्वयं (का० सर्वा० १८। २; १८।७) श्रुतिशब्देन समुल्लिख्यते। परेषां मतं द्विः (का० सर्वा० २१।६; २५। १६) स्मर्यते। अस्मिन् ग्रन्थे नैकानि पदानि छान्दसानि, तानि च तत्र-तत्र वृत्तिकृता

षड्गुरुशिष्येण निर्दिष्टानि । देवताद्वन्द्वेषूभयपदवृद्धिः (अष्टा० ७।३।२१) पाणिनीयैरिष्यते, परमत्र ग्रन्थेऽन्यतरपदवृद्धिरुपलभ्यते छान्दसत्वात् ।

कात्यायनीयसर्वानुक्रमण्या हस्तलिखितकोशेषु खिलसूक्तसम्बन्धीनि सूत्राणि (षड्गुरुशिष्यकृता व्याख्या च) क्वचिदेवोपलभ्यन्ते न सर्वत्र । अस्मत्प्रयुक्तकोशेषु पु० १ कोशे खिलसूक्तानि तद्व्याख्यानं च षड्गुरुशिष्यकृतं दृश्यते । पुणेनगरस्थडेकनकालेजस्य हस्तलेखसूच्यां (7/A 1879-80 क्रमसंख्या २८) सर्वानुक्रमणिकाया हस्तलेखद्वयस्य पुष्पिकापाठ ईदृश उपलभ्यते—

(क)—तदेतत् सूक्तसहस्रं सप्तदशकं सपादाधिकम् ऋग्वेदे पारायणपाठे शाकल्ये शैशिरीयके...... ।

(ख)—इति कात्यायनप्रोक्तानुक्रमणिका समाप्ता । तदेतत् सूक्तसहस्रं ससप्तदशकं सपादाधिकं......।

खिलरहितः पाठ आभ्यामनुमीयते । वेदार्थदीपिकाया उदय एव 'खिलरहिते शाकलके' इति षड्गुरुशिष्यवचनात् खिलसूत्रतद्व्याख्यानयुतः पु० १ पाठो न युक्त इति निष्कर्षः ।

५. २. अनुवाकानुक्रमणी

अनुवाकानुक्रमण्या द्वे संस्करणे अद्य यावत् प्रकाशिते—मैक्डानलसंस्करणं, राजेन्द्रलालसंस्करणं चेति । तत्र मैक्डानलसंस्करणे विद्यमानाः प्रथमद्वितीयैकादशद्वादशत्रयोदशचतुर्दशसंख्याकाः श्लोका राजेन्द्रलालसंस्करणे नोपलभ्यन्ते । प्रथमद्वितीययोः श्लोकयोरौचित्यं मैक्डानलोऽपि सन्देग्धि, तयोराधुनिकत्वप्रतीतेः, षड्गुरुशिष्येण चाव्याख्यातत्वात् । एकादशप्रभृत्या चतुर्दशाच् चत्वारः श्लोका अपि न सार्वत्रिका इति राजेन्द्रलालेन परित्यक्ताः । तत्रैकादशः श्लोकः षड्गुरुशिष्येण व्याख्यातः । त्रयोदशचतुर्दशयोः संशोधनं विधाय मैक्डानलो यथाकथमपि सार्थक्यं प्रतिपादयति ।

आद्याश्चतुर्दश श्लोका अनुवाकानुक्रमण्या भूमिकारूपाः सन्ति । तत्रादौ तावद् ग्रन्थप्रतिपाद्यविषयो वर्ण्यते, ततो वेदाध्ययनरीतिः प्रतिपादिता । नवमे श्लोके प्रकृतानुक्रमण्याः शाखा ऋग्वेदस्य शाकलान्तर्गता शैशिरीयेति प्रोच्यते । ततः श्लोकत्रयेणाप्रीसूक्तानाम् ऋषयः प्रतीकानि च प्रस्तूयन्ते । तदनन्तरं श्लोकयुगलेन जमदग्निदृष्टाप्रीसूक्तविषये विशेषः प्रतिपाद्यते ।

पञ्चदशत आरभ्यैकविंशतितमं श्लोकं यावत् प्रथममण्डलस्यानुवाकानां प्रतीकानि, सूक्तसंख्या च प्रत्यनुवाकं प्रस्तूयते । तथैव द्वाविंशे पूर्वार्धे द्वितीयमण्डलस्य, द्वाविंशोत्तरार्धत्रयोविंशपूर्वार्धयोस्तृतीयमण्डलस्य, त्रयोविंशोत्तरार्ध-चतुर्विंशपूर्वार्धयोश्चतुर्थमण्डलस्य, चतुर्विंशोत्तरार्ध-पञ्चविंशपूर्वार्धयोः पञ्चममण्डलस्य, पञ्चविंशोत्तरार्ध-षड्विंशपूर्वार्धयोः षष्ठमण्डलस्य, षड्विंशोत्तरार्ध-सप्तविंश-

पूर्वार्धयोः सप्तमण्डलस्य, सप्तविंशोत्तरार्धाष्टविंशयोरष्टममण्डलस्य; एकोनत्रिंशे नवममण्डलस्य, त्रिंशैकत्रिंशयोर्दशममण्डलस्यानुवाकप्रतीकानि, प्रत्यनुवाकं च सूक्तसंख्याः प्रदीयन्ते।

द्वात्रिंशः श्लोकः प्रतिमण्डलम् अनुवाकसंख्यां प्रतिनिर्दिशति। तथा च—प्रथमे २४, द्वितीये ४, तृतीये ५, चतुर्थे ५, पञ्चमे ६, षष्ठे ६, सप्तमे ६, अष्टमे १०, नवमे ७, दशमे १२ इति संयोज्य पञ्चाशीतिरनुवाका ऋग्वेदे परिगणिताः।

३३-३५तमे श्लोकत्रये मण्डलानां सूक्तसंख्या समुल्लिख्यते। तथा च प्रथमे १९१, द्वितीये ४३, तृतीये ६२, चतुर्थे ५८, पञ्चमे ८७, षष्ठे ७५, सप्तमे १०४, अष्टमे ९२, नवमे ११४, दशमे १९१ इति संयोज्य १०१७ सूक्तानि खिलरहितानि परिगण्यन्त ऋग्वेदे।

षट्त्रिंशे श्लोके शाकलशाखायां सूक्तसंख्या १०१७ इति निर्दिश्यते। बाष्कलशाखायां पुनरष्टौ सूक्तान्यधिकानीति संयोज्य १०२५ इति सूक्तसंख्या जायते। शाकलशाखायाः सूक्तपरिगणने खिलानि परित्यज्यन्ते। सप्तत्रिंशे श्लोके ८५ इत्यनुवाकसंख्या निर्दिश्यते। अष्टत्रिंशे श्लोक ऋग्वेदे चतुःषष्टिरध्यायाः, दश मण्डलानि, २००६ वर्गाश्च सन्तीति प्रतिपाद्यते। एकोनचत्वारिंशे श्लोके खिलरहितानि सूक्तानि १०१७ इति संख्यायन्ते। ४०-४२ तमे श्लोकत्रय ऋक्संख्यानुक्रमेण वर्गसंख्या प्रदीयते। सा च मैक्समूलरदत्तपटलिकया प्रदश्यते ऽधस्तात्—

प्रकारः	वर्गाः	ऋचां योगः
एकर्चः	१	१
नवर्चः	१	९
द्वृचाः	२	४
तृचाः	९७	२९१
चतुर्ऋचाः	१७४	६९६
पञ्चर्चाः	१२०७	६०३५
षड्चाः	३४६	२०७६
सप्तर्चाः	११९	८३३
अष्टर्चाः	५९	४७२
	२००६	१०४१७

त्र्यश्चत्वारिंशे श्लोक ऋग्वेदस्य ऋक्संख्या १०५८०-पादश्चेति प्रोच्यते। चतुश्चत्वारिंशे श्लोक ऋग्वेदस्यार्धर्चानां संख्या २१२३२ इति, पदानां च संख्या १५३८२६ इति प्रतिनिर्दिश्यते। पञ्चचत्वारिंशे श्लोके चर्चापदानां संख्या ११०७९४ इति कथ्यते। अन्तिमे वाक्य ऋग्वेदस्याक्षरसंख्या ४३२००० इति प्रोच्यते।

५. ३. छन्दःसंख्या

एकादशश्लोकपरिमितो लघुकायो ऽयं ग्रन्थश्छन्दोऽनुक्रमणीपरिशिष्टरूपो हस्तलिखितकोशद्वयसाहाय्येन सम्पादितो मैक्डानलेन । छन्दःसंख्येति संज्ञा खल्वप्यस्य ग्रन्थस्य मैक्डानलकृतैव । छन्दोऽनुक्रमण्यां मण्डलस्थसूक्तानाम् ऋचां च च्छन्दांसि निर्दिश्यन्ते । छन्दःसंख्यासंज्ञकग्रन्थे पुनः शाकलसंहितायां विद्यमानानि गायत्र्यादिच्छन्दांसि पृथक्शः परिगण्यन्ते । ऋग्वेदस्य सम्पूर्णर्क्संख्यायोगः खल्वपि कीर्त्यतेऽत्र । तथा हि—

१. गायत्र्यः	२४५१	११. अष्टयः	६
२. उष्णिहः	३४१	१२. अत्यष्टयः	८४
३. अनुष्टुभः	८५५	१३. धृती	२
४. बृहत्यः	१८१	१४. अतिधृतिः	१
५. पङ्क्तयः	३१२	१५. एकपदाः	६
६. त्रिष्टुभः	४२५३	१६. द्विपदाः	१७
७. जगत्यः	१३४८	१७. बार्हतप्रगाथाः	१००
८. अतिजगत्यः	१७	१८. द्वृचाः	९४
९. शक्वर्यः	१९	१९. काकुभप्रगाथाः	५५
१०. अतिशक्वर्यः	९	२०. महाबार्हताः	२५१

सम्पूर्णयोगः १०४०२

अस्मिन् ग्रन्थे ऋचां सम्पूर्णयोगो यः १०४०२ इति कीर्तितः । पङ्क्तयः २४८, द्विपदाः १२७ इति मैक्डानलः। तत्र विदुषां विप्रतिपत्तयो विवेचनं निष्कर्षश्चात्रैव परिशिष्टरूपे 'ऋग्वेदस्यर्क्संख्या' इति संज्ञके निबन्धे प्रदर्शिताः ।

६. अनुक्रमणीव्याख्यातानि

अनुक्रमण्यो यथाकालं व्याख्याता अभूवन् । तत्र कासाञ्चन व्याख्यानानि सम्प्रति मुद्रितान्युपलभ्यन्ते । कात्यायनीयर्क्सर्वानुक्रमण्यनुवाकानुक्रमणीयाजुषानुक्रमणीनां व्याख्यानानि प्रकाशितानि दृश्यन्ते । कात्यायनीयर्क्सर्वानुक्रमण्याः षड्गुरुशिष्यकृता वेदार्थदीपिका नाम वृत्तिर्मैक्डानलेन सम्पादिता । गङ्गानाथकृता वृत्तिरपि मैक्डानलेनसूच्यते । सा हि वेदार्थदीपिकापेक्षया लघीयसी । तत्रेतिहासविवरणानि परित्यक्तानि । अनुवाकानुक्रमणीवृत्तिः षड्गुरुशिष्यप्रणीता मैक्डानलेन सम्पाद्य प्रकाशिता । याजुषानुक्रमणीभाष्यम् अनन्तयाज्ञिकविरचितं काशीतः प्रकाशितम् ।

६. १. वेदार्थदीपिका

कात्यायनीयसर्वानुक्रमण्या वृत्तिकारः षड्गुरुशिष्यः स्ववृत्तेर्नाम वेदार्थदीपिकेति

पञ्चकृत्व उल्लिलेख तस्मिन्नेव ग्रन्थे । तथा हि—'सर्वानुक्रमणीवृत्तिर्नाम्ना वेदार्थदीपिका' इत्युपोद्घातस्य षष्ठे श्लोके, 'वृत्तिर्नाम्ना वेदार्थदीपिका ·········· सर्वानुक्रमणीवृत्तिः' इत्युपोद्घातस्य ६५-६६ तमश्लोकयोः, ग्रन्थान्ते च १२, १३, १८ तमेषु श्लोकेषु । वृत्तावादावुपोद्घातरूपाः षट्षष्टिः श्लोका उपन्यस्ता य ऐतिहासिकदृष्टया ग्रन्थस्य महत्त्वम् उन्नयन्ति । वृत्तिरियं न केवलं दुरूहाणि सर्वानुक्रमणीसंक्षिप्तवचनानि विशदीकरोति, अपि तु समावेशयति नूतनां तत्तद्विषयिकां सामग्रीम् । सर्वानुक्रमण्यां सूत्रिता संकेतिता वेतिहासा अस्यां वृत्तौ सविस्तरं विव्रियन्ते । ऐतिहासिकविवरणेषु प्रायेण शौनकीयबृहद्देवतोपजीव्यते । ग्रन्थान्ते पुष्पिकायां 'प्रथमोऽध्यायः समाप्तः' इति वचनं ज्ञापयति—ग्रन्थकर्तुर्मनसि सुविस्तृतग्रन्थरचनायोजनासीदिति ।

वृत्तिकारः षड्गुरुशिष्यो वेदार्थदीपिकारचनाकालम् उद्दिश्य ग्रन्थान्ते स्वयमेव प्रोचे—

खगोत्यान्मेषुमायेति कल्यहर्गणने सति ।
सर्वानुक्रमणीवृत्तिर्जाता वेदार्थदीपिका ॥
लक्षाणि पञ्चदश वै पञ्चषष्टिसहस्रकम् ।
सद्वात्रिंशच्छतं चेति दिनवाक्यार्थ ईरितः ॥

अत्र निर्दिष्टः कालः ख्रीस्ताब्दः ११८७ इति निश्चिकाय वेवर इति मैक्डानलः कात्यायनीयसर्वानुक्रमण्यामुखे प्रदर्शयामास । वृत्तिकारः स्वगुरूणां षण्णां नामानि ग्रन्थान्त उल्लिलेख, न पुनः स्वकीयं नाम क्वचित् । षण्णां गुरूणां शिष्यत्वात् स षड्गुरुशिष्य इत्यभिधीयत आधुनिकैः । तेभ्यः षड्भ्यो गुरुभ्यः सप्त विद्या अनेनाधीता इत्यपि ग्रन्थान्ते स प्रकटयामास ।

षड्गुरुशिष्यो लौकिकवैदिकविद्यासु निष्णातः प्रामाणिको ऽनूचान आसीदिति वेदार्थदीपिकायां तदुद्धृतसन्दर्भैः सुतरां व्यज्यते । स हि संहिता-ब्राह्मणारण्यक-श्रौतसूत्र-गृह्यसूत्र-मनुस्मृति-महाभारत--भगवद्गीता--पुराण--प्रातिशाख्य--निरुक्त--निघण्टु (कोश)-पाणिनीयव्याकरण-पिङ्गलच्छन्दःसूत्र-बृहद्देवतानुक्रमणीग्रन्थेभ्यो यथेष्टं सन्दर्भान् उद्धृत्य स्वकथनान्युपोद्वलयति । पदे पदे तस्य पाणिनीयव्याकरणपाटवं प्रकटीभवति । ऐतरेय-ब्राह्मणाश्वलायनश्रौतगृह्यसूत्रेषु बृहद्देवतायां च तस्यासाधारणोऽधिकारः प्रतीयते । अयं वृत्तिकार ऐतरेयब्राह्मणं चतुर्विंशब्राह्मणमिति, भगवद्गीतां गीतोपनिषच्छ्रुतिरिति, पञ्चमारण्यकं चतुर्थमिति, पिङ्गलच्छन्दःसूत्रं छन्दोविचितिरिति, लौकिककोशं निघण्टुरिति च व्याजहार । अनेन ग्रन्थकृता सर्वानुक्रमणीसूत्राणां रचनापाठादिविषयान् अवलम्ब्य प्रौढः परामर्शो विवेचनं च प्रस्तुतम् । कविहृदय आसीत् षड्गुरुशिष्यः, अत एव तस्य वाक् यथावसरं पद्यमयी समजायत ।

६. २. अनुवाकानुक्रमणीवृत्तिः

षड्गुरुशिष्योऽनुवाकानुक्रमणीमपि व्यवृणोत् । तद्विवरणम् अनुवाकानुवृत्तिरिति प्रसिद्धम् । सा च मैक्डानलेन सम्पाद्य प्रकाशिता । वृत्तिरियम् अतीव संक्षिप्ता वर्तते । ग्रन्थान्तरेभ्य उद्धृताः सन्दर्भा अप्यत्र नातिवहु वर्तन्ते । ऋग्वेदयजुर्वेदारण्यकाश्वलायनश्रौतगृह्यसूत्रकोशभागुरिग्रन्थेभ्यः केचन सन्दर्भा उद्ध्रियन्ते ।

७. प्रस्तुतसंस्करणम्

मैक्डानलः कात्यायनीयसर्वानुक्रमण्यनुवाकानुक्रमणीछन्दःसंख्यानां वेदार्थदीपिकानुवाकानुक्रमणीवृत्त्योश्च सम्पादनं विधायोत्कृष्टं सटिप्पणं संस्करणं प्रकाशितवान् शताब्द्याः पूर्वम् । चिरात् तस्यानुपलम्भान् नवीनसंस्करणस्यावश्यकताम् अन्वभूवन् वैदिकवाङ्मयानुशीलाः। सावश्यकता प्रस्तुतसंस्करणेन पूरयिष्यत इत्याशास्महे । इदं संस्करणं प्रधानतो मैक्डानलसंस्करणम् उपजीवति । तद् व्यतिरिच्य हस्तलिखितकोशचतुष्टयानां साहय्येन सम्पादनं व्यधायि । तदत्र विव्रियते—

(१) पु० १ कोशः— पुणेस्थितडेकनकालेजसंग्रहे विद्यमानो ऽयं कोशः सम्प्रत्युपलभ्यमानेषु प्राचीनतमः । तस्य छायानुकृतिरस्माभिः प्राप्तेति करगलादिविषये न शक्यते किमपि वक्तुम् । अयं कोशो मैक्डानलमप्युपचकार । अस्य कोशस्य लेखनतिथिः संवत् १४४६ इति निर्दिष्टा,तदनुसारमयं कोशः१३९२तमे ख्रीस्ताब्दे लिखितः। अत्र १७८ पत्रेषु (३५५ पृष्ठेषु) कात्यायनीयसर्वानुक्रमणी तद्वृतिश्च षड्गुरुशिष्यकृता वेदार्थदीपिका विन्यस्येते । तत्र षड्गुरुशिष्यकृता उपोद्घातश्लोका न संगृह्यन्ते । साधारणतो लेखः सुपाठ्यः, परं क्वचित् पाठा भ्रष्टा अपि वर्त्तन्ते । नागराक्षरेषु मात्राणां लेखनप्रकारोऽस्य प्रत्नत्वं प्रदर्शयति । अतिप्राचीनत्वादस्य महत्त्वं स्पष्टमेव । ग्रन्थस्यारम्भ एतैः शब्दैर्विधीयते—

'सर्वा०। गणेशाय नमः । अथ ऋग्वेदाम्नाये शाकलके······' इत्यादि । अन्तिमे पत्रे—'इति सर्वानुक्रमवृत्तिः समाप्ताः (?)' इति वचनेन ग्रन्थः समाप्यते । ततस्तत्रैवारभ्यन्ते—'अथानुवाकाः । अग्निमीळे सुरूपकृत्नुमेन्द्रसानसि······' इत्याद्यष्टादशपङ्क्तयो ऽनुवाकानुक्रमण्याः । कोशसमाप्तिरेतैः शब्दैर्विधीयते—'स्वस्ति सं० १४४६ वर्षे श्रा० शु० रवौ नंद पंडे द्विवे [अक्षरद्वयमस्पष्टम्] जैगसुतमुरारे [प्रान्तः क्षतिग्रस्तः] संवत् १५७४ वर्षे आषाढादि ७४ आश्विन वदि' [अन्त्या पङ्क्तिर्मसीकृतास्पष्टा] । अत्र द्वितीया तिथिः कोशविक्रयकालम् अन्त्या मसीकृतास्पष्टा पङ्क्तिश्च तात्कालिकस्य कोशस्वामिनो नाम निर्दिशतीति मैक्डानलः सम्भावयति ।

(२) पु० २ कोशः—अयं कोशोऽपि पुणेस्थितडेकनकालेजसंग्रहे विद्यते । अस्यापि छायानुकृतिरस्माभिर्लब्धा । मैक्डानलो ऽपि साहाय्यमस्य जग्राह । अस्य

लेखनकालः शके १५६० इति निर्दिष्टः। तदनुसारं ख्रीस्ताब्दः १६३८ तमो ऽस्य लेखनकालः। अयं कोशः १४७ पत्रेषु (सम्प्रति १२३-१२४ संख्याकपत्रद्वयरहितेषु) परिसमाप्यते। अत्र ग्रन्थारम्भ एतैः शब्दैर्विधीयते—'सर्वानुक्रमभाष्य [उपरिष्टाल् लिखितम्]। श्री गणेशाय नमः। अथ ऋग्वेदाम्नाये शाकलके ...' इत्यादि। ग्रन्थान्ते त्वय निर्देशः—'ग्रन्थसंख्या ३९३०॥ शुभमस्तु॥ शके १५६० गणेशभट्टकवीश्वरेण लिखितं॥ अयं कोशः पु० १ कोशस्य परम्परया प्रतिलिपिः प्रतीयते। पु० १ कोशस्य रिक्तयोऽत्र पूरिताः, यद्यपि पूर्तयः प्रायेणाशुद्धाः। बृहद्देवतात उद्धृतौ सन्दर्भौ तु नात्र संगृह्येते।

(३) गो० कोशः—अयं हस्तलिखितकोशो गोकर्णस्थजोगलेकरपरिवार-संग्रहे वर्तते। सुदृढकरगलेऽयं लिखित उत्तमावस्थायां विद्यते। अस्य लेखनकालः संवत् १८३७ शके १७०१ इति निर्दिश्यते ऽन्त्ये पत्रे। तदनुसारं १७८०तमे ख्रीस्ताब्दे ऽयं कोशो लिखित इति निर्धार्यते। सुपाठ्योऽयं हस्तलेखः। अस्य पाठाः प्रायेण मैक्डा-नलाश्रितप्रधानकोशेन संवदन्ते। क्वचिद् रिक्तयो ऽपि सन्ति। अयं ग्रन्थः २५४ पत्रेषु समाप्यते, प्रतिपृष्ठं साधारणतः सप्त पङ्क्तयो विद्यन्ते। अत्रारम्भिकशब्दास्त्वेवं विन्यस्यन्ते—'श्री गणेशाय नमः॥ श्रीमन्महागणपतये नमः॥ श्रीवेदपुरुषाय नमः॥ अथ ऋग्वेदाम्नाये शाकलके......' इत्यादि। ग्रन्थान्त इमा पङ्क्तय उपलभ्यन्ते—'इति षड्गुरुभाष्ये विरचितायां (?) सर्वानुक्रमणीवृत्तिः समाप्ता॥ सांबचरणार्पण-मस्तु॥......॥ संवत् १८३७ शके १७०१॥ अर्जितं भूरिकष्टेन पुस्तकम् लिखितं मया [इत्यादिश्लोकत्रयम्]।

(४) गो० मूलमात्रकोशः—अयमपि हस्तलेखो गोकर्णस्थजोगलेकरपरिवार-संग्रहे विद्यते। अस्य लेखनकालो ऽन्तिमे पत्रे शके १७२७ इति निर्दिश्यते। तथा च विक्रमसंवत्सरे १८६३ तमे ऽयं ग्रन्थो लिखितः। अत्र कात्यायनीयसर्वानुक्रमण्या मूल-मात्रपाठो लिख्यते। प्राचीनहस्तनिर्मितकरगले सुपाठ्याक्षरैरयं ग्रन्थ एकत्रिंशत्-पत्रेषु समाप्यते, तत्र च साधारणतो दश पङ्क्तयः प्रतिपृष्ठं विद्यन्ते। अस्योपक्रम एतैः शब्दैर्विधीयते—'श्री गणेशाय नमः। हरिः ॐ। अथ ऋग्वेदाम्नाये शाकलके ...'। उपसंहारस्त्वेवमत्र विधीयते—तदेतत् सूक्तसहस्रं सप्तदशकं सपादाधिकमृग्वेद-पारायणपाठे शाकल्ये शैशिरीयके। नमः शौनकाय। नमः शौनकाय॥ इति सर्वानु-क्रमः समाप्तः॥ लेखकपाठयोः शुभं भवतु॥ श्री कुसुमेश्वरार्पणमस्तु॥ श्री गजान-नार्पणमस्तु॥ सोमेश्वर शके १७२७ क्रोधननामसंवत्सरे दक्षिणायने कार्तिके [मा]सि कृष्णपक्षे एकादश्यां भानुवासरे तद्दिनेदं पुस्तकं जोगलेकरोपनामकवासुदेवात्मज-बालभट्टेन लिखितं स्वार्थं परोपकारार्थं च॥'

मैक्डानलो महता परिश्रमेण वेदार्थदीपिकायुतां कात्यायनीयसर्वानुक्रमणीं सम्पाद्योत्कृष्टं संस्करणं प्राचकाशत्। तदर्थं स भवान् वैदिकविदुषां साधुवादान् अर्हति। परं स वेदार्थदीपिकाया महत्त्वपूर्णमंशमेव प्राकाशयत्, न तु समग्रम् अविकलं

ग्रन्थम्। अविकलग्रन्थप्रकाशनमेव न्याय्यम इत्यभिमन्यमानैरस्माभिर्यश्च यावांश्च ग्रन्थ उपलभ्यते स सर्वः प्रकाश्यते ऽत्र संस्करणे। तत्र षड्गुरुशिष्यकृतस्योपोद्घातस्य षट्षष्टिः श्लोका नास्माभिरुपलब्धा इत्यत्र संस्करणे न संगृह्यन्ते। मैक्समूलरेण स्वकीये प्राचीनसंस्कृतवाङ्मयेतिहासनामके ग्रन्थे वेदार्थदीपिकाया उपोद्घातस्य ये श्लोका उद्धृतास्तेऽत्र संस्करणे परिशिष्टरूपेण प्रकाश्यन्ते। कात्यायनीयसर्वानुक्रमणीसूत्राणाम्, अनुवाकानुक्रमण्या वृत्तिसहितायाः, छन्दःसंख्यांग्रन्थस्य च पाठो ऽत्र मैक्डानलसंस्करणमनुसरति। एतेषां ग्रन्थानां (गोकर्णीय-सर्वानुक्रमणीकोशवर्जम्)हस्तलिखितकोशा नास्माभिरुपयुक्ताः।

मैक्डानलसम्पादिते ग्रन्थे वृत्तेर्मूलतः पृथग् मुद्रितत्वात् पाठका असुविधामन्वभवन्। प्रस्तुतसंस्करणे मूलमनु वृत्तिर्मुद्रितेति तदसौविध्यं निराक्रियत। सर्वानुक्रमण्या हस्तलिखितकोशेषु सूत्राणां संख्या न निर्दिश्यते। मैक्डानलसंस्करणेऽपि केवलं परिभाषाप्रकरणस्थसूत्राणां संख्यानिर्देशः क्रियते, न खलु मण्डलीयसूत्राणाम्। प्रकृतसंस्करणे प्रतिसूत्रं संख्या निर्दिश्यते सूत्रसमाप्तौ। यस्मिन् सूत्रे सूक्तप्रतीकम् आदौ पठ्यते, तत्र सूत्रमुखे प्रकोष्ठकयोर्मध्ये सूक्तसंख्या निर्दिश्यते। टिप्पणीषु सर्वानुक्रमणीनिर्देशः कण्डिका (अध्याय)सूत्रसंख्याभ्यां क्रियते। इत्थं च द्विधा निर्देशः—कण्डिकासूत्रसंख्याभ्यां च, मण्डलसूक्तसंख्याभ्यां चेति। मैक्डानलप्रदत्तानि परिशिष्टान्युपयोगित्वाद् ग्रन्थान्ते ऽत्र विन्यस्तानि यथायथं नागराक्षरैः। तत्र पदवाक्यप्रमाणज्ञानां श्रीमतामाचार्ययुधिष्ठिरमीमांसकानाम् 'ऋग्वेदस्य ऋक्संख्या' नामको निबन्धोऽप्यत्र परिशिष्टत्वेन योजितो विद्वद्विमर्शाय।

८. कृतज्ञताप्रकाशः

सततसारस्वतव्रतपालनोपार्जितविमलकीर्त्तयो राष्ट्रियपण्डितपदवीभाजः श्रीरामलालकपूरन्यासाध्यक्षा वैदिकवाङ्मयोन्नयनबद्धपरिकराः पदवाक्यप्रमाणज्ञाः श्रद्धेया आचार्यप्रवराः श्रीमन्तो युधिष्ठिरमीमांसकपादाः प्रणिपातशतेन वन्दनीयाः, येषां शुभाशंसन-सन्ततप्रोत्साहन-प्रौढमार्गनिर्देशनैः स्वल्पधीरप्ययं जनो ऽस्य महत्त्वपूर्णग्रन्थस्य सम्पादनकर्म निर्वोढुम् अपारयत्। वेदमूर्त्तिश्रीमद्दिनकरजोगलेकर-वेदमूर्त्तिश्रीमत्केशवजोगलेकरौ गोकर्णतीर्थनिवासिनौ हस्तलिखितकोशद्वयं प्रदाय, ग्रन्थप्रकाशनार्थं च भूयो भूयः सम्प्रेर्य्य महत् साहाय्यं व्यधत्तामिति तौ तत्र भवन्तौ धन्यवादम् अर्हतस्तराम्। पण्डित ओङ्कारः शास्त्री महता परिश्रमेण मुद्रणपत्राणि समशूशुधदिति सस्नेहं साधुवचोऽर्हति। दत्तेऽपि महत्यवधाने दृष्टिदोषाद् वा मुद्रणयन्त्रवैकल्याद वा मुद्रणे कतिपयास्त्रुटयः समजायन्त, तासां शोधनपत्रं ग्रन्थान्ते ऽनुबध्यते। तदनुसारं पाठान् परिमृज्य ग्रन्थो ऽधीयेतेति सहृदयाः प्रार्थ्यन्ते। अज्ञानात् प्रमादाद् वा ये स्खलनविशेषाः सजाताः, तान् विज्ञाप्यानुगृह्णन्तूदारधियो विपश्चित इति विनिवेद्य विरमत्ययम्—

बहालगढे, १५-२-१९८५

विदुषां विधेयः
डा० विजयपालः

संक्षेप-विवरणम्

अथर्व० = अथर्ववेदः (शौनकीयः)
अनुवाकानु० = अनुवाकानुक्रमणी
अष्टा० = अष्टाध्यायी
आश्व० गृह्य० = आश्वलायनगृह्यसूत्रम्
आश्व० श्रौ० = आश्वलायन श्रौतसूत्रम्
उ० (उणा०) = उणादिकोशः
उ० भा० = उवटभाष्यम्

ऋ० = ऋग्वेदः
ऋ० प्रा० = ऋग्वेदप्रातिशाख्यम्
ऐत० आ० = ऐतरेयारण्यकम्
ऐत० ब्रा० = ऐतरेयब्राह्मणम्
का० सर्वा० = कात्यायनीय-सर्वानुक्रमणी
का० सर्वा० परि० = कात्यायनीय-सर्वानुक्रमणी-परिभाषा
गो० = गोकर्णहस्तलिखितकोशः
चौ० सं० = चौखम्बासंस्करणम्
छा० उप० = छान्दोग्योपनिषद्

टि० = टिप्पणी
तु० = तुलना विधेया
तै० आ० = तैत्तिरीयारण्यकम्
तै० ब्रा० = तैत्तिरीयब्राह्मणम्
तै० सं० = तैत्तिरीयसंहिता

द्र० = द्रष्टव्यम्
धा० = धातुपाठः (पूनासंस्करणम्)
निघ० = निघण्टुः
निरु० = निरुक्तम्
परि० = परिभाषा
पु० = पुणेहस्तलिखितकोशः
पू० मी० = पूर्वमीमांसा
बृ० दे० (बृह० दे०) = बृहद्देवता
ब्रा० = ब्राह्मणम्

मनु० = मनुस्मृतिः
महा० = महाभाष्यम्
महा० आदि० = महाभारत आदिपर्व

महा० वा० = महाभाष्यवार्त्तिकम्
मा० शत० = मध्यन्दिनशतपथ-ब्राह्मणम्
मा० सं० = माध्यन्दिनी संहिता
मै० = मैक्डानलः (कात्यायनीयसर्वानुक्रमणी-१८८६)

वा० प्रा० = वाजसनेयप्रातिशाख्यम्
शत० ब्रा० = शतपथब्राह्मणम्
शा० श्रौ० = शाङ्खायनश्रौतसूत्रम्
साम० = सामवेदः
साम० उत्तरा० = सामवेद उत्तरार्चिकम्

ओ३म्

कात्यायनीय-सर्वानुक्रमणी

षड्गुरुशिष्य-विरचित-वेदार्थदीपिका-समुपेता

[परिभाषा]

अथ ऋग्वेदाम्नाये शाकलके सूक्तप्रतीकऋक्संख्यऋषिदैवतच्छन्दांस्यनुक्रमिष्याम यथोपदेशम् ॥१॥

अथेति मङ्गले प्रस्तावे वा । ऋगंशबाहुल्याद् ऋग्वेदः । तत्राम्नाये सम्यगभ्यासयुक्ते खिलरहिते शाकलके । शाकल्योच्चारणं[1] शाकलकम् । तत्रादितः[2] प्रतीकम् । ऋक्संख्या ऋचामेकत्वादिः । ऋषिर्द्रष्टा । ऋषयोऽनागतातीतवर्त्तमानार्थवेदिनः । अर्त्तेः सनोतेश्च[3] ऋषिशब्दो निरुच्यते[4] । दानादिसर्वकल्याणगुणयोगी पचाद्यच्[5] देवः । देवात् तलन्तात्[6] स्वार्थे त्वण्[7] दैवतम् । पुन्नपुंसकम्[8] । छन्दः पापेभ्यश्छादनात्[9] । छादयन्ति[10] ह वा एनं छन्दांसि पापात् कर्मण इति श्रुतेः[11] । षष्ठीसमासगर्भो[12] द्वन्द्वसमासः । सूक्तानां हि प्रतीकादि । शसः शिः[13] । नुमि दीर्घः[14] । अत्र

---

१. मैक्डानल-पाठः । 'शाकल्यशब्दाच्चाण् प्रजाया का शाकलकः' इति पु० १ पाठः । 'शाकल्येन दृष्टः शाकलः शाकल एव शाकलकः तस्मिन् । शाकल्यशब्दाच्चाण् पूजायां कन् शाकलकः' इति पु० २ पाठः । 'शाकल्यशब्द······पूजायां कन् । शाकल्योच्चारणं' इति गो० पाठः । वस्तुतस्त्वत्र 'शाकल्यशब्दादण् शाकल्येन प्रोक्तमधीयते ते शाकलाः, तेषामाम्नाये वुञ् शाकलकः' इति पाठो युक्तः स्यात् ।

२. 'तत्रादिः' इति मै०, पु० १, पु० २ ।

३. 'सनोतेरिति' इति पु० १, पु० २ । 'सनोतेरेतेश्च' इति गो० ।

४. तु०—निरु० २।११; तै० आ० २।६।१; मा० शत० ६।१।१।१॥

५. अष्टा० ३।१।१३४ । ६. अष्टा० ५।४।२७॥ ७. अष्टा० ५।४।३८॥

८. 'पुन्नपुंसकम्' इति नास्ति मै० । ९. तु०—निरु० ७।१२॥

१०. 'तथा हि छादयन्ति' इति पु० २ । 'छादयन्तीह' इति मै० ।

११. छा० उप० १।४।२; ऐत० आ० १।६।४॥ १२. '०गर्भद्वन्द्व०' इति गो० ।

१३. अष्टा०७।१।२० ॥ मै० नास्ति । १४. अष्टा०७।१।७२; ६।४।१०॥ मै० नास्ति ।

ऋत्यकः[१]। आनुपूर्व्या प्रतिपाद्यानुक्रमिष्यामः। ननु च, एको हि शौनकाचार्यशिष्यो भगवान् कात्यायनः, कथं बहुवचनम् ? उच्यते—

व्याख्येयार्थबहुत्वेन बहुमानेन चात्मनः।
व्याख्यात्रात्मन्यथारोप्य[२] बहुत्वं तु प्रयुज्यते[३]॥
यथा हि निधिमासाद्य[४] प्रयुञ्जानस्तु दृश्यते।
एते वयं समृद्धार्था[५] देवोऽस्मासु प्रसीदति॥ इति।

एतेन सर्वे बहुवचननिर्देशाः प्रतिपादिताः[६]। यथोपदेशम्। शौनकोपदेशानुक्रमणीदशकाश्वलायनोपदेशसूत्रगृह्यचतुर्थारण्यकानतिक्रमेण[७]॥१॥

अथ सर्वानुक्रमण्यनारम्भसम्बन्धेऽज्ञानदोषसंकीर्त्तनेन[८] तदारम्भं समर्थयते—

न ह्येतज्ज्ञानमृते श्रौतस्मार्तप्रसिद्धिः॥२॥

अग्निहोत्रादि विश्वसृजामयनान्तं श्रुतिविहितं कल्पसूत्रे व्याख्यातं कर्म श्रौतम्। निषेकादि श्मशानान्तं[९] स्मृतिगृह्यविहितं स्मार्तं सदाचारादि[१०] कर्म। प्रशब्द आदिकर्मणि। प्रसिद्धिः फलप्रदानम्। एतज्ज्ञानमिति छान्दसं[११] व्यत्ययाच्छन्दोवद्भावाच्छन्द एव वा। एतस्माज्ज्ञानादृत इति यावत्। प्रकृतत्वात् सर्वानुक्रमणीगतं ज्ञानम्। अस्माज्ज्ञानादृते श्रौतस्मार्तकर्मणां[१२] फलप्रदानसंभवाय[१३] वादोऽपि नास्ति। ऋष्याद्यज्ञानेन मन्त्रकण्टकत्वाद् यागकण्टकत्वाच्चानधिकृतत्वात् सर्वत्र। तथा हि स्मर्यते—

अविदित्वा ऋषिं छन्दो दैवतं योगमेव च।
योऽध्यापयेज्जपेद्वापि पापीयाञ्जायते तु सः॥[१४] इति।

---

१. अष्टा० ६।१।१२४॥ 'तत्र त्रिरित्युक्तः' इति पु० १, पु० २। 'अत्र शौनकः' इति गो०। कोशेषु 'अनुक्रमिष्यामः' 'ननु' इति पदे अन्तरायं पाठ उपलभ्यते।

२. 'व्याख्यातात्मन्यथारोपाद्' इति पु० १; पु० २। 'व्याख्याता०' अन्यत्र।

३ 'प्रयुंजते' इति पु० २।

४. 'यथा निधिं समासाद्य' इति पु० २।

५ 'वयमत्र समृद्धार्था' इति पु० २।

६. पतञ्जलिना प्रस्तुतः (महा० १।२।५९) समाधिरप्यत्रानुसंधेयः।

७. भ्रष्टः पाठः पु० १। 'शौनकोपदेशमनतिक्रमेण' इति पु० २।

८, 'सर्वानुक्रमण्यारंभ०' मै०, पु० २।

९. 'श्माशानांतं' इति मै०।

१० 'सदाचारः कर्म' इति पु० १, गो०।

११. 'एतज्ज्ञानमृते व्यत्यया०' इति पु० १, पु० २। ऋतेयोगे पञ्चमीविधानाद् (अष्टा० २।३।२९) व्यत्ययः कल्प्यते।

१२. '०कर्मणोः' इति मै०।

१३. '०संभवापकावादो नास्ति' इति पु० १। '०संभवापवादो नास्ति' इति पु० २। '०प्रदानारंभसंभवापवादोपि नास्ति' इति गो०।

१४. बृह० दे० ८।१३६॥ अपि द्रष्टव्या सायणीय ऋग्वेदभाष्यभूमिका।

अपि चोक्तम्—

ऋषिच्छन्दो दैवतानि ब्राह्मणार्थं स्वराद्यपि ।
अविदित्वा प्रयुञ्जानो मन्त्रकण्टक उच्यते ।।[1] इति ।

अन्यत्राप्युक्तम्—

स्वरो वर्णोऽक्षरं मात्रा विनियोगोऽर्थ एव च ।
मन्त्रं जिज्ञासमानेन वेदितव्यं पदे पदे ।।[1] इति

अस्य श्लोकस्यार्थः स्वरादियुक्तः ।[2]

मन्त्राणां दैवतं छन्दो निरुक्तं ब्राह्मणानृषीन् ।
कृत्तद्धितादींश्चाज्ञात्वा यजन्तो यागकण्टकाः ।। इति च ।

कण्टकः पीडकः[3] । कण्टयति पीडयतीति[4] निरुक्तितः[5] । अपि च नृसिंहपुराणे—

ऋष्यादिकं परिज्ञाय यजन् यज्ञमतन्द्रितः । इति ।

उक्तं च महाभारते[6] —

चत्वारि कर्माण्यभयप्रदानि भयं प्रयच्छन्त्ययथाकृतानि ।
मानाग्निहोत्रमुत मानमौनं मानेनाधीतमुत मानयज्ञः ।। इति ।

एतदज्ञस्य सर्वकर्मणो[7] नैष्फल्यदोष उक्तः ।।२।।

अथ विदुषः फलमाह—

मन्त्राणां ब्राह्मणार्षेयच्छन्दोदैवतविद्[8] याजनाध्यापनाभ्यां श्रेयोऽधिगच्छति[9] ।।३।।

ब्राह्मणं विधायकं स्तावकं च कर्मणः[10] । आर्षेयमृषिदर्शनम् । इतश्चानिञ[11] इत्येवमृषिपदात् ढक् ।

अपत्यवदृषेरिष्टं[12] मन्त्रदर्शनमित्यतः ।
अपत्यादप्यृषेरिष्टं[13] खलु मन्त्रस्य दर्शनम् ।।

---

१. सायणीय ऋग्वेदभाष्यभूमिकायाम् उद्धृतम् ।
२. अस्य वाक्यस्यापूर्णत्वात् कश्चिद् ग्रन्थपातः सम्भाव्यते ।
३. 'कंटकाः पीडकाः' इति मै० ।
४. 'कंटति पततीति' इति पु० १ । 'कंतापयतीति' इति गो० । 'कंटयतीति' इति मै० ।
५. 'निरुक्तः' इति पु० १, पु० २, गो० ।
६. महाभारत १।८५।२४।।
७. '०कर्मनैष्फल्य०' इति मै० ।
८. 'ब्राह्मण आर्षेयः छन्दो०' इति पु० २ ।
९. 'स श्रेयो०' इति पु० २ ।
१०. 'विधायकं च स्तावकं च कर्मणां' इति मै० ।
११. अष्टा० ४।१।१२२।।
१२. 'अपत्यं चेदृषेरिष्टं' इति पु० १, पु० २ ।
१३. 'अपत्यमप्यृषेदृष्टं' इति पु० २ ।

अशपद् वैतश[1] ऋषिः पुत्रं मन्त्रविगर्हकम् ।
प्रह्लादः पुत्रमशपद्[2] वेदवेदार्थदूषकम् ।
महावलिमतोऽपत्यप्रत्ययो दर्शने मतः ॥

किं च[3]—

ऋषिर्मन्त्रदृशं वेदपितरं मन्यते यतः ।[4]
तद् वसिष्ठासः पितृवद् वाचमक्रत[5] लिङ्गतः ॥

छन्दो गायत्र्यादि । तद्योगाद्धि वेदः । दैवतम्[6] इन्द्रादि । एषां विद् यथावज्ज्ञाता । सापेक्षत्वेऽपि गमकत्वात् समासः[7] । मन्त्राणां विहितानां पदार्थानामनुष्ठानकाले स्मारकतया मननसाधनभूतानां विनियोज्यवेदभागानां सम्बन्धिनां ब्राह्मणादीनां ज्ञाता । याजनाध्यापनाभ्याम्[8]—यजेरिङश्च[9]णिचि[10] वृद्धौ[11] क्रीङ्जीनां णावित्यात्वे[12] पुकि[13] ल्युड्[14] युज्वा[15] करणाभ्याम् । श्रेयः प्रशस्यतरम्[16]—ईयसुनि प्रशस्यस्य श्र[17] इत्यन्नपुत्रादिमोक्षान्तं[18] फलम् । अधिगच्छतीति[19] केवलापाठाद् आधिक्येन गच्छति लभते ॥३॥

---

१. द्र०—ऐत० ब्रा० ६।३३॥ २. पुराणेष्वनुसंन्धेयम् ?

३. 'कण्व' इति पु० १, गो० । 'तमुकर्ण' इति पु० २ । 'वसुकर्ण' शब्दस्यायं भ्रष्टः पाठ; स्याद् इति मैक्डानलः परिकल्पयति । वसुकर्णः खलूत्तरश्लोकार्द्ध उद्धृतस्य मन्त्रस्य ऋषि; ।

४. अयं श्लोकार्द्धः शौनकीय-बृहद्देवतातः (५।५८) उद्धृतः । अपि द्र०—वेदार्थदीपिकायाम् सप्तममण्डलस्यैकषष्टितमे सूक्त उद्धृतो दशमः श्लोकः । ५. ऋ० ६।६६।१४॥

६. 'दैवतविद् इन्द्रादिवित् । यथावज्ज्ञाता' इति मै०, गो० । 'दैवतमिंद्रादि वत् । यथावज्ज्ञाता ।' इति पु० १ । 'दैवतमिंद्रावित् । एषां वस्तूनां ज्ञाता ।' इति पु० २ ।

७. द्र०—महाभाष्य २।१।१॥

८ 'याजनाध्यापनाभ्यां करणाभ्यासाभ्यां । श्रेयः०' इति मै० । अत्र 'यजे···करणाभ्याम्' इति पु० १, पु० २, गो० कोशानां पाठस्त्यक्तः । ९. धा० १।१०५१॥ धा० २।३७॥

१०. अष्टा० ३।१।२६॥ ११. अष्टा० ७।२।११६; ७।२।११५॥

१२. अष्टा० ६।१।४७॥ १३. अष्टा० ७।३।३६॥ १४. अष्टा० ३।३।११५॥

१५. अष्टा० ३।३।१०७॥

१६. 'प्रशस्यतरमन्नपुत्रादि०' इति मै० । 'ईयसुनि—···श्र इति' इति पु० १, पु० २, गो० कोशानां पाठस्त्यक्तः । १७. अष्टा० ५।३।६०॥

१८. 'पुनं पुत्रादि०' इति पु० १ । 'स्वर्गपुत्रादि०' इति पु० २, 'ज्येष्ठपुत्रादि०' इति गो० ।

१९. 'अधिगच्छतीति पाठादधि०' इति मै० । 'अधि केवलपाठादाधि०' इति पु० १ । 'अधिगच्छति केवलापाठाधि०' इति पु० २ । अधिगच्छतीति केवलपाठादाधि०' इति गो० ।

अथाङ्गं निन्दति—

एताभ्यामेवानेवंविदो यातयामानि च्छन्दांसि भवन्ति ॥४॥

एताभ्यां याजनाध्यापनाभ्याम् अनेवंविदः सर्वानुक्रमण्यज्ञस्यैव पुनर्यातयामानि। यातः प्राप्तो याम उपरामो रक्षाविषयौदासीन्य[1] यैस्तानि यातयामानि।[2] यमेर्घञि[3] यामः। नास्य रक्षका[4] वेदा इत्यर्थः। अथवा—

यातयामं यातयामे जीर्णे भुक्तोज्झितेऽपि च[5]।

इति निघण्टा[6] उक्तत्वाद्[7] जीर्णे भुक्तोज्झिते[8] वान्नादौ वर्तते। यातयामशब्दो नीरसत्वादिसाम्याच्छन्दःसु वर्तते। छन्दांसि वेदाः। भवन्ति सम्पद्यन्ते[9] ॥४॥

स्थाणुं वर्च्छति गर्ते वा पात्यते प्रमीयते वा पापीयान्
भवतीति विज्ञायते ॥५॥१॥

स चानेवंवित्[10] स्थाणुं वृक्षादिजातिम् ऋच्छति प्राप्नोति[11]। अर्त्तेः[12] शपि[13] ऋच्छादेशः[14]। स वा खलु गर्ते[15] नरके कूपे पङ्कवारिमध्ये मण्डूककच्छपादिजातिषु[16] पात्यते। अधश्चाल्यते। कैः ? देवैः[17]। यद्देवा देवहेलनम्[18], अपभर्ता रपसो दैव्यस्येति[19] श्रुतेः। प्रमीयते वा। कदाचिदपि न वेदोक्तमायुर्भजते। उक्तं हि—

---

१. 'यामः फलरक्षाविषयमौदासीन्यं' इति मै०। 'याम अरसो रक्षाविषयौदासीन्यं' इति पु० २। 'यामः उपरमा फलरक्षाविषये औदासीन्यं' इति गो०।

२. 'यातयामानि। नास्य०' इति मै०।

३. अष्टा० ३।३।१८॥

४. 'नास्य तारका' इति मै०। 'तस्य प्रतारका' इति गो०।

५. पु० १ पाठो यथानिघण्टु शोधितः। 'भुक्तोच्छिष्टे' इति मै०, पु० २।

६. वैजयन्ती, पृ० २७५ पङ्क्ति २१॥ मैक्डानलो निघण्टुपदभ्रान्त्या यास्कीयनिघण्टा इमं संदर्भम् अनुसमधात् !

७. 'गरवामे' इति पु० १ अपपाठः। मै० नास्ति।

८. 'भुक्तोच्छिष्टे' इति मै०, पु० २।

९. 'छन्दांसि ·· सम्पद्यन्ते' इति पाठः पु० १, पु० २ कोशयोः 'पुनर्याततयामानि' इत्यनन्तरः समुपलभ्यते।

१०. 'अत एवानेवंवित्' इति मै०। 'अत एवं स चानेववित्' इति गो०।

११. 'प्राप्नोति। वा खलु' इति मै०।

१२. धा० १।९८३॥

१३. अष्टा० ३।१।६७॥

१४. अष्टा० ७।३।७८॥

१५. 'स चानेवंवित् गर्त्ते' इति पु० २। 'स' इति विहाय 'वा खलु गर्त्ते' इति गो०, मै०।

१६. '०मध्ये मत्स्यमण्डूक०' इति मै०।

१७. 'दोषैः' इति पु० १, पु० २। 'वेदैः' इति गो०।

१८. अथर्व० ६।११४।१॥

१९. ऋ० २।३३।७॥

अनभ्यासेन वेदानामाचारस्य च वर्जनात् ।
आलस्यादन्नदोषाच्च मृत्युर्विप्राञ्जिघांसति ॥[1]

इति भवता मनुना। पापीयान् भवतीति । दस्युम्लेच्छादिजातिषु जायते[2]। इति विज्ञायते। इत्येवं सामत्रेदार्षेयब्राह्मण[3] आम्नातम्[4]। विज्ञायते विशेषेण ज्ञायते-ऽवगम्यते सर्वमहर्षिभिः।

अतो महर्षयः सर्वे वेदविद[5] इति स्थिताः ।
अधीयते कर्शयन्ति देहं मृत्युं न भुञ्जते ॥

इति[6] सर्वानुक्रमण्यारम्भः समर्थितः ॥५॥१॥

अथ ऋषयः ॥१॥

अथेति प्रस्तावे । सामान्येन ऋषयः[7] प्रस्तूयन्ते । अथ ऋषय इति । ऋत्यकः[8] ॥१॥

शतर्चिन आद्ये मण्डलेऽन्त्ये क्षुद्रसूक्तमहासूक्ता मध्यमेषु माध्यमाः ॥२॥

आद्यमण्डलस्था ऋषयः शतर्चिन इति संज्ञिताः[9]। ऋचां शतं शतर्चम्[10]। राजदन्तादिषु परम्[11] इति परनिपातः। ऋक्पूरित्यकारः[12]। अत इन्[13]। जस्[14]। आद्यस्यर्चेऋक्शतयोगेन च्छत्रिन्यायेन[15] शतर्चिनः सर्वे । द्व्यधिकेऽपि शतोक्तिर्बाहुल्यात् । उक्तं हि –

शतर्चिसंज्ञा विज्ञेया ह्याद्यमण्डलदर्शिनः ।
ददर्शादौ मधुच्छन्दा द्व्यधिकं यदृचां शतम् ॥

---

१. मनु० ५।४॥ २. 'जायते' इति नास्ति पु० १, पु० २, गो० ।

३. '०ब्राह्मणे विशेषेण०' इति पु० १, पु० २ ।

४. आर्षेय ब्रा० १।१।६॥ तत्रायं पाठः—'यो ह वा अविदितार्षेयच्छन्दोदैवतब्राह्मणेन मन्त्रेण याजयति वाध्यापयति वा स्थाणुं वर्च्छति गर्तं वा पद्यति प्र वा मीयते पापीयान् भवति । यातयामान्यस्य छन्दांसि भवन्ति ।' ५. 'वेदविदो' इति मै० ।

६. 'इति' इति नास्ति पु० १, पु० २, गो० । ७. 'सामान्येनर्षयः' इति म० ।

८. अष्टा० ६।१।१२४॥ 'ऋषयः' इत्यपपाठः पु० १, पु० २ । पाठस्त्यक्तः गो० ।

९. 'संज्ञिनः' इति पु० १, गो० । १०. 'शतर्चं । आद्यस्य०' इति मै० ।

११. अष्टा० २।२।३१॥ १२. अष्टा० ५।४।७४॥ १३. अष्टा० ५।२।११५॥

१४. प्रथमाबहुवचनम् । १५. 'च्छत्रिन्यायेन' इति पाठो नास्ति पु०१, पु० २,गो०।

तत्साहचर्यादन्येऽपि विज्ञेयास्तु शर्तचिनः[1] ।
अच्छत्त्राश्छत्त्रिणैकेन यथा वै छत्त्रिणोऽभवन्[2] ॥

अन्त्ये क्षुद्रसूक्तमहासूक्ताः[3] । नासदासीयात्[4] पूर्वं महासूक्तं परं क्षुद्रसूक्तम् । सूक्तदर्शित्वादन्त्ये दशमे मण्डले स्थिता ऋषयः क्षुद्रसूक्तमहासूक्तनामानः । मध्यमेषु माध्यमाः[5] । द्वितीयादिनवमान्तेषु मध्यमेषु मण्डलेषु स्थिता माध्यमनामान ऋषयः । मध्यो मध्यमं चाण् चरणे[6] ॥२॥

अथ परिभाषते—

क्वचित् कथंचिदविशेषितं ब्रह्मर्षिमस्त्रियमनुक्तगोत्रमाङ्गिरसं विद्यात् ॥३॥

एवंभूतस्यर्षेर्गोत्रानुक्तौ[7] तमाङ्गिरसं विद्यात्, सर्वानुक्रमणीजिज्ञासुरधिगच्छेत्[8] । ब्रह्मर्षिमिति । अश्वमेधनृमेधतरन्तपुरुमीळ्हराजर्षिनामसु[9] मा भूत्[10] । अस्त्रियमिति । उर्वश्यादि स्त्रीनामसु[11] मा भूत्[10] । क्वचिदविशेषितमिति । पूर्वत्र परत्र वा[12] विशिष्टश्चेत् स एव सः । ऋषभस्तौ वैश्वामित्राविति[13] परत्र दर्शनाद् वैश्वामित्रत्वम् । कथंचिदविशेषितम् । कथादिना । गाथिनः कौशिकत्वं[14] कथया यथा[15] । अविशेषितम् अनुपपादितम् । अनुक्तगोत्रत्वेऽपि नारायणस्य गोत्रं[16] नास्ति यथोपदेशमिति सम्बन्धाद्, उपदेशेषु चानुपलब्धेर्गोत्रस्य ॥३॥

अथ कोऽयमृषिरित्याह—

यस्य वाक्यं स ऋषिः ॥४॥

उक्तं च—ऋषिर्दर्शनाद्[17] इति ॥४॥

---

१. इति' इत्यधिकः पाठः पु० १, पु० २, गो० ।
२. 'छत्त्रिणोभवत्' इति गो० । 'छत्त्रिणो भवंति' इति पु० १, पु० २ ।
३. 'अन्त्ये···सूक्ताः' इति पाठो नास्ति मै० ।
४. 'नासदासीत्पूर्वं' इति पु० १, पु० २, गो० । 'नासदीय' शब्दस्तु प्रसिद्धः !
५. 'मध्यमेषु माध्यमाः' इति पाठो नास्ति मै० ।
६. 'मध्यो······चरणे' इति नास्ति मै० । गणसूत्रमिदम्— द्र० काशिका ४।२।१३८॥
७. 'कुत्रचित् ऋषे०' इति पु० २ ।
८. '०रवगच्छेत्' इति मै० ।
९. '०नृमेध०' इति नास्ति पु०१, पु०२ ।
१०. 'इति' इत्यधिकः पाठः पु० १, गो० ।
११. '०स्त्री०' इति नास्ति पु० १, पु० २ ।
१२. 'वाविशिष्ट०' इति श्लिष्टः पाठो मै० ।
१३. द्र०—का० सर्वा० १७।७-८॥ का० सर्वा० ५०।९॥
१४. द्र०—का० सर्वा० १६।९॥
१५. 'यथा' इति नास्ति मै० ।
१६. द्र०—का० सर्वा० ९०।५ वेदार्थदीपिका ।
१७. निरु० २।११॥

या तेनोच्यते सा देवता ॥५॥

तेन वाक्येन यत् प्रतिपाद्यं[1] वस्तु सा देवता ॥५॥

यदक्षरपरिमाणं तच्छन्दः ॥६॥[2]

अर्थर्षिच्छन्दोदेवतानां सम्बन्धमाह—

अर्थेप्सव ऋषयो देवताश्छन्दोभिरभ्यधावन्[3] ॥७॥

अर्थ्यत इत्यर्थः ।[4] फलम् अन्नपुत्रादिमोक्षान्तम् । अर्थमात्माधीनं कर्तुमिच्छन्तो मधुच्छन्दःप्रभृतयः संवननान्ता ऋषयो देवताः [5]सूक्तहविर्भागिनीश्छन्दोभिर्गायत्र्यादिभिरुपायभूतैस्तद्युक्तमन्त्रैर्वाऽभ्यधावन् श्रद्धयागच्छन् । अर्थस्य[6] प्राप्तावयमेवोपाय इति दृढसंकल्पाः । यादृगिव वै देवेभ्यः करोति तादृगिवास्मै देवाः कुर्वन्ति । भद्रा इन्द्रस्य[7] रातयः[8], स्तोतॄणामुत भद्रकृत्[9], य इन्द्राय सुनवामेत्याह[10], येषामिन्द्रस्ते जयन्ति[11], अव स्तोमेभी रुद्रं दिषीय[12], न मृषा श्रान्तं यदवन्ति देवाः[13], यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु[14], ध्रुवासो अस्य कीरयो जनासः[15], पूषन् तव व्रते वयं न रिष्येम कदा चन[16], न स जीयते मरुतो न हन्यते[17], न हन्यते न जीयते [18]त्वोतो नैनमंह[19] इत्यादिश्रुतिशतेभ्यः[20] समाश्रितरक्षणं देवाः कुर्वन्तीति दृढबुद्धयः प्राप्तवन्त इत्यर्थः ॥७॥

देवता अभ्याधावन्निति प्रसङ्गाद् देवता आह—

तिस्र एव देवताः क्षित्यन्तरिक्षद्युस्थाना अग्निर्वायुः सूर्य इति ॥८॥

क्षियन्ति निवसन्त्यत्रेति पृथिवी क्षितिः । भूमिस्वर्गयोरन्तरा मध्येऽमूर्त्ततयानुपलम्भादन्तरा क्षान्तम्[21] इत्येवमन्तरिक्षम् । क्रीडादानादियुक्ता[22] नित्यतृप्ता अत्रा-

---

१. 'प्रतिपाद्यं यत्' इति विपर्यस्तः पाठः पु० २ । 'यत्' 'सा' इति पदे न स्तः पु०१,गो०।

२. अस्य सूत्रस्य प्रतीकं व्याख्या च कोशेषु नोपलभ्यते । अत एवायमर्वाचीनः प्रक्षेप इत्याह मैक्डानलः स्वटिप्पण्याम् (कात्यायन-सर्वानुक्रमणी—पृ० १७७) ।

३. '०भिरुपाधावन्' इति मै० । ४, 'अर्थः फलमन्ना०' इति मै० ।

५ 'सूक्तऋग्घवि०' इति पु० २ । '०रुपायनभूतै०' इति पु० १, पु० २, गो० ।

६. 'अस्य' इति पु० १, पु० २ । ७. 'भद्रस्य' इति पु० १, पु० २ ।

८. ऋ० ८।९२।१॥ ९. ऋ० ८।१४।११ १०. ऋ० ४।२५।४॥

११. ऋ० ८।१६।५॥ १२. ऋ० २।३३।५॥ १३, ऋ० १।१७९।३॥

१४. ऋ० १०।१२१।१०॥ १५. ऋ० ७।१००।४॥ १६. ऋ० ६।५४।९॥

१७. ऋ० ५।५४।७॥ १८. 'त्वतो नैनमंह' इति नास्ति पु० १, पु० २, गो० ।

१९ ऋ० ३।५९।२॥ २०. '०शतेभ्योपि समा०' इति पु० १, पु० २, गो० ।

२१. तु०—निरु० २।१०॥ २२. '०नादिसंयुक्ता' इति गो०, मै० ।

सत इति द्यौः स्वर्गः। दिव उत्[1]। सूर्यो नो दिवस्पातु वातो अन्तरिक्षादग्निर्नः पार्थिवेभ्यः[2], तमू अकृण्वन् त्रेधा भुवे कम्[3], एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुरिति[4] लिङ्गात् तिस्र एव देवताः। अग्निर्गृहपतिरिति हैक [5]आहुरित्यादितश्च ॥८॥

उक्तक्रमदेवतायोगितया व्याहृतीः प्रस्तौति—

एवं व्याहृतयः प्रोक्ता व्यस्ताः ॥९॥

देवता इत्येवमुक्तक्रमादुक्तदेवतासम्बन्धिन्य प्रोक्ताः। [6]भूरादीनाम् आमर्थे[7] जसृद्वयं समस्तानामितिवचनात् ॥९॥

समस्तानां प्रजापतिः ॥१०॥

देवतेति शेषः ॥१०॥

ओंकारः सर्वदेवत्यः पारमेष्ठ्यो वा ब्राह्मो दैव आध्यात्मिकः ॥११॥

ओमिति शब्दः सर्वदेवतास्वभिधायकत्वेन[8] भवः सर्वदेवत्यः। देवतान्तात् तादर्थ्ये यत्[9]। पारमेष्ठ्यो वा। ओंकारः परमेष्ठिनं वाभिधत्ते। परम उत्कृष्टतमे स्थाने तिष्ठतीति परमेष्ठी। परमेष्ठिनि स्थीयत इति तत्संबन्धाभिधाने कर्मणि ष्यञ्[10]। ब्राह्मः। वेत्येव। ब्रह्मदेवत्यो[11] वौंकारः। दैवः[12]। देवदेवत्यो वौंकारः। आध्यात्मिकः[13]। शरीरवर्त्तिप्रत्यगात्माभिधानो[14] वौंकारः ॥११॥

प्रासङ्गिकं समाप्य प्रकृतमनुसरति—

तत्तत्स्थाना अन्यदेवतास्तद्विभूतयः[15] ॥१२॥

बृहद्देवतायां[16] निरुक्तशास्त्रव्याख्येयदेवताकाण्डे[17] च पृथिव्यादिस्थानभेदेन पठ्य-

---

१. अष्टा० ६।१।१२७॥ 'दिव उत्' इति नास्ति मै०। २. ऋ० १०।१५८।१॥
३. ऋ० १०।८८।१०॥ 'तत्र यथा' इति प्रतीकं पु० १, पु० २, गो०।
४. १।१६४।४६॥ 'एकं सद्विप्रा' इति नास्ति मै०। ५. ऐत० ब्रा० ५।२५।६॥
६. 'भूरादीनां समस्तानामिति दर्शनाद्देवतेति शेषः' इति मै० पाठः। स चाप्युत्तरसूत्रे न्यस्तः। ७. महा० ७।१।३९॥
८. 'सर्वदेवताभिधायित्वेन सर्वदेवत्यः' इति मै०। 'सर्वदेवतास्वभिधायकत्वेन भवति सर्वदेवत्यः' इति गो०। ९. 'देवता...यत्' इति नास्ति मै०। अष्टा० ५।४।२४॥
१०. 'परमेष्ठिनि...ष्यञ्' इति नास्ति मै०। अष्टा० ५।१।१२४॥
११. 'ब्राह्म०' इति मै०। १२. 'दैवो वा' इति मै०।
१३. 'आध्यात्मिकः' इति नास्ति मै०। १४. '०प्रत्यगात्मनोऽभिधायको' इति मै०।
१५. 'अन्यस्तद्वि०' इति पु० १, पु० २, गो०। १६. बृ० दे १।६९-८५॥
१७. निघण्टुपञ्चमाध्याये।

माना अन्या देवतास्तद्विभूतयः। अग्न्यादीनां विभूतयो विकृतय[1] इत्यर्थः। तथा हि—

आद्यं नैघण्टुकं काण्डं द्वितीयं नैगमं तथा।
तृतीयं दैवतं चेति समाम्नायस्त्रिधा मतः[2] ॥[3]
गौराद्यपारपर्यन्तमाद्यं[4] नैघण्टुकं मतम्।
जहाद्युल्वमृबीसान्तं[5] नैगमं संप्रचक्षते ॥
अग्न्यादि देवपत्न्यन्तं[6] देवताकाण्डमुच्यते।
तत्राग्न्यादिदेव्यूर्जाहुत्यन्तः[7] क्षितिगतो गणः ॥
वाय्वादयो भगान्ताः[8] स्युरन्तरिक्षस्थदेवताः।
सूर्यादिदेवपत्न्यन्ता[9] द्युस्थानदेवता इति।
गौरादिदेवपत्न्यन्तं समाम्नायमधीयते ॥[10]

बृहद्देवतायामपि निघण्टुवत्[11] ॥१२॥

ननु च—अन्याश्च देवताः सन्ति बह्व्यः। नेत्याह—

कर्मपृथक्त्वाद्धि पृथगभिधानस्तुतयो भवन्ति ॥१३॥

हीति प्रसिद्धौ। वृत्रवधसमाश्रितरक्षणवर्षणदहनपचनद्योतनादिव्यापारभेदात्[12] पृथग्नामानः पृथक्स्तुतयो[13] बहुरूपाश्च ता एव तिस्रो देवता भवन्ति। तथा हि—नामानि ते शतक्रतो विश्वाभिर्गीर्भिरीमहे[14], इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते[15], न हि नु ते महिमनः समस्य[16], न ते महित्वमन्वश्नुवन्ति[17], भुवनस्य पितरं गीर्भिराभिः[18], आरय जानन्तो नाम चिद्विवक्तन[19], यस्येमे हिमवन्तो महित्वा[20], सहस्राणि सहस्रशो ये रुद्रा अधि भूम्याम्[21] इत्यादिश्रुतिशतेभ्यः। अभिधानं नाम गुणावच्छिन्नम्। गुणसंकीर्तनं स्तुतिः। उक्तं हि—

---

१. 'विभूतयः इत्यर्थः' इति गो०। 'विकृतय इत्यर्थः' इति पु० १, पु० २।
२. 'स्थितः' इति मै०।
३. अयं श्लोकः पाठभेदेन निरुक्तश्लोकवार्तिके (१।६।२५७) पठितः। तत्र 'तृतीयं दैवतं नाम शास्त्रमेवं त्रिधा स्थितम्' इत्युत्तरार्द्धः।
४. निघ० १—३ अध्यायः।
५. निघ० चतुर्थाध्यायः।
६. निघ० पञ्चमाध्यायः।
७. निघ० ५।१-३॥
८. निघ० ५।४-६॥
९. निघ० ५।६॥
१०. इमे श्लोकाः सायणेन ऋग्वेदभाष्यभूमिकायामुद्धृताः।
११. 'नैघण्टुकवत्' इति पु० २, गो०।
१२ '०दहनपवनपचन०' इति मै०।
१३. 'पृथक्स्तवा' इति मै०।
१४. ऋ० ३।३७।३॥
१५. ऋ० ६।४७।१८॥
१६. ऋ० ६।२७।३॥
१७. ऋ० ७।९९।१॥
१८. ऋ० ६।४९।१०॥
१९. ऋ० १।१५६।३॥
२०. ऋ० १०।१२१।४॥
२१. मा० सं० १६।५३,५४॥

स्तुतिः स्तुत्यप्रभावोक्तिः स्तोतृभिस्तु सभक्तिका । इति ॥१३॥

एकैव वा महानात्मा देवता ॥१४॥

एका वा[1] देवता न तिस्रः । तस्या नाम महानात्मेति च[1] । श्रूयते हि—तस्य नाम महद्यश[2] इति । आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीदिति[3] च[4] ।

[5]अर्त्तेरदेरतेर्वापि व्याप्नोतेरमते रमेः ।
आङ्दाञ्माभ्योऽपि बहुधा त्वात्मानं निगदेद्बुधः ॥[6]

ऋ गतौ[7], अद भक्षणे[8], अत सातत्यगमने[9], आप्लृ व्याप्तौ[10], अम गत्यादिषु[11], रमु क्रीडायाम्[12], आङ्युक्तदाञ् डुदाञ् दाने[13], मेङ् प्रणिदाने[14], माङ्माने[15], मा माने[16] इत्येतेभ्यो धातुभ्यो मनिनादि निर्ब्रूयात् । आत्मशब्दस्तु सर्वधात्वर्थसमवायः ॥१४॥

कः स एक इत्याह—

स सूर्य इत्याचक्षते ॥१५॥

उक्तत्रिकात्मिकः सूर्यो यः स एक इति वेदविदो वदन्ति । एतं ह्येव[17] बह्वृचा महत्युक्थे मीमांसन्त इत्यारण्यकश्रुतेः[18] ॥१५॥

अथोक्तमर्थमुपपादयति[19]—

स हि सर्वभूतात्मा ॥१६॥

स सूर्यः सर्व इति नैय्यायकाः[20] पठन्ति प्रमाणत्वेन ॥१६॥

तदुक्तमृषिणा सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्चेति[21] ॥१७॥

ऋषिणा कुत्सेन वा[22] मन्त्रेण वा तदर्थरूपमुक्तं प्रतिपादितम् । पुराणे च—

---

१. 'वा' 'च' इति न स्तः पु० १, पु० २॥ २. तै० आ० १०।१।२॥
३. ऐत० आ० २।४।१॥
४. 'च' इति नास्ति पु० २, गो० मै० । ५. 'अर्त्ते ··समवायः' इति पाठस्त्यक्तो मै० ।
६. कोशेषु श्लोकपाठो बहुधा भ्रष्टः । ७. धा० ३।१६॥ ८. धा० २।१॥
९. धा० १।३८॥ १०. धा० ५।१४॥ ११. धा० १।४९३ ॥
१२. धा० १।९०६॥ १३. धा० ३।९॥ १४. धा० १।९४२॥
१५. धा० ३।६॥ १६. धा० २।५३॥ १७. 'एतमेव इति मै०
१८. ऐत० आ० ३।२।३॥ १९. 'अथोक्तकर्मणमुप०' इति पु० १, पु० २॥
२०. अयं पाठः पु० २ कोशे न समीचीनः । 'इत्यनारि···का' इति पाठभ्रंशः पु० १ । 'स सूर्यः ग्रथितया आरण्यक पठन्ति प्रमाणत्वेन' इति गो० । मैक्डानल 'ऐतरेयकाः' इति पाठम् औहिष्ट, तमेव युक्तं प्रतीमः । २१. ऋ० १।११५।१॥ २२. 'वा' इति नास्ति मै० ।

दिव्यं ज्योतिः सलिलपवनैः पूरयित्वा त्रिलोकीम्
एकीभूतं पुनरपि च तत्सारमादाय गोभिः ।
अन्तर्लीनो विशसि वसुधां तद्गतः स्तूयसेऽन्नं
तच्च प्राणस्त्वमिति[1] जगतां प्राणभृत् सूर्य आत्मा ॥ इति ।

जगतो जङ्गमस्य । तस्थुषः स्थावरस्य ॥१७॥

तद्विभूतयोऽन्या देवताः ॥१८॥

देवताकाण्डत्रयवर्त्तिन्यः सूर्यव्यतिरिक्ता[2] अग्निवाय्वाद्यास्तद्विभूतयः । तस्य सूर्यस्य विभूतय इत्यर्थः ॥१८॥

तदप्येतदृचोक्तम् ॥१९॥

तदिति वाक्योपन्यासे । एतदर्थरूपमृचैव स्पष्टमुक्तम्[3] ॥१९॥

कथमित्याह—

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निम्[4] आहुरिति ॥२०॥

उभयं[5] मा भूदित्याहुरित्युक्तम् । इह च—

रससिद्धं[6] यथा ताम्रमाप्नोति हि[7] सुवर्णताम् ।
एवमर्थोऽप्यृचा स्पष्ट इति वेदे[8] च बुध्यते ॥
सत्यं वै वागृचा स्पष्टेत्यत्र ज्ञातं महर्षिभिः ।
ऋगुदाहरणं तस्माद् ब्राह्मणे वहुशः कृतम् ॥
सूत्राणि च ब्राह्मणवच्छ्रुतेः[9] सूत्रयन्तेऽन्वयम् ॥२०॥

यथाभिधानं त्वनुक्रमिष्यामः ॥२१॥

नैकेन सूर्यशब्देन न त्रिभिरग्निवायुसूर्यैर्न पर्यायैः किन्त्वभिधानमुपदेशं मन्त्रद्रष्टॄणामनतिक्रमेणानुक्रमिष्यामः[10] ॥२१॥

---

१. '०विशतु वसुधां तद्गत सूर्यमेनं तद्वत्प्राणस्तुतिमिति०' इति गो० ।
२. '०रिक्ता या अग्नि०' इति मै० ।   ३. 'उक्तम्' इति नास्ति पु० १, पु० २ ।
४. ऋ० १।१६४।४६॥   ५. 'औन्नत्ये' इति पु० १, गो० । 'औन्नत्यं' इति पु० २ ।
६. 'तारविद्ध' इति पु० २ । 'चारविद्ध' इति पु० १ । 'क्षारविद्ध' इति न्याय्यः पाठः स्यादिति मैक्डानलः ।   ७. 'च' इति पु० १ ।   ८. 'वेदविदो बुध्यन्ते' इति पु० १, पु० २।
९. 'सूत्राणि ब्राह्मणवत् सूत्रायंतेन्वयं' इति पु० १, पु० २ । '०ब्राह्मणवत् श्रुति सूत्रायतेन्वयं' इति गो० ।
१०. यथाभिधानं त्वेकेन सूर्यशब्देन त्रिभिरग्निवायुसूर्यैः किंतु उपदेशमंत्रद्रष्टॄणामनति-

प्रायेणैन्द्रे मरुतः ॥२२॥

ऐन्द्रसूक्ते मरुतः प्रायेण वाहुल्येन निपातभाजो भवन्ति। ऐन्द्रे तु प्रायेणानैन्द्रे त्वल्पश इति प्रायशब्दार्थः। निपातो[1] ह्यभ्यागतपूजनम्[2] इत्यनुक्रमणीविदः। अपि च[3] यद्ध्यैन्द्रमेवात ऊर्ध्वं छन्दः शस्यते तद्धि[4] सर्वं मरुत्वतीयं भवति मन्त्रलिङ्गात्[5]। तेनादह सधामन्विति[6] मारुतषट्कान्वयेऽपि[7] युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषम्[8] इत्यस्यैन्द्रस्य ब्राह्मणाच्छंसिविनियोगः[9] सिद्धो भवति ॥२२॥

राज्ञां च दानस्तुतयः ॥२३॥२॥

दानस्तुतिं[10] प्रति संवन्धिनो राजानः। चकारोऽवधारणे। विभिन्दोर्दानं तुष्टावेत्यादौ[11] विभिन्द्वादीनां राजत्वं विधीयते ॥२३॥२॥

अथ छन्दांसि ॥१॥

अथेति प्रस्तावे। अनन्तरं छन्दांसि[12] प्रस्तूयन्त इत्यर्थः ॥१॥

अथैषां[13] छन्दसामेव चतुर्दश नामान्याह—

गायत्र्युष्णिगनुष्टुब्बृहतीपङ्क्तित्रिष्टुब्जगत्यतिजगती-शक्वर्यतिशक्वर्यष्टयत्यष्टिधृत्यतिधृतयः ॥२॥

एषां गायत्र्यादीनां शब्दानामितरेतरयोगे द्वन्द्वः। संज्ञाप्रदेशाः प्रथमं छन्दस्त्रिपदा[14]गायत्रीत्येवमादयः ॥२॥

क्रमेणानुक्रमिष्यामः' इति पु० १। तथैव पु० २, तत्र विशेषस्तु—'०मंत्रदृष्टृनामभिः क्रमेणानुक्रमिष्यामः' इति।

१. 'ह्यागत०' इति मै०। 'ह्यगत०' इति पु० १, गो०।

२. 'तु०—का० सर्वा० १६।१६ वेदार्थदीपिका।

३. 'अपि ह' इति पु० १, पु० २, गो०।

४. 'तद्ध' इति पु० १, पु० २, गो०।

५ 'मन्त्रलिङ्गात्' इति नास्ति पु० १, पु० २; अस्य स्थाने 'षट्' इति गो०।

६. ऋ० १।६।४॥

७. 'मारुतः कान्नाय वि युंजंति' इति पु० १। 'मारत्यः त्याग्नु ये वि रोदसी युंजंति' इति पु० २। 'मारुत्यषट्कान्वये०' इति गो०।

८. ऋ० १।६॥

९. आश्व० श्रौ० ७।२।३॥

१०. 'दानस्तुतिव्रतसंबधिनो' इति पु० १, पु० २; गो०।

११. द्र०—का० सर्वा० ३६।६॥

१२. 'छन्दांसि' इति नास्ति पु० १, पु० २।

१३. 'अथैतेषां' इति मै०।

१४. परिभाषा ४।१॥

अथैषाम्[1] एवाक्षरसंख्यामाह—

चतुर्विंशत्यक्षरादीनि चतुरुत्तराणि ॥३॥

चतुर्विंशत्यादि चतुरुत्तरवृद्धया षट्सप्तत्यन्तानि छन्दांसि भवन्ति । चतुर्विंशतिर्गायत्री । अष्टाविंशतिरुष्णिक् । द्वात्रिंशदनुष्टुप् । षट्त्रिंशरक्षरा बृहती । चत्वारिंशदक्षरा पङ्क्तिः । चतुश्चत्वारिंशदक्षरा त्रिष्टुप् । अष्टाचत्वारिंशदक्षरा जगती । द्वापञ्चाशदक्षरातिजगती । षट्पञ्चाशच्छक्वरी । षष्टिरतिशक्वरी । चतुःषष्टिरष्टिः । अष्टाषष्टिरत्यष्टिः । द्वासप्ततिर्धृतिः । षट्सप्ततिरतिधृतिरित्यर्थः ॥३॥

अत्र[2] विशेषमाह—

ऊनाधिकेनैकेन[3] निचृद्भुरिजौ ॥४॥

एकेनाक्षरेणोनेनैषामेव निचृद्गायत्री निचृदुष्णिग् [4]निचृत्पदपङ्क्तिर्निचृत्ककुम्न्यङ्कुशिरा निचृज्जगतीत्यादि [5]सर्वसंज्ञाः स्युः । तथाधिकेनैकेन भुरिग्गायत्रीत्यादीत्यर्थः[6] । त्रयोविंशतिर्निचृद्गायत्री पञ्चविंशतिर्भुरिग्गायत्रीत्यादि । यथा— अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरिति[7] निचृद्गायत्री । विद्वासाविद्दुरः पृच्छेदिति[8] भुरिग्गायत्री ॥४॥

द्वाभ्यां विराट्स्वराजौ ॥५॥

ऊनाधिकेनेत्येव[9] । द्वाभ्यामूनाभ्यामक्षराभ्यां[10] विराड्गायत्रीत्यादि सर्वसंज्ञाः स्युः । तथा द्वाभ्यामधिकाभ्यामक्षराभ्यां[11] स्वराड्गायत्रीत्याद्या[12] इत्यर्थः । द्वाविंशतिर्विराड्गायत्री । षड्विंशतिः स्वराड्गायत्री विराडुष्णिग् वा । यथा—राजन्तमध्वराणाम्[13] इति विराड्गायत्री । इन्द्र जुषस्व प्र वहा याहीति[14] स्वराडनुष्टुप् सूत्रपठिता[15] । अत्र शास्त्रे निचृदादिविशेषणचतुष्टयस्य क्वचिदप्यनुक्तिर्लाघवार्था । इतरथेदमिदमिति प्रतिव्यक्त्युक्तौ बहुवक्तव्यतया शास्त्रं गुरुतरं स्यात् । न खल्वेतद्विशेषणचतुष्टयास्पृष्टं किंचिदपि सूक्तं प्रायेण विद्यते । तथाप्यस्माकमेतच्चतुष्टयं सामान्योक्तावपि सति न्यूनाधिकाभावेऽवश्यं ज्ञातव्यमेवातो योगद्वयादुपदेशेषु क्वचित्

---

१. 'अथ तेषामेवा०' इति मै० ।
२. 'तत्र' इति पु० २ ।
३. 'एकेनोनाधिकेन' इति पु० १ ।
४. 'निचृत्पङ्क्ति०' इति पु० १, पु० २, गो० ।
५. 'निचृज्जगत्यादिसंज्ञाः' इति पु० २ ।
६. '०गायत्रीत्यर्थः' इति मै० ।
७. ऋ० १।१।२॥
८. ऋ० १।१२०।२॥
९. 'ऊनाधिकेत्येव' इति मै० ।
१०. 'द्वाभ्यामक्षराभ्यामूनाभ्यां' इति मै० ।
११. 'द्वाभ्यामधिकाभ्यां' इति मै० ।
१२. '०गायत्रीत्यादीत्यर्थः' इति मै० ।
१३. ऋ० १।१।८॥
१४. साम० उत्तरा० ३।१।२२।१॥
१५. '०नुष्टुप्सु पतितत्वात्' इति पु० १, पु० २ । 'नुष्टुप् सूत्रे पठिता' इति गो० ।

कथंचिदुपलम्भाच्च । तथा हि—छन्दोऽनुक्रमण्यां हिरण्यपाणिः सविता विचर्षणिर्[1] इतीयमुत्तमस्य सूक्तस्य नवमी जगती निचृदित्युच्यते । तथा[2] प्रातिशाख्ये—

दद्री रेक्ण[3] इति त्वेषा ककुम्न्यङ्कुशिरा निचृत् ॥[4]
त्रयो द्वादशका यस्याः सा ह्योर्ध्वबृहती विराट् ।
महो यो अधीन्न तं मत्सीजानमिदजीजनः ॥[5] इति च ।

[6]महो यस्पतिः शवसो असाम्या[7], अधीन्वत्र सप्तति च सप्त च[8], न तमंहो न दुरितम्[9], मत्स्यपायि ते महः[10], ईजानमिद् द्यौर्गूर्तावसुः[11], अजीजनो अमृत मर्त्येष्वा[12]—एतान्युदाहरणानि ॥५॥

अथोनाक्षरेषु गायत्र्यादिव्यवहारसिद्धये पादनिर्वाहप्रतिज्ञामाह[13]—

पादपूरणार्थं तु क्षैप्रसंयोगैकाक्षरीभावान् व्यूहेत् ॥६॥

क्षैप्रसंयोगो यकारवकारसंयोगः । यण्संयोग इत्यन्ये । कुत एतत् ? यण् हि क्षिप्रे भवति । क्षैप्रो दध्यत्रेत्यादावेकमात्रामर्धमात्रां करोतीति[14] । एकः पूर्वपरयोरित्यधिकारे[15] संपन्नः सन्धिरेकाक्षरीभावः[16] । तत्र पूर्वं[17] द्वे अक्षरे अनेनैकमक्षरं[18] क्रियत इति । एतान् पादपूरणार्थं व्यूहेत् पृथक्कुर्यात् । कथम्[19] ? यकारं व्यूहेत्—दिवस्पृथिव्याः पयोज उद्भृतम्[20], प्रत्नो होता वरेण्यः[21], तत्सवितुर्वरेण्यम्[22] इत्यादौ । वकारं व्यूहेत्—द्रुवन्नः सर्पिरासुतिः[23], दिवं गच्छ स्वःपत[24] इत्यादौ । रेफं व्यूहेत्—एवा त्वामिन्द्र वज्रिन्नत्र[25] । आद्गुणं[26] व्यूहेत्—उपेदमुपपर्चनम्[27], इन्द्रो ब्रहेन्द्र ऋषिः[28] । एचि[29] वृद्धिं[30] व्यूहेत्—प्र ब्रह्मैत्विति[31] । एङः पदान्तादतीति[32] पूर्वरूपं व्यूहेत्—

---

१. ऋ० १।३५।९॥ २ 'तथा हि' इति मै० । ३. ऋ० ८।४६।१५॥
४. ऋ० प्रा० १६।३३॥ ५. ऋ० प्रा० १६।४८॥
६. 'महो - एतान्युदाहरणानि' इति नास्ति मै० । ७. ऋ० १०।२२।३॥
८. ऋ० १०।९३।१५॥ ९. ऋ० १०।१२६।१॥ १०. ऋ० १।१७५।१॥
११. ऋ० १०।१३२।१॥ १२. ऋ० ६।११०।४॥
१३. '०निर्वाहप्रकारमाह' इति मै० । १४. तु—वा० प्रा० ४।१४७॥
१५. अष्टा० ६।१।८१॥ १६. तु०—ऋ० प्रा० १७।२२॥
१७. 'पूर्वं' इति नास्ति पु० १, पु० २ । १८. 'अनेन' इति नास्ति मै० ।
१९. 'कथम्' नास्ति गो०, मै० । २०. ऋ० ६।४७।२७॥
२१, ऋ० २।७।६॥ २२. ऋ० ३।६२।१०॥ २३. ऋ० २।७।६॥
२४. मा० सं० १२।४॥ २५. ऋ० ४।१९।१॥ २६. अष्टा० ६।१।८४॥
२७. ऋ० ६।२८।८॥तु०—ऋ० प्रा० १६।५१॥ २८. ऋ० ८।१६।७॥
२९. 'एवं' इति मै० । ३०. अष्टा० ६।१।८५॥ ३१. ऋ० ७।३६।१॥
३२. अष्टा० ६।१।१०५॥ 'इति' इति नास्ति पु० १, पु० २, गो० ।

अयासा मनसा कृतोऽयासं हव्यमूहिषेऽया नो धेहि भेषजम्[1], इन्द्र वाजेषु नोऽव[2], इन्द्रं सखायोऽनु सं रभध्वम्[3] इति च। सवर्णदीर्घं[4] व्यूहेत्—वदन् ब्रह्मावदतो वनीयान्[5], अद्याद्या श्वः श्वः[6] इति च। आद्गुणं व्यूहेदित्याद्येकाक्षरीभावस्योदाहरणम् ॥६॥

आद्ये तु सप्तवर्गे पादविशेषात् संज्ञाविशेषाः ॥७॥

तु शब्दोऽवधारणे। चतुर्दशसु छन्दःस्वाद्ये[7] सप्तवर्गगायत्र्यादिजगत्यन्त एव पादविशेषात् संज्ञाविशेषा भवन्ति, नोत्तरसप्तकेऽतिजगत्याद्यतिधृत्यन्ते ॥७॥

आद्ये सप्तके पादविशेषात् संज्ञायुक्ता ऋच इति[8] पुनर्वेदनीयमित्याह—

ताननुक्रामन्त एवोदाहरिष्यामः ॥८॥

तान् पादकृतसंज्ञाविशेषानेवानुक्रामन्तोऽग्निं नव मधुच्छन्दा वैश्वामित्रो[9] वायो वायव्यम्[10] इत्यादि प्रतिसूक्तमृष्यादि[11] परिपाटीं वदन्त उदाहरिष्यामः, न पुनः सामान्यगायत्र्यादिशब्दान् ॥८॥

विराड्रूपा विराट्स्थानाश्च बहूना अपि त्रिष्टुभ एवेत्युद्देशः ॥९॥

त्रिष्टभश्चतुश्चत्वारिंशदक्षरत्वे प्राप्ते सति बहुभिरक्षरैरूना हीना अपि विराड्रूपा विराट्स्थानाश्च त्रिष्टुबधिकारोक्तास्त्रिष्टुभ एव स्युः। नवकौ वैराजस्त्रैष्टुभश्च द्वौ वा वैराजौ नवकस्त्रैष्टुभश्च विराट्स्थानैकादशिनस्त्रयोऽष्टकाश्च विराड्रूपेति[12] [13]चैकोनचत्वारिंशच्चत्वारिंशदेकचत्वारिंशदिति पञ्चभिश्चतुर्भिस्त्रिभिरक्षरैरूना अप्यधिकारात्[14] त्रिष्टुभ एवेत्यर्थः। किमर्थमिदमुच्यते? असत्यस्मिन् योगे ह्येकोनचत्वरिंशतो निचृत्पङ्क्तित्वं चत्वारिंशतः पङ्क्तित्वम् एकचत्वारिंशतो भुरिक्पङ्क्तित्वं च स्यात्। इत्युद्देशः। इतिशब्दः प्रकारे। उद्देशः संक्षेपः। पूर्वोक्तप्रकारो बहूनेषु तत्तदधिकारात् तदात्मकः सप्तच्छन्दःसु गायत्र्यादिष्वभिमत इत्यर्थः। तेन त्रयः सप्तकाः पादनिचृद्[15] इत्येकविंशत्यक्षरापि गायत्र्येव[16] मध्यमः षट्कश्चेदतिनिचृद्[17]

---

१. तु—आश्व० श्रौ० १।११।१३॥ २. ऋ० १।७।४॥ ३. ऋ० १०।१०३।६॥
४. अष्टा० ६।१।९७॥ ५. ऋ० १०।११७।७॥ ६. ऋ० ८।६१।१७॥
७. '०स्वाद्ये तु सप्त०' इति मै०।
८. 'इति न पुनश्चोदनीयमित्याह' इति पु० १, पु० २। 'इति पुनश्चोदनायाह' इति गो०। ९. का० सर्वा० १।१॥ १०. का० सर्वा० १।२॥
११. 'परिपा—वदन्त' इति पु० १। 'प्रतिपादयन्त' इति पु० २।
१२. का० सर्वा० परिभाषा ६।५,६॥ तु०—ऋ० प्रा० १६।६७,६९॥
१३. 'च' इति नास्ति पु० २, गो०। १४. 'अप्यूचः' इति पु० १, पु० २, गो०।
१५. का० सर्वा० परिभाषा ४।४॥ १६. तु०—ऋ० प्रा० १६।२१॥
१७. का० सर्वा० परिभाषा ४।५॥

इति च विंशत्यक्षरापि गायत्र्येवेत्यादि[1] सिद्धं भवति। न वा एकेनाक्षरेण छन्दांसि वियन्ति न द्वाभ्यामिति[2]। न ह्येकस्मादक्षराद् विराधयन्तीति[3] च। तत्र वियन्तीत्यन्यत्वं गच्छन्तीत्यर्थः।[4] द्व्येकयोरुपलक्षणत्वाद् वहूनेष्वपि भवति। तत्राद्यसप्तके गायत्र्यादिजगत्यन्ते वक्ष्यमाणं[5] वेदितव्यम्। अस्य चानन्तरसूत्रे प्रयोजनाभावाद् अनादेशेऽष्टाक्षरा[6] इत्यादि पूर्वसप्तक एव नोत्तरसप्तक इति वक्तुं तत्रोपयोगः। तेनातिजगत्याद्यतिधृत्यन्ते यथाध्ययनं पादाक्षरसंख्याव्यवस्थेति सिद्धम् ॥९॥

व्यवहारलाघवाय संज्ञां करोति—

तत्र दशैकादशद्वादशाक्षराणां वैराजत्रैष्टुभजागता इति संज्ञाः ॥१०॥

पादानामिति शेषः। अक्षरशब्दस्य प्रत्येकं सम्बन्धः। दशाक्षरस्य पादस्य संज्ञा वैराज इति। एकादशाक्षरस्य पादस्य[7] त्रैष्टुभ इति। द्वादशाक्षरस्य पादस्य[8] जागत इति। वैराजादिप्रदेशाः—नवकौ वैराजस्त्रैष्टुभश्च[8] त्रिजागतोर्ध्वबृहतीत्येवमादयः[9]। सूत्र्यते पिङ्गलेनापि ह्ययमर्थो महात्मना—विराजो दिशः, त्रिष्टुभो रुद्राः, जगत्या आदित्या इति[10]। दशाक्षरा विराट्, एकादशाक्षरा त्रिष्टुप्, द्वादशाक्षरा जगतीति[11] श्रुतिरपि पादाभिप्रायेणैव ॥१०॥

अनादेशेऽष्टाक्षराः पादाः ॥११॥

अक्षरसंख्यानुक्तौ पादोऽष्टाक्षरो भवतीति पूर्वसप्तके। तेन त्रिपदा गायत्रीत्यादौ त्वष्टकेत्यादि सिद्धम् ॥११॥

चतुष्पदाश्चर्चः ॥१२॥३॥

तत्रानादेश इत्येव। आद्यसप्तकेऽनुक्तपादसंख्या ऋचश्चतुर्भिः पादैर्युक्ता भवन्ति। तेन तृतीयमनुष्टुब्[12] इत्यत्र चतुष्पदा ऋचो भवन्ति। चतुष्पदा[13] इति—चत्वारः पादा अस्या इति वहुव्रीहौ, पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्य[14] इत्यन्त्यलोपे, पादो-

---

१. तु०—ऋ० प्रा० १६।२२॥ २. ऐत० ब्रा० १।६॥
३. ताण्ड्य ब्रा० १५।१२।७॥ विराध्यन्तीति' इति पु०१, पु०२। 'विकाराबाध्यन्तीति'। इति गो०। 'बाधयन्तीति' इति मै०। ४. 'बाधन्तीति नश्यन्तीत्यर्थः' इत्यधिकः पाठो मै०।
५. 'वक्ष्यमाणे' इति मै०। ६. सूत्र ११।
७. 'पादस्य' इति नास्ति पु० १, पु० २, गो०। ८. का० सर्वा० परिभाषा ६।५॥
९. का० सर्वा० परि० ७।६॥ १०. पिङ्गल-छन्दःसूत्र ३।४-६॥
११. तु०—ऐत० ब्रा० १।५॥ १२. का० सर्वा० परिभाषा ६।१।
१३. 'चतुष्पदा…इत्याद्गुणः' इति नास्ति मै०।
१४. अष्टा० ५।४।१३८॥ वस्तुतस्तु—संख्यासुपूर्वस्य (अष्टा० ५।४।१४०), इत्यनेन।

ऽन्यतरस्यामिति[1] टाबृचीति[2] टापि कृते[3] पादः पत्[4]। चर्चं इत्याद्गुणः[5] ॥१२॥३॥

———

[४]

अथादितः सप्त च्छन्दांसि पादविशेषात् संज्ञाविशेषान् विविच्य दर्शयितुमुपक्रमते—

प्रथमं छन्दस्त्रिपदा गायत्री ॥१॥

चतुर्दशच्छन्दसामादिभूतं गीतासु च[6] स्वयं साक्षाद् भगवता गायत्री छन्दसामहम्[7] इत्युक्तत्वात् प्रधानभूतं च। गायतां त्राणाद्[8] गायत्रीति निरुक्तं नाम च्छन्दसः। त्रिपदा पादत्रययुक्ता। त्रित्वं चतुष्कनिवृत्त्यर्थम्[9]। पादाश्च त्रयोऽष्टाक्षराः। उदाहरम्—अग्निमीळे पुरोहितम्[10] इत्यादि। गायत्रीति प्रागुष्णिहोऽधिकारः। प्रथमं छन्द इति श्रुत्यनुकरणम्[11]। एवमुत्तरत्र द्वितीयमित्यादि सप्तममित्यन्तम्। सकलश्रुतिदर्शी ह्ययमाचार्यः ॥१॥

पञ्चकाश्चत्वारः षट्कश्चैकश्चतुर्थश्चतुष्को वा पदपङ्क्तिः ॥२॥

गायत्रीत्येव। पञ्चाक्षराणि परिमाणमस्य [पञ्चकः]। संख्याया[12] अतिशदन्तायाः कन्[13]। एवं चतुष्कषट्कौ। चतुर्णां पूरणश्चतुर्थः। षट्कतिकतिपयचतुरां थुक्[14]। अत्र संज्ञिनौ द्वौ, पदपङ्क्तिरिति संज्ञा। आदितश्चत्वारः पादाः पञ्चकाः पञ्चमः षडक्षरः। एषा पदपङ्क्तिर्गायत्री। अधा ह्यग्ने[15]। इयं वा पदपङ्क्तिः—आदितस्त्रयः पञ्चकाश्चतुर्थश्चतुरक्षरः पञ्चमः षडक्षर इति। अग्ने तमद्य[16] ॥२॥

षट्सप्तकादशा उष्णिग्गर्भा ॥३॥

प्रत्येकान्वयिनः कनो लुक् छान्दसः। षट्कः सप्तक एकादशक इति त्रयः पादा यस्या उष्णिग्गर्भा सा। ता मे अश्व्यानाम्[17] ॥३॥

---

१. अष्टा० ४।१।८॥ इत्यधिकृत इति शेषः। २. अष्टा० ४।१।९॥
३. 'टाबृचीति अधिकृतेः' इति कोशेषु। ४. अष्टा० ६।४।१३०॥
५. अष्टा० ६।१।८४॥ ६. 'वा' इति पु० १, पु० २।
७. भगवद्गीता १०।३५॥ ८. 'गायत्त्राणाद्' इति पु० १, पु० २, गो०।
९. 'चतुष्टयनि०' इति पु० २। 'चष्टनि०' इति पु० १, गो०।
१०. ऋ० १।१।१॥ ११. तु०—ऋ० १०।१३०।४,५॥
१२. 'संख्याया थुक्' इति नास्ति मै०। १३. अष्टा० ५।१।२२॥
१४. अष्टा० ५।२।५१॥ १५. ऋ० ४।१०।२॥
१६. ऋ० ४।१०।१॥ तु०—ऋ० प्रा० १६।१८॥ तत्र त्रयो भेदाः प्रदिष्टाः।
१७. ऋ० ८।२५।२३॥ तु०—ऋ० प्रा० १६।२८॥

त्रयः सप्तकाः पादनिचृत् ।।४।।

सा हि पादनिचृद् यस्यास्त्रय पादास्तु सप्तकाः ।।[1]
युवाकु हि शचीनाम्[2] । अभी षु णः सखीनाम्[3] ।।४।।

मध्यमः षट्कश्चेदतिनिचृत् ।।५।।

आद्यपादस्तृतीयश्च सप्तकौ मध्यमो यदि ।
षडक्षरः सा विज्ञेया गायत्र्यतिनिचृत्त्विति ।।

पुरूतमं पुरूणां स्तोतॄणां विवाचि[4] । ननु च—

षट्कसप्तकमध्येऽष्टावतिपादनिचृत्त्विति ।
पैङ्गले सूत्र्यते[5] शास्त्रे[6] तत् किं नैवेह सूत्र्यते[7] ।।
यथा निचृत्पादनिचृद्वर्धमानादि सूत्र्यते ।
उदाहृतिश्च प्रेष्ठं वः[8] प्रेष्ठमु प्रियाणाम्[9] इति ।।
उच्यते— व्यूहेनैते हि गायत्र्यावित्यत्र तन्न सूत्र्यते[10] ।
सावित्रीति तद्[11]इत्याद्या गायत्री व्यूहनाद् यथा ।।५।।

दशकश्चेद् यवमध्या ।।६।।

मध्यम इत्येव ।

आद्यः पादस्तृतीयश्च सप्तकौ मध्यमो यदि ।
दशाक्षरः सा गायत्री यवमध्या प्रकीर्त्तिता ।।

स सुन्वे यो वसूनाम्[12] ।।६।।

यस्यास्तु षट्कसप्तकाष्टकाः सा वर्धमाना ।।७।।

यस्याः पादाः क्रमेण स्युः षट्कसप्तकाष्टकास्त्रयः ।
सा गायत्री वर्धमाना पादैकाक्षरवर्धनात्[13] ।।

---

१. 'यस्यास्त्रय, पादाः सप्तकाः सा पादनिचृत्' इति पु० १, पु० २ ।
२. ऋ० १।१७।४।। तु०—ऋ० प्रा० १६।२१।। ३. ऋ० ४।३१।३।। इदमुदाहृणं नास्ति पु० १; पु० २ । ४. ऋ० ६।४५।२९।। तु०—ऋ० प्रा० १६।२२।।
५. 'पैंगलसूत्रिते' इति मै० । 'पैंगले श्रूयते' इति पु० १, पु० २ ।
६. पिङ्गल-छन्दःसूत्र ३।११।। ७. 'श्रूयते' इति पु० १, पु० २ ।
८. ऋ० ८।८४।१।। ९. ऋ० ८।१०३।१०। तु०—ऋ० प्रा० १६।२३।।
१०. 'इति अत्र न सूत्र्यते' इति पु० १, पु० २, गो० । ११. ऋ० ३।६२।१०।।
१२. ऋ० ९।१०८।१३।।तु०—ऋ० प्रा० १६।२७।।
१३. 'पादैरक्षर०' इति पु० १, पु० २, गो० ।

त्वमसि प्रशस्यः[1], त्वमग्ने यज्ञानाम्[2] इति च[3] ॥७॥

विपरीता प्रतिष्ठा ॥८॥

अष्टकः सप्तकः षट्क इति यस्यास्तु पादकाः ।
क्रमेण सा प्रतिष्ठोक्ता त्वमग्ने व्रतपा असि[4] ॥६॥

द्वौ षट्कौ सप्तकश्च ह्रसीयसी ॥९॥४॥

द्वौ[5] षट्कौ सप्तकश्चान्त्यः प्रेष्ठं[6] सा तु ह्रसीयसी ।
इति पादविभागेन नव गायत्र्य ईरिताः[7] ॥६॥४॥

---

[५]

द्वितीयमुष्णिक् त्रिपदान्त्यो द्वादशकः ॥१॥

उष्णिगिति प्रागनुष्टुभोऽधिकारः। अत्र चतुरुत्तरवृद्धयारम्भादूर्ध्वं स्निह्यतीत्युष्णिगिति निरुच्यते[8]। उक्ताद्यपेक्षया गायत्र्याश्च[9] चतुरुत्तरवृद्धयान्वयेनोष्णिक्त्वं पङ्कजादिवद् योगरूढित्वात्। त्रिपदा[10] पादत्रयवर्त्तिनी[11]। अन्त्यो द्वादशक इत्यष्टाक्षरत्वापवादः। त्रिपदेति चतुष्पदापवादः परिभाषयैव सिद्धत्वात्।

आद्यावष्टाक्षरौ पादौ तृतीयो द्वादशाक्षरः[12] ।
सोष्णिगुदाहृतिः प्रोक्ता[13] य इन्द्र सोमपातमः[14] ॥१॥

आद्यश्चेत् पुरउष्णिक् ॥२॥

द्वादशक इत्येव ।

आद्यो द्वादशकः पादस्त्वष्टकावपरौ यदि ।[15]
पुरउष्णिगिति प्रोक्ता सा ह्यप्स्वन्तर्[16] उदाहृतिः ॥२॥

---

१. ऋ० ८।११।२॥ २. ऋ० ६।१६।१॥ तु०—ऋ० प्रा० १६।२४॥
३. 'च' इति नास्ति मै० । ४. ऋ० ८।११।१॥
५. अस्य श्लोकार्द्धस्य पाठः पु० १, पु० २, गो० कोशेषु भ्रष्ट इति मै० पाठः स्वीकृतः।
६. ऋ० ८।१०३।१०॥ तु०—ऋ० प्रा० १६।२३;१७।४६॥
७. आसां द्वे (प्रतिष्ठा-ह्रसीयस्यौ) ऋ० प्रा० नोल्लिखते, ऋ० प्रा० प्रकीर्त्तिताश्च षट्का० सर्वा० त्यक्ता इति मैक्डानलः। ८ तु०—निरु० ७।१२॥
९. 'गायत्र्याश्चतुरुत्तरवृद्धयन्वयेपिनोष्णिक्त्वं' इति पु० १, पु० २ ।
१० 'त्रि ... वर्त्तिनी' इति नास्ति मै० । ११. 'पदत्रय०' इति कोशेषु पाठः ।
१२. तु०—ऋ० प्रा० १६।२६॥ १३. तृतीयश्चरणो नास्ति पु० १, पु० २ ।
१४. ऋ० ८।१२।१॥ १५. तु०—ऋ०प्रा० १६।३०॥ १६. ऋ० १।२३।१६॥

मध्यमश्चेत् ककुप् ॥३॥

द्वादशक इत्येव ।

द्वादशाक्षरको मध्ये त्वष्टकावभितो यदि ।[1]
सोष्णिक्ककुविति प्रोक्ता वयमु त्वामपूर्व्य[2] ॥।३।

त्रैष्टुभजागतचतुष्काः ककुम्न्यङ्कुशिरा ॥४॥

एकादशाक्षरस्त्वाद्यो द्वितीयो द्वादशाक्षरः ।
चतुष्कोऽपीति यस्यां सा ककुम्न्यङ्कुशिरा मता ॥[3]

ददा रेक्णस्तन्वे ददिर्वसु[4] । ननु चतुर्थारण्यके ददी रेक्ण इति द्विपदा नूनमथेत्येकपदा[5] इत्येतद् विरुध्यते ? न, एकस्या[6] एव ऋत्वर्थं द्विपदैकपदात्वमित्यविरोधः[7] ॥४॥

एकादशिनोः परः षट्कस्तनुशिरा ॥५॥

एकं[8] च दश च द्वन्द्वाद् व्रीह्यादित्वाद्[9] इनिः कृतः ।

एकादशाक्षरावाद्यौ तृतीयस्तु षडक्षरः[10] ।
यस्याः सैषा तनुशिरा प्र या घोष[11] उदाहृतिः ॥

मध्ये चेत् पिपीलिकमध्या ॥६॥

षट्क इत्येव ।

एकादशाक्षरः षट्कः पुनरेकादशाक्षरः ।
सा पिपीलिकमध्योक्ता हरी यस्येत्युदाहृति[12] ॥६॥

आद्यः पञ्चकस्त्रयोऽष्टका अनुष्टुब्गर्भा ॥७॥

आद्यः पञ्चाक्षरः पादस्त्रयस्त्वष्टाक्षराः परे ।
अनुष्टुब्गर्भा सा प्रोक्ता पितुं नु स्तोषम्[13] इत्यसौ ॥

---

१. तु०—ऋ० प्रा० १६।३०॥ २. ऋ० ८।२१।१॥
३. तु०—ऋ० प्रा० १६।३३॥ तत्रैकाक्षरोनत्वाद् न्युङ्कुशिरा निचृद् इत्युक्तम् ।
४. ऋ० ८।४६।१५॥ ५. ऐत० आ० ५।२।५॥ ६. 'एतस्या' इति गो० मै० ।
७. '०पदात्वमित्यस्यामविरोधः' इति गो० । '०पदात्वविधे' इति मै० ।
८. 'एकं · कृतः' इति नास्ति मै० । ९. अष्टा० ५।२।११६॥
१०. तु०—ऋ० प्रा० १६।३५॥ ११. ऋ० १।१२०।५॥
१२. ऋ० १०।१०५।२॥ तु०—ऋ० प्रा० १६।३४॥
१३ ऋ० १।१८७।१॥ तु०—ऋ० प्रा० १६।३६॥

आद्य[1] इति च त्रय इति च विस्पष्टार्थं क्रमतः। चतुष्पदाश्चर्चं[2] इति परिभाषातश्च सिद्धेः ॥७॥

चतुःसप्तकोष्णिगेव ॥८॥५॥

चतुर्भिः सप्तकैः पादैर्युक्ताप्युष्णिगिहोच्यते।
नदं व ओदतीनां[3] मंसीमहीत्युदाहृतिः[4] ॥

द्वितीयमुष्णिक् त्रिपदान्त्यो द्वादशक इत्यत्र चतुःसप्तका चेति लाघवाय वाच्येऽत्र गुरुसूत्रकरणं चतुःसप्तकोष्णिहोऽल्पप्रयोगत्वसूचनार्थमित्याहुः। कथं पुनः प्र प्र वस्त्रिष्टुभमिषम्[5] अर्चत प्रार्चत[6] यो व्यतीँरफाणयद्[7] इति तृचान् अनुक्रम्य प्रज्ञाता अनुष्टुभः शंसतीति ब्राह्मणं[8] तृचा आनुष्टुभा इति च सूत्रम्[9], नदं व[10] इत्यस्या उष्णिक्त्वं नोपपद्यते[11], तेषु हीयमपि पठ्यते ? उच्यते[12] —

अनुष्टुप्पादसाम्येन [13]गुणवादोऽयमुष्णिहः।
रहस्यब्राह्मणेऽप्येवं [14]सम्यगाम्नायते खलु ॥

नदं व ओदतीनामित्युष्णिगक्षरैर्भवत्यनुष्टुप्पादैरिति[15]।
इत्युष्णिहोऽष्टावुद्दिष्टाः[16] सम्यक् पादविभागतः[17] ॥८॥५॥

---

[९]

तृतीयमनुष्टुप् ॥१॥

आ बृहत्या अनुष्टुबधिकारः।
चतुर्भिरष्टकैः पादैर्युक्तानुष्टुबिहोच्यते[18]।

---

१. 'आद्य ··सिद्धेः' इति नास्ति मै०। २. का० सर्वा० परिभाषा ३।१२॥
३. ऋ० ८।६९।२॥ ४. ऋ० १०।२६।४॥ तु०—ऋ० प्रा० १६।३२॥ तत्रेमे ऋचौ पादैरनुष्टुभौ, अक्षरैस्तूष्णिहावुच्येते। ५. ऋ० ८।६९।१॥
६. ऋ० ८।६९।८॥ ७. ऋ० ८।६९।१३॥
८. ऐत० ब्रा० ४।४॥ अत्र 'प्रज्ञाता···शंशति' इत्येव ब्राह्मणवचनम्। मैक्डानलस्तु 'प्र प्र शंसति' इति ब्राह्मणवचनमित्यूरीकृत्य 'तृचाननुक्रम्य' इति वचनं ब्राह्मणसंस्करणद्वयेऽनुसंदधौ। ९. आश्व० श्रौ० ६।२।६॥ १०. ऋ० ८।६९।२॥
११. '०क्त्वमुपपद्यते' इति पु० १, पु० २। १२. 'उच्यते' नास्ति पु० १, पु० २, गो०। १३. 'गुणभेदो०' इति गो०। १४. 'संयगाम्नायते' इत्यपपाठो मै०।
१५. ऐत० आ० १।३।८॥ १६. 'उपदिष्टाः' इति पु० १, 'समद्दिष्टाः' इति गो०।
१७. 'विभेदतः' इति मै०। इम उष्णिहो विभागा ऋ० प्रा० अप्युपलभ्यन्ते।
१८. तु०—ऋ० प्रा० १६।३७॥

गायन्ति त्वा गायत्रिण[1] इन्द्र विश्व अवीवृधन्[2] ।।
अनादेशाच्चतुष्पात्त्वं पादाश्चाष्टाक्षरास्तथा ।।१।।

पञ्च पञ्चकाः षट्कश्चैको महापदपङ्क्तिः ।।२।।

पञ्च पञ्चाक्षरा यस्याः षष्ठश्चैकः षडक्षरः[3] ।
सोक्ता महापदपङ्क्तिस्तव स्वादिष्ठेत्युदाहृतिः[4] ।।२।।

जागतावष्टकश्च कृतिः ।।३।।

द्वादशाक्षरकावाद्यौ[5] तृतीयोऽष्टाक्षरः कृतेः[6] ।
मा कस्मै धातम्[7] इत्येषा कृत्यनुष्टुबुदाहृतिः ।।३।।

मध्ये चेदष्टकः पिपीलिकमध्या ।।४।।

यस्या द्वादशकस्त्वाद्यस्तथाष्टद्वादशाक्षरौ[8] ।
सा पिपीलिकमध्योक्ता[9] पर्यू षु प्रेत्युदाहृतिः[10] ।।४।।

नवकयोर्मध्ये जागतः काविराट् ।।५।।

चेदित्येव ।

नवाक्षरो द्वादशको नवाक्षरक एव चेत् ।
इति पादास्त्रयो यस्याः सा प्रोक्ता काविराडिति[11] ।।

ता विद्वांसा हवामहे वाम्[12] ।।५।।

नववैराजत्रयोदशैर्नष्टरूपा ।।६।।

पादैर्युक्तेति शेषः ।

नवाक्षरो दशाक्षरस्त्रयोदशाक्षरस्तथा ।
इति त्रयो हि यत्र वै नष्टरूपा हि सा स्मृता ।।[13]

---

१. ऋ० १।१०।१।। २. ऋ० १।११।१।। इदमुदाहरणं नास्ति पु० १, पु० २ ।
३. तु—ऋ० प्रा० १६।४३।। ४. ऋ० ४।१०।५।।
५. श्लोकार्धो नास्ति पु० १ । 'आद्यौ द्वौ जागतौ यस्यास्तृतीयोऽष्टाक्षरस्तथा' इति पु० २ । 'द्वौ द्वादशाक्षरावाद्यौ०' इति गो० । ६. तु०—ऋ० प्रा० १६।३८।।
७. ऋ० १।१२०।८।।
८. '०स्त्वा द्यो मध्येष्टक०' इति पु० १, '०स्त्वा द्यो मध्येष्ट;०' इति पु०२; '०स्त्वा द्यो थाष्ट०' इति गो० । ९. तु०—ऋ० प्रा० १६।३९।। १०. ऋ० ६।११०।१।।
११. तु०—ऋ० प्रा० १६।४०।। १२. ऋ० १।१२०।३।।
१३. तु०—ऋ० प्रा० १६।४१।। पु० १, पु० २ पाठः, गो०, मै० पाठस्त्वीषद्भिन्नः ।

वि पृच्छामि पाक्या३न् देवान्[1] ॥६॥

दशकास्त्रयो विराट् ॥७॥

दशाक्षरास्त्रयः पादा यस्या सा हि विराड् भवेत् ।
त्रयोग्रहस्त्वनादेशाच्चतुष्पात्त्वं तु मा स्म भूत् ॥[2]

पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा[3] ॥७॥

एकादशका वा ॥८॥६॥

त्रय इत्येव विराडिति च ।

एकादशाक्षरा यस्यास्त्रयः सापि विराड् भवेत्[4] ।

दुहीयन् मित्रधितये युवाकु[5] ।

इत्यनुष्टुभ उद्दिष्टा अष्टौ पादप्रभेदतः ॥८॥६॥

---

[७]

चतुर्थं बृहती तृतीयो द्वादशकः ॥१॥

आ पङ्क्तेर्बृहत्यधिक्रियते ।

आदितोऽष्टाक्षरौ पादौ तृतीयो द्वादशाक्षरः ।
चतुर्थोऽष्टाक्षरश्चेति बृहती खलु वै भवेत्[6] ॥
अभि त्वा शूर नोनुम[7] उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते[8] ।
अष्टाक्षर चतुष्पात्त्वमनादेशेन लभ्यते ॥१॥

आद्यश्चेत् पुरस्ताद्बृहती ॥२॥

द्वादशक इत्येव ।

द्वादशाक्षर आदौ चेदष्टकाश्चापरे[9] त्रयः ।
पादा यस्या हि सा प्रोक्ता पुरस्ताद्बृहतीति वै[10] ॥

महो यस्पतिः शवसो असाम्या[11], कुह श्रुत इन्द्रः[12] ॥२॥

---

१. ऋ० १।१२०।४॥ — २. तु०—ऋ० प्रा० १६।४२॥
३. ऋ० ७।२२।१॥ — ४. तु०—ऋ० प्रा० १६।४२॥
५. ऋ० १।१२०।६॥ — ६. तु०—ऋ० प्रा० १६।४५॥
७. ऋ० ७।३२।२२॥ — ८. ऋ० १।४०।१॥
९. 'काश्च परे' इति पु० २, मै० । — १०. तु०—ऋ० प्रा० १६।४६॥
११. ऋ० १०।२२।३॥ — १२. ऋ० १०।२२।१॥

द्वितीयश्चेन्न्यङ्कुसारिण्युरोबृहती वा स्कन्धोग्रीवी वा ॥३॥

द्वादशक इत्येव ।

आदितोऽष्टाक्षरः पादो द्वितीयो द्वादशाक्षरः ।
पादावथाष्टकौ सोक्ता त्रिभिरेव तु नामभिः ॥[1]
ऋषीणां मतभेदो हि नामभेदेऽस्ति कारणम् ।
पिङ्गलस्य मते चेयं महर्षेर्न्यङ्कुसारिणी[2] ॥
स्कन्धग्रीवी[3] क्रौष्टुकेश्च यास्कस्योरोबृहत्यपि[4] ।

मत्स्यपायि ते महः[5] । इन्दुरिति रेफव्यूहेन तृतीयोऽष्टाक्षरः ॥३॥

अन्त्यश्चेदुपरिष्टाद्बृहती ॥४॥

द्वादशक इत्येव ।

आदितस्त्वष्टका यस्यास्त्रयोऽन्त्यो द्वादशाक्षरः ।
उपरिष्टाद्बृहत्येषा[6] न तमंह[7] उदाहृतिः ॥४॥

अष्टिनोर्मध्ये दशकौ विष्टारबृहती ॥५॥

चेदित्येव । अष्टास्य सन्तीत्यष्टी । अस्माद्[8] व्रीह्यादित्वादिनि[9] कृते, नस्तद्धित[10] इति टिलोपश्चान्लोपः[11] । दशकौ कनि[12] ।

यद्यष्टाक्षरयोर्मध्ये पादौ स्यातां दशाक्षरौ ।
विष्टारबृहती[13] सोक्ता युवं ह्यास्तम्[14] उदाहृतिः ॥५॥

त्रिजागतोर्ध्वबृहती ॥६॥

त्रयो द्वादशका यस्याः सा ह्यूर्ध्वबृहती[15] मता ।
अजीजनो अमृतं मर्त्येष्वाँ[16], दिवः पीयूषं पूर्व्यं यदुक्थ्यम्[17] इति[18] ॥६॥

त्रयोदशिनोर्मध्येऽष्टकः पिपीलिकमध्या ॥७॥

यदि ह्यष्टाक्षरो मध्ये त्रयोदशकयोर्भवेत् ।

---

१. तु०—ऋ० प्रा० १६।४६॥ २. पिङ्गल-छन्दःसूत्र ३।२८॥
३. पिङ्गल-छन्दःसूत्र ३।२९॥ ४. पिङ्गल-छन्दः सूत्र ३।३०॥
५. ऋ० १।१७५।१॥ ६. तु०—ऋ० प्रा० १६।४६॥
७. ऋ० १०।१२६।१॥ ८. 'अस्माद्…कनि' इति नास्ति मै० ।
९. अष्टा० ५।२।११६॥ १०. अष्टा० ६।४।१४४॥
११. अष्टा० १।१।६३॥ १२. अष्टा० ५।१।२२॥ १३. तु०—ऋ०प्रा०१६।४९॥
१४. ऋ० १।१२०।७॥ १५. 'ह्योर्ध्व०' इति गो०मै० । तु०—ऋ० प्रा० १६।४७॥
१६. ऋ० ६।११०।४॥ १७. ऋ०६।११०।८॥ १८. 'इति' नास्ति गो०मै० ।

सा पिपीलिकमध्योक्ता[1] बृहती द्विस्त्रयोदशात् ।
व्रीह्यादित्वा [दिनिः] टिलोपश्च[2] । अभि वो वीरमन्धसो मदेषु गाय[3] ॥७॥

नवकाष्टयेकादश्यष्टिनो विषमपदा[4] ॥८॥

नवाक्षरोऽष्टाक्षरश्च तथैवैकादशाक्षरः ।
चतुर्थोऽष्टाक्षरश्चेति पादा यस्यास्तु सोच्यते ।
बृहत्येषा तु विषमपदेति[5] खलु बह्वृचैः ॥

सनितः सुसनितरुग्र[6] ॥८॥

चतुर्नवका बृहत्येव ॥६॥७॥

चतुर्भिर्नवकैः पादैर्युक्तापि बृहती मता[7] ॥

तं त्वा वयं पितो वचोभिः[8] ।

चतुर्थं बृहती तृतीयो द्वादशक[9] इत्यत्र लाघवाय चतुर्नवका चेति[10] वाच्येऽल्प-प्रयोगसूचनार्थमिदं[11] गुरुसूत्रकरणमित्याहुः । तथा च सूत्र्यते हि भगवता पिङ्गलेन पाणिन्यनुजेन क्वचिन्नकाश्चत्वार[12] इति । तत्र क्वचिति प्रयोगाल्पत्वं सूच्यते ।

इति बह्वृचर्षिसहेन बृहत्यो नव कीर्तिताः॥६॥७॥

---

[८]

पञ्चमं पङ्क्तिः पञ्चपदा ॥१॥

आ त्रिष्टुभः पङ्क्तयधिकारः । अत्र पञ्चपदेत्युक्तिश्चतुष्पात्त्वं[13] मा स्म भूत् ।
अष्टाक्षराः पञ्च पादा यस्याः सा पङ्क्तिरुच्यते[14] ।

---

१. तु०—ऋ० प्रा० १६।५२॥
२. 'व्रीह्या • लोपश्च' इति नास्ति मै० । अपि द्र०—पूर्वपृष्ठे टि० ६, १० ।
३. ऋ० ८।४६।१४॥
४. 'युजावष्टकावयुजो नवैकादशिनो बृहती विषमपदा' इति मै० ।
५. तु०—ऋ० प्रा० १६।५३॥
६. ऋ० ८।४६।२०॥
७. तु०—ऋ० प्रा० १६।५०॥
८. ऋ० १।१८७।११॥
९. का० सर्वा० परिभाषा ७।१॥
१०. '०काश्चेति' इति मै० ।
११. 'इदं' इति नास्ति मै० ।
१२. पिङ्गल-छन्दःसूत्र ३।३३॥
१३. कोशेषु '०त्युक्ति०' इत्येव पाठः । मैक्डानलकृतः '०त्युक्ते०ः इति शोधो न न्याय्यः ।
१४. तु०—ऋ० प्रा० १६।५४॥

इन्द्रो मदाय वावृधे[1] इत्था हि सोम इन्मदे[2] ॥१॥

अथ चतुष्पदा ॥२॥

पङ्क्तिरुच्यत इति शेषः। अथेत्यधिकारे। तेन विराड् दशकैरित्यादौ[3] चतुर्भिः पादैरिति सिद्धं भवति। असत्यस्मिन् योगेऽनादेशसिद्धचतुष्पात्त्वस्य पञ्चपदाधिकारेण बाधः स्यात् ॥२॥

विराड् दशकैः ॥३॥

दशाक्षरैश्चतुर्भिस्तु पादैः पङ्क्तिर्युता विराट्[4]।
ऋतस्य पथि वेधा अपायि[5] ॥३॥

अयुजौ जागतौ सतोबृहती ॥४॥

तृतीयाद्यौ द्वादशकौ द्वितीयान्त्यौ तथाष्टकौ।
यस्याः सतोबृहत्येषा[6] न त्वावानित्युदाहृतिः[7] ॥४॥

युजौ चेद् विपरीता ॥५॥

जागतावित्येव।

द्वितीयान्त्यौ द्वादशकौ तृतीयाद्यौ तथाष्टकौ।
यस्याः सा विपरीतेति नाम्नोक्ता बह्वृचोत्तमैः[8] ॥
ध ऋष्वः श्रावयत् सखा[9] ॥५॥

आद्यौ चेत् प्रस्तारपङ्क्तिः ॥६॥

जागतावित्येव।

आद्यौ द्वादशकौ पादावष्टकौ च परौ यदि।
प्रस्तारपङ्क्ति[10] सा प्रोक्तोच्छ्वञ्चस्वेत्याद्युदाहृतिः[11] ॥६॥

---

१. ऋ० १।८१।१॥ २. ऋ० १।८०।१॥ ३. का० सर्वा० परिभाषा ८।३॥
४. तु०—ऋ० प्रा० १६।५५॥ तत्र 'मन्ये त्वा' (ऋ० ८।६६।४) इत्युदाह्रियते।
५. ऋ० ६।४४।८॥
६. तु०—ऋ० प्रा० १६।५७॥ तत्र 'मा ते राधांसि' (ऋ० १।८४।२०) इत्युदाहृतिः।
७. ऋ० ७।३२।२३॥ ८. तु०—ऋ० प्रा० १६।५८॥ ९. ऋ० ८।४६।१२॥
१०. तु०—ऋ० प्रा० १६।६०॥ तत्र 'महि द्यावा०' (ऋ० १०।९३।१) इत्युदाहृतिः।
११. ऋ० १०।१८।११॥ पु० १, पु० २ कोशयोस्तु 'पादौ द्वादशकावाद्यौ ततस्त्वष्टाक्षरौ परौ। यस्याः प्रस्तारपङ्क्तिःसा महि द्यावेत्युदाहृतिः' ॥ इति पाठः।

अन्त्यौ चेदास्तारपङ्क्तिः ॥७॥

जागताविल्येव ।

आद्यावष्टाक्षरौ पादौ ततो द्वादशकौ परौ[1] ।
यस्याः सास्तारपङ्क्तिः स्यादग्निं नेत्याद्युदाहृतिः[2] ॥७॥

आद्यान्त्यौ चेत् संस्तारपङ्क्तिः ॥८॥

जागताविल्येव ।

द्वादशाक्षरयोर्मध्ये पादावष्टाक्षरौ यदि ।
यस्याः संस्तारपङ्क्तिः[3] स्यात् पितुभृतो न तन्तुमित्[4] ॥

ननु च[5] आ याहि वनसा [6]सहेति द्विपदाः शंसति[7], आ याहि वनसा [8]सहेमा नु कं[8] बभ्रुरेक[9] इति द्विपदासूक्तानीति[10] ब्राह्मणसूत्राभ्याम् आ याहि संवर्त उषस्यं द्वैपदमिति[11] सर्वानुक्रमण्यां च द्विपदासूक्ते पितुभृत इत्येषा पठ्यते । तत् कथमियं चतुष्पदोदाह्रियते । उच्यते । द्विर्द्विपदा ऋचः समामनन्तीति[12] द्वयोर्द्विपदयोरध्ययन एकर्चत्वमत्रैव वक्ष्यते । तेन चतुष्पात्त्वमित्यदोषः ॥८॥

मध्यमौ चेद् विष्टारपङ्क्तिः ॥६॥८॥

जागताविल्येव ।

यस्यास्त्वष्टकयोर्मध्ये भवेतां द्वादशाक्षरौ ।
विष्टारपङ्क्तिः[13] सा प्रोक्ता ह्यग्ने तव श्रवो वयः[14] ॥

विष्टारपङ्क्तिः[15]—स्तॄञ् आच्छादने[16], छन्दोनाम्नि चेति[17] घञ्, षत्वं चाष्टमिकेनानेनैव[18] ॥

इति पङ्क्तय उद्दिष्टा अष्टौ शिष्टेष्टपुष्टिदाः ।
वह्वृचाचार्यसिंहेन कात्यायनमहर्षिणा ॥६॥८॥

---

१. तु०—ऋ० प्रा० १६।५६॥ २. ऋ० १०।२१।१॥
३. तु०—ऋ० प्रा० १६।६१॥ ४. ऋ० १०।१७२।३॥
५. 'ननु च' इति नास्ति पु० १, पु० २ । ६. ऋ० १०।१७२।१॥
७. ऐत० ब्रा० ५।१७; तु०— ऐत० ब्रा० ५।२॥ ८. ऋ० १०।१५७।१॥
९. ऋ० ८।२६।१॥ १०. आश्व० श्रौत० ८।७।२४॥
११ का० सर्वा० ६४।३०॥ १२. का० सर्वा० परिभाषा १२।१०॥
१३. तु०-ऋ० प्रा० १६।६२॥ १४. ऋ० १०।१४०।१॥
१५. 'विष्टार···नेनैव' इति नास्ति मै० । १६. धा० ६।१४॥
१७. अष्टा० ३।३।३४॥ १८. अष्टा० ८।३।९४॥

[९]

षष्ठं त्रिष्टुप् त्रैष्टुभपदा ।।१।।

आ जगत्यास्त्रिष्टुवधिकारः । त्रैष्टुभमित्यनादेशाष्टाक्षरनिवृत्त्यर्थम् । पादाश्च चत्वारोऽनादेशात् । चत्वार एकादशकास्तु पादा यस्याः सोक्ता त्रिष्टुबाचार्यविशिष्टैः[1] । कस्य नूनम्[2] ।।१।।

द्वौ तु जागतौ यस्याः सा जागते जगती ।।२।।

यस्या द्वादशकौ पादावन्त्यावेकादशाक्षरौ ।
त्रिष्टुब् जागत सूक्तस्था सोच्यते जगतीति वै[3] ।।
इदं स्तोममिदं[4] सूक्तं जागतं त्वियमत्र च ।
यस्मै त्वमायजसे[5] ।।२।।

त्रैष्टुभे त्रिष्टुप् ।।३।।

सैव त्रैष्टुभसूक्तस्था त्रिष्टुभित्युच्यते[6] यथा ।
यूपव्रस्का[6] ये वाजिनं[7] मा नः सूक्तं[8] हि त्रैष्टुभम् ।।३।।

वैराजौ जागतौ चाभिसारिणी ।।४।।

यस्या दशाक्षरौ पादौ ततो वै द्वादशाक्षरौ ।
सोक्ताभिसारिणी[9] त्रिष्टुब् यो वाचा वीत्युदाहृतिः[10] ।।४।।

नवकौ वैराजस्त्रैष्टुभश्च द्वौ वा वराजौ नवकस्त्रैटुभश्च विराट्स्थाना ।।५।।

यस्या नवाक्षरौ पादौ तृतीयो दशकस्तथा ।
एकादशाक्षरोऽन्त्यश्च विराट्स्थाना तु सा मता[11] ।।
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः[12] ।।
यस्या दशाक्षरावाद्यौ तृतीयश्च नवाक्षरः ।

---

१. तु०—ऋ० प्रा० १६।६४।।
२. ऋ० १।२४।१।। अत्र मैक्डानलकृतो निर्देशः 'ऋ० ८।८४।७' इति न समीचीनः ।
३. तु०—ऋ० प्रा० १६।६५।। तत्रोपजगतीति संज्ञा विहिता । ४. ऋ० १।९४।।
५. ऋ० १।९४।२।। ६. ऋ० १।१६२।६।। जगतीति का० सर्वा० ११।५।।
७. ऋ० १।१६२।१२।। ८. ऋ० १।१६२।।
९. तु०—ऋ० प्रा० १६।६५।। १०. ऋ० १०।२३।५।।
११. तु०—ऋ० प्रा० १६।६७।। १२. ऋ० १।८९।६।।

एकादशाक्षरश्चान्त्यो विराट्स्थानैव सापि च[१] ॥
श्रुधी हवमिन्द्र मा रिषण्यः[२]। वेति प्रकारविकल्पार्थम् ॥५॥

एकादशिनस्त्रयोऽष्टकश्च विराड्रूपा ॥६॥

एकादशाक्षरा यस्याः पादाः स्युस्त्रय आदितः ।
चतुर्थश्चाष्टकः सोक्ता विराड्रूपेति बह्वृचैः[३] ॥

तुभ्यं श्चोतन्त्यध्रिगो शचीवः[४], श्रुतं मे मित्रावरुणा हवेमेति[५] च। नात्र क्रमादर[६] आ वो रुवण्युम्[७] इत्यृचि तृतीयस्याष्टकत्वदर्शनात् । एकादशिन[८] इति व्रीह्यादित्वादिनिः[९] बहुवचनस्य त्रित्वाद्यनेकविषयत्वेऽपि [१०]कपिञ्जलाधिकरणन्यायेनानादेशे चतुष्पदाश्चर्चं[११] इति परिभाषया चैकादशाक्षरपादत्रित्वे सिद्धे त्रय इति न्यायप्राप्तानुवादः, श्रुत्यनुकरणं वा[१२] ॥६॥

द्वादशिनस्त्रयोऽष्टकश्च ज्योतिष्मती ॥७॥

यस्या द्वादशकाः पादास्त्रयः क्वाप्यस्ति चाष्टकः ।
एषा ज्योतिष्मती[१३] त्रिष्टुबुत्तरत्र ह्युदाहृतिः ॥७॥

यतोऽष्टकस्ततो ज्योतिः ॥८॥

यत इति सप्तम्यर्थे तसिल् । तत इत्यनुकरणे । पुरस्ताद्वा मध्ये वोपरिष्टाद्वा यत्राष्टकोऽष्टाक्षरः[१४] पादस्तेन युक्तो ज्योतिःशब्दो नाम भवेत्—पुरस्ताज्ज्योतिर्मध्येज्योतिरुपरिष्टाज्ज्योतिरिति । एताः संज्ञाः पैङ्गलेऽपि शास्त्रे दृष्टा हि । तद्यथा—पुरस्ताज्ज्योतिः प्रथमेन, मध्ये ज्योतिर्मध्यमेन, उपरिष्टाज्ज्योतिरन्त्येन[१५] । तत्र पुरस्ताज्ज्योतिरुदाहरणं वेदान्तरे—इमे त इन्द्र ते वयं ते त्वारभ्य चरामसीति[१६] । अस्माकं त्वियम्—इमे त इन्द्र ते वयं पुरुष्टुतेति[१७] पाठाज्जगत्येव । मध्येज्योतिः । यद्वा यज्ञं मनवे संमिमिक्षथुः[१८] ताभिरा यातं वृषणोप मे हवम्[१९] इति च । तृतीयाष्टकेन पादेन मध्येज्योतिर्वेदान्तरे—

---

१. ऋ० १।८४।६॥ २. ऋ० २।११।१॥ ३. तु०—ऋ० प्रा० १६।६९॥
४. ऋ० ३।२१।४॥ ५. ऋ० १।१२२।६॥
६. उपरिष्टात् क्रमनिर्देशस्तु क्वाचित्कः, आकरसूत्रे तदभावात् । ऋ० प्रा० (१६।६९) अप्यत्रानुकूलम् । ७. ऋ० १।१२२।५॥ ८. 'एका...दिनिः' इति नास्ति मै० ।
९. अष्टा० ५।२।११६॥ १०. द्र०—पू० मी० ११।१।३८ शाबरभाष्य ।
११. का० सर्वा० परिभाषा ३।१२॥ १२. 'श्रुत्यः...वा' इति नास्ति पु०१, पु०२ ।
१३. तु०—ऋ० प्रा० १६।७०॥ १४. 'ऽष्टाक्षरः पादः' इति नास्ति पु०१, पु०२ ।
१५. पिङ्गल-छन्दःसूत्र ३।५२-५४ ॥ १६. अनुपलब्धमूलम् ।
१७. ऋ० १।५७।४॥ १८. ऋ० ८।१०।२॥
१९. ऋ० ८।२२।१२॥ तु०—ऋ० प्रा० १६।७३॥

तदश्विना भिषजा रुद्रवर्तनी सरस्वती वयति पेशो अन्तरम्।
अस्थि मज्जानं मासरैः कारोतरेण दधतो गवां त्वचि ॥[1] इति।

उपरिष्टाज्ज्योतिः। अग्निनेन्द्रेण वरुणेन विष्णुनेत्याद्याः[2]। ऋतावानं महिषं विश्वदर्शतम्[3] इति च। पूर्वत्र[4] तु क्रमाविवक्षयेह त्वनेकसंज्ञार्थोऽयमारम्भः[5]। एतदेव ज्ञापकं भवत्यत्रोक्तक्रमाविवक्षेति[6] ॥८॥

चत्वारोऽष्टका जागतश्च महाबृहती ॥९॥

चत्वारोऽष्टाक्षराः पादाः क्वाप्यन्यो द्वादशाक्षरः।
यस्यास्तु प्रोच्यते नाम्ना सा महाबृहतीति वै[7] ॥

अत्रापि क्रमो न विवक्षितः। तेनादितो द्वादशकोऽन्ततो द्वादशकः सिध्यति। तत्रादितो द्वाशदकः—नमोवाके प्रस्थिते अध्वरे नरा[8]। अन्ततो द्वादशकः—नवानां नवतीनाम्[9] इति व्यूहेत् ॥९॥

मध्ये चेद् यवमध्या ॥१०॥

जागत इत्येव।

आद्यावष्टाक्षरौ यस्यास्तृतीयो द्वादशाक्षरः।
पुनर्द्वावष्टकौ चेत् सा यवमध्या[10] प्रकीर्त्तिता ॥

सं मा तपन्त्यभितः[11] ॥१०॥

आद्यौ दशकावष्टकास्त्रयः पङ्क्त्युत्तरा विराट् पूर्वा वा ॥११॥९॥

आद्यौ दशाक्षरौ यस्यास्त्रयश्चाष्टाक्षराः परे।
पङ्क्त्युत्तरा विराट्पूर्वा तस्या द्वे नामनी[12] इमे[13]।

---

१. मा० सं० १९।८२॥ २. ऋ० ८।३५।१॥ तु०—ऋ० प्रा० १६।७३॥
३. ऋ० १०।१४०।६॥ ४. सूत्र ७।
५ 'पूर्वत्र क्रमविवक्षाद्या त्वेक०, इति पु० १। 'पूर्वक्रमाविवक्ष्याद्य। त्वेक०' इति पु० २। 'वक्ष्या त्वनेक०' इति गो०।
६. 'अन्तोक्तक्रमं वेव जयति' इति पु० १। अन्यथा उक्तक्रमवेति जपति' इत्ति पु० २। '०क्रमविवक्षितः' इति गो०। ७. तु०—ऋ० प्रा० १६।७१॥
८. ऋ० ८।३५।२३॥ तु०—ऋ० प्रा० १६।७३॥
९. ऋ० १।१९१।१३॥ इयं पङ्क्तिरित्युवटः (ऋ० प्रा० १७।२१ उ० भा०)।
१०. तु०—ऋ० प्रा० १६।७२॥
११. ऋ० १।१०५।८॥ ऋ० प्रा० (१६।७३) बृहद्भिरग्ने (ऋ० ६।४८।७) इत्युदाह्रियते। का० सर्वा० (३२।१) त्वेषा महाबृहतीत्युच्यते। १२. 'आर्त्ती' इति पु० १, पु० २।
१३. तु०—ऋ०प्रा० १६।६८॥ 'महासतोमुखा' इत्यभिधानान्तरम् (ऋ०प्रा० १८।२७)।

द्विनामत्वं ब्राह्मणेषु[1] चोक्तिद्वेधोपलम्भनात्[2] ।
एवेन्द्राग्निभ्यामहावि हव्यम्[3] ।
इति त्रिष्टुभ उद्दिष्टा दश कात्यायनर्षिणा[4] ।।११।।९।।

[१०]

सप्तमं जगती जागतपदा ।।१।।

आ प्रगाथाज्जगत्यधिकारः । जागतेत्यष्टाक्षरनिवृत्त्यर्थम् । अनादेशे चतुष्पात्त्वम् ।

यस्याः पादास्तु चत्वारो द्वादशाक्षरसंयुताः ।
जगती[5] नाम सा प्रोक्ता इमं स्तोमम्[6] उदाहृतिः ।।१।।

अष्टिनस्त्रयः स्वौ च द्वौ महासतोबृहती ।।२।।

यस्यास्त्वष्टाक्षराः पादास्त्रयो द्वौ द्वादशाक्षरौ ।
महासतोबृहत्युक्ता[7] सा नात्रोक्तक्रमादरः ।।
आ यः पप्रौ भानुनेति[8] तृतीयाद्यौ हि जागतौ ।
तत्र स्वावित्यात्मीयौ जागतावित्यर्थः । कुतः ? प्रकृतत्वाज्जगत्याः ।।२।।

अष्टकौ सप्तकः षट्को दशको नवकश्च षडष्टका वा महापङ्क्तिः ।।३।।१०।।

वेति प्रकारविकल्पे ।

आदावष्टाक्षरौ यस्याः सप्तकोऽथ षडक्षरः ।
दशाक्षरोऽथ नवकः सा महापङ्क्तिरुच्यते ।।[9]

सूर्ये विषमा सजामीति[10] तिस्रः ।

१. 'ब्राह्मणे च' इति पु० १ ।
२. 'कृतं द्वेधो०' इति पु० १ । 'उक्तिदेधाप०' इति पु० २ । तस्माद्द्वेप०' इति गो० ।
३. ऋ० ५।८६।६।।
४. '०महर्षिणा' इति पु० १, पु० २ ।
५. तु०—ऋ० प्रा० १६।७४।।
६. ऋ० १।९४।१।।
७. तु०—ऋ० प्रा० १६।७७,७८।।
८. ऋ० ६।४८।६।।
९. तु०—ऋ० प्रा० १६।७६।।
१०. ऋ० १।१९१।१०-१२ ।। ऋ० प्रा० (१६।७८) 'सोहान उग्र' (ऋ० ८।३७।२) इत्यप्युदाह्रियते ।

अष्टाक्षरा वा यस्याः षट् सा महापङ्क्तिरेव हि[1] ।
अव द्वके अव त्रिका[2] उभे यदिन्द्र रोदसी[3] ।।
तिस्रो जगत्यस्तु प्रोक्ताः कात्यायनमहर्षिणा ।
इति छन्दांसि सप्तेह व्याख्यातानि विभागशः ।।
एषु छन्दोद्वययुताः[4] संज्ञा वक्तुं विजृम्भते ।।३।।१०।।

---

[११]

अथ प्रगाथाः ।।१।।

अथशब्दोऽधिकारार्थः । सूक्तसंख्यानुवर्त्तत इत्यतः प्राक् प्रगाथा अधिक्रियन्त इत्यर्थः । प्रगाथ्यते संमेल्यते[5] छन्दसा छन्द इति प्रगाथः ।।१।।

बृहतीसतोबृहत्यौ बार्हतः ।।२।।

प्रगाथ इत्येव । बार्हतः प्रगाथ इत्युक्ते[6], आदौ बृहती ततः सतोबृहतीति[7] छन्दोद्वयं मिलितं विद्यात् । चतुर्थं बृहती तृतीयो द्वादशकः[8], अयुजो जागतौ सतोबृहतीत्युक्ते[9] । अयं दश प्रागाथम्[10] इत्यादावयं वाम्[11] इति बृहती, त्रिवन्धुरेणेति[12] सतोबृहतीत्येवमादि[13] । बार्हत इति सोऽस्यादिरितिच्छन्दसः प्रगाथेष्वित्यण्[14] । एवं काकुभादिष्वपि द्रष्टव्यम् ।।२।।

ककुप् चेत् पूर्वा काकुभः ।।३।।

बृहतीस्थाने ककुप् चेत् काकुभः प्रगाथः[15] । मध्यमश्चेत् ककुब्[16] इत्युक्तम् ।

---

१. तु०—ऋ० प्रा० १६।७५।।

२. ऋ० १०।५९।९।। अत्र ऋ० प्रा० (१६।७८); अस्मा ऊषु (ऋ० ८।४१।१) इत्युदाह्रियते । ३. १०।१३४।१।।

४. 'छन्दो त्वथयुतां संज्ञां' इति पु० १ । 'छन्दो त्वथयुताः' इति गो० ।

५. 'प्रगाथांते संमेलंवे' इत्यपपाठः पु० १ । 'प्रगाथ्यंते संमिलति' इति पु० २ । 'प्रगाथ्यंते संमेल्यंते' इति गो० । ६. 'इत्युक्तः' इति मै० । ७. 'इति' इति नास्ति मै० ।

८. का० सर्वा० परिभाषा ७।१।। ९. का० सर्वा० परिभाषा ८।४।।

१०. का० सर्वा० ४।१।। ११. ऋ० १।४७।१।। १२. ऋ० १।४७।२।।

१३. तु०—ऋ० प्रा० १८।१,२।। १४. अष्टा० ४।२।५५।।

१५. 'प्रगाथः । मध्य···इत्युक्तम्' इत्येव पु० १, पु० २ । अवशिष्टा व्याख्या लुप्ता।

१६. का० सर्वा० परिभाषा ५।३।।

उत्तरा सतोबृहत्येव पूर्ववत्[१] । वयमु त्वा[२] काकुभः प्रगाथ इत्यादौ वयमु त्वा[२] ककुभम्, उप त्वा कर्मन्निति[३] सतोबृहतीं विद्यात् ॥३॥

महाबृहतीमहासतोबृहत्यौ महाबार्हतः ॥४॥

प्रगाथ इत्येव । एते चत्वारोऽष्टका जागतश्च महाबृहती[४], अष्टिनस्त्रयः स्वौ च द्वौ महासतोबृहतीत्युक्ते[५] । उत्तरपदवृद्धिश्छान्दसी । अन्यथा माहाबृहत[६] इति हि प्राप्नोति । यज्ञायज्ञीये[७] महाबार्हतबार्हतौ प्रगाथावित्यत्र बृहद्भिरग्न[८] इति द्वौ ॥४॥

बृहतीविपरीते विपरीतोत्तरः ॥५॥

प्रगाथ इत्येव । बृहती[९] विपरीता सतोबृहती च । आभ्यां विपरीतोत्तरः प्रगाथो भवति । युजौ चेद् विपरीतेत्युक्तम्[१०] । त्वावतीये[११] विपरीतोत्तरः प्रगाथ इत्यत्र नहि ते शूरेति[१२] द्वे ॥५॥

अनुष्टुब्गायत्र्यौ चानुष्टुभोऽनुष्टुम्मुखास्तृचा इत्युक्ते ॥६॥११॥

अत्र शास्त्रेऽस्माभिरनुष्टुम्मुखास्तृचा इत्युक्त आनुष्टुभः प्रगाथः प्रत्येतव्यः । अत्र चाद्यानुष्टुब् द्वे गायत्र्याविति विद्यात्[१३] । अत्रानुष्टप् च गायत्री चेत्यनुष्टुब्गायत्र्याविति द्वन्द्वो मा विज्ञायीति । द्वन्द्वे ह्येकानुष्टुबेका गायत्री स्यात् । आ त्वेकोना प्रियमेध आदावनुष्टम्मुखास्तृचाश्चत्वार[१४] इत्या त्वा रथम्[१५] इत्यनुष्टुप् तुविशुष्मेति[१६] द्वे गायत्र्यावित्यादि । अनुष्टुम्मुखास्तृचा इत्युक्त इति वचनं गायन्ति द्वादशानुष्टुभम्[१७] इत्यनुष्टुबेका गायत्रीद्वयं चेति मा भूदिति । अथ च्छन्दासीत्युपात्तचतुर्दशच्छन्दःसु

---

१. तु०—ऋ० प्रा० १८।१,२॥ २. ऋ० ८।२१।१॥

३. ऋ० ८।२१।२॥ ४. का० सर्वा० परिभाषा ६।६॥

५. का० सर्वा० परिभाषा १०।२॥ ६. 'महाबार्हत' इति पु० १ । 'माहाबार्हत' इति पु० २ । 'महाबृहत' इति गो० । ७. ऋ० ६।४८॥ द्र० का० सर्वा० ३३।२॥

८. ऋ० ६।४८।७—१०॥ तु०—ऋ० प्रा० १८।१०,१४॥

९. 'बृहती…भवती' इति नास्ति पु० १, पु० २ ।

१०. का० सर्वा० परिभाषा ८।५॥

११. ऋ० ८।४६॥ द्र० का० सर्वा० ४४।१॥ अत्र पाठो भ्रष्टः पु० १, पु० २ ।

१२. ऋ० ८.४६।११-१२॥ तु०—ऋ० प्रा० १८।१५॥ विपरीतान्त इति संज्ञेह स्मर्यते । गो० कोशे 'विपरीतोत्तरः' इत्यतोऽग्रे पाठो भ्रश्यते ।

१३. तु०– ऋ० प्रा० १८।३॥ १४. का० सर्वा० ४५।१॥

१५. ऋ० ८।६८।१॥ १६. ऋ० ८।६८।२॥ १७. का० सर्वा० परि० १।१०॥

गायत्र्यादिजगत्यन्ताद्यसप्तवर्गे भेदा[1] उक्ताः ।[2] उत्तरसप्तवर्गेऽतिजगत्याद्यतिधृत्यन्तेऽक्षरसंख्ययैव[3] न पादविशेषात् संज्ञाविशेषाः । पादाश्चानुक्रमण्यन्तरसिद्धा[4] उच्यन्ते—

पादा अतिजगत्यां तु त्रयो द्वादशकाः परौ ।
अष्टकौ शक्वरी पादाः सप्तैवाष्टाक्षरास्तु ते[5] ॥
अतिशाक्वरपादौ द्वावादितः षोडशाक्षरौ ।
जागतोऽथाष्टकावष्टिपादाः षोडशकास्त्रयः ॥
अष्टकौ चात्यष्टिपादौ जागतौ चाष्टकास्त्रयः ।
जागतश्चाष्टकश्चाथ धृतिपादास्तु[6] जागतौ ॥
पादास्त्रयोऽष्टकाश्चाथ षोडशाक्षर[7] एव च ।
अष्टकश्चाथातिधृतौ द्वौ पादौ जागतौ ततः[8] ॥
त्रयोऽष्टका[9] जागतश्च तथाष्टाक्षरकावपि[10] ।
पूर्वसप्तकपादास्तु प्रसङ्गात् स्वयमीरिताः[11] ॥

तत्रातिजगत्याद्यतिधृत्यन्तोदाहरणानि प्रदर्श्यन्ते[12] । अतिजगती—प्र वो महे मतयो यन्तु[13] । शक्वरी—प्रो ष्वस्मै पुरोरथम्[14] । अतिशक्वरी—साकं जातः क्रतुना[15] । अष्टिः—त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरम्[16] । अत्यष्टिः—अग्निं होतारं मन्ये[17] ।

---

१. ऋ० प्रा० (१८।१।३१) प्रगाथस्य त्रयोविंशतिर्भेदा उक्ताः ।

२. अत्र 'अथ छन्दांस्युसीचात्वे चतुर्दशछन्दसु गायत्र्यादि जगत्यंताद्य सप्तके भेदो वर्गे उक्ते' इति पु० १ । तथैव पु० २ '०छन्दांस्युच्यमानेषु०' '०जगत्यन्ते आद्ये०' इति पाठभेदं विहाय ।

३. '०संख्यैव' इति कोशेषु, मै० च ।

४. पादविधान श्लोक ३-७, तद्भाष्यं चात्रानुसन्धेयम् ।

५. '०क्षराश्च ते' इति पु० १, पु० २ । '०क्षराः स्मृताः' इति गो० ।

६. 'पादाश्च' इति पु० १, '०पादौ तु' इति गो० ।

७. 'त्रयोदशक' इति पु० १, 'चतुर्दशक' इति पु० २ ।

८. 'जागतः षोडशाक्षरः' इति कोशेषु ।

९. 'द्वावष्टकौ' इति गो० ।

१०. 'तथैवाष्टक इत्यपि' इति पु० १, पु० २ ।

११. 'स्वेत ईरिताः' इति पु० २ ।

१२. 'प्रदृश्यन्ते' इति पादविधानभाष्ये ।

१३. ऋ० ५।८७।१॥ तमिन्द्रम् (ऋ० ८।९७।१३) इति ऋ० प्रा० (१६।९१) ।

१४. ऋ० १०।१३३।१॥ ऋ० प्रा० १६।९१॥

१५. ऋ० २।२२।३॥ सुषुमा (ऋ० १।१३७।१) इति ऋ० प्रा० (१६।९१) ।

१६. ऋ० २।२२।१॥ ऋ० प्रा० १६।९१॥

१७. ऋ० १।१२७।१॥ अया रुचा (ऋ० ९।१११।१) इति ऋ० प्रा० (१६।९१) ।

धृतिः—अवमंह इन्द्र दादृहि श्रुधी नः[1]। अतिधृतिः—स हि शर्धो न मारुतम्[2] इति। एतस्यां शाकल्यसंहितायामेतावन्ति चतुर्दशच्छन्दांस्येव सन्तीति, पुरस्ताच्चोक्तादिपञ्चकस्य परस्ताच्च कृत्याद्युत्कृत्यन्तस्य सप्तकस्य चानुक्तिरिति[3] वेदितव्यम्। तत्र[4] च—उक्तम् अत्युक्तं मध्यं प्रतिष्ठा सुप्रतिष्ठेति चतुरुत्तरवृद्धया[5] चतुरक्षरादिविंशत्यक्षरान्तं पुरस्ताच्छन्दः पञ्चकम्, परस्ताच्छन्दःसप्तकं तु कृतिः प्रकृतिराकृतिर्विकृतिः संकृतिराभिकृतिरुत्कृतिरित्यशीत्यक्षरादि चतुरुत्तरवृद्धया चतुरधिकशतान्तम्। एतान्यपि भगवता पिङ्गलनागेन[6] सूत्र्यन्ते। उक्तम्। साति[7]। मध्यम्[8]। प्रतिष्ठा। सु च[9]। चतुःशतमुत्कृतिः। चतुश्चतुरस्त्यजेदुत्कृतेः। तान्यभिसंव्याप्रेभ्यः कृतिः। प्रकृत्या चेति[10]। अथोक्तादिद्वादशकस्योदाहरणानि प्रदर्श्यन्ते। तत्रोक्तं नामच्छन्दः—नूनमथेत्येकपदा[11]। तथा हि चतुर्थारण्यके सूच्यते[12]—नूनमथेत्येकपदेति[13]। अत्युक्तम्—अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निरिति[14] द्विपदा। मध्यम्—अग्निर्ज्योतिः सूर्यो ज्योतिः प्रजा ज्योरिति[15] त्रिपदा। प्रतिष्ठा—अग्ना३ इ पत्नीवन्त्सजूर्देवेन त्वष्टा सोमं पिबेति[16] त्रिपदा। सुप्रतिष्ठा—पुरूतमं पुरूणां स्तोतॄणां विवाचि वाजेभिर्वाजयतामिति[17] त्रिपदा। मध्यमः षट्कश्चेद् अतिनिचृद्[18] गायत्रीमिमां वयं ब्रूमः।

उक्तादि पञ्चकं कैश्चिद् गायत्रीत्येव कथ्यते।
यथा ह्यतिजगत्यादि त्वतिच्छन्दः प्रवर्ण्यते[19]॥
उक्तादिपञ्चकस्योक्तं कृतीनामथ वक्ष्यते॥

तत्र कृतिः—त्रिशुग्घर्मो विभातु मे। आकूत्य मनसा सह। विराजा ज्योतिषा

---

१. ऋ० १।१३३।६॥ सखे (ऋ० ४।१।३) इति ऋ० प्रा० (१६।९१)।

२. ऋ० १।१२७।६॥ ऋ० प्रा० १६।९१॥ 'तत्रा · माहतम्' इति सन्दर्भोऽपि पादविधानाद् उद्धृतः।

३. 'पुरस्तान्नोक्तानि पंचकस्य पुरस्तात्तन्न कृत्याद्युत्कृत्यनंतस्य च सप्तकस्यानवतिरिति' इति पु० १। 'पुरस्तान्नोक्तानि। उक्तादिपंचक नोक्तं पुरस्तात्कृत्याद्युत्कृत्यन्तस्य च सप्तकस्यानवतिरिति' इति पु० २।

४. 'अत्र' इति पु० १, पु० २।

५. 'चतुरुत्तर······भगवता' इति पु० १, पु० २ नास्ति।

६. 'महर्षिणा' इति पु० १, पु० २।

७. 'साति सति' इति गो०।

८. 'मध्यमं' इति पु० १, पु० २।

९. 'युवा' इति गो०।

१०. पिङ्गलछन्दःसूत्र ४।१-४॥ तत्र 'उक्तं···सु च' इति पञ्च सूत्राणि नोपलभ्यन्ते।

११. ऋ० ८।४६।१५॥

१२. 'सूच्यते' इति नास्ति पु० १, पु० २।

१३. ऐत० आ० ५।२।५॥

१४. मा० सं० ३।९॥

१५. अनुपलब्धमूलम्।

१६. मा० सं० ८,१०॥

१७. ऋ० ६।४५।२९॥

१८. द्र० — वेदार्थदीपिका ४।५॥ का० सर्वा० ३१।१७॥

१९. 'प्रवर्ण्यत्यंते' इति पु० १, 'प्रवर्त्तते' इति पु० २।

सह। यज्ञेन पयसा सह। ब्राह्मणा तेजसा सह। क्षत्रेण यशसा सह। सत्येन तपसा सह। तस्य दोहमशीमहि। तस्य सुम्नमशीमहि। तस्य भक्षमशीमहि[1]।

प्रकृतिः—भगो अनु प्रयुङ्क्तामिन्द्रो यातु पुरोगवः[2]। यस्याः सदो हविर्धाने। यूपो यस्यानुमीयते। ब्राह्मणा यस्यामर्चन्ति। ऋग्भिः साम्ना यजुर्विदः। युध्यन्ते यस्यामृत्विजः। सोममिन्द्राय पातवे।[3] सा नो भूतिर्दक्षिणाया सुशेवा यज्ञे ददातु सुमनस्यमानेति[4] पञ्चावसाना।

आकृतिः—तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतम्। जीवेम शरदः शतम्। नन्दाम शरदः शतम्। मोदाम शरदः शतम्। भवाम शरदः शतम्। शृणवाम शरदः शतम्। प्रब्रवाम शरदः शतम्। अजीताः स्याम शरदः शतम्। ज्योक् च सूर्यं दृशे[5] इति।

विकृतिः—इमे सोमाः सुरामाणः। छागैर्न मेषैर्ऋषभैः। सुताः शष्पैर्न तोक्मभिः। लाजैर्महस्वन्तो मदा। मासरेण परिष्कृताः। शुक्राः पयस्वन्तोऽमृताः। प्रस्थिता वो मधुश्चुतः। तानश्विना सरस्वती। इन्द्रः सुत्रामा वृत्रहा। जुषन्तां सोम्यं मधु। पिबन्तु मदन्तु व्यन्तु सोमम्[6] इति दशाष्टाक्षराः पादा एक एकादशाक्षरः।

संकृतिः—देवो अग्निः स्विष्टकृत्। सुद्रविणा मन्द्रः कविः। सत्यमन्माऽऽयजी होता। होतुर्होतुरायजीयान्। अग्ने यान् देवानयाट् यानपिप्रेः। ये ते होत्रे अमत्सत। तां ससनुषीं होत्रां देवंगमाम्। दिवि देवेषु यज्ञमेरयेमम्। स्विष्टकृच्चाग्ने होताभूः। वसुवने वसुधेयस्य नमोवाके वीहीति[7]।

अभिकृतिः देवो अग्निः स्विष्टकृद् देवान् यक्षद् यथायथं होताराविन्द्रमश्विना वाचा वाचं सरस्वतीम् अग्नि सोमं स्विष्टकृत् स्विष्ट इन्द्रः सुत्रामा सविता वरुणोऽभिषगिष्टो देवो वनस्पतिः स्विष्टा देवा आज्यपाः स्विष्टो अग्निरग्निना होता होत्रे स्विष्टकृद् यशो न दधदिन्द्रियमूर्जमपचितिं स्वधाम्[8] इति त्रयोदश गायत्रपादाः।

उत्कृतिः—छागस्य हविष आत्तामद्य मध्यतो मेद उद्धृतं पुरा द्वेषोभ्यः पुरा पौरुषेय्या गृभो घस्तां नूनं घासे अज्राणां यवसप्रथमानां सुमत्क्षराणां शतरुद्रियाणामग्निष्वात्तानां पीवोपवसनानां पार्श्वतः श्रोणितः शितामत उत्सादतो अङ्गादङ्गाद-

---

१. तै० आ० ४।२१।१॥
२. तु०—अथर्व० १२।१।४०॥
३. तु०—अथर्व० १२।१।३८॥
४. अनुपलब्धमूलम्।
५. तै० आ० ४।४२।३२॥ तु०—मा० सं० ३६।२४॥
६. मा० सं० २१।४२॥ 'सोमम्' इत्यस्य स्थाने 'होतर्यज' इति संहितापाठः।
७. तै० ब्रा० ३।५।७।१॥
८. मा० सं० २१।५८॥

वत्तानां करत एवेन्द्राग्नी[1] जुषेतां हविरिति[2]।

इतिच्छन्दांसि संप्रोच्य त्वथायं परिभाषते ॥६॥११॥

---

[१२]

सूक्तसंख्यानुवर्तत आन्यस्याः सूक्तसंख्यायाः ॥१॥

सूक्त ऋचां संख्या सूक्तसंख्या। सा पूर्वमुक्तान्यस्याः सूक्तर्कसंख्याया आ अधिक्रियत इति वेदितव्यम्। आङ् मर्यादायाम्। वायो वायव्यैन्द्रवायवमैत्रावरुणास्तृचा[3] इत्यत्राग्नि नवेत्यतो[4] नवेत्यनुवर्तत इत्यर्थः। इह[5] यत्र सूक्तग्रहणमसूक्तगतर्कसंख्याया[6] अवधित्वमधिकारश्च मा भूदिति। तेनादहेत्येताः षण्माहत्य[7] इति षट् संख्याया नाधिकारो नाप्यवधित्वमिति। सुरूपकृत्नु दशैन्द्रम्[8] इति दशसंख्यैवानुवर्तत इति सिद्धम् ॥१॥

ऋषिश्चान्यस्मादृषेरवाविशिष्टः ॥२॥

अनुवर्तत इत्यनुवर्तते। अन्यस्मादृषेरा[9] प्राक् प्रकृतर्षिश्चाप्यनुवर्तते[10]। स चेद्वाविशिष्टो न भवति। वाविशिष्टो[11] वाशब्देन विशेषो यदुक्तौ वाशब्दोऽस्ति यथाप्त्यस्त्रितो वेति[12] स इत्यर्थः[13]। इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्नित्यतः[14] प्राग् वायवा याहीत्यादौ[15] मधुच्छन्दा इत्यादिं निदर्शनम्। अवाविशिष्ट इति वचनम्—चन्द्रमा एकोनाप्त्यस्त्रितो वेति[12] वाविशिष्टस्त्रितः इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमूतय[16] इत्यत्र नास्यानु-

---

१. 'एवाश्विना' इति संहितापाठः। २. मा० सं० २१।४३॥
३. का० सर्वा० १।२॥
४. का० सर्वा० १।१॥ 'नग्नि नवेत्यनुवर्तत' इति पु० १, पु० २।
५. 'इह' इति नास्ति पु० २। ६. '०गतसख्यायाम्' इति पु० १, पु० २।
७ का० सर्वा० १।७॥
८. का० सर्वा० १।५॥ 'दशेति दशसख्यानुवर्तत' इति पु० १, पु० २।
९. 'दृषेः प्राक्' इति गो०।
१०. 'प्राकृत ऋषिश्चानु०' इति गो०, '०चानु' इति पु० १, पु० २।
११. 'वाविशिष्टो' इति नास्ति मै०। १२. का० सर्वा० ७।१२॥
१३. 'वाविशिष्टो वा शब्देन विशेषितः यद्युक्तो वाशब्दोस्ति यथा आप्त्यस्त्रितो वा। त्रितो वा भवति स इत्यर्थ.' इति पु० १, पु० २। १४. का० सर्वा० १।१२॥
१५. का० सर्वा० १।२॥ १६. का० सर्वा० ७।१३॥

वृत्तिरिति[1] ॥२॥

अथ निपातविशेषान्वयेन तत्परिभाष्यते[2]—

तुहिहवैतच्छब्दविशिष्टान्यृषिदैवतच्छन्दांसि द्वित्रिचतुःपञ्च-षट्सूक्तभाञ्जि यथासंख्यम् ॥३॥

तु हि ह वै तद् इति पञ्चभिः शब्दैर्विशिष्टानि संबद्धान्यृषिदैवतच्छन्दांसि यथासंख्यं द्वित्रिचतुःपञ्चषट्सूक्तभाञ्जि सूक्तान्वयवन्ति भवन्ति। कदा नरस्तु[3], देवरातो वारुणं तु[4], गायन्ति द्वादशानुष्टुभं त्विति[5] तुशब्दोक्तावृषिदैवतछन्दोभिर्द्वि-सूक्तान्वयं[6] विद्यात्। एवं हिशब्दयोगे त्रित्वम्। हयोगे चतुष्कम्। वैयोगे पञ्चताम्। तच्छब्दयोगे षट्कमिति द्रष्टव्यम्। तत्र भाञ्जीति—भजो ण्विः[7], अत उपधायाः[8], शौ नुम्[9] ॥३॥

अनिरुक्ता संख्या विंशतिः ॥४॥

स्वरूपेणोक्ता निरुक्ता पञ्च नवेत्यादि। पञ्चोना पञ्चाधिकेत्यादि विशेषण-रूपेणोक्ता[10] स्वरूपेणानुक्तानिरुक्ता[11] संख्या विंशतिरिति वेदितव्यम्। यथा—कस्य पञ्चोनेति[12] पञ्चोनविंशति पञ्चदशेति। एवं च निरुक्तशब्द[13]। इदं विंशतिरुष-स्यम्[14] इत्यादिषु विंशतिग्रहणानि चार्थवन्ति[15] भवन्ति। अन्यथानुवृत्तिसंख्यानिरुक्त-संख्याविंशत्योर्विषयविभागोऽपि[16] न ज्ञायेत। किं च। एवं चानादेशे त्विन्द्रो देवतेत्यु-त्तरत्रानादेशग्रहणं[17] चार्थवद् भवति। इतरथात एवानिरुक्तेत्येवानुवर्त्तिष्यत इति ॥४॥

अनादेशे त्विन्द्रो देवता ॥५॥

---

१. 'इति मा स्मानुवर्तत इति' इति पु० १। 'इत्यादिषु कुत्स एव' इति पु० २। 'इति। अत्र मा स्मानुवर्तत इति' इति गो०।

२. '०न्वयेन परिभाषते' इति पु० १, पु० २।

३. का० सर्वा० ३१।७॥

४. का० सर्वा० २।५॥ 'त्रैष्टुभं' इत्यधिकः पाठः पु० १, पु० २।

५. का० सर्वा० १।११॥

६. 'छन्दसां द्वि०' इति पु० १।

७. अष्टा० ३।२।६२॥

८. अष्टा० ७।२।११६॥ 'इति वृद्धिः' इत्यधिकः पाठः गो०।

९. अष्टा० ७।१।७२॥ कोशेषु पाठो भ्रष्टः।

१०. 'विशेषणरूपे०' इति गो०। 'विशेष्ये रूपे०' इति पु० १, पु० २।

११. 'स्वरूपेणोक्ता अनि०' इति पु० १। 'स्वरूपेण नोक्ता अनि०' इति पु० २।

१२. का० सर्वा० २।५॥ 'इति पञ्चोन' इति नास्ति गो०।

१३. 'एवं च तिशब्दः' इति पु० १,। 'एवं विंशतिशब्दः' इति पु० २।

१४. का० सर्वा० ८।१॥

१५. 'चार्थवद्' इति गो०।

१६. मै० शोधितः पाठः।

१७. का० सर्वा० परि० १२।५॥

देवानामनुक्तौ तु ज्ञेय इन्द्रो देवता । तेना तु[1] युज्जन्तीत्यादाविन्द्र[2] एवेति[3] सिद्धं भवति । तु शब्दोऽवधारणे । सुरूपकृत्नु दशैन्द्रम्[4] इत्यादावनुक्तेरेवैन्द्रत्वे सिद्धे मण्डलादिष्वाग्नेयमैन्द्राद्[5] इत्याग्नेयावध्यर्थम्[6] ऐन्द्रग्रहणम् । एवमुत्तराण्यपि दशेन्द्र-ग्रहणानि[7] वेदितव्यानि ॥५॥

त्रिष्टुप् छन्दः ॥६॥

अनादेश इत्येव । छन्दोऽनुक्तौ त्रिष्टुप् छन्दो भवति । तेनेन्द्रस्य पञ्चोनेत्यादौ[8] छन्दोऽनुक्तौ त्रिष्टुप् छन्द इति[9] सिद्धम् । देवरातो वारुणं तु त्रैष्टुभम्[10] इत्यत्रानुक्तेरेव त्रैष्टुभत्वे सिद्धे त्रैष्टुभमित्यादौ गायत्रं प्राग्घैरण्यस्तूपीयाद्[11] इति गायत्रत्वा-पवादः ॥६॥

प्रगाथा[12] बार्हताः ॥७॥

अनादेश इत्येव । अयं दश प्रागाथम्[13] इत्यत्र[14] विशेषानुक्तौ बृहतीसतो-बृहत्यौ वार्हत[15] इत्युक्तो वार्हत एव प्रगाथो भवति । तेन युजः सतोबृहत्योऽयुजो-बृहत्य इति सिद्धम् ॥७॥

विंशतिका द्विपदा विराजः ॥८॥

द्विपदा[16] विंशत्यक्षराः परिमाणतश्छन्दस्तो विराज इति विद्यात् । यथा—पञ्चा दश पराशरः शाक्त्यो द्वैपदम्[17] इत्यादौ ॥८॥

तदर्धमेकपदाः ॥९॥

या एकपदास्ता[18] दशाक्षराः परिणामतश्छन्दस्तः पूर्ववद् विराज इत्येव[19]

---

१. का० सर्वा० १।६॥　　२. का० सर्वा० १।७॥
३. 'एव देवतेति' इति पु० १, पु० २ ।　　४. का० सर्वा० १।५॥
५. का० सर्वा० १२।१२॥　　६. '०पवादार्थं' इति गो० ।
७. 'दशैंद्रसप्तैंद्र०' इति पु० २ ।　　८. का० सर्वा० २।१३॥
९. 'छन्द इवेति' इति पु०१ । 'छन्द एवेति' इति पु०२ ।　　१०. का० सर्वा० २।५॥
११. का० सर्वा० परि० १२।१४॥　　१२. 'तथा प्रगाथा' इति पु० १, पु० २ ।
१३. का० सर्वा० ४।१॥　　१४. 'इत्यादौ' इति गो० ।
१५. का० सर्वा० परि० ११।२॥ 'बार्हत इत्युक्तौ' इति पु० १; पु० २ । 'बार्हत एव' इति गो० ।　　१६. 'या द्विपदा' इति पु० १, पु० २ ।　　१७. का० सर्वा० ५।५॥
१८. एकपदाविषयकं यास्कमतम् ऋ० प्रा० १७।४२ द्रष्टव्यम् ।
१९. 'विराज एव' इति पु० १; पु० २ ।

विद्यात् । यथा—अन्त्यैकपदेति[1] । तदर्धम् इति[2] विंशत्यर्धमित्यर्थः ॥९॥

अथ प्रसङ्गाद् द्विपदास्वध्ययनकाले[3] विशेषमाह—

द्विर्द्विपदास्त्वृचः समामनन्ति ॥१०॥

ऋचोऽध्ययने त्वध्येतारो द्वे द्वे[4] द्विपदे एकैकामृचं कृत्वा समामनन्ति[5] समामनेयुः । अधीयीरन् । म्ना अभ्यासे[6] । लिङर्थे लेट्[7] । पाघ्रादिना[8] शपि मनादेशः । द्वे द्विपदे यासां ता ऋचो द्विर्द्विपदाः । समामनन्तीति वचनाच्छंसनादौ न भवन्ति[9] । तेन पश्वा न तायुम्[10] इति द्वैपदमिति शंसने दशर्चत्वम् आसां चाध्ययने तु पञ्चत्वं भवति ॥१०॥

अयुक्ष्वन्त्या द्विपदैव ॥११॥

समामनन्तीत्येव[11] । अयुक्ष्वेकादशादिषु द्विपदास्वन्त्यैव[12] द्विपदा भवेन्नान्यथा[13] । यथा—वनेमैकादशेत्यत्र[14] सावुर्न गृध्नुरित्यादि[15] ॥११॥

मण्डलादिष्वाग्नेयमैन्द्रात् ॥१२॥

आ ऐन्द्राद् ऐन्द्रसंशब्दनात् प्राङ्मण्डलादिष्वाग्नेयं विद्यात् । यथा—अग्नि-नव मधुच्छन्दाः[16], त्वमग्ने जागतं त्वित्यादिषु[17] ॥१२॥

त्रिष्टुबन्तस्य सूक्तस्य शिष्टाजगत्यः ॥१३॥

यस्य सूक्तस्यान्ते त्रिष्टुबित्युच्यते तस्य सूक्तस्य तद्वर्जं शिष्टा अन्या ऋचो जगत्यो वेदितव्याः । यथा—आग्नेयं त्रिष्टुबन्त्याष्टमीषोळश्यौ चेति[18] ॥१३॥

आदौ गायत्रं प्राग्घैरण्यस्तूपीयात्[19] ॥१४॥१२॥[20]

---

१. का० सर्वा० २६।९॥ २. 'इति' इति नास्ति मै० ।
३. '०पदाध्ययन०' इति पु०१, पु० २ । '०पदास्वाध्यायकाले' इति गो० ।
४. 'द्वे द्विपदे' इति पु० १, पु० २ । ५. 'समामनन्ति' इति नास्ति गो० ।
६. 'नाभ्यासे' इति पु० १, 'मनाभ्यासे' इति गो०, त्यक्त. पु० २ ।
७. अष्टा० ३।४।७॥ 'छन्दसां लिङर्थे०' इति पु० २ ।
८, अष्टा० ७।३।७८॥ 'पाघ्रा…पञ्चत्वं भवति' इति नास्ति पु० १, पु० २ ।
९. '०नादौ भवति' इति गो० । १०. का० सर्वा० ५।५॥
११. 'समा…त्येव' नास्ति गो० । १२. 'द्विपदासु' इति नास्ति पु० १, पु० २ ।
१३. '०नान्याः' इति पु० १, पु० २ । १४. का० सर्वा० ५।१०॥
१५. ऋ० १।७०।११॥ १६. का० सर्वा० १।१॥ १७. का० सर्वा० १३।१०॥
१८. का० सर्वा० २।११॥ १९. 'प्राग्विरण्यस्तूपात्' इति पु० १, पु० २, गो० ।
२०. का० सर्वा० गोकर्ण-कोशेऽस्तोऽग्रे खण्डद्वयमधिकमुपलभ्यते । तत्र त्रयोदशे खण्डे

संहितादौ त्वमग्ने द्वच्यूना हिरण्यस्तूप[1] इति हिरण्यस्तूपसंशब्दनात् प्राक् छन्दो गायत्रीति विद्यात्। छन्दसः प्रत्ययविधाने स्वार्थ उपसंख्यानम्[2] इति गायत्र्येव गायत्रम्। संहितापेक्षमादित्वम्। अन्यत्र हिरण्यस्तूपस्यानुपलम्भात्[3] संहितायाः परमप्रकृतत्वाच्च[4] ॥१४॥१२॥

॥ इति द्वादशखण्डी तु परिभाषा प्रवर्णिता[5] ॥

———

गोधादयो ब्रह्मवादिंन्य ईरिताः, चतुर्दशे खण्डे तु षड्गुरुशिष्योक्ताः (परि० ११।६) श्लोकाः 'पादा'' स्वयमीरितः' इति लिखिता उपलभ्यन्ते।

१· का० सर्वा० २।११॥ २. महा० धा० ४।२।५५॥ ३. 'स्यानुलंभात्' इति मै०।
४. 'च' इति नास्ति पु० १, पु० २। ५. 'प्रवर्त्तिता' इति पु० १; पु० २।

[अथ ऋषिदेवताछन्दसामनुक्रमणम्]

अथाग्निमीळ इत्यादि खिलरहितसप्तदशाधिकसूक्तसहस्रस्य[1] प्रतिसूक्तमाद्यसूक्त प्रतिज्ञानमृष्यादिकं दर्शयितुमुपक्रमते । अत्र च सूत्रेष्वनुक्तं परिभाषातो ग्रहीतव्यम् । अत्र शास्त्रे सर्वत्र नवार्था ज्ञातव्याः—सूक्तादिः, सूक्तेष्वृक्संख्या, छन्दः, पादः, अक्षराणि, दैवतम्, ऋषेर्नाम, गोत्रं च, क्वचित् कथा चेति ।

[अथ शतर्चिनां प्रथमं मण्डलम्]

[१]

[१][2] अग्निं नव मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः ॥१॥

अग्निमिति सूक्तादिः । ईळे पुरोहितम् । नवेति सूक्तस्य ऋक्संख्या । मधुच्छन्दा इत्यृषेर्नाम । वैश्वामित्र इति तस्य गोत्रम् । अत इञो[3]ऽपवाद ऋष्यण्[4] । आदौ गायत्रं प्राग्घैरण्यस्तूपीयाद्[5] इति गायत्री छन्दः । मण्डलादिष्वाग्नेयमैन्द्राद्[6] इत्यग्निदेवता सुरूपकृत्नुं दशैन्द्रम्[7] इत्यतः प्राक् । त्रिपदा गायत्री पादाश्चाष्टाक्षराः । प्रथमं छन्दस्त्रिपदा गायत्री[8], अनादेशेऽष्टाक्षरा पादा[9] इति । एवमुत्तरत्रापि सर्वत्रोक्तादन्यत् परिभाषातो ग्राह्यम्[10] । सूक्तादिरेव सर्वत्र स्थिरः[11] । अन्यद्विचार्यम्[12] । अत्राग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरेकोनत्वान्निचृद्गायत्री[13] वेदितव्या । एवमुत्तरत्राप्युष्णिगादावेकोनत्वे[14] निचृत्त्वम् एकाधिक्ये[15] भुरिक्त्वं द्व्यूनत्वे विराट्त्वं द्व्याधिक्ये[16] स्वराट्त्वं च ।

---

१. इह बालखिल्यसूक्तरहिता सप्तदशाधिकसहस्रसूक्तसंख्या निर्दिष्टा । उत्तरत्राष्टममण्डले सर्वानुक्रमण्यामेकादशबालखिल्यसूक्तानामपि ऋषिदेवताछन्दसामनुक्रमणं तद्वृत्तौ व्याख्यानं चोपलभ्यते ।

२. सूत्रमुखेषु दीयमाना कोष्ठान्तर्गता संख्या सूक्तसंख्यां प्रत्याययति ।

३. अष्टा० ४।१।९५॥

४. अष्टा० ४।१।११४॥

५. का० सर्वा० परिभाषा १२।१४॥ 'प्राग्घिरण्याद्' इति पु० १, पु० २, गो० ।

६. का० सर्वा० परिभाषा १२।१२॥

७. का० सर्वा० १।५॥

८. का० सर्वा० परिभाषा ४।१॥

९. का० सर्वा० परिभाषा ३।११॥

१०. 'ज्ञातव्यम्' इति गो० ।

११. 'सूचितः' इति गो० ।

१२. 'अन्यद्विचार्यम्' इति नास्ति गो० ।

१३. ऋ० १।१।२॥ द्र०—का० सर्वा० परिभाषा ३।४ वेदार्थदीपिका ।

१४. '०रत्रापि आंतादेकोन' इति पु० १, पु० २ । '०ष्णिहादौ न्यूनत्वे' इति गो० ।

१५. 'एकाधिके' इति गो० ।

१६. 'द्व्यधिके' इति गो० ।

ततश्छन्दःसु स्वयमेव[१] वेदितव्यमित्याचार्यवद् वयमपि नाभिदध्मः ॥१॥

[२] वायो वायव्यैन्द्रवायवमैत्रावरुणास्तृचाः ॥२॥

आ याहि[२]। नवेत्येव। ऋषिः स एव। छन्दश्च तदेव। वायव्यम्। वाय्वृतुपित्रुषसो यत्[३]। ओर्गुणः[४]। वान्तो यि प्रत्यये[५] इति वान्तादेशः। इन्द्रवायुमित्रावरुणाभ्यामण्यादिवृद्धिः[६]। देवता द्वन्द्वे चेत्यानङ्[७]। उभयत्र वायोः प्रतिषेधः[८]। दीर्घाच्च वरुणस्य[९]। ऐन्द्रवायवः। मैत्रावरुणः। ऋचि त्रेरुत्तरपदादिलोप[१०] इति सम्प्रसारणम्। ऋक्पूरित्यप्रत्ययः[११] तृचः। देवतानिर्देश आग्नेयत्वापवादः। एवमुत्तरत्रापि ॥२॥

[३] अश्विना द्वादशाश्विनैन्द्रवैश्वदेवसारस्वतास्तृचाः ॥३॥

यज्वरीरिषः[१२]। तृचा इत्येव। मधुच्छन्दाः। गायत्रम्। अश्वद्वन्द्वाज्जातत्वादश्वावश्विनौ[१३]। अत इनिः[१४]। देवतानाम्नीनण्यनपत्य[१५] इति प्रकृतिभाव आश्विनः। सरस्वत्या अण्[१६] सारस्वतः ॥३॥

सप्तैताः प्रउगदेवताः ॥४॥

एता वाय्वाद्याः सरस्वत्यन्ता वायवायाह्यश्विनेति सूक्तद्वयवर्तितृचसप्तकस्तुत्याः प्रउगस्य देवताः[१७]। प्रउगं नाम होतुः प्रातःसवनिकं द्वितीयं शस्त्रम्। सप्तेति पूर्वसूक्तार्थम्[१८]। एता इत्येतावत्संख्याः संनिहिता वाय्वादय एव स्युः[१९]। वायो सैका गायत्रमुक्ता देवताः[२०] प्रउगेणेत्यत्रैतत्क्रमोक्तदेवतासप्तकज्ञानार्थमिदम् ॥४॥

[४] सुरूपकृत्नुं दशैन्द्रम् ॥५॥

---

१. 'तत्त छन्दःसुखतः एव' इति पु० १, । 'तत्त छन्दःसुखत्रातं इति' इति पु० २ । 'तत्र छन्दःसु०' इति गो० ।
२. 'वायवायाहि' इति गो० । नास्ति मैं० ।
३. अष्टा० ४।२।३१॥
४. अष्टा० ६।४।१४६॥
५. अष्टा० ६।१।७९॥
६. अष्टा० ४।२।२४ इत्यणि, अष्टा० ७।३।२१ इति वृद्धिः ।
७. अष्टा० ६।३।२६॥
८. महा० वा० ६।३।२६॥
९. अष्टा० ७।३।२३ इत्युत्तरपदवृद्धिप्रतिषेधः ।
१०. महा० वा० ६।१।३७॥
११. अष्टा० ५।४।७४॥ '०त्यकारः' इति पु० १, पु० २ ।
१२. नास्ति गो० मैं० ।
१३. 'अस्तद्वद्वाज्जात्यादस्थावश्विनौ' इति पु० १ । 'अत्र द्वन्द्वाज्ञातत्वाद०' इति पु० २ । 'अत्रद्वन्द्वजातत्वाद०' इति ग.० ।
१४. अष्टा ५।२।११५॥
१५. अष्टा० ६।४।१६४॥
१६. अष्टा० ४।२।२४॥
१७. 'प्रउगस्य देवताः' इति नास्ति पु० १, पु० २ । 'प्रउग देवताः' इति गो० ।
१८. '०सूक्तस्यार्थं' इति पु० १, पु० २ । '०सूक्तमर्थार्थं' इति गो० । 'सप्तेति...... सूक्तार्थम्' इति नास्ति मैं० ।
१९. इदं वाक्यं भ्रष्टं कोशेषु ।
२० का० सर्वा० १६।५॥

ऊतये[1] । मधुच्छन्दाः । गायत्रम् । अवध्यर्थमैन्द्रपदमित्युक्तम्[2] ।।५।।

[५] आ तु ।।६।।

दशेत्येव । आ त्वेता नि षीदत । मधुच्छन्दाः । गायत्रम् । ऐन्द्रं च[3] ।।६।।

[६] युञ्जन्त्यादहेत्येताः षण्मारुत्यो वीळुचिदिन्द्रेणेत्यैन्द्र्यौ च ।।७।।

दशेत्येव । ब्रध्नमरुषम्[4] । आदह स्वधामन्वित्याद्याः षड् ऋचो मरुद्देवत्याः । आसु च वीळुचिदारुजत्नुभिरिन्द्रेण सं हीत्येते ऐन्द्र्यौ चकारान्मारुत्यौ च । षट्सु द्वितीयाचतुर्थ्यौ हि ते । शिष्टा ऐन्द्र्यः । मधुच्छन्दाः[4] । गायत्रम्[5] ।।७।।

[७] इन्द्रमित् ।।८।।

दशेत्येव । गाथिनः इन्द्रः । मधुच्छन्दाः । गायत्रम्[5] ।।८।।

[८] एन्द्र सनसिम् ।।९।।

दशेत्येव । रयिम् । इन्द्रः । मधुच्छन्दाः । गायत्रम्[5] ।।९।।

[९] इन्द्रेहि ।।१०।।

दशेत्येव । मत्स्यन्धसः । अन्यत् सर्वं परिभाषयैव सिद्धम्[5] ।।१०।।

[१०] गायन्ति द्वादशानुष्टुभं तु ।।११।।

त्वा गायत्रिणः । द्वौ च दश च द्व्यष्टन[6] इत्यात्वम्[7] । त्विति शब्दो द्विसूक्तभागीति[8] परिभाषासिद्धम् । तेनेदं चोत्तरं च द्वे सूक्ते आनुष्टुभे अनुष्टुप्छन्दस्के । गायत्रत्वापवादः । चतुरष्टकानुष्टुप्[9] । ऐन्द्रम् । स एवं ऋषिः ।।११।।

[११] इन्द्रमष्टौ जेता माधुच्छन्दसः ।।१२।।

विश्वा अवीवृधन् । अष्टाभ्य औश्[10] जसः । मधुच्छन्दःसुतो जेता नामर्षिः[11] । मधुच्छन्दसोऽण्[12] । अनुष्टुप् । स एव देवता ।।१२।।

---

१. नास्ति मै० । २. 'अव⋯क्तम्' नास्ति पु० १, पु० २ ।
३. अस्य सूत्रस्य व्याख्या मै० नास्ति, पुणेकोशयोश्च नैकरूपेति गो० कोशोऽनुसृतोऽत्र ।
४. नास्ति मै० । ५ त्रयाणां (८-१०) सूत्राणां व्याख्या नास्ति मै० ।
६. अष्टा० ६।३।४७।। ७. 'त्वा⋯⋯इत्यात्वम्' इति नास्ति मै० ।
८. 'द्विरुक्तभावीति' इति मै० । नास्ति पु० १, पु० २ ।
९. 'चतुर⋯ऋषिः' इति नास्ति मै० । १०. अष्टा० ७।१।२१।।
११. 'मधु⋯नामर्षिः' इत्येतावन्मात्रं मै० । १२. अष्टा० ४।१।११४।।

[१२] अग्निं द्वादश मेधातिथिः काण्व आग्नेयमग्निनेति पादो द्व्यग्निदैवतो निर्मथ्याहवनीयौ[१] ॥१३॥

दूतं वृणीमहे[२]। मेधातिथिर्नामर्षिः काण्व गोत्रः। अत इञोऽ[३]पवाद ऋष्यण्[४]। आग्नेयम्। अग्नेर्ढक्[५]। अग्निदेवत्यं सूक्तम्। अग्निनाग्निः समिध्यत[६] इति पादो द्व्यग्निदैवतः। द्वावग्नी देवते[७] यस्य सः। कौ द्वौ ? निर्मथ्य आहवनीयश्च। निर्मथनेन प्राप्तव्योऽरणीभ्यां[८] सोऽग्निरित्युच्यते। एत्य[९] हूयते यस्मिन् स[१०] आहवनीयः। हु दानादनयोः[११]। अधिकरणेऽनीयर्[१२]। सोऽग्निरित्युक्तः। यथासंख्येन गायत्रम्[१३] ॥१३॥

[१३] सुसमिद्ध इतीध्मः समिद्धो वाग्निस्तनूनपान्नराशंस इळो बर्हिर्देवीर्द्वार उषासानक्ता दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळाभारत्यस्त्वष्टा वनस्पतिः स्वाहाकृतय इति प्रत्यृचं देवताः ॥१४॥

न आ वह। द्वादशेत्येव। मेधातिथिर्गायत्रमिति[१४]। अत्र सूक्त आद्याया इध्मोऽग्निर्देवता समिद्धोऽग्निर्वा। अथ तनूनपात्। अथ[१५] नराशंसः। अथेडः। जस्। अथ बर्हिः। अथ देवीर्द्वारः। जस्द्वयम्। देवाज्जातिङीष्[१६]। जसि पूर्वसवर्णदीर्घः[१७]। अथोषासानक्तौ। अथ दैव्यौ होतारौ। एतदेव व्याचष्टे—प्रचेतसाविति प्रकृष्टज्ञानबलाविति। तौ चाग्न्यादित्यावग्नीवरुणौ वरुणादित्यौ वा। अथ तिस्रो देव्यः। तास्तिस्रः स्वयमाह—सरस्वतीळाभारत्यः। सरस्वती ब्रह्मपत्नी। इडा विष्णुपत्नी पृथिवीत्यर्थः। भरतस्यादित्यस्य पत्नी भारती। अथ त्वष्टा। अथ वनस्पतिः। अथ स्वाहाकृतयः। का एताः ? विश्वेदेवाः। तथा हि ब्राह्मणम्—तदाहुः का देवताः स्वाहाकृतय इति विश्वेदेवा इति ब्रूयादिति[१८]। इत्येवं प्रत्यृचम् ऋचमृचं प्रति देवताः।

---

१. '०हवनीयाभ्यां' इति पु० १, पु० २। 'निर्मथ्याहवनीयश्च' इति गो०।
२. ऋ० १।१२।१॥ ३. अष्टा० ४।१।९५॥ ४. तु०—अष्टा० ४।१।११४॥
५. अष्टा० ४।२।३३॥ ६. ऋ० १।१२।६॥ ७. यथाकोशम्।
८. '०रणीजः' इति गो०। ९. 'इत्य' इति पु० १, पु० २।
१०. 'यस्मिन्नित्या०' इति पु० १। '०स्मिन्नित्या०' इति पु० १, पु० २।
११. धा० ३।१०॥ १२. तु०—अष्टा० ३।३।११३॥
१३. 'यथा…गायत्रम्' इति नास्ति मै०। १४. 'न…मिति' इति नास्ति मै०।
१५. 'अथ' इति नास्ति कोशेषु। १६. तु०—अष्टा० ४।१।६३॥
१७. तु०—अष्टा० ६।१।१०२॥ 'देवा…दीर्घः' इति नास्ति मै०।
१८. ऐत० ब्रा० २।१३॥

यथासंख्यमन्वयो हि लौकिकः। यथा—

पद्मेन्दुमृगमातङ्गपुंस्कोकिलकलापिनः।
वक्त्रकान्तीक्षणगतिस्वरकेशैस्त्वया जिताः॥

इति लक्ष्मीं प्रति नारदस्तोत्रे दर्शनात् ॥१४॥

एतदाप्रीसूक्तम् ॥१५॥

एतत् सूक्तम् आप्रीसंज्ञकं भवति। आप्रीभिराप्रीणाति[1] होता यजत्याप्रीभिरिति[2] ब्राह्मणसूत्रविनियोगस्यान्वयार्थमिदम् ॥१५॥

एतेनान्यान्युक्तदैवतानि ॥१६॥

अस्मिञ्छास्त्रे समिद्ध आप्रिय इत्याद्याप्रमित्युक्तान्यन्यान्याप्रीसूक्तान्येतेन[3] सूक्तेन प्रतिपादितदेवतानि भवन्ति। एतत्क्रमकैतद्देवतानीत्यर्थः[4] ॥१६॥

एकादशकानि तु नाराशंसान्याप्रशब्दोक्तान्यतनूनपान्ति ॥१७॥

अस्मिञ्छास्त्रेऽस्माभिराप्रमित्युक्तानि सूक्तानि[5] नराशंसयुक्तानि तनूनपाद्वर्जितान्येकादशर्चानि भवन्ति। यथा–समिद्ध एकादशाप्रम्[6] इत्यादावाप्रशब्दोक्तान्यतनूनपान्तीति सिद्धेरन्यद्विस्पष्टम्। तत्र तत्र ह्युक्तेरेकादशत्वं सिद्धं परिशेषाच्च[7] नाराशंसतेति ॥१७॥

[१४] एभिर्वैश्वदेवम् ॥१८॥

द्वादशेत्येव। अग्ने दुवो गिरः। मेधातिथिः काण्वः। विश्वे देवाः। गायत्रम्[8] ॥१८॥

[१५] इन्द्र सोममृतव्यम् ॥१९॥

द्वादशेत्येव। पिब ऋतुना[9]। ऋतव्यम्। वाय्वृतुपित्रुषसो यत्[10]। ऋतुदेवत्यम्। ऋतवो वसन्ताद्याः। मेधातिथिः। गायत्रम्[11] ॥१९॥

---

१. ऐत० ब्रा० २।४॥ २. आश्व० श्रौ० ३।२।५॥

३. 'इत्याद्या इत्युक्तान्य०' इति पु० १, पु० २, गो०।

४. '०क्रमकैतदेव०' इति पु०१। '०क्रमके देव०' इति पु०२। '०क्रमकैस्तद्देवता इत्यर्थः' इति गो०।

५. 'सूक्तानि' इति नास्ति पु० १, पु० २, गो०।

६. का० सर्वा० १३।५॥ ७. 'परिशेष्याच्च' इति पु० १, पु० २।

८. 'द्वादशे···गायत्रम्' इति नास्ति मै०। ९. 'द्वादशे··· ऋतुना' इति नास्ति मै०।

१०. अष्टा० ४।२।३१॥ ११. 'मेधा···गायत्रम्' इति नास्ति मै०।

तत्रैन्द्री मारुती त्वाष्ट्र्याग्नेय्यैन्द्री मैत्रावरुणी चतस्रो द्रविणोदस आश्विन्याग्नेयीत्यृतुदेवताः सर्वत्र ॥२०॥

तत्रर्तुदेवत्ये सूक्त आद्येन्द्रदेवत्या । अथ मारुती । अथ त्वाष्ट्री । अथाग्नेयी । अथैन्द्री । अथ मैत्रावरुणी । दीर्घाच्चि वरुणस्येत्युत्तरपदवृद्धिनिषेधः[1] । अथ चतस्रो द्रविणोदसे । एतन्नामक देवताभिधायिन्यः । द्रविणोदस इति तादर्थ्ये ङे.[2] । अथाश्विनी । अथाग्नेयी । इत्यृतुदेवताः सर्वत्र—ऐन्द्रीत्यारभ्याग्नेयीपर्यन्ता द्वादश देवता एतत्क्रमका ऋतुदेवत्ययुक्तदेवता इति वेदितव्याः । सर्वत्र चैवं भवन्ति । तत्र तुभ्यं षड् ऋतव्यं तु जागतं तु[3] मन्दस्वेत्यत्रोपतिष्ठन्ते[4] । सूत्रे च—ऋतुयाजैश्चरन्तीति[5] ॥२०॥

[१६] आ त्वा नव ॥२१॥

वहन्तु हरयः । मेधातिथिः । गायत्रम् । ऐन्द्रम्[6] ॥२१॥

[१७] इन्द्रावरुणयोरैन्द्रावरुणं युवाकु पादनिचृतौ ॥२२॥

अहम् । नवेत्येव । मेधातिथिः[7] । युवाकु हि शचीनाम्[8] इति त्रिःसप्तके द्वे ऋचौ । शिष्टा गायत्र्यः । इन्द्रावरुणदेवत्यम् ॥२२॥

[१८] सोमानमिति पञ्च, ब्राह्मणस्पत्याश्चतुर्थ्यामिन्द्रश्च सोमश्च, पञ्चम्यां दक्षिणा चान्याः सादसस्पत्या नाराशंसी वान्त्या ॥२३॥

नवेत्येव । स्वरणमिति[9] । अत्र नवर्चे सूक्ते आदितः पञ्चर्चो ब्रह्मणस्पतिदेवत्याः । पत्यन्ताण्ण्यः[10] । आदिवृद्धिः[11] । टाप् जस् सवर्णः[12] । चतुर्थ्यामृचीन्द्रश्च सोमश्च चकाराद् ब्रह्मणस्पतिश्च देवतात्वेन स्थिताः । पञ्चम्यामृचि दक्षिणा चकाराद् ब्रह्मणस्पतिश्च । अन्याः शिष्टाश्चतस्रः सादसस्पत्याः । सदसस्पतिदेवत्याः । नाराशंसी वान्त्या । अन्त्याया नवम्याः सदसस्पतिर्नराशंसो वा देवता विकल्प्यते ।

---

१. अष्टा० ७।३।२३॥ २. 'तादर्थ्ये' ङ' इति पु० १ । 'तादर्थे ङे' इति पु० २ ।
३. का० सर्वा० १५।१३॥ ४. का० सर्वा० १६।१॥
५. आश्व० श्रौ० ५।८।१॥ शा०श्रौ० ७।८।१॥ ऐत० ब्रा० २।२९॥ काशिका ७।३।६२॥
६. 'वहन्तु…ऐन्द्रम्' इति नास्ति मै० । ७. 'अहम्…तिथिः' इति नास्ति मै० ।
८. ऋ० १।१७।४,५॥ ९. 'नवे…मिति' इति नास्ति मै० ।
१०. तु०—अष्टा० ४।१।८५॥ ११. तु०—अष्टा० ७।२।११७॥
१२. 'पत्य…सवर्णः' इति नास्ति मै० । 'टाप्…सवर्णः' इति विकृतः पुणे कोशयोः ।

मेधातिथिः । गायत्रम्[1] ।।२३।।

[१९] प्रति त्यामग्निमारुतम् ।।२४'।

नवेत्येव । चारुमध्वरम्[2] । अग्निश्च मरुतश्च देवता अस्येति । देवता [द्वन्द्वे चेत्युभयपदवृद्धिः[3]] । इद् वृद्धौ[4] । गायत्री । मेधातिथिः काण्वः[5] ।।२४।।

।। इति प्रथमोऽध्यायः ।।१।।

---

[२]

[२०] अयमष्टावार्भवम् ।।१।।

देवाय जन्मने । आर्भवम् ऋभुदेवत्यम् । गायत्रम् । मेधातिथिः काण्वः[6] ।।१।।

[२१] इह षडैन्द्राग्नम् ।।२।।

इन्द्राग्नी उप ह्वये । मेधातिथिः । गायत्रम् । इन्द्राग्नी देवते[7] ।।२।।

[२२] प्रातर्युजा सैका चतस्र आश्विन्यस्तथा सावित्र्य आग्नेय्यो द्वे देवीनामेकैन्द्राणीवरुणान्यग्नायीनां द्यावापृथिव्ये पार्थिवी षड् वैष्णव्योऽतो देवा दवी वा ।।३।।

वि बोधय[8] । सैका । एकया सहिता विंशतिः । अनिरुक्ता संख्या विंशतिरित्युक्तम्[9] । मेधातिथिर्गायत्रम्[8] आदितश्चतस्रोऽश्विदेवत्याः । तथा चतस्र इत्यर्थः । सावित्र्यः—सवितुरणन्तान् ङीप् जस् यण्[10] । अथ द्वे अग्निदेवत्ये । अथैका देवीनां संबन्धिनी[11] स्तुतित्वेन । देवाज्जातौ ङीष्, आमि नुट्[12] । अथैकेन्द्राणीवरुणान्यग्नायी-

---

१. 'मेधा···यत्रम्' इति नास्ति मै० ।

२. 'नवे···ध्वरम्' इति नास्ति मै० ।

३. तु०—अष्टा० ७।३।२१।।

४. अष्टा० ६।४।२८।।

५. 'देवता···काण्व' इति नास्ति मै० ।

६. 'ऋभुदेवत्यम्' इत्येव मै० ।

७. 'इन्द्रा···देवते' इति नास्ति मै० ।

८. नास्ति मै० ।

९. का० सर्वा० परिभाषा १२।४।।

१०. तु०—अष्टा०४।२।२४।। ४।१।१५।। ४।१।२।। ६।१।७७।। 'चतस्रः सावित्र्यः । अथ' इति मै० ।

११. 'अ···ग्निदेवत्यौ अथ द्वे देवीनां संबन्धिन्यौ । स्तुतित्वेन' इति पु० १ । अग्निदेवत्यौ द्वे देवीनां देवसंबन्धिन्यौ स्वस्तिनत्वेन' इति पु० २ । 'अथ अग्निदेवत्ये । अथ द्वे देवीनां देवसंबन्धिनी स्तुतित्वेन' इति गो० ।

१२. नास्ति मै० । तु०—अष्टा० ४।१।६३।। ७।१।५४।।

नाम् । इहेन्द्राणीम्[१] इत्येषा तिस्रो देवताः स्तौति । इन्द्राणी वरुणानी—इन्द्रवरुणेत्यादिना[२] स्त्रियां पुंयोगे ङीषानुकौ । अग्नायीति वृषाकप्यग्नीति[३] ङीप्, ऐत्वम् । अथ मही द्यौरिति[४] द्वे द्यावापृथिवीदेवत्ये । द्यावापृथिवीशुनासीरेति[५] यत्, टाप्, औङः शी, आद् गुणः । अथ पृथिवीदेवत्या पार्थिवी—पृथिव्या अणो ङीप्[६] । अथ षड् ऋचो विष्णुदेवत्या वैष्णव्यः । विष्णोर्देवताणि, ओर्गुणः, ङीप्[७], जसि यण् । अतो देवा अवन्तु न[८] इत्यृग्दैवी देवदेवत्या वैष्णवी वा ।

अतो देवा इति दैवी सूक्तशेषं तु वैष्णवम् ।।[९]

इति देवतानुक्रमण्याम् । आपद्यातो[१०] देवा अवन्तु न इति जपेदपि वान्यां वैष्णवीम्[११] इति सूत्राच्च विकल्पः । तत्र ह्यन्यामित्यनेन पूर्वस्या अपि वैष्णवीत्वं साध्यते ।।३।।

[२३] तीव्राश्चतुर्विंशतिर्वायव्यैकैन्द्रवायव्यौ मैत्रावरुणमरुत्वतीयवैश्वदेवपौष्णास्तृचाः शिष्टा आप्योऽन्त्याध्यर्धाग्नेय्यप्स्वन्तः पुर उष्णिक् परानुष्टुप् तिस्रश्चान्त्या एकविंशी प्रतिष्ठा ।।४।।

सोमास आ गहि[१२] । पूर्वत्र सैकेतिवच्चतुरधिकेति वाच्ये चतुर्विंशतिरित्युक्तिरविशेषाल्लघुत्वे[१३] विस्पष्टत्वाच्चास्य लाघवार्थं हि परिभाषणम् । तर्हि सचतुष्केति वाच्यमिति चेद् वैचित्र्यमेव प्रयोजनम् । आद्या वायुदेवत्या । एकेति द्वन्द्वभ्रमनिवृत्त्यर्थम् । वायव्यैन्द्रवायव्याविति द्वन्द्वेऽनादेशात्[१४] तृतीयैन्द्री हि स्यात् । अथ द्वे ऐन्द्रवायव्याविन्द्रवायुदेवत्ये । अथ मित्रावरुणदेवत्य एकस्तृचः । अथ मरुत्वद्गुणेन्द्रदेवत्य इति । कुत एतद् मरुत्वतीयस्तृच इत्युक्ते मरुत्वद्गुणेन्द्रदेवत्य इति ? मरुत्वांस्त्विन्द्रो देवतेति[१५] वक्ष्यमाणत्वात् । मरुद्भिस्तद्वान्[१६] इति गम्यते । मरुत्वतीय इति मृङ् प्राण-

---

१. ऋ० १।२२।१२ । २. अष्टा० ४।१।४९।। ३. अष्टा० ४।१।३७।।
४. ऋ० १।२२।१३।। ५. अष्टा० ४।२।३२।। ४।१।४।। ७।१।१८।। ६।१।८७।।
६. 'पृथिव्या ''ङीप्' इति नास्ति मै० । तु०—अष्टा० ४।२।२४।। ४।१।१५।।
७. तु०—अष्टा० ४।२।२४।। ६।४।१४६।। ४।१।१५।। ६।१।७७।।
८. ऋ० १।२२।१६।। ९. तु० — बृ० दे० ३।९३ (पाठभेदः)।
१०. 'अतो देवा' इति पु० १, पु० २। 'आपद्यतो देवा' इति मै० ।
११. आश्व० श्रौ० १।५।३८,३९।। १२. नास्ति मै० ।
१३. '०रित्युक्तर०' इति मै० । १४. द्र०—का० सर्वा० परिभाषा १२।५।।
१५. का० सर्वा० ११।८।। १६. तु० — निरु० ४।८।।

त्यागे[1]। मृग्रोरुतिरिति[2] मरुत्[3]। झय[4] इति मतुपो वत्वम्। तसौ मत्वर्थे[5] इति भत्वम्। द्यावापृथिवीशुनासीरेत्यादिना[6] छः। अथ वैश्वदेव एकस्तृचः। विश्वेदेवदेवत्य इत्यर्थः। अथ पूषदेवत्य एकस्तृचः। पौष्ण इति देवताणि षपूर्वहन्नित्यल्लोपः[7]। अथ शेषा आप्यः। उपयुक्तपञ्चदादन्या नवाब्देवत्याः[8]। अम्बयो[9] यन्तीत्याद्याः। शेषा इति शिष असर्वोपयोगे[10]। कर्मणि घञ्[11]। आप्य इत्यप्शब्दादादणो ङीपो जसि यण्[12]। अन्त्याध्यर्धाग्नेयी। पयस्वानग्न[13] इत्यर्धर्चयुक्ता सं माग्ने [14]वर्चसेत्येषाग्निदेवत्येत्यर्थः। तत्राप्स्वन्तः[15] पुर उष्णिक् द्वादशक आद्योऽथाष्टकावित्यर्थः[16]। सांहितिकः कम्प ऐकश्रुत्ये नास्ति[17]। पराप्सु मे सोमो अब्रवीद्[18] इत्याद्यापश्च विश्वभेषजीरित्यन्तानुष्टुप्। अनुष्टुप्छन्दोयुक्तेत्यर्थः तिस्रश्चान्त्याः। अनुष्टुवित्यनुवृत्तमनुष्टुभ इति विपरिणम्यते। इदमापः, आपो अद्य, सं माग्ने[19] इत्येता अनुष्टुभ इत्यर्थः[20]। एकविंशी प्रतिष्ठा। आपः पृणीत भेषजम्[21] इत्येषा प्रतिष्ठा। अष्टक आद्यो द्वितीयः सप्तकस्तृतीयः षट्क इत्यर्थः[22]। शिष्टा गायत्र्यः। मेधातिथिः[22] ।।४।।

[२४] कस्य पञ्चोनाजीगर्तिः शुनःशेपः स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातो वारुणं तु त्रैष्टुभमादौ काय्याग्नेय्यौ सावित्रस्तृचो गायत्रोऽस्यान्त्या भागी वा ।।५।।

नूनं कतमस्यामृतानाम्। पञ्चोना पञ्चदश[23]। आजीगर्तिः—अजीगर्त शब्दाद्

---

१. धा० ६।११०।। २. उ० ३।६४।।

३. 'मृत्योरिति मरुत्य इति' इति पु० १। 'मृत्योरिति मरुत्वत्य इति' इति पु० २। 'मृगोरुदिति मरुत्व इति' इति गो०। ४. अष्टा० ८।२।१० ५. अष्टा० १।४।१९।।

६. तु०—अष्टा० ४।२।३२।।

७. 'पौष्ण…लोप.' इति नास्ति मै०। तु०—अष्टा० ४।२।२४।। ६।४।१३५।।

८. 'उक्तपञ्चदशकादन्या अव्देवत्याः' इति मै०।

९. 'अम्बयो…यण्' इति नास्ति मै०। १०. धा० १०।२७४।।

११. तु०—अष्टा० ३।३।१९।। १२. तु०—अष्टा० ४।२।२४।।४।१।१५।।६।१।७७।।

१३. ऋक् २३। १४. ऋक् २४। १५. ऋक् १९।

१६. 'द्वादशक…वित्यर्थः' इति नास्ति मै०।

१७. 'एव नास्ति' इति पु० १,। 'एव स्वास्य नास्ति इति पु० २। 'एकश्रुत्ये नास्ति' इति गो०। १८. ऋक् २०।। १९. ऋक् २२-२४।।

२०. 'इदमापः…इत्यर्थः' 'मेधातिथिः' इति नास्ति मै०। २१. ऋक् २१।

२२. 'अष्टक…इत्यर्थः' इति नास्ति मै०।

२३. नूनं…दश' इति नास्ति मै०।

अत इञो[1]ऽपवाद ऋष्यणि[2] प्राप्ते बाह्वादित्वाद्[3] इञ् । अजीगर्तपुत्रो जन्मना शुनःशेपो नाम । शेपपुच्छलाङ्गूलेषु शुनः संज्ञायां[4] षष्ठ्या अलुक्—शुनःशेपः । कृत्रिमः क्रियया निर्वृत्तः[5] । डुकृञ् करणे[6] । ड्वितः क्त्रिः[7] । क्त्रेर्मम्नित्यम्[8] । वैश्वामित्रः । दत्तपुत्रतया[9] विश्वामित्रपुत्रो देवरातो नाम । देवै रातो दत्तः । रा दाने[10] क्तः[11] । श्रूयते हि—देवा वा इमं मह्यमरासतेति स ह देवरात[12] इति । वारुणं तु । इदं चोत्तरं च द्वे सूक्ते वरुणदेवत्ये । त्रैष्टुभमिदं सूक्तम् । प्राग्घिरण्यस्तूपाद् यथाप्राप्तगायत्रत्वापवादः । अत्र चादौ कायी कदेवत्या । कशब्दात् प्रजापतिवचनाद् देवताणि कस्येद्[13] इतीत्वे वृद्धिः[14] । अण् ङीप्[15] । अणो यस्येति चेति[16] लोपः । ननु[17] ब्राह्मणे—स प्रजापतिमेव प्रथमं देवतानामुपससारेति[18] प्रजापतिदर्शनात् प्राजापत्येयं भवितुमर्हति कस्य नूनमिति न तु कायीति । उच्यते—प्रजानां पतिरित्यर्थः, क एव तत्राप्युक्तः । अथ द्वितीयाग्नेर्वयमित्येषाग्नेयी[19] । अथ सावित्रस्तृचो गायत्रः । अभि त्व देव सवितरिति[20] तृचः सवितृदेवत्यो गायत्रीछन्दस्कश्च । गायत्र इत्यत्र विहितत्रैष्टुभत्वापवादः । अस्य सावित्रस्य तृचस्यान्त्या [21]भगभक्तस्येत्येषा भगदेवत्या सावित्री वा । शिष्टा दश वारुण्यः ।

अत्रेतिहासः श्रुत्युक्तः[22] सम्यगेव प्रवर्ण्यते[23] ।
हरिश्चन्द्रो ह वैधस इत्यादि ब्राह्मणेरितः ।
राजसूये क्रतावेष शौनःशेप इति श्रुतः[24] ॥१॥
शतभार्यो हरिश्चन्द्र ऐक्ष्वाकः पुत्रकाम्यया ।
नारदश्रुतपुत्रार्थो[25] वरुणात् सुतमाप्तवान् ॥२॥

---

१. अष्टा० ४।१।९५॥ २. तु०—अष्टा० ४।१।११४॥
३. अष्टा० ४।१।९६॥ ४. महा० वा० ६।३।२१॥
५. 'क्रियाया निवृत्तः' इति पु० १ । 'क्रियायो निवृत्तः' इति पु० २ ।
६. धा० ८।१०॥ ७. अष्टा० ३।३।८८॥ ८. अष्टा० ४।४।२०॥
९. 'ख़दत्रपुत्रतया' इति पु० १ । 'यत्वत्रपुत्रतया' इति गो० । १०. धा० २।४८॥
११. तु०—अष्टा० ३।३।१७४॥ १२. ऐत० ब्रा० ७।१७॥
१३. तु०—अष्टा० ४।२।२५॥ १४. तु०—अष्टा० ७।२।११७॥
१५. तु०—अष्टा० ४।१।१५॥ १६. अष्टा० ६।४।१४८॥
१७. 'ननु' इति नास्ति पु० १, पु० २ । १८. ऐत० ब्रा० ७।१६॥
१९. 'द्वितीयाग्नेयी' इति मै० । २०. ऋक् ३।५। २१. ऋक् ५ ।
२२. ऐत० ब्रा० ७।१३-१८॥ नीतिमञ्जर्याम् उद्धृतः इति मै० ।
२३. '०वर्त्यते' इति पु० १ । '०वर्त्तते' इति पु० २ । २४. 'श्रुतेः' इति पु०२ ।
२५. 'नारदशत०' इति पु० १ । 'नारदःशत०' इति पु० २ । 'नारदात् श्रुत०' इति गो० । 'नारदोक्ताद्धि पुत्रार्थे' इति नीतिमञ्जरी ।

जाते पुत्रे त्वामनेन यक्ष्येऽहमिति[1] चोक्तवान् ।
वरुणस्तनये जाते निर्दशे[2] जातदन्तके ।।३।।
च्युतदन्ते पुनर्जातदन्ते वर्मभरे[3] तथा ।
मेध्यस्थे[4] तदवस्थोऽसाविति राज्ञा[5] प्रतारितः ।।४।।
निर्बध्य स नृपं प्रोचे पुत्रेणाद्यैव मां यज ।
इत्युक्तो वरुणेनोचे स्वपुत्रं रोहितं नृपः[6] ।।५।।
एनं यक्ष्ये त्वयाद्येति नेति सोऽभ्यद्रवद् वनम् ।
वनस्थो रोहितः श्रुत्वा नृपं जातमहोदरम् ।।६।।
दिदृक्षुः पञ्चवर्षेषु[7] विप्ररूपेन्द्रवारितः ।
षष्ठे[8]ऽजीगर्तनामानं त्रिपुत्रं वाधितं क्षुधा ।।७।।
आसाद्यास्य शुनःशेपं मध्यमं जगृहे सुतम् ।
गवां शतेन पितरं पुरस्थं दृष्टवान्सुतः ।।८।।
मया कार्यमनेन त्वं कुरु तातेति चाब्रवीत् ।
वरुणोऽपि नृपेणोक्तः[9] शुनःशेपपशु[10] क्रतुम्[11] ।।९।।
राजसूयं सोऽनुमेने तेनायष्ट च[12] भूमिपः ।
तदाभिषेचनीयेऽह्नि[13] शुनःशेपनियोजने ।।१०।।
अन्याभावाद्गोशतार्थी[14] त्वजीगर्तो युयोज तम् ।
पुर्नविशसनं कर्तुं पिता जग्राह गोशतम् ।।११।।
यूपे वद्धः शुनःशेपो जिघांसुं पितरं ततः ।
ऊचे तिष्ठाहमेवान्य[15] उपधावामि देवताः ।।१२।।

---

१. 'यक्ष्यैनमिति' इति पु० १ । 'यक्ष्येनमिति' इति पु० २ ।
२. 'निर्दर्शे' इति पु० १ । 'निर्देशे' इति पु० २ ।
३. 'वर्मभटी' इति पु० १ । 'वर्मंहरे' इति गो० । 'वर्मंचरे' इति नीतिमञ्जरी ।
४. 'मध्यस्थे' इति गो० । ५. 'राजा' इति पु० २ ।
६. 'वरुणेनो स्वपुत्रं देहितं नृपं' इति पु० १ । 'वरुणोनात्र स्वपुत्रं देहि तं नृपं इति पु० २ । ७. 'षट्कवर्षेषु' इति नीतिमञ्जरीति मै० ।
८. 'सप्तमे' इति नीतिमञ्जरीति मै० । ९. '०णोक्तं' इति पु० १, पु० २ ।
१०. 'शुनःशेपं पशु'' इति पु० १ । '०शेपं पशु' इति पु० २ ।
११. श्लो० १०, ११ न स्तः पु० १, पु० २ । श्लो० ९–११ त्यक्ताः नीतिमञ्जर्याम् इति मै० । १२. 'तेनायजत' इति गो० । १३. 'ऋताभि०' इति गो० ।
१४. 'अन्नाभा०' इति गो० ।
१५. 'अरुचे निष्ठ०' इति पु० १ । 'ऋचे निछा०' इति पु० २ । 'हमत्रैव ह्युप०' इति गो० । 'दृष्ट्वासिमहंमेवान्या' इति नीतिमञ्जरी ।

अस्तौत्[1] क्रमादावग्निं च सवितारं भगं च सः[2] ।
वरुणं पुनरत्यग्निं विश्वान् देवानथो खलु ॥१३॥
इन्द्रं च[3] पूर्वव्यापारसंप्राप्तस्तुतिसुप्रियम् ।
हिरण्मयरथस्यापि स्वस्मै[4] दातारमेव च ॥१४॥
अश्विना उषसं चापि[5] तृचाभ्यामन्ततस्तदा ।
अतिप्रीतियुतैर्देवैस्तैर्यूपान्[6] मोचितस्तदा ॥१५॥
ऋत्विग्गणैः[7] प्रार्थितोऽसावञ्जःसवमकारयत् ।
गतरोगं हरिश्चन्द्रं यत्र ग्रावेति[8] सूक्ततः[9] ॥१६॥
अञ्जःसवो राजसूये प्रयोगः पशिवष्टिद्रव्यादिविहीन[10] एकः ।
यतोऽञ्जसाभिष्टुवतेऽत्र साम्ना[11] यच्चाञ्जसा देवतास्तं भजन्ते ॥१७॥
स पित्रा प्रार्थितस्त्यक्त्वा तातं गाथिसुतं गतः[12] ।
पुत्रत्वेन गृहीतश्च विश्वामित्रेण धीमता ॥१८॥
देवरात इति प्रोक्तो[13] देवैर्दत्तो यतः[14] स्वयम् ।
दत्तपुत्रविधेर्योगाद्[15] वैश्वामित्रः स कृत्रिमः ॥१९॥
आर्षानुक्रमणे चोक्तं कस्य नूनं शुनःशेपः ।
आजीगर्त्तिः[16] कृत्रिमस्तु वैश्वामित्रो देवरातः ॥२०॥
इति कृत्रिमपुत्रत्वं देवरातत्वमेव च ।
अजीगर्तसुतत्वं च वैश्वामित्रत्वमेव च ॥२१॥
शुनःशेपमहर्षेस्तु सम्यगत्र प्रवर्णितम्[17] ।
बन्धक्षयकरी पाशमोचनीयं कथेरिता ॥२२॥५॥

[२५] यच्चित् सैका ॥६॥

हि ते विशः । सैका एकविंशतिः । गायत्री । वरुणः[18] । त्वमग्ने प्रथमो अङ्गिरा [19]ऋषिरित्यतः प्राक् शुनःशेपार्षं वेदितव्यम् ॥६॥

---

१. 'क्रमाद्' इति पु० २ । २. 'च वा' इति पु० १, पु० २ ।
३. 'इन्द्रं स्य पूर्व०' इति पु० १ । 'इन्द्रस्य पूर्व इति' पु० २ ।
४. 'तस्मै' इति पु० २ गो० । ५. 'उषसश्चापि' इति गो० ।
६. 'तद्यूपान्' इति पु० १, पु० २, गो० ।
७. '०गणः प्रा०' इति पु० १, पु० २, गो० । ८. ऋ० १।२८ ॥
९. अतोऽग्रे नीतिमञ्जर्यां नोद्धृताः । १०. '०द्रव्यादि०' इति पु०१, पु०२, गो० ।
११. 'स्वते ऋ्साकभिष्टुतोत्र सोमो, इति पु०१ । 'स्वतेकुसीकुभिष्टुतो त्र सो' इति पु०२ ।
'पतोजसात्रिष्टुभवतोत्रसाम्ना' इति गो० । १२. 'ततः' इति पु० १, पु० २ ।
१३. 'ख्यातो' इति गो० । १४. 'ततः' इति पु० २ ।
१५. '०विधियोगात्' इति पु० १, पु० २ । १६. '०गर्त्तिः स' इति पु० १, पु० २, गो० ।
१७. 'प्रवर्त्तितं' इति पु० १, पु० २। १८. 'हि…वरुणः' इति नास्ति मै० । १९. ऋ० १।३१॥

[२६] वासिष्ठं दशाग्नेयं तु ।।७।।

हि मियेध्य । इदं चोत्तरं च द्वे सूक्ते अग्निदेवत्ये । गायत्री[1] ।।७।।

[२७] अश्वं सप्तोना गायत्रेऽन्त्या दैवी त्रिष्टुप् ।।८।।

न त्वा वारवन्तम्[2] । सप्तभिरूना विंशतिः । त्रयोदशेत्यर्थः । गायत्रेऽत्र[3] सूक्तेऽन्त्या त्रयोदशी नमो महद्भ्य[4] इत्येषा[5] दैवी देवदेवत्या छन्दसा त्रिष्टुप् । गायत्र इत्यनुवादः[6] । त्रिष्टुबन्तस्य सूक्तस्य शिष्टा जगत्य[7] इति जगतीत्वनिवृत्तये[8] । ननु[9] स विश्वान् देवांस्तुष्टाव नमो महद्भ्यो नमो अर्भकेभ्य इत्येतयर्चेति ब्राह्मणदर्शनाद्[10] वैश्वदेवीयं स्यान्न तु दैवी । उच्यते[11]— तत्र[12] विश्व इति सर्वशब्दपर्यायः[13], न तु विश्वे देवगणोऽभिप्रेतः ।।८।।

[२८] यत्र ग्रावा नव षडनुष्टुबादि—यच्चिद्धयौलूखल्यौ परे मौसल्यौ च प्रजापतेर्हरिश्चन्द्रस्यान्त्या चर्मप्रशंसा वा ।।९।।

पृथुबुध्नः ।[14] षडनुष्टुभ आदौ यस्य तत् सूक्तं षडनुष्टुबादि । अत्र[15]—

मध्यस्थडकारस्य ळकारं बह्वृचा विदुः ।
मध्यमस्थढकारस्य[16] ळ्हकारं[17] वै यथा खलु ।
ईळे[18] मृळ[19] पुरोळशम् इळा[20] साळ्हा निदर्शनम्[21] ।।

अन्यथा षळनुष्टुबादीति[22] स्यात् । अस्य सूक्तस्यानादेश[23] इन्द्रो देवता । यच्चिद्धि त्वं

---

१. 'हि···गायत्री' इति नास्ति मै० । '···गायत्री शुनःशेपः' इति गो० ।
२. 'न···वन्तम्' इति नास्ति मै० ।
३. 'अत्र' इति नास्ति मै० ।
४. ऋ० १।२७।१३।।
५. 'नमो···इत्येषा' इति नास्ति मै० ।
६. 'इत्यपवाद' इति पु० २ ।
७. का० सर्वा० परिभाषा १२।१३।।
८. 'इत्यनुवर्त्तते' इति कोशेषु पाठः ।
९. 'ननु' इति नास्ति कोशेषु ।
१०. ऐ० ब्रा० ७।१६।८।।
११. 'उच्यते' इति नास्ति कोशेषु ।
१२. 'अत्र' इति गो० ।
१३. 'सर्वशब्द इति पर्यायः' इति मै० । 'इति' रहितो गो० ।
१४. नास्ति गो०, मै० ।
१५. 'अन्तर्मध्य०' इति कोशेषु ।
१६. 'अन्तमध्यढकारस्य' इति पु० १, पु० २ ।
१७. 'लकार'' 'ळकार'' इति पु० १, पु० २ ।
१८. 'इमे' 'इम' इति पु० १, पु० २ ।
१९. 'मृदु' इति पु० १, पु० २ ।
२०. 'ल्हा' इति पु० १, पु० २ ।
२१. तु०—ऋ० प्रा० १।५२।।
२२. 'अन्यथा तु षडनुष्टुबादि' इति मै० । '०षडनु०' इति गो० ।
२३. 'षडृचस्यानादेशे त्विन्द्रो०' इति पु०१, पु०२ ।

गृहेगृह इति द्वे[1] उलूखलदेवत्ये। उलूखलादणो ङीप्यौ यण्। परे—आयजी वाजसातमेत्येते[2] मुसलदेवत्ये। चकारादुलूखल्यौ[3] च। अन्त्या—उच्छिष्टं चम्वोर्भरेत्येषा[4] प्रजापतेः प्रजानां पत्युर्हरिश्चन्द्रस्य क्षत्रियस्य स्तुतिः। अधिषवणचर्मप्रशंसा वा। इयं सोमस्य चर्मणो वा स्तुतिः। हरिश्चन्द्रः प्रजापतिश्चर्मसोमौ[5] चेति बृहद्देवताविदः। तत्र हि[6]—

चर्माधिषवणीयं वा सोमं वान्त्या प्रशंसति[7]।

इत्युक्तम्। अथैनं द्रोणकलशमित्यादिना[8] ब्राह्मणेन[9] सोमस्तुतित्वमेवास्या लक्ष्यते। इयं तु देवतानुक्रमणीस्थां देवतामनुवदति[10]। तत्र ह्येवम्—

प्रजापतिं हरिश्चन्द्रं चर्म वान्त्या प्रशंसति। इति[11]।

हरिश्चन्द्रस्य[12] प्रजापतेरिति[13] विशेषणम्। प्रस्कण्वहरिश्चन्द्रावृषी[14] इति निपातितः सुट् प्रस्कण्वो[15] ब्रह्मर्षिर्मा भूदिति। [16]आद्याश्चतस्र इन्द्रदेवत्याः। अन्त्यास्तिस्रो गायत्र्यः॥९॥

[२९] यच्चिद्धि सप्त पाङ्क्तम् ॥१०॥

हि सत्य सोमपाः। यस्या अष्टाक्षराः पादाः पञ्च सा पङ्क्तिरिति[17]। पङ्क्तेरिदं पाङ्क्तम्। तस्येदमित्यण्[18]। आदिवृद्धिः। इन्द्रो देवता[19] ॥१०॥

[३०] आ वो द्व्यधिकास्माकं पादनिचृच्छश्वत्त्रिष्टुप् परौ तृचावाश्विनोषस्यौ ॥११॥

---

१. ऋचौ ५,६॥ २. 'आयजी…मेत्येते' इति नास्ति मै०। ऋचौ ७,८।

३. '०खले' इति गो०। 'च' इति नास्ति पु० १, पु० २।

४. 'उच्छि…त्येषा' इति नास्ति मै०। ऋक् ९॥

५. 'हरिश्चन्द्रस्य प्रजापतेरिति' इति पु० १। 'हरिश्चन्द्रस्य प्रजापतिरिति' इति पु० २। 'हरिश्चन्द्रः प्रजापतिरिति' इति गो०। ६. 'तत्राह' इति पु० १, पु० २, गो०।

७. बृ० दे० ३।१०१॥ ८. '०शमभ्यवनिनायेत्यादिना' इति पु० २।

९. ऐत० ब्रा० ७।१७।१॥

१०. '०क्रमणीमेवानुसरति' इति पु० १, पु० २। '०क्रमणीमेव देवता०' इति गो०।

११. 'इति' इति नास्ति मै०। १२. नास्ति पु० १, पु० २।

१३. 'प्रजापतिरिति' इति पु० २, मै०। १४. अष्टा० ६।१।१५३॥

१५. 'कण्व' इति पु० १, पु० २। नास्ति गो०।

१६. 'आद्या…गायत्र्यः' इति नास्ति कोशेषु। १७. हि…रिति नास्ति मै०।

१८. अष्टा० ४।३।१२०॥ '०मित्यण्यादि०' इति पु० १, पु० २।

१९. 'इन्द्रो…इति नास्ति मै०। अतोऽग्रे 'शुनःशेपः' इति गो०।

इन्द्रं क्रिविं यथा। द्व्यधिका विंशतिः गायत्रम्[1]। अस्माकं शिप्रिणीना-मित्येषा[2] पादनिचृत् त्रिसप्ताक्षरपादयुक्ता[3]। शश्वदिन्द्र[4] इति त्रिष्टुप्। प्राग्घिरण्य-स्तूपगायत्रत्वापवादस्त्रिष्टुबिति। इन्द्रो देवता[5]। तत[6] आश्विनस्तृचः। ततः पर-स्तृच उषस्य उषोदेवत्यः। कस्त उषः कधप्रिय इति[7]। गायत्राधिकारस्यावधिः पूर्णः ॥११॥

[३१] त्वमग्ने द्व्यूना हिरण्यस्तूप आग्नेयं त्रिष्टुबन्त्याष्टमी-षोळश्यौ च ॥१२॥

प्रथमो अङ्गिराः।[8] द्व्यूना विंशतिः। अष्टादशर्चम्। हिरण्यस्तूप इत्यृषिनाम। आङ्गिरसोऽयं गोत्रतोऽनुक्तगोत्रत्वात्। सूक्तमग्निदेवत्यम्। अन्त्या—एतेनाग्न इत्येषा[9]—अष्टादशी त्रिष्टुप्। अष्टमीषोळश्यौ च त्रिष्टुभौ। शिष्टाः पञ्चदश जगत्यः। त्रिष्टुबन्तस्य सूक्तस्य शिष्टा जगत्य[10] इति परिभाषातः सिद्धम्[11] ॥१२॥

[३२] इन्द्रस्य पञ्चोना ॥१३॥

नु वीर्याणि प्रवोचम्। पञ्चोना[12] पञ्चदशर्चं त्रिष्टुप्। अनादेशे त्विन्द्रो देवता त्रिष्टुप् छन्द[13] इति च। इन्द्र आङ्गिरसो हिरण्यस्तूपः ॥१३॥

॥ इति द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

---

[३]

[३३] एत ॥१॥

पञ्चोनेत्येव। एतायामोप गव्यन्तः। पञ्चदशर्चं हिरण्यस्तूपस्त्रिष्टु-बिन्द्रः[14] ॥१॥

---

१. 'इन्द्रं...गायत्रम्' इति नास्ति मै०।
२. ऋक् ११। ३. 'त्रि' इति नास्ति कोशेषु। ४. ऋक् १६।
५. नास्ति पु० १, पु० २ ६. 'पर' इति पु० १, पु० २।
७. 'कस्त...इति' इति नास्ति मै०। इतोऽग्रे 'शुनःशेपः' इति गो०।
८. नास्ति मै०। ९. एते......त्येषा' इति नास्ति मै०।
१०. का० सर्वा० परिभाषा १२।१३॥
११. 'त्रिष्टुब...सिद्धम्' इति नास्ति पु० १, पु० २।
१२. 'नु...पञ्चोना' नास्ति मै०। १३. का० सर्वा० परिभाषा १२।५,६॥
१४. 'पञ्चो...बिन्द्रः' इति नास्ति मै०।

[३४] त्रिश्विद् द्वादशाश्विनं नवम्यन्त्ये त्रिष्टुभौ ॥२॥

नो अद्या भवतम् ।[१] अश्विदेवत्यम् । हिरण्यस्तूपः ।[२] नवमी त्रिष्टुप् । अन्त्या च त्रिष्टुप् । शिष्टा दश[३] जगत्यः ॥२॥

[३५] ह्वयाम्येकादश सावित्रं नवमी जगत्याद्या च सा[४] लिङ्गोक्तदैवतपादा[५] ॥३॥

अग्निं प्रथमम् ।[६] सवितृदेवत्यं सूक्तम् । नवमी जगती । आद्या च जगती । सा तु[७] लिङ्गोक्तदैवतपादा[५] । लिङ्गेनाभिधानसामर्थ्येनोक्ताः प्रतिपादिता अग्निमित्र-वरुणरात्रिसवित्राख्या देवताः पादेषु यस्याः सा । त्रिष्टुप् । स एवर्षिः[८] ॥३॥

[३६] प्र वो विंशतिः कण्वो घौर आग्नेयं प्रागाथमूर्ध्वे ऊ षु यौप्यौ ॥४॥

यह्वं पुरूणाम् ।[९] कण्वो नाम घौरः । घोरपुत्रः[१०] । ऋष्यण्[११] । अग्निदेवत्यं सूक्तम् । प्रागाथम्—प्रगाथा बार्हता इति (परि० १२।७) ।

युजः सतोबृहत्योऽत्र बृहत्यस्त्वयुजो मताः[१२] ।

ऊर्ध्वं ऊ षु ण ऊतये, ऊर्ध्वो नः पाह्यं हस[१३] इत्येते द्वे[१४] यूपदेवत्ये । यूपादण्[१५] । ङीप् । औङि यण् ॥४॥

[३७] क्रीळं पञ्चोना मारुतं हि गायत्रं तु ॥५॥

वः शर्धो मारुतम् । पञ्चोना पञ्चदश । मारुतं हि । इदमुत्तरे च द्वे इति त्रीणि सूक्तानि मरुद्देवत्यानि । गायत्रं तु । इदं चोत्तरं च । स एव कण्वः[१६] ॥५॥

---

१. 'नो···भवतम्' नास्ति मै० ।
२. 'एवर्षिः' इति पु० १ । 'स एव ऋषिः' इति पु० २ ।
३. 'दश' इति नास्ति गो०, मै० ।
४. 'सा' इति नास्ति गो०, मै० ।
५. 'पादाः' इति कोशेषु ।
६. नास्ति मै० ।
७. 'च' इति गो० । उभयोरभावो मै० ।
८. 'त्रि...र्षिः' इति नास्ति मै० । 'त्रिष्टुप् । हिरण्यस्तूपः' इति गो० ।
९. 'यह्वं···णाम्' नास्ति मै० ।
१०. 'नामर्षिर्घोरपुत्रः' इति मै० ।
११. नास्ति मै० । अष्टा० ४।१।११४।
१२. 'युजः···मता' इति नास्ति मै० ।
१३. ऋचौ १३,१४ ॥
१४. 'द्वे' इति नास्ति पु० १, पु० २।
१५. यूपा···यण्' इति नास्ति मै० । द्र०—अष्टा० ४।२।२४। ४।१।१५। ६।१।७७।
१६. 'वः···कण्व' इति नास्ति मै० ।

[३८] कद्ध ॥६॥

नूनं कथप्रियः । पञ्चदशेत्येव । स एवर्षिः[1] । मारुतं गायत्रमित्युक्तम्[2] ॥६॥

[३९] प्र यद्दश प्रागाथं तु ॥७॥

इत्था परावतः । दशर्च सूक्तम्[3] । तु द्वे इदमुत्तरं च प्रागाथम् । अयुजो बृहत्यो युजः सतोबृहत्यः[4] ॥७॥

[४०] उत्तिष्ठाष्टौ ब्राह्मणस्पत्यम् ॥८॥

ब्रह्मणस्पते । ब्रह्मणस्पतिदेवत्यम्[5] । पत्यन्ताण्यः[6] । स एवर्षिः । प्रागाथम्[7] ॥८॥

[४१] यं रक्षन्ति नव वरुणामित्रार्यम्णां मध्ये तृच आदित्येभ्यो गायत्रं हि ॥९॥

प्रचेतसः[8] । वरुणमित्रार्यम्णां स्तुतित्वेन सम्बन्धीदं[9] सूक्तम् । मध्ये तृचश्चतुर्थ्यादिः—सुगः पन्था अनृक्षर[10] इत्येवमादिः[11]—आदित्येभ्यः । आदित्यार्थेभ्यश्च[12] । आदित्यानां स्तावकः । इदमुत्तरे च त्रीणि सूक्तानि गायत्राणि । स एवर्षिः[13] ॥९॥

[४२] सं पूषन् दश पौष्णम् ॥१०॥

अध्वनस्तिर । पूषदेवत्यम् । गायत्रम् । कण्वः[14] ॥१०॥

[४३] कद्रुद्राय नव रौद्रं तृतीया मैत्रावरुणी चान्त्यस्तृचः सौम्योऽन्त्यानुष्टुप् ॥११॥

प्रचेतसे[15] । रौद्रं रुद्रदेवत्यम् । रुद्रादणि, आदिवृद्धिः, यस्येति लोपः[16] । तृतीया

---

१. 'कण्व' इति गो० । २. 'नूनं…त्युक्तम्' इति नास्ति मै० ।
३. 'दश…क्तम्' इति नास्ति पु० १, पु० २ । ४. 'इत्था…बृहत्यः' इति नास्ति मै० ।
५. 'ब्राह्मणस्पत्यम्' इति पु० १, पु० २ । ६. 'पत्यन्ताद्यक्' इति मै० । स त्वसमीचीनः । तु०—अष्टा० ४।१।८५॥ ७. 'स…प्रागाथम्' इति नास्ति मै० ।
८. नास्ति मै० । ९. 'सम्बन्धि' इति पु० १, पु० २ । १०. ऋक् ४॥
११. 'सुग…मादिः' इति नास्ति मै० । १२. 'तादर्थ्येभ्यः' इति मै० ।
१३. 'इदमुत्तरे…एवर्षि' इति नास्ति मै० । १४. 'अध्व…कण्वः' इति नास्ति मै० ।
१५. नास्ति पु० १, पु० २, मै० ।
१६. 'रुद्रा—लोपः' नास्ति मै० । 'आदिवृद्धिः' नास्ति पु० १, पु० २ । तु०—अष्टा० ४।२।२४॥ ७।२।११७॥ ६।४।१४८॥

मैत्रावरुणी च—यथा नो मित्रो वरुण इत्येषा[1]—मित्रावरुणदेवत्या। चकाराद् रौद्री च। अन्त्यस्तृचः—अस्मे सोमेत्यादिः[2]—सोमदेवत्यः। सोमाट् ट्यण्[3]। अन्त्यानुष्टुप्—यास्ते प्रजा इत्येषा। शिष्टा अष्ट गायत्र्यः। स एवर्षिः[4] ॥११॥

[४४] अग्ने षळूना प्रस्कण्वः काण्व आग्नेयं तु प्रागाथमाद्यो द्वृचोऽश्व्युषसां च ॥१२॥

विवस्वदुषसः। षळूना चतुर्दश[5]। प्रस्कण्वो नाम काण्वः। ऋष्यण्[6]। कण्वपुत्रः। प्रगतः कण्वादिति[7]। प्रस्कण्वहरिश्चन्द्राविति[8] सुण् निपात्यते। इदमुत्तरं च द्वे सूक्ते अग्निदेवत्ये[9]। प्रागाथं तूक्तार्थम्। आद्यो द्वृचः। द्वे ऋचौ। ऋक्पूरित्यकारः[10]। ऋचि त्रेरुत्तरपदादिलोप[11] इति संप्रसारणविधौ त्रेरित्युपलक्षणमुक्त्वा[12] तृचवद् द्वृचशब्दं प्रयुञ्जते। यथा तृचाः प्रतिपदनुचरा द्वृचाः प्रगाथा इति[13] तद्वदत्राप्याद्यो द्वृच इति। स चाश्विनोरुषसश्च चकारादग्नेः स्तावकः ॥१२॥

[४५] त्वमग्ने दशानुष्टुभमधर्चोऽन्त्यो दैवः ॥१३॥

वसूँरिह। आनुष्टुभम्[14] अनुष्टुप्छन्दस्कं सूक्तम्[15]। आग्नेयम्। प्रस्कण्वः। अयं सोमः सुदानव इत्यन्तोऽर्धर्चो देवदेवत्यः[16] ॥१३॥

[४६] एषो पञ्चोनाश्विनं तु गायत्रम् ॥१४॥

उषा अपूर्व्या। पञ्चदश। इदमुत्तरं च द्वे सूक्ते अश्विदेवत्ये। इदं सूक्तं गायत्रम्। प्रस्कण्वः काण्वः[17] ॥१४॥

॥ इति तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

---

१. 'मैत्रा···इत्येषा' इति नास्ति मै०।
२. 'अस्मे मेत्यादिः' इति नास्ति मै०।
३. अष्टा० ४।२।३०॥
४. 'अन्त्या···एवर्षिः इति नास्ति मै०।
५. 'विव···दश' इति नास्ति मै०।
६. 'ऋष्यण्' नास्ति मै०। तु०—अष्टा ४।१।११४॥
७. 'प्रशस्त' इति पु० १, 'प्रशास्ते' इति पु० २, 'प्रस्कण्व' इति गो०।
८. '०चन्द्रत्वे' इति पु० २, '०चन्द्रेति' इति मै०। अष्टा० ६।१।१५३॥
९. 'इदमु तूक्तार्थम्' इति नास्ति मै०। 'तूक्तार्थम्' इति नास्ति गो०।
१०. अष्टा० ५।४।७४॥
११. महा० वा० ६।१।३७॥
१२. 'सूक्ते मत्त्वा' इति पु० २, '०णमुक्तम्' इति गो०।
१३. 'यथा तृचा प्रतिवदानुचरा द्वृचाः प्रगाथ इति' इति पु० १; यथात चारु प्रतिपदनुचरा०' इति पु० २; 'तथा तृचाः०' इति गो०। आश्व० श्रौ० ५।१४।७॥
१४. 'आनुष्टुभम्' इति नास्ति गो०।
१५. 'सूक्तम्' इति नास्ति पु० २।
१६. 'वसू···देवत्यः' इति नास्ति मै०।
१७. 'उषा···काण्वः' इति नास्ति मै०।

[४]

[४७] अयं दश प्रागाथं तु ।।१।

वां मधुमत्तमः । इदमुत्तरं च द्वे प्रागाथे । आश्विनम् । प्रस्कण्वः काण्वः[1] ।।१।।

[४८] सह षोळशोषस्यं तु ।।२।।

वामेन न उषः । इदमुत्तरं च द्वे सूक्ते उषोदेवत्ये षट् च दश च । षष उत्वं दतृदशसूत्तरपदादेः ष्टुत्वं चेति[2] उत्वं ष्टुत्वं च । तस्य इत्यमादिकमेंत्युक्तम्[3] प्रागाथम् । प्रस्कण्वः[4] ।।२।।

[४९] उषश्चतुष्कमानुष्टुभं तु ।।३।।

भद्रेभिरागहि । चतुर्ऋचम्[5] । चतुष्कं संख्याया अतिशदन्तायाः कन्[6] । इदमुत्तरं च द्वे सूक्ते आनुष्टुभे । उषस्यम् । प्रस्कण्वः[7] ।।३।।

[५०] उदु त्यं सप्तोना सौर्यं नवाद्या गायत्र्यो-ऽन्त्यस्तृचो रोगघ्न[8] उपनिषत् ।।४।।

जातवेदसम् । सप्तभिस्तूना विंशतिः[9] । त्रयोदश[10] । सौर्यं सूर्यदेवत्यम् । सूर्यागस्त्ययोश्छे च ङ्यां चेति[11] नियमात् सूर्यतिष्यागस्त्येति[12] यलोपो न भवति । आद्या नव गायत्र्यः । आनुष्टुभत्वापवादः । अन्त्यस्तृच उद्यन्नद्यादी[13] रोगघ्नो रोगशान्तिकरः[14] । उपनिषत् । एकस्मै शुश्रूषव एकेन वक्तव्यम् इति गुह्यम् उपनिषदित्युच्यते । सूत्र्यते हि चतुर्थारण्यके—द्वय्येवैक एकस्मै प्रब्रूयादिति ह स्माह जातूकर्ण्यो न वत्से च न तृतीय इति[15] । उपनिषत्संज्ञायामारण्यकधर्मः प्राप्यते तर्हि दिवारण्येऽस्याध्ययनं[16] प्राप्नोति । इष्टमेवैतत् संगृहीतम् । सौर्यत्वादेवास्याध्ययनं[17] दिवैव । उक्तं

---

१. 'वां···काण्वः' इति नास्ति मै० ।
२. महा० वा० ६।३।१०९।।
३. अस्फुटार्थकमिदं वाक्यम् । 'दस्य डत्वमित्यादि' इति पाठ ऊह्येत ?
४. 'वामेन·· प्रस्कण्व' इति नास्ति मै० ।
५. 'चतुर्ऋचम्' इति नास्ति पु० १, पु० २ ।
६ अष्टा० ५।१।२२।।
७. 'भद्रे – प्रस्कण्वः' इति नास्ति मै० ।
८. अत्र मैकडानलकृता टिप्पणी द्रष्टव्या ।
९. 'सप्त···विंशतिः' इति नास्ति गो० ।
१०. 'जात···दश' इति नास्ति मै० ।
११. महा० ६।४।१४९।।
१२. अष्टा० ६।४।१४९।।
१३. 'उद्य···दी' इति नास्ति मै० ।
१४. 'सर्वशान्ति०' इति पु० १, पु० २ ।
१५. ऐत० आ० ५।३।३।।
१६. 'तर्ह्यरण्ये दिवाध्ययनं' इति पु० १, पु० २, गो० ।
१७. 'सुर्यत्वादेवा०' इति मै० ।

हि—सौर्याणि प्रतिपद्यते सूर्यो न दिव[1] इत्यादौ सूत्रे। सूत्रवृत्तौ[2] सौर्यत्वे[3] लिङ्गतः[4] सिद्धेऽप्यत्र सौर्याणीति शब्द एषां[5] दिवैवाध्ययनं यथा स्यादिति वै कृतमिति। उत्तरत्राप्युपनिषदित्युक्तेरेतदेव प्रयोजनम्। यथा—आद्या गर्भस्राविण्युपनिषद्[6] इत्यादि। उपेत्य नियमयुक्ताय सद्यत[7] उपदिश्यत इत्युपनिषत्। निपूर्वात्[8] षद्लृ विशरणगत्यवसादनेष्वित्यस्मात्[9] संपदादित्वात्[10] कर्मणि क्विप्। सदिरप्रतेरिति[11] षत्वमिति ह्युपनिषच्छब्दो निरुच्यते। असत्युपनिषत्त्वे—

एकः श्रोता दक्षिणतो निषीदेद् द्वौ वा भूयांसस्तु यथावकाशम्[12]।

इति प्रातिशाख्ये दर्शनादध्ययने यथाकामिता[13] प्राप्नोति न त्वेकस्मा एकेनैव वाच्यं स्यात्॥४॥

[५१] अभि त्यं पञ्चोना सव्यो द्वित्रिष्टुबन्तम्॥५॥

मेषं पुरुहूतम् ऋग्मियम्। पञ्चदश[14]। सव्यः सव्यनामा[15]। व्येञ् संवरणे।[16] सर्वमात्मीयं तेजसा संवृणोतीति। पृषोदरादिः[17]। गोत्रत आङ्गिरसः क्वचित् कथंचिद्[18] इति सूत्रतः। अन्ते[19] द्वे चतुर्दशीपञ्चदश्यौ त्रिष्टुभौ यस्य सूक्तस्य तद्[20] द्वित्रिष्टुबन्तम्। शिष्टास्त्रयोदश जगत्यः। अनादेशादैन्द्रम्[21]॥५॥

अत्रेतिहासमाह—

अङ्गिरा इन्द्रतुल्यं पुत्रमिच्छन्नभ्यध्यायत् सव्य इतीन्द्र एवास्य पुत्रोऽजायत॥६॥

---

१. आश्व० श्रौ० ६।५।१७-१८॥ २. केयं वृत्तिरित्यनुवेषणीयम्।
३. 'सूर्यत्वे' इति मै०। ४. 'लिङ्गतः' इति नास्ति पु० १, पु० २।
५. 'शब्दानां' इति पु० १, पु० २, गो०। ६. का० सर्वा० ७।८॥
७. '॰युक्ता प्रज्यत' इति पु० १, पु०२। '॰युक्ता प्रसाद्यत' इति गो०।
८. 'निपूर्वात्' इति नास्ति गो०। ९. धा० १।६०८॥
१०. 'सदादित्वात्' इति पु० १, 'संपदेदात्वित्' इति पु० २। महा० वा० ३।३।१०८॥
११. अष्टा० ८।३।६६ 'इति' इति नास्ति पु० १, पु० २।
१२. ऋ० प्रा० १५।२-३॥ १३. 'यथाकाममिति' इति पु० १, पु०२, गो०।
१४. 'मेषं दश' इति नास्ति मै०। १५. 'स॰॰मा' नास्ति मै०।
१६. धा० १।१०५६॥ 'व्येतत्संवत्सरण' इति पु० १, 'व्येतत्सचरण' इति पु० २; 'व्येतत्संवरण' इति गो०। १७. तु०—अष्टा० ६।३।१०९॥
१८. का० सर्वा० परि० २।३॥ १९. 'अन्त्ये' इति पु० १, पु० २, गो०।
२०. 'तत्संज्ञं' इति पु० १, पु० २। २१. 'इन्द्रः' इति पु० १, पु० २, गो०।

अभ्यध्यादिति प्राप्ते लुङि शब्भावश्छान्दसः[1]। तपसा युक्तो देवताश्चिन्तितवान्। सव्य इति नाम्ना स्वयमेवेन्द्रोऽन्यो मत्तुल्यो जगति मा भूदित्यस्याङ्गिरसः पुत्रत्वेनाजायत प्रादुर्भूतवान्। तथा चास्य[2] सव्यस्यर्षेराङ्गिरसत्वं सम्यगुपपन्नम् ॥६॥

[५२] त्यं सु त्रयोदशयन्त्ये त्रिष्टुभौ ॥७॥

मेषं महया स्वर्विदम्। पञ्चोनेत्येव। अन्त्या त्रयोदशी च द्वे त्रिष्टुभौ। आदितो द्वादश चतुर्दशी च जगत्यः। सव्य इन्द्रः[3] ॥७॥

[५३] न्यू ष्वेकादशान्त्ये त्रिष्टुभौ ॥८॥

वाचं प्र महे भरामहे। सांहितिकः कम्प ऐकश्रुत्ये नास्ति। अन्त्ये[4] दशम्येकादश्यौ त्रिष्टुभौ। शिष्टा नव जगत्यः[5]।उपान्त्याप्यन्त्यसाहचर्यादन्त्या। यथा—प्रथमयोः पूर्वसवर्ण[6] इति द्वितीयापि प्रथमा। सव्य इन्द्रः[7] ॥८॥

[५४] मा नोऽन्त्या त्रिष्टुप् षष्ठ्यष्टमी नवमी च ॥९॥

अस्मिन् मघवन् पृत्स्वहंसि। एकादशेत्येव। षष्ठचष्टमी नवम्येकादशी चेति चतस्रस्त्रिष्टुभः। शिष्टाः सप्त जगत्यः। सव्य इन्द्रः[8] ॥९॥

[५५] दिवश्चिदष्टौ जागतं हि ॥१०॥

अस्य वरिमा वि पप्रथ। इदमुत्तरे च त्रीणि सूक्तानि जगतीछन्दस्कानि। सव्य इन्द्र[9] ॥१०॥

[५६] एष प्र षट् ॥११॥

पूर्वीरव तस्य। जागतम्[10]। सव्य इन्द्रः[11] ॥११॥

[५७] प्र मंहिष्ठाय ॥१२॥

---

१. मै० पाठः। कोशेषु पाठोभ्रष्टः—तथा हि—'अभ्यघ्यायदिति प्राप्ते लङि शक्लक्लाव 'छान्दसः' इति पु० २। 'अभ्यंघ्यादिति·· शत्लब्लाव छांन्दस;' इति पु० १। 'अभ्यघ्यायदिति·· शंसावु छान्दसः' इति गो०। अत्र 'अभ्यध्यासीदिति प्राप्ते लुङि शब्भावश्छान्दसः' इति पाठः स्यात्? २. 'न तथा०' इति पु० १, गो०। 'न तथास्य' इति पु० २।

३. 'मेषं···इन्द्रः' इति नास्ति मै०। ४. 'अन्त्ये' इति नास्ति पु० १, पु० २।

५. 'वाचं···भरामहे' 'अन्त्ये·· जगत्यः' इति नास्ति मै०। ६. अष्टा० ६।१।१०२॥

७. 'सव्य इन्द्रः' इति नास्ति मै०। ८. 'अस्मिन्···इन्द्रः' इति नास्ति मै०।

९. 'अस्य···इन्द्रः' इति नास्ति मै०।

१०. 'षडेतज्जागतम्' इति पु० २। 'एष प्र पूर्वीरिति ष्ठांता षडिति ज्ञातव्यं' इति गो०।

११. 'पूर्वी०···इन्द्रः' इति नास्ति मै०।

महते[1]। षडित्येव । सव्य इन्द्रः । जागतम्[2] ॥१२॥

[५८] नू चिन्नव नोधा गौतम आग्नेयं हि चतुस्त्रिष्टुबन्तम् ॥१३॥

सहोजाः । नव—ष्णान्ता षडिति[3] षट् संज्ञा । षड्भ्यो लुगिति[4] जसो लुक् । नलोपः[5]। नोधा नाम ऋषिः । गौतमः—गोतमादृष्यण्[6]। एतदादीनि त्रीणि सूक्तान्यग्निदेवत्यानि[7]। अन्ते चतस्रस्त्रिष्टुभो यस्य तत्सूक्तं चतुस्त्रिष्टुवन्तम् । आद्याः पञ्च जगत्यः[8] ॥१३॥

[५९] वया इत् सप्त वैश्वानरीयम् ॥१४॥

अग्ने[9] । वैश्वानर इति पूर्वोक्तस्याग्नेर्गुणः[10] । वृद्धाच्छः[11] । नोधाः । त्रिष्टुप्[12] ॥१४॥

[६०] वह्नि पञ्च ॥१५॥

यशसम्[13]। नोधाः । त्रिष्टुप् । अग्निः[14] ॥१५॥

[६१] अस्मा इदु षोळश ॥१६॥

नोधाः । श्रूयते हि—अस्मा इदु प्र तवसे तुरायेति नोधास्त एते प्रातःसवन[15] इति । इन्द्रः । त्रिष्टुप्[16] ॥१६॥

॥ इति चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

---

[५]

[६२] प्र सप्तोना ॥१॥

त्रयोदश । त्रिष्टुप् । इन्द्रः । नोधाः[17] ॥१॥

---

१. 'महते' इति पु० १, गो० । २. 'महते…जागतम्' इति नास्ति मै० ।
३. अष्टा० १।१।२४॥ ४. अष्टा० ७।१।२२॥
५. 'सहोजा…लोपः' इति नास्ति मै० । '०लुक् लोपः' इति पु० १, पु० २ ।
६. तु०—अष्टा० ४।१।११४॥ ७. 'एत०—देवत्यानि' इति नास्ति मै० ।
८. 'आद्या…जगत्यः' इति नास्ति मै० । ९. 'अग्ने' इति नास्ति पु० १, मै० ।
१०. 'पूर्वोक्तस्य' इति नास्ति मै० । ११. अष्टा० ४।२।११४॥
१२. 'नो…ष्टुप्' इति नास्ति मै० । १३. 'यशसम्' इति नास्ति पु० १ ।
१४. 'यशसम्…अग्निः' इति नास्ति मै० । १५. ऐत० ब्रा० ६।१८।४-५॥
१६. 'इन्द्रः त्रिष्टुप्' इति नास्ति मै० । १७. 'त्रयो…नोधाः' इति नास्ति मै० ।

[६३] त्वं नव ॥२॥

नोधाः । इन्द्रः । त्रिष्टुप्[1] ॥२॥

[६४] वृष्णे पञ्चोना मारुतं त्रिष्टुबन्तम् ॥३॥

शर्धाय[2] । त्रिष्टुबन्ते यस्य तत् सूक्तम्[3] । शिष्टाश्चतुर्दश जगत्यः । नोधाः[4] ॥३॥

अत्र परिभाषते[5]—

परमाग्नेयमैन्द्रात् ॥४॥

इत्था षोडशैन्द्रं पाङ्क्तम्[6] इत्यत ऐन्द्रसंशब्दनात् प्रागतः परमग्निदेवत्यं वेदितव्यम्[7]। असत्यस्मिन् सूत्रे[8]ऽनादेशादैन्द्रं हि स्यात् । पञ्चदशकृत्व आग्नेयग्रहणं वा[9] कर्तव्यं स्यात् । पराणि पञ्चदशाग्नेयानीत्युक्तौ च गुरुत्वं स्यात्[10] । तर्हि लाघवायेदं[11] सूत्रम् इत्था षोडशेत्यत्रावध्यर्थमैन्द्रपदमकृत्वा—पञ्चा दश पराशरः शाक्त्यो द्वैपदं तद्, आग्नेयं तद्धि तद्—इति वाच्यं स्यात् । तद्धि तदिति[12] पञ्चदशेत्यर्थः[13] । सत्यम् । सुखप्रतिपत्तये तथा न कृतम् ॥४॥

[६५] पञ्चा दश पराशरः शाक्त्यो द्वैपदं तत् ॥५॥

न तायुम्[14] । पराशरो नामर्षिः । शाक्त्यः शक्तिपुत्रः । शक्तेर्गर्गादित्वाद् यञ्[15] । अनन्तरस्य गोत्रत्वोपचारः[16] । जामदग्न्यः परशुराम इतिवत्[17] । अन्यथानन्तरत्वादृष्यणि[18] शाक्त इति स्यात् । पराशरस्य शक्त्यनन्तरापत्यत्वं पुराणेषु स्मर्यते हि—

---

१. 'नोधाः...त्रिष्टुप्' इति नास्ति मै० । २. 'शर्धाय' नास्ति पु० १ ।
३. 'त्रि० ...तत्' इति नास्ति पु० १ । 'मारुतं सूक्त' इति गो० ।
४. 'शर्धाय ...नोधाः' इति नास्ति मै० ।
५. 'अत्र ...षते' इति नास्ति पु० १, पु० २ ।
६. का० सर्वा० ५।२०॥ 'पाङ्क्तम्' इति नास्ति मै० ।
७. 'वेदितव्यम्' इति नास्ति मै० ।
८. 'सूत्रे' इति नास्ति पु० १, पु० २ । ९. 'वा' इति नास्ति मै० ।
१०. 'पञ्चदशकृत्व ...स्यात्' इति नास्ति गो० । ११. 'लाघवादेवं' इति मै० ।
१२. 'तदित्येवं' इति पु० १, पु० २ गो० ।
१३. द्र०—का० सर्वा० परि० १२।३॥ १४. 'न तायुम्' इति नास्ति मै० ।
१५. तु०—अष्टा० ४।१।१०५॥
१६. 'अनन्तरस्या गोत्रोपचारः' इति पु० १ । 'अनन्तरस्य गोत्रापवादः' इति पु० २ ।
१७. द्र०—काशिका ४।१।१०५॥ १८. तु०—अष्टा० ४।१।११४॥ 'अन्ययांननात्वाद्' इति पु० १ । 'अन्यथाननार्ष्यणि' इति पु० २ ।

वसिष्ठस्य सुतः शक्तिः शक्तेः पुत्रः पराशरः ।
पराशरस्य दायादः कृष्णद्वैपायनो मुनिः ।। इति ।

द्वैपदं द्विपदासूक्तम् । विंशतिका द्विपदा विराज[1] इति ह्युक्तम् । अतो[2] विंशत्यक्षराश्छन्दस्तो[3] विराजः स्युः । द्विर्द्विपदास्त्वृचः समामनन्तीत्युक्तत्वाद्[4] अध्ययने द्वे द्वे[5] द्विपदे एकर्ग्भवति । शंसने तु यथाप्राप्तम् । सूत्र्यते हि[6]—पश्वा न तायुमिति द्वैपदम्[7] इति । तदिति षडित्यर्थः । अतः परं षट् सूक्तानि द्वैपदानि तुह्यादि सूत्रतः[8] । अग्निदेवत्यम् ।।५।।

[६६] रयिः ।।६।।

दशेत्येव । न चित्रा सूरः । द्विपदाः । पराशरः । अग्निः[9] ।।६।।

[६७] वनेषु ।।७।।

दशेत्येव । जायुर्मर्तेषु । द्विपदाः । पराशरः । अग्निः[9] ।।७।।

[६८] श्रीणन् ।।८।।

दशेत्येव । उपस्थाद् दिवम् । द्विपदाः । पराशरः । अग्निः[9] ।।८।।

[६९] शुक्रः ।।९।।

दशेत्येव । शुशुक्वान् । द्विपदाः । पराशरः । अग्निः[9] ।।९।।

[७०] वनेमैकादश ।।१०।।

पूर्वीः । द्विपदाः । पराशरः । अग्निः[10] । अयुक्ष्वन्त्या द्विपदैवेति[11] साधुर्न गृभ्नुरिति[12] द्विपदैवाध्ययने । पूर्वास्तु दशर्चो भवन्ति । इति षड् द्वैपदानि सूक्तानि ।।१०।।

[७१] उप प्र दश ।।११।।

जिन्वन्नुशतीः[13] । त्रिष्टुप् । पराशरः । अग्निः ।।११।।

---

१. का० सर्वा० परि० १२।८।।
२. 'अतो' इति नास्ति पु० १, पु० २, गो० ।
३. '०छन्दस्त्वे' इति कोशेषु ।
४. 'द्वे' इति सकृत्पाठः पु० १, पु० २, गो० ।
५. का० सर्वा० परि० १२।१०।।
६ 'हि' इति नास्ति मै० ।
७. आश्व० श्रौ० ८।१२।२४।।
८. का० सर्वा० परिभाषा १२।३।।
९. 'दश···अग्निः' इति नास्ति मै० ।
१०. 'पूर्वी···अग्निः' इति नास्ति मै० ।
११. का० सर्वा० परि० १२।११।।
१२. ऋ० १।७०।६ [११]।।
१३. इत आरभ्याष्टासप्ततितमं सूक्तम् अष्टसूत्रीव्याख्यात्यक्ता मै० ।

[७२] नि काव्या ।।१२।।

दशेत्येव । वेधसः शश्वतस्कः । त्रिष्टुप् । पराशरः । अग्निः ।।१२।।

[७३] रयिर्न ।।१३।।

दशेत्येव । यः पितृवित्तो वयोधाः । त्रिष्टुप् । पराशरः । अग्निः ।।१३।।

[७४] उपप्रयन्तो नव गोतमो राहूगणो गायत्रं तु ।।१४।।

अध्वरम् । रहूगणपुत्रो गोतमः । उत्तरमिदं च द्वे गायत्रे सूक्ते । अग्निः ।।१४।।

[७५] जुषस्व पञ्च ।।१५।।

सप्रथस्तमम् । गायत्रम् । गोतमः । अग्निः ।।१५।।

[७६] का ते ।।१६।।

पञ्चेत्येव । उपेतिर्मनसो वराय । त्रिष्टुप् । गोतमः । अग्निः ।।१६।।

[७७] कथा ।।१७।।

पञ्चेत्येव । दाशेमाग्नये । त्रिष्टुप् । गोतमः । अग्निः ।।१७।।

[७८] अभि त्वा गायत्रं तु ।।१८।।

पञ्चेत्येव । गोतमा गिरा । इदमुत्तरं च द्वे गायत्रे सूक्ते । अग्निदेवत्ये । गोतमः । अग्निः ।।१८।।

[७९] हिरण्यकेशो द्वादशाद्यौ तृचौ त्रैष्टुभौष्णिहौ पूर्वोऽग्नये वा मध्यमाय ।।१९।।

रजसो विसारे[१] । आद्यस्तृचस्त्रैष्टुभः । द्वितीयस्त्वौष्णिहः[२] । उत्तराः षड् गायत्र्यः । गोतमः । अग्निः[३] । पूर्वस्तृचस्त्रैष्टुभो मध्यमस्थानाय[४] वैद्युताग्नये शुद्धाग्नये वा । तादर्थ्ये ङे । मध्यमो धामच्छद्गुणोऽग्निरित्येके । हिरण्यकेशो रजसो विसार इति सूत्रे[५] धामच्छद्गुणेऽग्नौ[६] विनियोगदर्शनादिति[७] । तदनुपपन्नम् । तत्र हि धामच्छ-

१. 'रज···सारे' इति नास्ति मै० । २. 'तु' इति नास्ति मै० ।
३. 'उत्तरा···अग्निः' इति नास्ति मै० । ४. 'मध्यस्या०' इति पु० १, गो० ।
५. आश्व० श्रौ० २।१३।७।।
६. '०गुणे को विनि०' इति पु० १ । '०छद्वै गुणको वि' इति पु० २ । 'गुणकेऽग्नौ' इति गो० । ७. 'वियो०' इति पु० २ ।

दग्नौ त्व त्या चिद्[1] धामन्त[2] इति द्वे याज्यानुवाक्ये उक्ते[3], हिरण्यकेश इति द्वृचस्तु शुद्धाग्नेरेव[4]। न हि धामच्छदे[5] याज्यानुवाक्याद्वयं विकल्प्यते[6], किं तु तत्र[6] शुद्धोऽग्निरग्निर्वा[6] धामच्छदिति विकल्प्यते। तस्माद् वैद्युत एव मध्यमः[7]। आग्नेयाधिकारस्य पूर्णोऽवधिः ॥१९॥

[८०] इत्था[8] षोळशैन्द्रं पाङ्क्तं हि ॥२०॥

सोम इन्मदे[9]। ऐन्द्रमित्याग्नेयावध्यर्थम्। अन्यथानादेशाद्[10] ऐन्द्रत्वं सिध्यति। इदमुत्तरे च द्वे इति त्रीणि सूक्तानि पङ्क्तिछन्दस्कानि। पङ्क्तिश्च पञ्चाष्टकाः। गोतमः[11] ॥२०॥

॥ इति पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

---

[६]

[८१] इन्द्रो नव ॥१॥

मदाय वावृधे ' पक्तिः। इन्द्रः। गोतमः[12] ॥१॥

[८२] उपो षु षड् जगत्यन्तम् ॥२॥

श्रृणुही गिरः। आद्याः पञ्च पङ्क्तयः। अन्त्या षष्ठी जगती[13]। इन्द्रः। गोतमः[14] ॥२॥

[८३] अश्वावति जागतम् ॥३॥

षडित्येव। प्रथमो गोषु। गोतमः। इन्द्रः। जागतं[15] जगतीछन्दस्कम्[16] ॥३॥

---

१. ऋ० ६।२।९॥ २. ऋ० ४।५८।११॥
३. 'उक्ते' इति नास्ति पु० १, पु० २, गो०। ४. 'एव' इति नास्ति पु० १।
५. 'धामच्छदो' इति पु० २। ६. विकल्प्यते', 'तत्र', 'वा' इति न सन्ति कोशेषु।
७. 'मध्यः' इति पु० १; पु० २। ८. 'इत्था हि' इति कोशेषु।
९. 'शो...मदे' इति नास्ति मै०। १०. द्र०—का० सर्वा० परि० १२।५॥
११. 'इदमु...गोतमः' इति नास्ति मै०। 'गोतमः' इति नास्ति गो०।
१२. 'मदाय...गोतमः' इति नास्ति मै०।
१३. 'अन्त्या...जगती' इति नास्ति पु० १, 'षष्ठी' इति नास्ति गो०।
१४. 'श्रृणुही...गोतमः' इति नास्ति मै०।
१५. 'जागतम्' इति नास्ति पु० २, गो०।
१६. 'षडित्येव...छन्दस्कम्' इति नास्ति मै०।

[८४] असावि विंशतिः षळनुष्टुभ औष्णिह पाङ्क्तगायत्रत्रैष्टुभास्तृचाः प्रगाथः ॥४॥

सोम इन्द्र ते[1]। आदितोऽनुष्टुभः षट्। अथौष्णिहस्तृचः। अथ गायत्रस्तृचः। अथ त्रैष्टुभस्तृचः। अथ बृहती। अथ सतोबृहती। इन्द्रः। गोतमः[2] ॥४॥

[८५] प्र ये द्वादश मारुतं ह पञ्चम्यन्त्ये[3] त्रिष्टुभौ ॥५॥

शुम्भन्ते जनयः। इदमाद्यानि चत्वारि सूक्तानि मरुद्देवत्यानि। पञ्चम्यन्त्या च द्वे त्रिष्टुभौ। शिष्टा दश जगत्यः। गोतमः[4] ॥५॥

[८६] मरुतो दश गायत्रम् ॥६॥

यस्य हि क्षये। गोतमः। गायत्रम्। मरुतः[4] ॥६॥

[८७] प्रत्वक्षसः षड् जागतम् ॥७॥

प्रतवसो विरप्शिनः। गोतमः। जागतम्। मरुतः[4] ॥७॥

[८८] आ विद्युन्मद्भिराद्यन्त्ये प्रस्तारपङ्क्ती पञ्चमी विराड्रूपा ॥८॥

षडित्येव। मरुतः स्वर्कैः। तत्राद्यान्त्या च द्वे प्रस्तारपङ्क्ती। आद्यौ जागतौ पादौ[5] अन्त्यौ गायत्रौ यस्याः सा प्रस्तारपङ्क्तिः। पञ्चमी विराड्रूपा। एतत् त्यन्न योजनमचेतीयं पञ्चमी। आदितस्त्रय एकादशका अन्त्योऽष्टकः[6]। शिष्टास्तिस्रस्त्रिष्टुभः[7]। गोतमः। मरुतः[8] ॥८॥

[८९] आ नो दश वैश्वदेवं तु पञ्चाद्याः सप्तमी च जगत्यः षष्ठी विराट्स्थाना ॥९॥

भद्राः क्रतवो यन्तु। इदं चोत्तरं च द्वे सूक्ते विश्वेदेवदेवत्ये। आदितः पञ्च ऋचः सप्तमी चेति षड् जगत्यः। षष्ठी—स्वस्ति न इन्द्र इत्येषा विराट्स्थाना। अस्या नवाक्षरौ पादौ दशकैकादशावथ[9]। अष्टम्याद्यास्तिस्रस्त्रिष्टुभः। गोतमः[8] ॥९॥

[९०] ऋजुनीती नव गायत्रमन्त्यानुष्टुप् ॥१०॥

---

१. 'सोम ··ते' इति नास्ति मै०।
२. 'इन्द्रः गोतमः' इति नास्ति मै०।
३. '०म्यन्ते' इति पु० १।
४. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै०।
५. द्र०—का० सर्वा० परि० ८।६॥
६. द्र०—का० सर्वा० परि० ९।६॥
७. '०न्तिस्रः०' इति नास्ति मै०।
८. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै०।
९. द्र०—का० सर्वा० परि० ११।५॥

नो वरुणः।[1] विराट्स्थान[2] ऋजुनीतीति। ऋत्यक[3] इति ह्रस्वप्रकृतिभावौ। यथा—पर ऋणा सावीरिति[4]। अष्टौ पिण्डान् कृत्व ऋतमग्र[5] इति गृह्ये। विश्वेदेवाः। गोतमः[6] ॥१०॥

[९१] त्वं सोम त्र्यधिका सौम्यं पञ्चम्यादि गायत्र्यो द्वादशोष्णिक् च ॥११॥

प्र चिकितो मनीषा। त्रयोविंशतिः। सोमदेवत्यम्[7]। पञ्चमीप्रभृतिद्वादशर्चो गायत्र्यः। अथोष्णिक् सप्तदशी। चेत्यथेत्यर्थः[8]। शिष्टा दश त्रिष्टुभः। गोतमः[9] ॥११॥

[९२] एता उ त्या द्व्यूनोषस्यं चतुर्जगत्यादि षळुष्णिगन्तं तृचोऽन्त्य आश्विनः ॥१२॥

उषसः केतुमक्रत। द्व्यूनाष्टादश। उषोदेवत्यम्[10]। चतस्रो जगत्य आदौ यस्य तच्चतुर्जगत्यादि। षड् उष्णिहोऽन्ते यस्य तत् षडुष्णिगन्तम्। अश्विना [11]वर्त्तिरस्मदेत्यन्त्यस्तृचोऽश्विदेवत्यः। अष्टौ शिष्टास्त्रिष्टुभः। गोतमः[12] ॥१२॥

[९३] अग्नीषोमौ द्वादशाग्नीषोमीयम् आद्यस्तिस्रोऽनुष्टुभ उपान्त्यास्तिस्रो गायत्र्योऽष्टमी जगती वा ॥१३॥

इमं सु मे[13]। अग्निश्च सोमश्च। ईदग्नेः सोमवरुणयोः[14]। अग्नेः स्तुत्स्तोमसोमा[15] इति षत्वम्। द्यावापृथिवीत्यादिना[16] छः। आदितोऽनुष्टुभस्तिस्रः। नवम्याद्यस्तिस्रो गायत्र्योऽष्टमी जगती वा त्रिष्टुब् वा। यो अग्नीषोमा हविषा सपर्याद्[17] इति कथं जगतीत्वम्? आद्यैकादशपादद्वयव्यूहेन। असत्यस्मिन् द्वाभ्यां विराट्-

---

१. 'नो वरुणः' इति नास्ति गो० मै०।
२. संहितया सूत्रनिर्देश इयं व्याख्या।
३. अष्टा० ६।१।१२८॥ 'ऋत्यक इति' इति नास्ति पु० १, पु० २, गो०।
४. ऋ० २।२८।९॥
५. आश्व० गृह्य० १।५।४॥
६. 'वि…तमः' इति नास्ति मै०।
७. 'प्र…देवत्यम्' इति नास्ति मै०।
८. 'चेत्यर्थः' इति गो०। 'चेति अथ' इति पु० २। 'चेति अ…त्यर्थः' इति पु० १।
९. 'शिष्टा…तमः' इति नास्ति मै०।
१०. 'उषसः…देयत्यम्' इति नास्ति मै०।
११. 'अश्विना…इति' इति नास्ति मै०।
१२. 'अष्टौ…गोतमः' इति नास्ति मै०।
१३. 'इमं…मे' इति नास्ति मै०।
१४. अष्टा० ६।३।२७॥
१५. अष्टा० ८।३।८२॥
१६. तु०—अष्टा० ४।२।३२॥
१७. ऋ० १।९३।८॥

स्वराजाविति[1] द्व्यक्षराधिक्यात् स्वराट्त्रिष्टुप्त्वं नित्यं[2] स्यात्। शिष्टाः पञ्च त्रिष्टुभः ॥१३॥

[९४] इमं षोळश कुत्स आग्नेयं तद् द्वित्रिष्टुबन्तं पूर्वो देवास्त्रयः पादा दैवास्तन्नो मित्रोऽर्धर्चो लिङ्गोक्तदेवतो यद्देवत्यं वा सूक्तम् ॥१४॥

स्तोममर्हते जातवेदसे[3]। कुत्सः। अनुक्तगोत्रत्वादाङ्गिरसोऽयम्[4]। तदिति षडित्युक्तम्[5]। द्वे त्रिष्टुभावन्ते यस्य तद् द्वित्रिष्टुबन्तम्। आदितश्चतुर्दश जगत्यः[6]। अत्र सूक्ते पूर्वो देवा भवतु सुन्वतो रथ[7] इति त्रयः पादा देवदेवत्याः। तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ताम्[8] इत्यर्धर्चो लिङ्गेनाभिधानसामर्थ्येन प्रतिपादितमित्रादिषड्-देवत्यः। यद्देवत्यं वा सूक्तं तद्देवत्यो वायमर्धर्चः। तेनात्राग्नेः प्राधान्यं मित्रादीनां निपातभाक्त्वेनाप्राधान्यम्[9]। अन्त्योऽर्धर्च इति वाच्ये तन्नो मित्रो ग्रहणमुत्तरत्राप्यस्यैव-मिति वक्तुम्। यद्देवत्यं वेतीदमिति वाच्ये[10] सूक्तग्रहणं चास्यैवार्थस्यपोषाय[11]। तेन नासत्याभ्यामित्यतः[12] प्राक् तत्तत्सूक्तदेवत्यो[13]ऽप्ययमर्धर्चो वा[14] भवति[15] ॥१४॥

॥ इति षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

---

[७]

[९५] द्वे एकादशोषसाय वाग्नये ॥१॥

विरूपे चरतः स्वर्थे। ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यमिति[16] प्रगृह्यत्वम्। ननु लाघवाय

---

१. का० सर्वा० परि० ३।५॥ २. 'नित्यं' इति नास्ति मै०।
३. 'स्तोः ··वेदसे' इति नास्ति मै०।
४. 'कुत्सो नामा अनुक्तगोत्रस्य०' इति पु० १, पु० २। 'अनुक्तगोत्रस्य०' इति गो०।
५. द्र०—का० सर्वा० परि० १२ ३॥ ६. 'द्वे···जगत्यः' इति नास्ति मै०।
७. ऋ० १।९४।८॥ ८. ऋ० १।९४।१६॥
९. 'निपातते न प्रा०' इति पु० १। 'निपतने न प्रा०' इति पु० २। 'निपातनत्वेन प्रा' इति गो०। १०. 'चेदेतस्मिन्निति वाच्य' इति पु० २।
११. 'पौष्टचाय' इति पु० १, पु० २, गो०। १२. का० सर्वा० ८।४॥
१३. 'प्राक्तनसूक्तदेवत्यो' इति पु० १, गो०। '०देवत्ये' इति पु० २।
१४. 'वा' इति नास्ति पु० १, पु० २, गो०।
१५. अयमर्धर्चः प्रतिसूक्तान्तम् आवर्तत आ पञ्चदशोत्तरशततमसूक्ताद् ऋते ९७, ९९, १०४ तमानि सूक्तानि। १६. अष्टा० १।१।११॥

नवोनेति वाच्यं नैकादशेति, न ह्यत्र ह्वयाम्येकादशेत्यादिवत्[1] सन्धितः समाक्षरत्वम् ? सत्यं, शैलीयमाचार्यस्य सर्वत्रैकादशेत्येव वदतीति[2]। औषसाय[3] उषसि भवाय प्रातराहुतिभोजिनेऽग्नये[4] शुद्धाय वेदं सूक्तं स्तावकम्, अग्नय इत्यौषसत्वगुणविशेषितत्वात्। यथा पूर्वोऽग्नये वा मध्यमायेत्यत्र[5] मध्यमगुणविशेषितायाग्नय इत्युक्तम्[6]। अयं चाग्निरुत्तरत्र गुणविशेषितत्वायानुवर्त्तते[7]। तेन स प्रत्नथा नव द्रविणोदस[8] इत्यादावग्नय इति सिद्धं भवति। तदित्युक्तेर्वानुवृत्तेश्च यावत् सयोवृषीयं[9] शुद्धाग्नेयत्वं च वा भवति। औषसायेति[10]। उषःशब्दाद् भवार्थेऽण्[11] ॥१॥

[९६] स प्रत्नथा नव द्रविणोदसे ॥२॥

सहसा जायमानः। नवेत्येव[12]। द्रविणोदस्त्वगुणयुक्तायाग्नय इदं स्तावकं शुद्धाय वा। कुत्सः। त्रिष्टुप्[12] ॥२॥

[९७] अप नोऽष्टौ शुचये गायत्रम् ॥३॥

शोशुचदघम्[13]। अग्नय इत्येव। वेति च। तादर्थ्ये ङे। शुचिगुणाग्न्यर्थमिदं सूक्तं शुद्धाय वा। कुत्सः। गायत्रम्[13] ॥३॥

[९८] वैश्वानरस्य तृच वैश्वानरीयम् ॥४॥

सुमतौ स्याम[14]। तिस्र ऋचो यत्र सूक्ते तत् तृचम्। तच्च वैश्वानरगुणाग्निदेवत्यं शुद्धाय वा। कुत्सः। त्रिष्टुप्[14] ॥४॥

[९९] जातवेदस एका जातवेदस्यम् ॥५॥[15]

सुनवाम[16]। एकर्चमिदं सूक्तम्। जातवेदोगुणाग्निदेवत्यं शुद्धाग्निदेवत्यं वा। जातवेदःस्तावकत्वेन भवम्। भवे छन्दसीति[17] यत्। त्रिष्टुप्।[16] मारीचः कश्यप ऋषिः। कुतः ? कश्यपार्षमिति वक्ष्यमाणत्वात् ॥५॥

---

१. का० सर्वा० ३।३॥
२. '०दशेत्येवेति' इति मै०।
३. 'उषसाय' इति पु० १, पु० २, गो०।
४. ग्रन्थपातोऽत्रैकपङ्क्तेः गो०।
५. का० सर्वा० ५।१६॥
६. 'उक्तम्' इति नास्ति मै०।
७. 'गुणदोषिवाय०' इति पु० १।
८. का० सर्वा० ७।२॥
९. ऋ० १।१००॥
१०. 'उषसा०' इति पु० १, पु० २, गो०।
११. द्र०—अष्टा० ४।३।५३॥
१२. 'सहसा ··नवेत्येव' 'कुत्सः त्रिष्टुप्' इति नास्ति मै०।
१३. 'शो ··घम्', 'सूक्तं', 'कुत्सः···त्रम्' इति नास्ति मै०।
१४. 'सुमतौ स्याम' 'कुत्सः त्रिष्टुप्' इति नास्ति मै०।
१५. पञ्चमषष्ठसूत्रे एकत्वेन मुद्रिते मै०।
१६. 'सुनवाम' 'त्रिष्टुप्' इति नास्ति मै०।
१७. अष्टा० ४।४।११०॥

एतदादीन्येकभूयांसि सूक्तसहस्रम् एतत् कश्यपार्षम् ।।६।।

एतज्जातवेदस इत्येकर्चमादि येषां[1] तान्येतदादीनि सूक्तानि । एकभूयांस्येकैकर्चा वहुतराणि[2] द्वृचं तृचं चतुर्ऋचं पञ्चर्चमित्यादि सहस्रर्चान्तान्यत्र सन्ति । तान्येतावन्तीत्याह—सूक्तसहस्रमिति । एतत् सूक्तसहस्रं कश्यपार्षमिति । आर्षं दर्शनं कश्यपस्य यत्र तत् कश्यपार्षम् । अयं च कश्यपो मरीचिपुत्र इति वक्ष्यते—मारीच कश्यप[3] इति ।

खिलसूक्तानि चैतानि त्वाद्यैकर्चमधीमहे[4] ।
शौनकेन स्वयं चोक्तमृष्यनुक्रमणे त्विदम्[5] ।।
पूर्वात्पूर्वात्सहस्रस्य सूक्तानामेकभूयसाम् ।
जातवेदस इत्याद्यं कश्यपार्षस्य[6] शुश्रुमः ।। इति ।
सयोवृषीयान्ता[7] वेदमध्यास्त्वखिलसूक्तगाः[8] ।
ऋचस्तु पञ्च लक्षाः स्युः सैकोनशतपञ्चकम्[9] ।।
[10]आद्यन्त पादार्धहतमित्यार्यभट्टसंख्यया ।[11]
अथैकादिदशान्ते[12] च पञ्चपञ्चाशदुच्यते ।।

आम्नायोक्तेरेव च्युतत्वेऽपि[13] खिलस्य कश्यपर्षेरनेकसूक्तदर्शनेन[14] माहात्म्यज्ञापनार्थोऽयमुपदेशः प्रासङ्गिकः । इतरथैकर्चसूक्तदर्शित्वं कश्यपस्य[15] स्यात् ।।६।।

[१००] स यो वृषैकोना वार्षागिरा ऋज्राश्वाम्बरीषसहदेवभयमानसुराधसः ।।७।।

---

१. '०मादिर्येषां' इति सार्वत्रिकः पाठः ।
२. '०स्येकर्चबहु०' इति मै० ।　　३. तु०—का० सर्वा० ४२।६।।
४. 'भूत्वाद्यै०' इति पु० २ ।
५. 'इत्यनुक्रमणेस्त्वियम्' इति पु० १ । 'इत्यनुक्रमणीस्त्वियम्' इति पु० २ । 'इत्यनुक्रमणे त्विदम्' इति गो० ।　　६. 'कश्यपार्षं सं' इति पु० २ ।
७. 'सयोवृषा' इति कोशेषु ।
८. 'जातवेदमध्यस्त्वषिल०' इति पु० १ । 'जातवेदमध्यास्त्वखिलसूक्तशः' इति पु० २ । 'जातवेदसमध्यस्त्वखिलसूक्तकाः' इति गो० ।　　९. '०पञ्चकां' इति पु० २ ।
१०. 'आंद्यन्तंवदार्यद्वंहत०' इति पु० १ । 'आद्यंतं च अयं दहन०' इति पु० २ । '०पादार्धहृत०' इति गो० ।
११. '०भटसंख्यया' इति पु० १, पु० २, मै० ह० ले० ।
१२. 'पद्यैकादि०' इति पु० १ । 'यद्येकादि०' इति पु० २ । 'यद्यैकादिभशांते' इति गो० ।
१३. 'रेवार्चवेति इति पु० १ । 'रेवात्त्वं चेति' इति पु० १ । 'रेवार्थ चेति' इति गो० ।
१४. '०सूक्त०' इति नास्ति पु० १, पु०२, गो० ।　　१५. 'कश्यपस्य' इति नास्ति मै० ।

वृष्ण्येभिः । एकोनविंशतिः[१] । वार्षागिरा वृषागिरो नाम महाराजस्यापत्यभूताः । ऋज्राश्वः, अम्बरीषः, सहदेवः, भयमानः, सुराधाः—इत्येते[२] पञ्च राजर्षयः सहद्रष्टारः । अत्रैव सूक्त एतत् त्यत् त इन्द्रेत्यत्रोक्ताः[३] । उक्तं ह्यार्षानुक्रमण्याम्—

सूक्तं स यो वृषेत्येतत् पञ्च वार्षागिरा विदुः ।
नियुक्ता[४] नामधेयैः स्वैरपि चैतत् त्यदित्यृचि ।। इति ।

इन्द्रः । त्रिष्टुप्[५] ।।७।।

[१०१] प्र मन्दिन एकादश कुत्स आद्या गर्भस्राविण्युपनिषच्चतुस्त्रिष्टुबन्तम् ।।८।।

पितुमदर्चत[६] । कुत्सो नामाङ्गिरसोऽयम् । आद्या गर्भस्राविणी । अस्या जपात् सुखं गर्भाः स्रवन्तीत्यर्थः । उपनिषदित्युक्तार्था[७] । चतस्रस्त्रिष्टुभोऽन्ते यस्य तत् सूक्त चतुस्त्रिष्टुबन्तम् । आद्याः सप्त जगत्यः । इन्द्रः[६] ।।८।।

[१०२] इमां तेऽन्त्या त्रिष्टुप् । ९।।

धियं प्रभरे । एकादशेत्येव । आदितो दश जगत्यः । अन्त्या त्रिष्टुप् । कुत्सः । इन्द्र.[८] ।।९।।

[१०३] तत्तेऽष्टौ ।।१०।।

इन्द्रियं परमम् । कुत्सः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः[८] ।।१०।।

[१०४] योनिर्नव ।।११।।

योनिष्ट इन्द्र निषदे । कुत्सः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः[९] ।।११।।

[१०५] चन्द्रमा एकोनाप्त्यस्त्रितो वा वैश्वदेवं हि पाङ्क्तमन्त्या त्रिष्टुबष्टमी महाबृहती यवमध्या ।।१२।।

अप्स्वन्तरा । एकोनविंशतिः[१०] । आप्त्यः । अप्त्यपुत्रः । ऋष्यण्[११] । यस्येति

---

१. 'वृ...तिः' इति नास्ति मै० ।
२. 'एते' इति नास्ति मै० ।
३. ऋ० १।१००।१७।।
४. 'निरुक्ता' इति गो० ।
५. 'इन्द्रः त्रिष्टुप्' इति नास्ति मै० ।
६. 'पि त' 'चतस्र ; इन्द्रः' इति नास्ति मै० ।
७. '०क्तार्थं' इति कोशेषु । द्र०—का० सर्वा० ४।४ वेदार्थदीपिका ।
८. सूत्रव्याख्या नास्ति मै० ।
९. सूत्रव्याख्या नास्ति मै० ।
१०. 'अप्स्व...ति' इति नास्ति मै० ।
११. तु०—अष्टा० ४।१।११४।।

च[1]। त्रितो नाम। वेत्युक्तेः[2] कुत्सेन[3] विकल्पो भवति। एष चाप्त्यस्त्रितो वाविशिष्टत्वाद् उत्तरत्रानुवर्तितुं नेष्टः[4]। कुत्स एवानुवर्तते नासत्याभ्यां वर्हिरित्यतः[5] प्राक्। त्रितः कूपेऽवहितो देवान् हवत ऊतय[6] इति त्रितोक्तौ कुत्सोक्तौ च संगतत्वाद् विकल्पः। उक्तं चार्षानुक्रमण्याम्—

चन्द्रमाःसूक्तमाप्त्यं च[7] त्रितं प्रतिवभावृषिम्[8]। इति।

इदमादीनि त्रीणि सूक्तानि वैश्वदेवानि। पङ्क्तिः। पञ्चाष्टकाः[9] पङ्क्तिश्छन्दः। अन्त्या त्रिष्टुप्। पाङ्क्तमिति शिष्टा जगत्य इत्यपवादः[10]। सं मा तपन्त्यभित इत्यष्टमी[11] महाबृहती यवमध्या। चत्वारोऽष्टका जागतश्च महाबृहतीत्युक्ता[12] मध्ये चेद् यवमध्येत्युक्तेत्यर्थः[13]। तेन दशकश्चेद् यवमध्येत्याद्यन्यासां यवमध्यानां निवृत्तिः ।।१२।।

[१०६] इन्द्रं मित्रं सप्त त्रिष्टुबन्तम् ।।१३।।

वरुणमग्निम्। अन्त्या त्रिष्टुप्। शिष्टाः षड् जगत्यः। कुत्सः। विश्वेदेवाः[14] ।।१३।।

[१०७] यज्ञस्तृचम् ।।१४।।

देवानां प्रति। कुत्सः। त्रिष्टुप्। विश्वेदेवाः[15]। तिस्र ऋचो यस्मिन् सूक्ते तत् तृचम् ।।१४।।

[१०८] य इन्द्राग्नी सप्तैन्द्राग्नं तु ।।१५।।

चित्रतमो रथो वाम्। त्रयोदश। इदमुत्तरं च द्वे सूक्ते इन्द्राग्निदेवत्ये। कुत्सः। त्रिष्टुप्[14] ।।१५।।

[१०९] वि ह्यख्यौ ।।१६।।

अख्यं मनसा। कुत्सः। त्रिष्टुप्। इन्द्राग्नी ।।१६।।

---

१. अष्टा० ६।४।१४८।। २. '०क्ते' इति पु० २, गो०।
३. 'कुत्सो न' इति पु० १, पु० २। 'कुत्सोऽपि विकल्पेन' इति गो०।
४. 'नेष्टे' इति पु० १। '०त्र तु न निवर्तते' इति पु० २। ५. ऋ० १।११६।१।।
६. ऋ० १।१०५।१७।। ७. 'वा' इति पु० १, गो०।
८. तु०—निरु० ४।६।।
९. 'पङ्क्तिः···काः' इति नास्ति मै०। 'पङ्क्तिः' इति नास्ति पु० १, पु० २।
१०. 'जगत्यपवादः' इति पु० १, पु० २। ११. 'सं···इति' इति नास्ति मै०।
१२. का० सर्वा० परि० ६।६।। १३. का० सर्वा० परि० ६।१०।।
१४. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै०। १५. 'देवा···देवाः' इति नास्ति मै०।

[११०] ततं नवार्भवं तु पञ्चम्यन्त्ये त्रिष्टुभौ ॥१७॥

मे ग्रपस्तदु । इदमुत्तरं च द्वे सूक्ते ऋभुदेवत्ये । पञ्चमी चान्त्या च द्वे त्रिष्टुभौ । शिष्टाः सप्त जगत्यः[1] ॥१७॥

[१११] तक्षन् पञ्चान्त्या त्रिष्टुप् ॥१८॥

रथं सुवृतम् । ग्राद्याश्चतस्रो जगत्यः । ग्रन्त्या त्रिष्टुप् । कुत्सः । ऋभवः[1] ॥

[११२] ईळे पञ्चाधिकाश्विनमाद्यौ लिङ्गोक्तदेवतावन्त्ये त्रिष्टुभौ ॥१९॥

द्यावापृथिवी । पञ्चविंशतिः[2] । ग्राश्विनमिदं सूक्तम् । ग्राद्यः पादो द्यावापृथिवी देवत्यः । द्वितीयोऽग्निदेवत्यः । उक्तं हि देवतानुक्रमण्याम्—

ईळे द्यावापृथिव्योराद्यः पादः परोऽग्नय ग्राश्विनं तच्च सूक्तम्[3] । इति । ग्रन्त्ये—ग्रप्नस्वती द्युभिरक्तुभिरिति[4] द्वे त्रिष्टुभौ । ग्रादितस्त्रयोविंशतिर्जगत्यः[5] । उपान्त्या त्वन्त्यासाहचर्याद् ग्रन्त्ये चेत्येतद् उपपादितं पुरस्तात्[6] । ग्राङ्गिरसः कुत्सः ॥१९॥

॥ इतिसप्तमोऽध्यायः ॥७॥

---

[८]

[११३] इदं विंशतिरुषस्यं द्वितीयोऽर्धर्चो रात्रेश्च ॥१॥

श्रेष्ठं ज्योतिषाम् । कुत्सः । त्रिष्टुप् । उषोदेवत्यम्[1] ॥१॥

[११४] इमा एकादश रौद्रं द्वित्रिष्टुबन्तम् ॥२॥

रुद्राय तवसे । द्वे त्रिष्टुभावन्ते यस्य तत् सूक्तं द्वित्रिष्टुवन्तम् । ग्रादौ नव जगत्यः । कुत्सः । रुद्रदेवत्यम्[1] ॥२॥

---

१. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।

२. 'द्या…तिः' इति नास्ति मै० । 'पञ्चविंशतिः' इति नास्ति पु० १ ।

'ईळे द्यवापृथिवी ग्राद्यः पादः परोग्नयः ग्राश्विनं चैव सूक्तं' इति पु० १, पु० २, गो०।

४. ऋ० १।११२।२४,२५॥ नास्ति मै० । ५. 'शिष्टास्त्रयो०' इति मै० ।

६. 'उपा…तात्' इति पु० १, पु० २ गो० । पुरस्तादनुपपादितत्वाद् ग्रयं पाठः संदिग्ध इति त्यक्तः मै० ।

[११५] चित्रं षट् सौर्यम् ॥३॥

देवानामुद् । कुत्सः । त्रिष्टुप् । सूर्यदेवत्यम्[1] ॥३॥

[११६] नासत्याभ्यां पञ्चाधिका कक्षीवान् दैर्घतमसः उशिक्प्रसूत आश्विनं वै ॥४॥

वर्हिरिव । पञ्चविंशतिः[2] । दीर्घतमस ऋषेः पुत्रः कक्षीवान् नाम ऋषिः । स उशिक्प्रसूतः । अङ्गराजस्य या महिषी तस्य या प्रधानदासी सोशिङ् नाम । उषिग्[3] वष्टेः कान्तिकर्मणः[4] । पृषोदरादिः[5] । पुरा किल गङ्गायामङ्गराजो युवतिभिः स्वपत्नीभिः सह जले चिक्रीड । तत्समीप स्रोतसा वृद्धोऽन्धो दुर्बलो दुर्गन्धोऽशक्तो[6]ऽयमिति पतिद्वेषिण्या भार्यया पुत्रैर्दासैश्च प्लवे वद्धो गङ्गायां मध्ये प्रक्षिप्तः सर्वज्ञो महर्षिदीर्घतमा आजगाम[7] । तं दृष्ट्वाङ्गराजोऽपि वन्धादुन्मुच्य स्थानं चास्मै कल्पयित्वा—हे भगवन्नपुत्रस्य मम ज्येष्ठ महिष्यां पुत्रोत्पत्तिं कुर्विति ययाचे । स च तथेति प्रतिपेदे । अथ राजापि महिषीमुवाच—ऋषिं गच्छेति । सा चायमृषिर्वृद्धोऽन्धो दुर्बलः[8] सुगन्धेतरगन्धाढ्य[9] इति मत्वा राज्ञश्च भीत्यास्मै[10] स्वदासीं प्राहिणोत् । सा चाङ्गराजमहिष्या प्रेरिता सर्वज्ञेन दोर्घतमसा दासीति ज्ञात्वा मन्त्रपूतजलभिषिक्ता[11] महातेजस्विन्यृषिपत्न्यभूत् । स तस्यां कक्षीवन्तमुत्पादयामास । स एवार्थः समाम्नायते—कक्षीवन्तं य औशिज[12] इति तदेतदाह—उशिक्प्रसूत इति । आश्विनं वै । इदमादीनि पञ्च सूक्तान्यश्विदेवत्यानि । तुह्यादिसूत्रे[13] वैशब्दः पञ्चेत्यर्थ इत्युक्तम् । त्रिष्टुप्[14] ॥४॥

[११७] मध्वः ॥५॥

पञ्चाधिकेत्येव । सोमस्याश्विना । कक्षीवान् । त्रिष्टुप् । अश्विनौ[15] ॥५॥

[११८] आ वामेकादश ॥६॥

---

१. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।
२. 'र्बहि…तिः' इति नास्ति मै० । ३. 'उशिग्' इति नास्ति पु० १, पु०२, गो० ।
४. निरु० ६।१०॥ ५. तु०—अष्टा० ६।३।१०९॥
६. 'दुरिरासक्तो' इति पु०१ । 'दुरितासक्तो' इति पु० २ । 'दुर्धराशक्तो' इति गो० ।
७. 'जगाम' इति पु० १, पु० २, गो० ।
८. 'वृद्धो धो जन्य इति' इति पु० १ । 'वृद्धौ जन्य इति' इति पु० २ ।
९. 'दुर्गन्धतरगन्ध०' इति पु० २ ।
१०. 'भाचा०' इति पु० १, पु० २ । 'भीत्य०' इति गो० । 'भीता०' इति मै० ।
११. '०म्युदिता' इति पु० १ । '०म्युक्षिता' इति पु० २ । १२. ऋ० १।११८।१॥
१३. द्र०—का० सर्वा० परि० १२।३॥ १४. 'त्रिष्टुप्' इति नास्ति मै० ।
१५ सूत्रव्याख्या नास्ति मै० ।

रथो अश्विना । कक्षीवान् । त्रिष्टुप् । अश्विनौ[1] ॥६॥

[११९] आ वां रथं दश जागतम् ॥७॥

पुरुमायम् । कक्षीवान् । जगती । अश्विनौ[1] ॥७॥

[१२०] का राधद् द्वादशान्त्या दुःस्वप्ननाशिन्याद्या गायत्री द्वितीया ककुप् तृतीयाचतुर्थ्यौ काविराण्नष्टरूप्यौ पञ्चमी तनुशिरा षष्ठ्यक्षरैरुष्णिग् विष्टारबृहती कृतिर्विराट् तिस्रो गायत्र्यः ॥८॥

होत्रा ।[2] अश्विदेवत्यम् । कक्षीवान् । अथ स्वप्नस्य निर्विद[3] इत्यन्त्या दुःस्वप्ननाशिनी दुःस्वप्नजनितदोषदुःखं नाशयति परिहरतीत्यर्थः । अत्राद्या गायत्री त्रिपदा । द्वितीया ककुबुष्णिक् । अष्टकद्वादशाष्टकवती । मध्यमश्चेत् ककुब्[4] इत्युक्तम् । तृतीयाचतुर्थ्यौ द्वे क्रमेण काविराण्नष्टरूप्यौ । तत्र नवकद्वादशनवकवती । नवकयोर्मध्ये जागतः का विराड्[5] इत्युक्तम् तत्र नष्टरूपी नवदशत्रयोदशवती । नववैराजत्रयोदशैर्नष्टरूपीत्युक्तम्[6] । पञ्चमी तनुशिरा । द्व्येकादशषट्कवती । एकादशिनोः परः षट्कस्तनुशिरेत्युक्तम्[7] । षष्ठ्यक्षरैरुष्णिक् । षष्ठी ऋगष्टाविंशत्यक्षरसंख्ययोष्णिक्त्वं संपादनीयं न तु पादभेदात् । अथ सप्तमी युवं ह्यास्तमिति व्यूहेन विष्टारबृहती अष्टकद्विदशकाष्टकवती । अष्टिनोर्मध्ये दशकौ विष्टारबृहतीत्युक्तम् ।[8] अथाष्टमी कृतिरनुष्टुप् । द्विद्वादशाष्टकवती । जागतावष्टकश्च कृतिरित्युक्तम्[9] । अथ नवमी दुहीयन्नित्येषा विराट् । एकादशत्रयवती । दशकास्त्रयो विराट्, एकादशका वेत्युक्तम्[10] । अथ दशम्याद्यास्तिस्रो गायत्र्यः । [11][आदितो द्वे गायत्र्यौ । अथ द्वे अनुष्टुभौ । अथोष्णिहौ । द्वृचा इति षड्गताः । अथवा विद्वांसाविद्दुर[12] इत्येषोष्णिक् । ननु च—चतुर्विंशतिर्गायत्र्यष्टाविंशतिरुष्णिगिति लक्षणमुक्तम्[13] । तत् किं विद्वांसाविद्दुर इत्यस्य गायत्रीत्वम् उष्णिक्त्वं वोच्यते ? इयं हि पञ्चविंशत्यक्षरा । किं च—ऊनाधिकेनैकेनेति[14] सूत्रे भुरिगायत्र्युदाहरणं चैषेत्युक्तम् । उच्यते—ब्राह्मण-

---

१. सूत्रव्याख्या नास्ति मै० ।
२. सूत्रव्याख्या नास्ति पु० १, व्यस्ता च सा गो० । बहुत्रपाठस्त्यक्तो मै० ।
३. ऋ० १।१२०।१२॥
४. का० सर्वा० परि० ५।३॥
५. का० सर्वा० परि० ६।५॥
६. का० सर्वा० परि० ६।६॥
७. का० सर्वा० परि० ५।५॥
८. का० सर्वा० परि० ७।५॥
९. का० सर्वा० परि० ६।३॥
१०. का० सर्वा० परि० ६।७-८॥
११. कोष्ठाकान्तर्गत. पाठो मैक्डानलमनुसृत्य गृहीतः । तत्र तस्य टिप्पण्यनुसन्धेया ।
१२. ऋ० १।१२०।२॥
१३. द्र०—का० सर्वा० परि० ३।२-३॥
१४. का० सर्वा० परि० ३।४॥ तत्रैव वेदार्थदीपिका च ।

द्वयदर्शनादेवमुक्तम् । व्यूहेन चाक्षरसम्पत्तिः । सर्वश्रुतिदर्शी ह्ययमाचार्यः । आसां तृतीयादितिसृणांताननुक्रामन्त एवोदाहरिष्याम[1] इति वचनात् काविराडादिविशेषण एव वाच्ये पूर्वविकल्पेन गायत्रानुष्टुभौष्णिहा द्वृचा इति वचनं सामान्यसंज्ञाविज्ञाता अदृष्टफलप्रदा इति वक्तुम् ।] ।।८।।

[१२१] कदित्था पञ्चोना वैश्वदेवं वा ।।९।।

नॄः पात्रम् । पञ्चदश । इन्द्रो वा विश्वेदेवा वा तत्र देवताः । वेत्यनादेशसिद्धै-न्द्रत्वार्थं नाश्विनविकल्पार्थम् । आश्विनं वा[2] इति पञ्चसूत्रान्वयस्य पूर्वत्रैव पूर्णत्वा-न्निवृत्तौ हि तौ ।।९।।

।। इत्यष्टमोऽध्यायः ।।८।।

---

[९]

[१२२] प्र वो वश्वदेवमा वो विराड्रूपे । १।।

पञ्चोनेत्येव । पान्तं रघुमन्यवोऽन्धः । त्रिष्टुप् । कक्षीवान्[3] । आ वो रुवण्युम्[4] इति विराड्रूपे एकादशिनस्त्रयोऽष्टकश्च विराड्रूपेति[5] ह्यु क्तलक्षणे[3] । प्र वश्चेति विश्वेदेवानुकर्षणं चकारेण न कृतम् । वेत्यनुवृत्तिर्मा भूदिति ।।१।।

[१२३] पृथुः सप्तोनापस्यं तु ।।२।।

रथो दक्षिणायाः । त्रयोदश । उषस्यं तु । इदमादि द्वे सूक्ते उषोदेवत्ये । त्रिष्टुप् । कक्षीवान्[6] ।।२।।

[१२४] उषा उच्छन्ती ।।३।।

सप्तोनेत्येव । समिधाने । त्रिष्टुप् । कक्षीवान् । उषाः[6] ।।३।।

[१२५] प्राता रत्नं सप्त स्वनयस्य दानस्तुतिरुप जगत्यौ ।।४।।

प्रातरित्वा[7] । राज्ञां च दानस्तुतय[8] इति स्वनयस्य राजत्वम् । तस्येन्द्रसखस्य दानं प्रस्तूयते कक्षीवता । उप क्षरन्ति सिन्धव[9] इति द्वे जगत्यौ । शिष्टाः पञ्च त्रिष्टुभः[7] ।।४।।

---

१. का० सर्वा० परि० ३।८।।
२, द्र०—का०सर्वा० ८।४।।
३. 'पञ्चो···वान्' 'एका लक्षणे' इति नास्ति मै० ।
४. ऋ० १।१२२।५।६।।
५. का० सर्वा० परि० ९।६।।
६. सूत्रव्याख्या नास्ति मै० ।
७. 'प्रातरित्वा' 'शि···ष्टुभः' इति नास्ति मै० ।
८. का० सर्वा० २।२३ ।
९. ऋ० १।१२५।४-५।।

[१२६] अमन्दान्निति कक्षीवान् दानतुष्टः पञ्चभिर्भावयव्यं तुष्टावान्त्ये अनुष्टुभौ भावयव्यरोमशयोर्दम्पत्योः संवादः ॥५॥

स्तोमान् प्र भरे। सप्तेत्येव। इति शब्द आद्यर्थे। दानेन तुष्टः कक्षीवान् भावयव्यं स्वनयं पञ्चभिर्ऋग्भिस्तुष्टाव। भावयव्य इति स्वनय[1] एवोच्यते तत्पुत्रत्वात्। यथा—आ रुद्रासः[2] इति रुद्रपुत्रा मरुतः। उप मा श्यावाः स्वनयेन दत्ता[3] इति दर्शनात्। अयमेव हि तत्र सूक्ते सिन्धावधि क्षियतो भाव्यस्येति[4] प्रस्तुतः। लाघवाय तमस्तौदिति वाच्ये भावयव्यं तुष्टावग्रहणम् अनुक्रमण्येतरानुकरणम्। तथैव कक्षीवान् ग्रहणम्। प्रकृतत्वात् तस्यैव हि कर्तृत्वं सिद्धं भवति। आगधितोपोप म इति षष्ठीसप्तम्यावनुष्टुभौ[5]। ते च[6] भावयव्यरोमशयोर्दम्पत्योर्जायापत्योः संवादः सरसवाक्यप्रबन्धः[7]। रोमशेति स्वनयभार्याया हि नाम। या तेनोच्यते सा देवतेति[8] संवादेषु सर्वत्र वक्तृप्रतिसम्बन्धिनोर्देवतात्वमिति—आगधितेत्यस्या रोमशा देवता, उपोप म इत्यस्या भावयव्यः[9]। यस्य वाक्यं स ऋषिरिति[10] वक्त्रोरनयोरेवर्षित्वम् ॥५॥

[१२७] अग्निमेकादश परुच्छेपो दैवोदासिराग्नेयं तु पारुच्छेपं सर्वमत्यष्टं तत्रातिधृतिः षष्ठी ॥६॥

होतारं मन्ये[11]। दिवोदासस्य राज्ञः पुत्रो दैवोदासिः। अत इञ्[12]। परुच्छेपो नाम ऋषिः[13]। इदमादि द्वे सूक्ते अग्निदेवत्ये[11]। पारुच्छेपं परुच्छेपराजर्षिदृष्टं सर्वं प्राग् वेदिषद[14] इत्यस्मादात्यष्टम्—अत्यष्टिच्छन्दसा व्याप्तम्। अष्टषष्टिरत्यष्टिरित्युक्तम्[11]। तत्र पारुच्छेपेऽतिधृतिः षष्ठी। स हि शर्ध[15] इत्येषा षट्सप्तत्यक्षरा[11]। पारुच्छेपमात्यष्टमित्यस्मिन्नसत्यनादेशे त्रिष्टुप्त्वं स्यात्। बहुश उक्तौ च गुरुत्वं स्यात्। सर्वमित्यसति प्र सु सप्त मैत्रावरुणं त्वं त्ये लिङ्गोक्तदेवत्ये अन्त्या त्रिष्टुब्[16] इति[17] शिष्टानां जगतीत्वं स्यात् ॥६॥

---

१. तु०—शां० श्रौ० १६।११।५॥ २. ऋ० ५।५७।१
३. ऋ० १।१२६।३॥ ४. ऋ० १।१२६।१
५. 'आ…भौ' इति नास्ति मै०।
६. 'ते च' इति नास्ति पु० १, पु० २। 'तेन' इति गो०।
७. 'संबन्धः' इति पु० २। ८. का० सर्वा० परि० २।५॥
९. 'आ…यव्यः' इति नास्ति मै०। १०. का० सर्वा० परि० २।४॥
११. 'हो…मन्ये' 'इद…देवत्ये' 'अष्ट…क्तम्' 'स…क्षरा' इति नास्ति मै०।
१२. अष्टा० ४।१।९५॥ १३. 'राजर्षिः' इति पु० १, पु० २।
१४. का० सर्वा० १०।४॥ १५. ऋ० १।१२७।६॥
१६. का० सर्वा० ९।१५॥ १७. 'इति' इति नास्ति पु० १, पु० २, गो०।

[१२८] अयं जायताष्टौ ।।७।।

मनुषो वरीमणि । परुच्छेपः । अत्यष्टिः । अग्निः[१] ।।७।।

[१२९] यं त्वमेकादश षष्ठचैन्दवी प्र प्रा वोऽतिशक्कर्यावष्टिरन्त्या ।।८।।

रथमिन्द्र[२] । षष्ठी प्र तद् वोचेयम्[२] इत्येषेन्दुदेवत्या । इन्दोर्देवताण्योर्गुणो[३] ङीप् । प्र प्रा वो अस्मे स्वयशोभिरिति[४] द्वे अतिशक्वर्यौ षष्टचक्षरैः । पाहि न इत्यन्त्याष्टिः[२] । अष्टेः सर्वतोऽक्तिन्नर्थादित्येक[५] इति न ङीष् । अन्त्येन्द्र याहीत्यादि पररूपम्[६] । समिधाग्नि दुवस्यतेह्यू षु व्रवाणि त[७] इति सूत्रे दर्शनात् ।।८।।

[१३०] एन्द्र याहि दशान्त्या त्रिष्टुप् ।।९।।

उप नः । दशमी त्रिष्टुप् । परुच्छेपः । अत्यष्टिः । इन्द्रः[८] ।।९।।

[१३१] इन्द्राय सप्त ।।१०।।

हि द्यौः । परुच्छेपः । अत्यष्टिः । इन्द्रः[८] ।।१०।।

[१३२] त्वया षड् ऐन्द्रापार्वतोऽर्धर्चः ।।११।।

वयं मघवन्[९] । युवं तमिन्द्रापर्वतेत्यर्धर्च इन्द्रापर्वतदेवत्यः । इन्द्रश्च पर्वतश्चेति देवताद्वन्द्वे चेत्यानङ्[१०] । अण्यादिवृद्धिः, उभयपदवृद्धिर्न[११] च्छन्दोवद्भावात् । परुच्छेपः । अत्यष्टिः । इन्द्रः[९] ।।११।।

[१३३] उभे सप्तादौ त्रिष्टुप् तिस्रोऽनुष्टुभो गायत्री धृतिः ।।१२।।

पुनामि रोदसी[१२] । आदौ त्रिष्टुवेका । अथ तिस्रोऽनुष्टुभः । अथ पिशङ्ग-

---

१. सूत्रव्याख्या नास्ति मै० ।

२. 'रथमिन्द्र' 'प्र...त्येषा' 'षष्टच...ष्टिः' इति नास्ति मै० ।

३. अष्टा० ६।४।१४६।।

४. अष्टमीनवम्यावृचौ ।

५. काशिका ४।१।४५ गणसूत्रम् ।।

६. अग्रिमनवमसूत्रस्थ 'एन्द्र' शब्देनेत्यर्थः ।

७. आश्व० श्रौ० २।८।७।।

८. सूत्रव्याख्या नास्ति मै० ।

९. 'व...वन्' 'परु...इन्द्रः' नास्ति मै० ।

१०. अष्टा० ६।३।२६।।

११. 'उत्तरपदवृद्धिर्न०' इति गो०, मै० । 'उभयपदवृद्धिश्छ०' इति पु० २ । अत्र देवताद्वन्द्वे च (अष्टा० ७।३।२१) इत्युभयपदप्राप्ता वृद्धिश्छान्दसत्वान्न प्रवृत्तेत्युत्सर्गप्रवृत्तिरित्यर्थः । अनेन सूत्रे 'ऐन्द्रापर्वत' इत्येव न्याय्यं पाठं मेने षड्गुरुशिष्य इति स्पष्टम् ।

१२. 'पु सी' इति नास्ति मै० ।

भृष्टिमिति[1] गायत्री। अथावर्मह इन्द्रेतीयं धृतिः द्वासप्तत्यक्षरा। वनोति[1] हीत्यत्यष्टिः, अनुक्तेः। इन्द्रः। परुच्छेपः[1]। प्रथमातिक्रमे हेत्वभावादादाविति विस्पष्टार्थम् ॥१२॥

[१३४] आ त्वा षड् वायव्यं त्वन्त्याष्टिः ॥१३॥

जवो रारहाणाः। इदमादि द्वे सूक्ते वायुदेवत्ये। अन्त्याष्टिः। आदितः पञ्चात्यष्टयः। परुच्छेपः[2] ॥१३॥

[१३५] स्तीर्णं नव चतुर्थ्याद्याः पञ्चैन्द्रयश्चोपान्त्ये अष्टी। १४॥

वर्हिरुप नः[3]। चतुर्थ्याद्या अष्टम्यन्ताः पञ्चेन्द्रदेवत्याः। चकाराद् वायव्यश्च। उपान्त्ये सप्तम्यष्टम्यावष्टी। शिष्टा अत्यष्टयः। आदितस्तिस्रोऽन्त्या च शुद्धवायव्याः। परुच्छेपः[3] ॥१४॥

[१३६] प्र सु सप्त मैत्रावरुणं त्वन्त्ये लिङ्गोक्तदेवत्ये अन्त्या त्रिष्टुप् ॥१५॥

ज्येष्ठं निचिराभ्याम्। इदमुत्तर च द्वे सूक्ते मित्रावरुणदेवत्ये। दीर्घाच्च वरुणस्येत्यण्युत्तरपदवृद्धिप्रतिषेधः[4]। अन्यत्र[5] दीर्घत्वम्[6]। अन्त्ये षष्ठीसप्तम्यौ स्वसामर्थ्यप्रतिपादितदेवतायुक्ते। सप्तमी त्रिष्टुप्। शिष्टा अत्यष्टयः। पारुच्छेपं सर्वमात्यष्टम्[7] इत्यत्र सर्वग्रहणान्नात्र शिष्टानां जगतीत्वमाशङ्कनीयम्। परुच्छेपः[8] ॥१५॥

॥ इति नवमोऽध्यायः ॥९॥

---

[१०]

[१३७] सुषुम तृचमतिशाक्वरम् ॥१॥

आयातम्। यस्मिन् सूक्त ऋचस्तिस्रस्तत् तृचं सूक्तमित्युच्यते[9]। षष्ट्यक्षरातिशक्वरी। तस्येदम्[10] अण्युत्तरपदवृद्धिश्छान्दसी। मित्रावरुणौ। परुच्छेपः[9] ॥१॥

---

१. 'पिशङ्ग मिति' 'द्वा हीति' 'अनु···छेपः' इति नास्ति मै०।
२. सूत्रव्याख्या नास्ति मै०।
३. 'ब ··नः' 'परुच्छेपः' इति नास्ति मै०। ४. अष्टा० ७।३।२३॥
५. देवताद्वन्द्वे च (अष्टा० ६।३।२६) इत्यानङि सतीत्यर्थः।
६. 'ज्ये···त्वम्' 'परुच्छेपः' इति नास्ति मै०। ७. का० सर्वा० ९।६॥
८. 'परुच्छेपः' इति नास्ति मै०।
९. 'आ ··च्यते' 'मित्रा···च्छेपः' इति नास्ति मै०। १०. अष्टा० ४।३।१२०॥

[१३८] प्रप चतुष्कं पौष्णम् ।।२।।

पूष्णस्तुविजातस्य । चतुष्कं[1] चतुर्ऋचम् । संख्याया अतिशदन्तायाः कन्[2] । पूषदेवत्यम् । परुच्छेपः । अत्यष्टिः[1] ।।२।।

[१३९] अस्तु श्रौषडेकादश वैश्वदेवी मैत्रावरुण्याश्विन्यस्तिस्र ऐन्द्र्याग्नेयी मारुत्यैन्द्राग्नी बार्हपत्या वैश्वदेव्यन्त्या त्रिष्टुप् पञ्चमी बृहती वैश्वदेवमेतद् एवमन्यासामपि सूक्तप्रयोगे वैश्वदेवत्वं सूक्तभेदप्रयोगे यल्लिङ्गं सा देवता ।।३।।

पुरो अग्निम्[3] । आद्या वैश्वदेवी । अथ मैत्रावरुणी । अथ तिस्रोऽश्विदेवत्याः । ऐन्द्री षष्ठी । सप्तम्याग्नेयी । अष्टमी मारुती । नवम्यैन्द्राग्नी । दशमी बार्हस्पत्या । एकादशी वैश्वदेवी । अन्त्या त्रिष्टुप् । पञ्चमी बृहती । अन्या अत्यष्टयः । परुच्छेपः[3] ।

वैश्वदेवमेतत्[3] । एतत् सूक्तं वैश्वदेवम् । तर्हि मैत्रावरुण्यादिबार्हस्पत्यान्तः प्रत्यृचं देवतानिर्देशः किमर्थमित्याशङ्क्य परिहारत्वेन पुरस्ताच्चैभिर्वैश्वदेवम्[4] अग्निरुक्थे द्व्यधिका मनुर्वैवस्वतो वैश्वदेवं हेति[5] च प्रोच्यमानवैश्वदेवशब्दस्यार्थमाह—एवमन्यासामपि सूक्तप्रयोगे वैश्वदेवत्वं सूक्तभेदप्रयोगे यल्लिङ्गं सा देवता[3] ।

अन्यासामन्यदेवतासंबन्धिनीनामप्यृचां सूक्तप्रयोगे सूक्तरूपविनियोगे सत्यन्यत्राप्येवं वैश्वदेवत्वं वेदितव्यम् । सूक्तभेदप्रयोग ऋग्रूपविनियोगे[6] यल्लिङ्गं विनियुक्ताया ऋचोऽर्थेन यत् प्रतिपादितं सा तस्या देवता । अत ऐभिरग्ने दुव[7] इति वैश्वदेवमिति[8] सूत्रितम् । सूक्तविनियोगे[9] वैश्वदेवमिदम् । अत्रैव विश्वेभिः सोम्यं मध्विति[10] याज्येत्यृग्रूपविनियोगेऽस्या अग्निदेवतात्वं भवति । यथा बभ्रुरेक[11] इति द्विपदासूक्तानीत्यत्र[12] वैश्वदेवत्वम् । अस्या एव बभ्रुरित्यनुक्रमण्याम् ऋग्रूपे विनियोगे[9] सोमदेवत्यम् । ऐभिर्वैश्वदेवमित्यादित एवास्मिन्नर्थे वाच्येऽप्यत्र वचनं बहुदेवता-

१. 'पूष्ण ···ष्कं' 'पूष···ष्टिः' इति नास्ति मै० । २. अष्टा० ५।१।२२।।

३. 'पु···ग्निम्' 'परुच्छेपः' 'वै···तत्' 'एव ··देवता' इति नास्ति मै० ।

४. का० सर्वा० १।१८।। ५. का० सर्वा० ४२।७।।

६. 'ऋग्रू···योगे' इति नास्ति पु० १, पु० २ । ७. ऋ० १।१४।१।।

८. आश्व० श्रौ० ८।६।५।।

९. 'वैश्वदेवमिति सूक्ते त्र विहिते सूक्तविनियोगे सोमदेवत्यं' इति पु० १; पु० २ । 'सूक्तविनियोगे' इति 'विनियोग' इति चानयोर्मध्यवर्त्तिपाठस्त्यज्यते पु० १, पु० २ ।

१०. ऋ० १।१४।१०।। आश्व० श्रौ० ५।१०।१०।। ११. ऋ० ८।२६।।

१२. आश्व० श्रौ० ८।७।२४।।

संभवाद्[1] अनुक्रमण्यन्तरानुकरणार्थं[2] चेत्याहुः[3] । अत्यष्टयधिकारो निवृत्तः ॥३॥

[१४०] वेदिषदे सप्तोना दीर्घतमा औचथ्य आग्नेयं तु द्वित्रिष्टुबन्तं तु त्रिष्टुब् दशमी वा ॥४॥

प्रियधामाय । त्रयोदश[4] । दीर्घतमा नामौचथ्य उचथपुत्रः[5] । अनन्तरापत्ये गोत्रत्वारोपाद् गर्गादि[6] यञ्—शाक्त्यः पराशरः, पाराशर्यो व्यासः, जामदग्न्यो राम इति[7] । उचथ्यादृष्यन्धेत्यण्[8] वा । इदमादि द्वे सूक्ते अग्निदेवत्ये[9] । द्वित्रिष्टुबन्तं तु । द्वे त्रिष्टुभावन्ते ययोः सूक्तयोस्ते इमे इदं चोत्तरं च । त्रिष्टुब् दशमी वा पक्षे । शिष्टा जगत्य इत्यपवादः । शिष्टा दश नित्यं जगत्यः ॥४॥

[१४१] वळित्था ॥५॥

सप्तोनेत्येव । तद् वपुषे । द्वित्रिष्टुवन्तम् । आग्नेयम् । एकादशादितो जगत्यः । दीर्घतमाः[9] ॥५॥

[१४२] समिद्ध आप्रिय आनुष्टुभन्त्यैन्द्री ॥६॥

अग्न आ वह । सप्तोनेत्येव[10] । एतेनान्यान्युक्तदैवतानीत्युक्तत्वाद्[11] इध्माद्या देवताः[12] । आनुष्टुभम् अनुष्टुप्छन्दस्कं सूक्तम्[10] । इन्द्रदेवत्या त्रयोदशी । नराशंसतनूनपाद्युक्तमिदं सूक्तमाप्रिय इत्युक्तेः । आप्रशब्दोक्तौ हि तनूनपाद्वर्जम्[13] । दीर्घतमाः[10] ॥६॥

[१४३] प्र तव्यसीमष्टावाग्नेयं तु तत् त्रिष्टुबन्तम् ॥७॥

नव्यसीं धीतिम्[14] । तुह्यादिसूत्रेण[15] तु द्वे तत् षडिति तु तदित्यष्ट । इदमादी-

---

१. 'बह्वन्यदेवतासहावाद्' इति पु० १ । 'बह्वन्यदेवतासाहचर्याद्' इति पु० २ ।
२. 'क्रमण्यनुकरणं' इति पु० १, पु० २ । ३. 'चेत्याह' इति पु० १, पु० २ ।
४ 'प्रि···दश' 'इद त्ये' इति नास्ति मै० ।
५. 'उचथ्यपुत्रः' इति पु० १, पु० २, गो० । ६. अष्टा० ४।१।१०५॥
७. 'अन···इति' इति नास्ति पु० १, पु० २ ।
८. 'उचथ्यादृष्यण्' इति पु० १, पु० २ । तु०—अष्टा० ४।१।११४॥
९. सूत्रव्याख्या नास्ति मै० ।
१०. 'अग्न···त्येव' 'आनु ··सूक्तम्' 'दीर्घतमाः' इति नास्ति मै० ।
११. का० सर्वा० १।१६॥ १२. 'सदेवत्या' इति गो० ।
१३. तु०—का० सर्वा० १।१७॥
१४. 'नव्य···तिम्' इति नास्ति मै० ।
१५. का० सर्वा० परि० १२।३॥

न्यष्टसूक्तान्यग्निदेवत्यानि । अष्टेत्यष्टाविति[1] वाच्ये लाघवाय तु तदित्युक्तम् । द्व्यक्षरत्वे समेऽपि मात्राधिक्यात् । तु तदिति हि मात्राः सार्धास्तिस्रः, अष्टेति चतस्रः, अष्टाविति पञ्च । किं च– तुंतदित्यसत्याग्नेयानीति स्यात् । तच्च गुरु । त्रिष्टुबन्तम्— अष्टमी त्रिष्टुप् । शिष्टा आदितः सप्त जगत्यः । दीर्घतमाः[2] ॥७॥

[१४४] एति प्र सप्त जागतम् ॥८॥

होता व्रतम् । सप्तापि जगत्यः । अग्निः । दीर्घतमाः[3] ॥८॥

[१४५] तं पृच्छत पञ्चान्त्या त्रिष्टुप् ॥९॥

स जगाम । आदौ चतस्रो जगत्यः । अग्निः । दीर्घतमाः[3] ॥९॥

[१४६] त्रिमूर्धानम् ॥१०॥

पञ्चेत्येव । सप्त रश्मिम् । त्रिष्टुप् । दीर्घतमाः । अग्निः[3] ॥१०॥

[१४७] कथा ॥११॥

पञ्चेत्येव । त अग्ने । त्रिष्टुप् । दीर्घतमाः । अग्निः[3] ॥११॥

[१४८] मथीयत् ॥१२॥

ई विष्टः । पञ्चेत्येव । दीर्घतमाः । त्रिष्टुप् । अग्निः[3] ॥१२॥

[१४९] मह्नः स वैराजम् ॥१३॥

पञ्चेत्येव । राय एष ते । विराट्छन्दस्कम् । दशकास्त्रयो विराट्, एकादशका[4] वेत्युक्तं हि । अग्निः । दीर्घतमाः[3] ॥१३॥

[१५०] पुरु तृचमौष्णिहम् ॥१४॥

त्वा दाश्वान् । तिस्र ऋचो यत्र सूक्ते तत् तृचमुच्यते । उष्णिक्छन्दस्कम् । दीर्घतमः । अग्निः[3] ॥१४॥

[१५१] मित्रं नव मत्रावरुण हि जागतं मैत्राद्या ॥१५॥

यं शिम्या । इदमादीनि त्रीणि सूक्तानि मित्रावरुणदेवत्यानि । आद्या मित्र देवत्या । नवापि जगत्यः । दीर्घतमाः[3] ॥१५॥

[१५२] युवं सप्त ॥१६॥

वस्त्राणि । त्रिष्टुप् । मित्रावरुणौ । दीर्घतमाः[3] ॥१६॥

---

१. 'अष्टाविति' इत्येव पु० २, गो० ।
२. 'त्रिष्टु···तमाः' इति नास्ति मै० ।
३. सूत्रव्याख्या नास्ति मै० ।
४. का० सर्वा० परि० ६।७-८॥

[१५३] यजामहे चतुष्कम् ॥१७॥

वां महः। चतुर्ऋचम्। मित्रावरुणौ। दीर्घतमाः[1] ॥१७॥

[१५४] विष्णोः षड् वैष्णवं हि ॥१८॥

नु कम्। इदमादीनि त्रीणि सूक्तानि विष्णुदेवत्यानि। त्रिष्टुप्। दीर्घतमाः[1] ॥१८॥

[१५५] प्र वो जागतं त्वैन्द्र्याद्यस्तृचः ॥१९॥

षडित्येव। पान्तम्। इदमादि द्वे सूक्ते जगतीछन्दस्के[2]। अत्रादितस्तिस्र ऐन्द्र्यः। चकाराद् वैष्णव्यश्च। उत्तरस्तृचो वैष्णव एव ॥१९॥

[१५६] भव पञ्च ॥२०॥

मित्रो नः। विष्णुः। जगती। दीर्घतमाः[1] ॥२०॥

[१५७] अबोधि षडाश्विनं त्वन्त्ये त्रिष्टुभौ ॥२१॥

अग्निः। इदमादि द्वे सूक्ते अश्विदेवत्ये। पञ्चमीषष्ठ्यौ त्रिष्टुभौ। आदितश्चतस्रो जगत्यः। दीर्घतमाः[1] ॥२१॥

॥ इति दशमोऽध्यायः ॥१०॥

---

[११]

[१५८] वसू अन्त्यानुष्टुप् ॥१॥

षडित्येव। रुद्रा[3]। वसू ईदूदेदिति[4] प्रगृह्यत्वम्। त्रिष्टुप्। षष्ठ्यनुष्टुप्। दीर्घतमाः[3] ॥१॥

[१५९] प्र द्यावा पञ्च द्यावापृथिवीयं तु जागतं तु ॥२॥

यज्ञैः। इदमादि द्वे सूक्ते द्यावापृथिवीदेवत्ये जगतीछन्दस्के च। दीर्घतमाः[1] ॥२॥

[१६०] ते हि ॥३॥

पञ्चेत्येव। द्यावापृथिवी। दीर्घतमाः। जगती। द्यावापृथिव्यौ[1] ॥३॥

---

१. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै०। २. 'षडि···छन्दस्के' इति नास्ति मै०।
३. 'षडि द्रा' 'त्रि··तमाः' इति नास्ति मै०।
४. 'ऊदिति' इति मै०। 'ऊ इति' इति पु० १, 'सू इति' इति पु० २। 'क ईदूदेदिति' इति गो०। तु०—अष्टा० १।१।११॥

[१६१] किमु श्रेष्ठः षड्नार्भवं त्रिष्टुबन्तम् ।।४।।

किं यविष्ठः । चतुर्दशर्चम् । ऋभुदेवत्यम् । अन्त्या त्रिष्टुप् । आदितस्त्रयोदश जगत्यः । दीर्घतमाः[1] ।।४।।

[१६२] मा नो द्व्यधिकाश्वस्तुतिस्तु तृतीयाष्ठ्यौ जगत्यौ ।।५।।

मित्रः । द्वाविंशतिः[2] । अनेनोत्तरेण च सूक्तेनाश्वमेधिकोऽश्वः स्तूयते । कुतः ? षड्विंशतिरस्य वङ्क्रय इति वा मा नो मित्र इत्यावपेत[3] तमवस्थितमुपाकरणाय यदक्रन्द[4] इत्येकादशभिः स्तौतीति[5] च सूत्रे दर्शनात् । अश्वस्तुतिरिति करणे क्तिन् । तृतीयाषष्ठ्यौ जगत्यौ । विंशतिस्त्रिष्टुभः । दीर्घतमाः[2] ।।५।।

[१६३] यदक्रन्दः सप्तोना ।।६।।

प्रथमम् । त्रयोदश । दीर्घतमाः । त्रिष्टुप् । अश्वस्तुतिः[1] ।।६।।

[१६४] अस्य द्विपञ्चाशदल्पस्तवं त्वेतत् संशयोत्त्थापनप्रश्नप्रतिवाक्यान्यत्र प्रायेण ज्ञानमोक्षाक्षरप्रशंसा च पञ्चपादं साकंजानां यद् गायत्रेऽयं स शिङ्क्ते सप्तार्धगर्भा गौरीति जगत्यः । एतदन्तं वैश्वदेवम् । तस्याः समुद्रा इति वाचः समुद्रा आपोऽक्षरं सा प्रस्तारपङ्क्तिः शकमयमिति शकधूम उक्षाणं पृश्निमिति सोमस्त्रयः केशिन इत्यग्निः सूर्यो वायुश्च केशिनश्चत्वारि वाग्वाच इन्द्रं मित्रं सौर्यौ द्वादशेति संवत्सरसंस्थं कालचक्रवर्णनं यस्ते सरस्वत्यै यज्ञेन साध्येभ्यः परानुष्टुप् सौरी पर्जन्याग्निदेवता वान्त्या सरस्वते सूर्याय वा ।।७।।

वामस्य[6] । द्विपञ्चाशत्—द्वे पञ्चाशच्च । विभाषा चत्वारिंशत्प्रभृतौ सर्वेषाम्[7] इत्यात्वं विकल्प्यते । अल्पा स्तुतिः स्तवो यस्मिन्नेतत् सूक्तमल्पस्तवम् । अन्येष्वसन्नल्पस्तुतिविशेषस्तुशब्देन[8] द्योत्यते, न द्वित्वम्, अस्यर्ष्यादिभिरयोगात् । अत्र सूक्ते प्रायेण बाहुल्येन संशयोत्त्थापनप्रश्नप्रतिवाक्यानि सन्ति । संशय उत्त्थाप्यते येन तत्

---

१. सूत्रव्याख्यात्यक्ता मै० । २. 'मि…तिः' 'अश्व…तमा.' इति नास्ति मै० ।
३. आश्व० श्रौ० १०।८।७।। ४. ऋ० १।१६३।। ५. आश्व० श्रौ० १०।८।५।।
६. 'वामस्य' इति नास्ति मै० । ७. अष्टा० ६।३।४९।।
८. 'अन्यत्सूक्तेष्वसत् अल्पस्तुतियोगित्वं विशेष०' इति पु० १, पु० २, गो० ।

संशयोत्त्थापनम्—अचिकित्वाञ्चिकितुष[1] इत्यादि। प्रश्नः—पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्या[2] इत्यादि। प्रतिवाक्यम्—इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या[3] इत्यादि। ज्ञान-मोक्षाक्षरप्रशंसा च प्रायेणास्ति। ज्ञानमोक्षाक्षराणां प्रशंसा चात्र क्वचिदस्तीत्यर्थः। तत्र ज्ञान प्रशंसा—य ईं चकार न सो अस्येत्यादि[4]। मोक्षो ब्रह्मसाक्षात्कारः। तस्य प्रशंसा—अपश्यं गोपामित्यादि[5]। अक्षरं ब्रह्म[6] न क्षरतीति।

क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते।
अक्षरं ब्रह्म परमिति[7] गीतोपनिषच्छ्रुतेः[8]॥

तस्य प्रशंसा—द्वा सुपर्णेत्यादि[9]।

पञ्चपादं पितरम्[10], साकंजानां सप्तथमाहुः[11], यद्गायत्रे अधि[12], अयं स शिङ्क्ते येन गौः[13], सप्तार्धगर्भा भुवनस्य रेतः[14], गौरीर्मिमाय सलिलानाति[15] जगत्यः। शिष्टास्त्रिष्टुभः। एतदन्तम्—गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षतीत्येतदन्तं वैश्वदेवमिति। श्रूयते ह्यारण्यके—अस्य वामस्य पलितस्य होतुरिति वैश्वदेव[16] बहुरूपं वा एतदहरेतस्याह्नो रूपं गौरीर्मिमाय सलिलानीत्येतदन्तमिति[17] सूत्र्यते[18]। वैश्वदेवान्निविद्धानादस्य वामस्य पलितस्य होतुरिति सलिलस्य दैर्घतमस एकचत्वारिंशतमिति[19]।

अथ तस्याः समुद्रा[20] इत्यादिना व्याचक्षाणो देवता दर्शयति—अधि वि क्षरन्ति[20]। इतिशब्दोऽत्रेत्यर्थे। समुद्रा इत्युक्ता वाचः। वाचो जस्। आपोऽक्षरम्। ततः क्षरत्यक्षरमित्यक्षरशब्देनाप उच्यन्त इत्यर्थः। तेनाद्योऽर्धर्चो वाग्देवत्यः। द्वितीयोऽब्देवत्यः। सा तस्या[21] इत्यादिकर्क प्रस्तारपङ्क्तिः। द्वा आदितो द्वादशकौ द्वावष्टकावित्यर्थः।[21] शकमयं धूममारादपश्यम्[22] इत्यर्धर्चेन शकधूमः। शकधूम उच्यते। उक्षाणं पृश्निमपचन्तेत्यर्धर्चेन[22] सोम इत्युच्यते। तेन शकमयमित्यस्या ऋचः शकधूमसोमौ देवते। त्रयः केशिन ऋतुथा[23] इत्यत्राग्निः सूर्यो वायुश्च केशिन इत्युक्ताः।[24]

---

१. ऋक् ६। २. ऋक् ३४। ३. ऋक् ३५। ४. ऋक् ३२।
५. ऋक् ३१। ६. 'ब्रह्म' इति नास्ति पु० १, पु० २।
७. 'परममिति' पु० १, पु० २, गो०। ८. भगवद्गीता ८।३॥
९. ऋक् २०। १०. ऋक् १२। ११. ऋक् १५।
१२. ऋक् २३। १३. ऋ० २९। १४. ऋ० ३६।
१५. ऋ० ४१। १६. '०देवश्चारम्भ' इति पु० १। 'देवं चारम्भ' इति पु० २।
१७. ऐत० आ० १।५।३।७-८॥ १८. द्र०—मै० टिप्पणी (पृ० १८०)।
१९. ऐत० आ० ५।३।२।१४॥ २०. ऋक् ४२।
२१. 'द्वा···त्यर्थः' इति नास्ति मै०। २२. ऋक् ४३। २३. ऋक् ४४।
२४. द्र०—निरुक्त १२।२७॥

एतेनास्या देवता अग्निः सूर्यो वायुश्चेत्येव सिद्धे पुनः केशिन इति वचनमेषां केशिसंज्ञार्थम्। संज्ञा चैकर्चाः कैशिनम्[1] इत्याद्यर्था। चत्वारिवाग्वाच इति—चत्वारि वाक्परिमितेत्येषा[2] वाचं स्तौति। तादर्थ्ये ङे। तेनैषा वाग्देवत्या। इन्द्रं मित्रं सौर्यौ। इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुः[3], कृष्णं नियानम्[4] इत्येते सूर्यदेवत्ये। सूर्याद् देवताद्यणो ङीप्। सूर्यागस्त्ययोश्छे चेति[5] यलोपः। अचि यण्[6]। द्वादशेति संवत्सरसंस्थम्। द्वादश प्रधयश्चक्रमेकम्[7] इत्यनया संवत्सरात्मा सम्यक् स्थितः कल्पः कालरूपचक्रेण[8] वर्ण्यते[9]। संस्थ इति—आतश्चोपसर्गे[10] इति कः। यस्ते सरस्वत्यै। यस्ते स्तनः शशय[11] इत्यनया सरस्वती स्तूयते। तादर्थ्ये ङे। यज्ञेन साध्येभ्यः। यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवा[12] इत्यनया साध्याः स्तूयन्ते। पूर्ववत् साध्येभ्यस्तादर्थ्ये। परानुष्टुप् सौरी। समानमेतदुदकम्[13] इत्येषानुष्टुप् सूर्यदेवत्या, पर्जन्याग्निदेवता वा। पर्जन्यश्चाग्निश्च पर्जन्याग्नी, तौ देवते यस्याः सा वा। अन्त्या सरस्वते सूर्याय वा। दिव्यं सुपर्णम्[14] इत्येषा सरस्वन्तं देवं स्तौति सूर्यं वा। तादर्थ्ये ङेद्वयम्। तत्रानुक्तछन्दस्काः शिष्टाश्चत्वारिंशत् त्रिष्टुभः। दीर्घतमाः[15] ।।७।।

[१६५] कया पञ्चोना संवादोऽगस्त्येन्द्रमरुतां तृतीयाद्ययुजो
मरुतां वाक्यम् अन्त्यस्तृचोऽगस्त्यस्य शिष्टा
इन्द्रस्यैकादशी च मरुत्वांस्त्विन्द्रो देवता ।।८।।

शुभा सवयसः। पञ्चदश[16]। संवादः। केषाम्? अगस्त्येन्द्रमरुताम्। संवादः संभूयभाषणम्। तत्र तृतीयपञ्चमीसप्तमीनवम्यो मरुतां वाक्यम्। त्रयोदशाद्यास्तिस्रोऽगस्त्यस्य वाक्यम्। शिष्टा युज आद्या चैकादशी चेन्द्रस्य वाक्यम्।

संवादेषु च सर्वेषु स ऋषिर्यस्य वाक्यं तत्।
आत्मस्तवेषु य ऋषिर्देवता स एवोच्यते[17] ।।

---

१. का० सर्वा० ६३।१७।। 'केशिन' इति पु० १, पु० २। 'कैशिकम्' इति गो०।
२. ऋक् ४५। ३. ऋक् ४६। ४. ऋक् ४७।
५. महा० वा० ६।४।१४९।। ६. 'सूर्याद्...यण्' इति नास्ति मै०।
७. ऋक् ४८।
८. 'संवत्सरात्मना समक्तः कालचक्ररूपेण' इति पु० १, पु० २। '०कालचक्ररूपेण' इति गो०। ९. 'वर्त्यते' इति पु० १, 'वर्त्तते' इति पु०२। १०. अष्टा० ३।१।१३६।।
११. ऋक् ४९। १२. ऋक् ५०। १३. ऋक् ५१।
१४. ऋक् ५२। १५. 'दीर्घतमाः' इति नास्ति मै०।
१६. 'शु...दश' इति नास्ति मै०।
१७. 'सैषोच्यते' पु० १, पु० २। 'सैव उच्यते' इति गो०।

तेन[1] वाक्येन यः प्रतिपाद्यते[2] स स्याद्[3] देवता ।

तत्रेति[4] देवतानुक्रमण्युपदेशात् । या तेनोच्यते सा देवतेति[5] स्वयमुक्तेश्चागस्त्येन्द्रमरुतां सर्वेषां देवतात्वे प्राप्त आह मरुत्वांस्त्विन्द्रो देवतेति । मरुद्भिस्तद्वानिन्द्रो देवतास्य सूक्तस्य । तृतीयादीत्ययुगुक्तिराद्याया मा भूदिति । एकादशी चेत्युक्तत्वान्मरुतां वाक्यमस्या मा भूदिति । तुशब्दो विशेषार्थः । गुणाद्धि परः श्रूयते । मरुदगस्त्यदेवतानिवृत्तिरूपश्च[6] विशेषः । त्रिष्टुप् छन्दः । यस्य वाक्यं स ऋषिरिति[7] परिभाषया पूर्वोक्तदेवतानुक्रमण्या च वक्तार एव सर्वत्रर्षयः ॥८॥

॥ इत्येकादशोऽध्यायः ॥११॥

---

[१२]

[१६६] तन्वगस्त्यो मारुतं हि द्वित्रिष्टुबन्तं मित्रावरुणयोर्दीक्षितयोरुर्वशीमप्सरसं दृष्ट्वा वासतीवरे कुम्भे रेतोऽपतत् ततोऽगस्त्यवसिष्ठावजायेताम् ॥१॥

पञ्चोनेत्येव । वोचाम[8] । अगस्त्यो नाम मैत्रावरुणिः । कुतः ? वक्ष्यमाणत्वात् । अथागस्त्यस्य गोत्रं वक्तुमिच्छति[9] । मित्रावरुणयोर्दीक्षितयोरुर्वशीमप्सरसं दृष्ट्वा वासतीवरे कुम्भे रेतोऽपतत् ततोऽगस्त्यवसिष्ठावजायेताम् । मित्रश्च वरुणश्चेति देवताद्वन्द्वे चेत्यानङ्[10] । नलोपः तारकादित्वादितच्[11] । ओसि चेत्येकारे[12]ऽयादेशः ।[13] यज्ञार्थं[14] दीक्षणीयेष्टिं कृत्वा स्थितयोः । उर्वशीम् । उरुणा सृष्टा । अशूङ् व्याप्तौ[15] । व्याप्तिश्चात्र सृष्टिरूपा । पृषोदरादिः[16] । बदर्याश्रमवासिना भगवता नारायणेन समाधिभेदार्थम् इन्द्रप्रेषिताप्सरसां क्रीडार्थम् आत्मीयोरुप्रदेशात् सृष्टा हि सेतीतिहासविद आहुः । अप्सरसं स्वर्गलोकवारयोषितं यदृच्छयागतां दृष्ट्वा सभायामवलोक्य

---

१. 'येन' इति गो० । २. 'प्रतिपाद्यते' इति नास्ति पु० १, पु०२, गो० ।
३. 'शस्याद्' इति पु० २ । ४. 'तत्र तु' इति गो० ।
५. का० सर्वा० परि० २।५॥ ६. '०देवतात्वं मा भून्निवृत्ति०' इति पु० १, पु०२ ।
७. का० सर्वा० परि० २।४॥ ८. 'प···चाम' इति नास्ति मै० ।
९. 'वक्तुमिति' इति पु० १ । 'वक्तुमितिहासं कथयति' इति गो० ।
१०. अष्टा० ६।३।२६॥ ११. अष्टा० ५।२।३६। १२. अष्ट० ७।३।१०४।
१३. 'मित्रा···देशः' इति नास्ति मै० ।
१४. 'संकल्पोक्त इन्द्रयज्ञार्थं' पु० १, पु० २ । 'दीक्षासंपादनार्थं' इति गो० ।
१५. धा० ५।१८॥ तु०—निरु० २।१८॥ १६. अष्टा० ६।३।१०९॥

स्थितयो रेतः शुक्रं वासतीवराख्यजलाधारे कुम्भेऽपतत् । वसतेरतिः[1] । कृदिकारादिति[2] ङीष् । वसती रात्रिः । छन्दसीवनिपाविति[3] मत्वर्थे वनिप् । वनो र चेति[4] ङीप् नश्च रादेशः । वसतीवरीति [तस्य] इदमर्थेऽण् । आदिवृद्धिः[5] । ततः कुम्भान्महाघटाद् अगस्त्यवसिष्ठावजायेताम् । जनी प्रादुर्भावे[6] । अनुदात्तेत् । लङ् । आताम् । श्यन् । ज्ञाजनोर्जा[7] । अट् । ङित्वादातो ङित[8] इत्याकारस्येयादेशः । लोपो व्योर्वलीति[9] यलोपः ।[5] आद्गुणः[10] । प्रादुरभूताम् । हयेजायीयसूक्ते[11] तु कथैषा संप्रचक्ष्यते । तेनागस्त्यस्य मैत्रावरुणित्वं सिद्धम् । तथा सप्तममण्डलस्य[12] द्रष्टुर्वसिष्ठस्य प्रसङ्गान्मैत्रावरुणित्वं सिद्धम् ॥१॥

[१६७] सहस्रमेकादशाद्यैन्द्री ॥२॥

त इन्द्र । त्रिष्टुप् । अगस्त्यः । इन्द्रदेवत्याद्या । अन्या मारुत्यो दश[13] ॥२॥

[१६८] यज्ञायज्ञा दश त्रिष्टुबन्तम् ॥३॥

वः समना । अन्ते तिस्रस्त्रिष्टुभः । आद्याः सप्त जगत्यः । अगस्त्यः । इन्द्रः[13] ॥३॥

[१६९] महोऽष्टौ द्वितीया विराट् ॥४॥

चित् त्वमिन्द्र । अगस्त्यः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः । अयुज्रन्त इन्द्रेति[14] द्वितीया विराट् दशकचतुष्टययुक्ता ॥४॥

[१७०] न नूनं पञ्चागस्त्येनैन्द्रे हविषि मरुतामुद्यत इन्द्रागस्त्ययोः संवाद ऐन्द्रस्तत्राद्या तृतीया चेन्द्रवाक्यं चतुर्थी वादौ बृहती तिस्रोऽनुष्टुभः ॥५॥

अस्ति नो श्वः ।[15] यजमानेनागस्त्यर्षिणैन्द्रे हविषीन्द्राय निरुप्ते हविषि मरुतामर्थे मरुद्भ्य इत्यर्थः । उद्यते होतुमुत्क्षिप्ते सतीन्द्रागस्त्ययोः संवादः । इन्द्रपरिदेवना

---

१. 'वसतेःक्तिन्' इति कोशेषु ।
२. अष्टा० ४।१।४५॥ गणसूत्रम् ।
३. महा० वा० ५।२।१०९॥
४. अष्टा० ४।१।७॥
५. 'वसते···वृद्धिः' 'जनी···गुणः' इति पाठस्त्यक्तो मै० ।
६. धा० ४।४१॥
७. अष्टा० ७।३।७९॥
८. अष्टा० ७।२।८१॥
९. अष्टा० ६।१।६६॥
१०. ६।१।८७॥
११. ऋ० १०।९५॥
१२. तु०—ऋ० ७।३३॥
१३. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।
१४. 'चित्···इन्द्रेति' इति नास्ति मै० ।
१५. 'अस्ति···श्व' इति नास्ति मै० ।

तच्छमनार्थागस्त्यवाक्यरूपः । तदुक्तं निरुक्ते—अगस्त्य इन्द्राय हविर्निरुप्य मरुद्भ्यः संप्रदित्सांचकार स इन्द्र एत्य परिदेवयांचक्रे[1] । न नूनमस्ति नो श्व[2] इति । ऐन्द्रः—इन्द्रदेवत्यः । इन्द्रवाक्यस्यागस्त्यदेवतानिवृत्त्यर्थमिदम् । अथ विषादशान्तये[3] कयाशुभीयम्[4] अभूत् । श्रूयते हि—यत्कयाशुभीयमेतेन ह वा इन्द्रोऽगस्त्यो मरुतस्ते समजानतेति ।[5]

अत्र संवाद आद्या तृतीया चेन्द्रस्य वाक्यम् । चतुर्थीन्द्रस्य वागस्त्यस्य वा[6] । आदौ बृहती । तृतीयो द्वादशक उत्तरेऽष्टकास्त्रयः[7] । तिस्रोऽनुष्टुभः । अनुक्तेरन्त्या त्रिष्टुप् । अगस्त्यः स्ववाक्य ऋषिः । इन्द्रश्च स्ववाक्ये । सर्वत्र चेन्द्रो देवता ।।५।।

[१७१] प्रति वः षण्मारुतं तु चतस्रोऽन्त्या मरुत्वतीयाः ।।६।।

एना नमसा । इदमुत्तरं च द्वे सूक्ते मरुद्देवत्ये[8] । अन्त्याश्चतस्रो मरुत्वदिन्द्रदेवत्या मरुत्वांस्त्विन्द्रो देवतेति[9] दर्शनात प्रायेणैन्द्रे मरुत[10] इति च । आदितो द्वे मारुत्यौ । अगस्त्यः त्रिष्टुप्[11] ।।६।।

[१७२] चित्रस्तृचं गायत्रम् ।।७।।

वोऽस्तु यामः । तृतं सूक्तम् । अगस्त्यः । मरुतः । तिस्रोऽपि गायत्र्यः[12] ।।७।।

[१७३] गायत् सप्तोना ।।८।।

साम नभन्यम् । त्रयोदश । अगस्त्यः । इन्द्रः । त्रिष्टुप्[12] ।।८।।

[१७४] त्वं राजा दश ।।९।।

इन्द्र ये । अगस्त्यः । त्रिष्टप् । इन्द्रः[12] ।।९।।

[१७५] मत्सि षडानुष्टुभं तु त्रिष्टुबन्तं त्वाद्या स्कन्धोग्रीवी ।।१०।।

अपायि ते[13] । इदमादि द्वे सूक्ते आनुष्टुभे ते च त्रिष्टुभन्ते । आनुष्टुभं त्विति

---

१. निरु० १।५।। २. निरु० १।६।।
३. 'अस्य परिवादशान्तये' इति पु० १, पु० २। ४. ऋ० १।१६५।।
५. ऐत० ब्रा० ५।१६।१४।।
६. 'आद्या तृतीया चतुर्थी इन्द्रस्य वाक्यं अगस्त्यस्येत्यन्याः' इति पु० २।
७. 'तृतीयो…त्रयः' इति नास्ति मै०। ८. 'एना…देवत्ये' इति नास्ति मै०।
९. का० सर्वा० ११।८।। १०. का० सर्वा० परि० २।२२।।
११. 'अगस्त्यः। त्रिष्टुप्' इति नास्ति मै०। १२. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै०।
१३. 'अपायि ते' इति नास्ति मै०।

शिष्टा जगत्य[1] इत्यपवादः[2]। आद्या स्कन्धोग्रीवी। द्वितीयो द्वादशक इतरे त्रयोऽष्टकाः। तत्रेन्दुरिति व्यूहेन रेफेण तृतीयस्याष्टाक्षरत्वम्[3]। अगस्त्यः। इन्द्रः[4] ॥१०॥

[१७६] मत्सि नः ॥११॥

षडित्येव। वस्य इष्टये। अगस्त्यः। अनुष्टुप्। अन्त्या त्रिष्टुप्। इन्द्रः[5] ॥११॥

[१७७] आ चर्षणिप्राः पञ्च ॥१२॥

वृषभः। अगस्त्यः। त्रिष्टुप्। इन्द्रः[5] ॥१२॥

[१७८] यद्ध स्या ॥१३॥

पञ्चेत्येव। त इन्द्र। अगस्त्यः। त्रिष्टुप्। इन्द्रः[5] ॥१३॥

[१७९] पूर्वी षड् जायापत्योर्लोपामुद्राया अगस्त्यस्य च द्वृचाभ्यां रत्यर्थं संवादं श्रुत्वान्तेवासी ब्रह्मचार्यन्त्ये बृहत्यादी अपश्यत् ॥१४॥

अहं शरदः[6]। जायापत्योः। जायायाः पत्युश्च। कयोः। लोपामुद्राया अगस्त्यस्य च। संवादमाद्यं द्वृचद्वयं सम्पन्नरतिप्रयोजनम्। अन्तेवासी। अगस्त्यशिष्यो ब्रह्मचारी श्रुत्वान्त्यं द्वृचमपश्यत्। ततश्चाद्यो द्वृचोऽगस्त्यभार्यया लोपामुद्रायाः। द्वितीयोऽगस्त्यस्य। तृतीयो ब्रह्मचारिणः। तत्र पञ्चमी बृहती शिष्टाः पञ्च त्रिष्टुभः[6]। रतिर्देवता। सा हि षट्सूच्यते ॥१४॥

[१८०] युवोदशाश्विनं वै ॥१५॥

रजांसि। इदमादीनि पञ्च सूक्तान्यश्विदेवत्यानि। अगस्त्यः। त्रिष्टुप्[5] ॥१५॥

[१८१] कदु नव ॥१६॥

प्रेष्ठौ। अगस्त्यः। त्रिष्टुप्। अश्विनौ[5] ॥१६॥

[१८२] अभूदिदमष्टौ षष्ठ्यन्त्ये त्रिष्टुभौ ॥१७॥

वयुनम्। अष्टौ। अवविद्धं तौग्र्यमिति षष्ठी तद् वां नरा नासत्याविन्त्यष्टमी चोभे त्रिष्टुभौ। शेषाः षड् जगत्यः। अगस्त्यः अश्विनौ[5] ॥१७॥

---

१. का० सर्वा० परि० १२।१३॥ २. 'जगत्यपवादः' इति कोशेषु।
३. तु०—का० सर्वा० परि० ७।३॥ वेदार्थदीपिका।
४. 'अगस्त्यः। इन्द्रः' इति नास्ति मै०। ५. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै०।
६. 'अह शरदः' 'तत्र…त्रिष्टुभः' इति नास्ति मै०।

[१८३] तं युञ्जाथां षट् ॥१८॥

मनसः । अगस्त्यः । त्रिष्टुप् । अश्विनौ[1] ॥१८॥

॥ इति द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

---

[१३]

[१८४] ता वाम् ॥१॥

षडित्येव । अद्य तौ । अगस्त्यः । त्रिष्टुप् । अश्विनौ[1] ॥१॥

[१८५] कतरैकादश द्यावापृथिवीयम् ॥२॥

पूर्वा कतरा । एकादश । द्यावापृथिव्यौ देवते । अगस्त्यः । त्रिष्टुप्[1] ॥२॥

[१८६] आ नो वैश्वदेवम् ॥३॥

एकादशेत्येव । इळाभिः अगस्त्यः । त्रिष्टुप् । विश्वेदेवाः[1] ॥३॥

[१८७] पितुं न्वन्नस्तुतिर्गायत्रं त्वाद्यानुष्टुब्गर्भा तृतीया पञ्चम्याद्याश्च तिस्रोऽनुष्टुभोऽन्त्या च बृहती वा ॥४॥

एकादशेत्येव । स्तोषम्[2] । इदमादि द्वे सूक्ते गायत्रच्छन्दस्के । आद्यानुष्टुब्गर्भा । आद्यः पञ्चकस्त्रयोऽष्टका[3] अनुष्टुब्गर्भेत्युक्तम्[2] ।

तृतीया पञ्चमी षष्ठी सप्तम्येकादशी तथा ।
अनुष्टुभस्तु पञ्चैता बृहत्यन्त्यापि[4] वा भवेत् ॥

अन्नस्तुतिः । अन्नमस्य देवतेत्यर्थः । अगस्त्यः[2] ॥४॥

[१८८] समिद्ध आप्रियः ॥५॥

एकादशेत्येव । अद्य राजसि[5] । आप्री सूक्तस्य देवता अत्र[6] । गायत्री । अगस्त्यः[5] ॥५॥

---

१. सूत्रव्याख्यात्यक्ता मै० ।

२. 'एका…षम्' 'आद्यः…उक्तम्' 'अगस्त्यः' इति नास्ति मै० ।

३. का० सर्वा० परि० ५।७॥ ४. तु०—का० सर्वा० परि० ७।१॥ वेदार्थदीपिका ।

५. 'एका…राजसि' 'गायत्री' । अगस्त्यः' इति नास्ति मै० ।

६. 'आप्रीसूक्तोक्तदेवता यत्र' इति पु० १, पु० २ । 'आप्रीसूक्तदेवता' इति गो० । तु०—का० सर्वा० १०।६ वेदार्थदीपिका ।

[१८९] अग्ने नयाष्टावाग्नेयम् ।।६।।

सुपथा । अगस्त्यः । त्रिष्टुप् । अग्निः[1] ।।६।।

[१९०] अनर्वाणं बार्हस्पत्यम् ।।७।।

अष्टावित्येव । वृषभम् । बृहस्पतिदेवत्यम् । अगस्त्यः । त्रिष्टुप्[1] ।।७।।

[१९१] कङ्कतः षोडशोपनिषदानुष्टुभमप्तृणसौर्यं विषशङ्कावानगस्त्यः प्राब्रवीद् दशम्याद्यास्तिस्रो महापङ्क्त्यो महाबृहती च ।।८।।

न कङ्कतः[2] । उपनिषद्[3] इत्युक्तार्था[4] । अप्तृणसौर्यम् । आपस्तृणानि सूर्यश्च देवताः कीर्तिताः । आप्तृणसूर्यम्[5] इति प्राप्त उत्तरपदवृद्धिश्छान्दसी । विषशङ्कावान् । शङ्का भयम् । शङ्का वितर्कभययोरिति निघण्टुः[6] । विषभीतोऽगस्त्यः प्राब्रवीत् । उच्चैरुच्चारणं कृतवान् । विषदोषनिवृत्त्यर्थम् । न केवलमदर्शदेव[7] । दशम्याद्याः सूर्ये विषमा सजामीति[8] तिस्रो महापङ्क्तयः । अष्टकौ सप्तकः षट्को दशको नवकश्च षडष्टका वा महापङ्क्तिरित्युक्तम्[9] । अथ त्रयोदशी नवानां नवतोनामिति[8] महाबृहती । चत्वारोऽष्टका जागतश्च महाबृहतीत्युक्तम्[10] । इति पञ्चमो द्वादशकः । आद्यानां चतुर्णां पादानामष्टाक्षरत्वं व्यूहेन । शिष्टा द्वादशानुष्टभः । चेत्यथेत्यर्थः ।।८।।

।। शर्तर्चिनां मण्डलं तु समाप्तं प्रथमं त्विति ।।

[अथ गार्त्समदं द्वितीयं मण्डलम्]

अथ[11] द्वितीयं मण्डलं व्याख्यातुं तदृषेर्जन्मविवक्षयेतिहासमाह—

---

१. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।

२. 'न कङ्कत;' इति नास्ति मै० । ३. तु०—का० सर्वा० ४।४ वेदार्थदीपिका ।

४. '०क्तार्थं' इति पु०१, पु०२ गो० । ५. 'अप्तृण०' इति कोशेषु ।

६. वैजयन्ती पृ० २२३ पङ्क्ति ७६।। मैक्डानलस्तु भ्रान्त्या निघण्टुपदेन यास्कीयनिघण्टुनामानं ग्रन्थं जग्राह ।

७. 'केवलमदादेव' इति पु० १ । तत्र प्रान्तेऽयमधिकः पाठो लिख्यते—'अत्र श्लोकः ।। कङ्कतो नेति सूक्तं तु विषार्त्तः प्रयतो जपेत् । विषं न क्रमते चास्य सर्पाद् दष्टविषादपि' ।। इति ।।

८. 'सूर्ये···मिति' 'अष्टकौ ··उक्तम्' 'नवानां·· इति' इति नास्ति मै० ।

९. का० सर्वा० परि० १०।३।। १०. का० सर्वा० परि० ९।९।।

११. 'अथ' इति नास्ति गो०, मै० ।

य अङ्गिरसः शौनहोत्रो भूत्वा भार्गवः शौनकोऽभवत् स गृत्समदो द्वितीयं मण्डलमपश्यत् ॥९॥

आङ्गिरसकुले शुनहोत्रपुत्रो भूत्वा यज्ञेऽसुरैर्गृहीतो मुक्तः। पश्चादिन्द्रेणोक्त-गृत्समदनामा भृगुकुले[1] शौनकः शुनकपुत्रोऽभवत्, स द्वितीयं मण्डलमपश्यत्। शौनकेनापीदमुक्तम् ऋष्यनुक्रमणे हि—

त्वमग्ने तु[2] गृत्समदः शौनको भृगुतां गतः।
शौनहोत्रः प्रकृत्या तु स आङ्गिरस उच्यते॥
व्याख्यातेयं कथा पूर्वं शौनकाचार्यवर्णने[3]॥

एतच्च सूत्रमगस्त्यापवादस्य गृत्समदस्यैर्वर्षित्वाय ॥९॥

[१] त्वमग्ने जागतं तु ॥१०॥

षोडशेत्येव। द्युभिः। इदमादि द्वे सूक्ते जगतीछन्दस्के[4]। मण्डलादिष्वाग्नेय-मैन्द्रादित्या[5] श्रुधीहवीयाद्[6] अग्निर्देवता ॥१०॥

[२] यज्ञेन सप्तोना ॥११॥

वर्धते। त्रयोदश। गृत्समदः। अग्निः। जगती[7] ॥११॥

[३] समिद्ध एकादशाप्रं सप्तमी जगती ॥१२॥

अग्निः[8]। आप्रमिति वचनात् सनराशंसं तनूनपाद्वर्जितमिदम्[6]। एकादशकानि तु नाराशंसान्याप्रशब्दोक्तान्यतनूनपान्तीति[9] ह्युक्तम्। सप्तमी जगती। शिष्टास्त्रिष्टुभः[10]। गृत्समदः[8] ॥१२॥

[४] हुवे नव सोमाहुतिर्भार्गवो ह ॥१३॥

वः सुद्योतमानम्[11]। सोमाहुतिर्भार्गवो भृगुवंश्य इदमादीनि चत्वारि सूक्तानि ददर्श। त्रिष्टुप्। अग्निः[11] ॥१३॥

---

१. 'गुरुकुले' इति पु० १। 'कुरुकुले' इति गो०।
२. 'त्वमग्न इति' पु० १, पु० २।
३. मैक्समूलरकृत 'प्राचीनसंस्कृतवाङ्मय' ग्रन्थे (चौखम्बासंस्करणे) २०७ पृष्ठे द्रष्टव्यम्।
४. 'षोड···छन्दस्के' इति नास्ति मै०।
५. का० सर्वा० परि० १२।१२॥
६. ऋ० २।११
७. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै०।
८. 'अग्निः' 'गृत्समदः' इति नास्ति मै०।
९. का० सर्वा० १।१७॥
१०. 'षष्ठीप्रभृति षड् जगत्यः। आदौ पञ्च त्रिष्टुभः' इति पु० २।
११. 'वः ··नम्' 'त्रिष्टुप्। अग्निः इति नास्ति मै०।

[५] होताष्टावानुष्टुभम् ।।१४।।

जनिष्ट । सोमाहुतिः । अनुष्टुप् । अग्निः[1] ।।१४।।

[६] इमां मे गायत्रं हि ।।१५।।

अग्ने । अष्टावित्येव । सोमाहुतिः । अग्निः । इदमादीनि त्रीणि सूक्तानि गायत्राणि[1] ।।१५।।

[७] श्रेष्ठं षट् ।।१६।।

यविष्ठ । सोमाहुतिः । अग्निः । गायत्री[1] ।।१६।।

[८] वाजयन्निवान्त्यानुष्टुप् ।।१७।।

षडित्येव । नू रथान् । गृत्समदः । आदितः पञ्च गायत्र्यः । षष्ठ्यनुष्टुप् । अग्निः[1] ।।१७।।

।। इति त्रयोदशोऽध्यायः ।।१३।।

---

[१४]

[९] नि होता ।।१।।

षडित्येव । होतृषदने । गृत्समदः । त्रिष्टुप् । अग्निः[1] ।।१।।

[१०] जोहूत्रः ।।२।।

षडित्येव । अग्निः । गृत्समदः । त्रिष्टुप् । अग्निः[1] ।।२।।

[११] श्रुधि सैकैन्द्रं विराट्स्थानमृतेऽन्त्याम् ।।३।।

हवमिन्द्र[2] । सैका विंशतिरेकयुक्ता[2] । ऐन्द्रमित्याग्नेयनिवृत्त्यर्थम् । विराट्स्थानाच्छन्दस्कम् । अन्त्यैकादशी त्रिष्टुप् । ऋते विना ।

ङसोरं व्यत्याच्छन्दोवद्भावाच्छन्द एव च[3] ।
अन्यारादित्यृतेयोगे[4] पञ्चमी सूच्यते[5] खलु ।।

गृत्समदः । इन्द्रः[2] ।।३।।

---

१. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० । २. 'हवमिन्द्र' 'एकयुक्ता' 'गृ···द्र' इति नास्ति मै० ।

३. 'वा' इति पु० १, पु० २, गो० ।

४. 'अन्यारादितरर्त इति' इति पु० १, पु० २ । 'अन्यारादितरर्त ऋते' इति गो० । तु०—अष्टा० २।३।२९।।

५. 'पञ्चमी सूच्यते' इति नास्ति पु० १, पु० २ । 'खलु' इति नास्ति गो० ।

[१२] यो जातः पञ्चोना ॥४॥

एव प्रथमः । पञ्चदश । गृत्समदः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः[१] ॥४॥

[१३] ऋतुः सप्तोनान्त्या त्रिष्टुप् ॥५॥

पञ्चोन ऋत्विति[२] ऋत्यक[३] इति ह्रस्वप्रकृतिभावौ । जनित्रीं । त्रयोदश । आदितो द्वादश जगत्यः । त्रयोदशी त्रिष्टुप् । गृत्समदः । इन्द्रः[१] ॥५॥

[१४] अध्वर्यवो द्वादश ॥६॥

भरतेन्द्राय । गृत्समदः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः[१] ॥६॥

[१५] प्र घ दश ॥७॥

न्वस्य महतः । गृत्समदः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः[१] ॥७॥

[१६] प्र वो नवान्त्या त्रिष्टुप् ॥८॥

सताम् । अष्टादौ जगत्यः । अन्त्या त्रिष्टुप् । गृत्समदः । इन्द्रः[१] ॥८॥

[१७] तदस्मै द्वित्रिष्टुबन्तम् ॥९॥

नवेत्येव । नव्यम् । द्वे अन्त्ये त्रिष्टुभौ । शिष्टाः सप्त जगत्यः । गृत्समदः । इन्द्रः[१] ॥९॥

[१८] प्रातः ॥१०॥

नवेत्येव । रथः । गृत्समदः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः[१] ॥१०॥

[१९] अपायि ॥११॥

नवेत्येव । अस्यान्धसः । गृत्समदः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः ॥११॥

[२०] वय ते स नो विराड्रूपा ॥१२॥

नवेत्येव । वय इन्द्र[४] । स नो युवेन्द्र इत्येषा विराड्रूपा[५] । एकादशिनस्त्रयोऽष्टकश्च विराड्रूपेत्युक्तम्[६] । गृत्समदः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः[४] ॥१२॥

[२१] विश्वजिते षट् त्रिष्टुबन्तम् ॥१३॥

धनजिते । पञ्चादौ जगत्यः । अन्त्या त्रिष्टुप् । गृत्समदः । इन्द्रः[१] ॥१३॥

---

१. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मैं० । २. पूर्वोत्तरसूत्रयोः संहितया निर्देशपक्ष इयमुक्तिः ।
३. अष्टा० ६।१।१२८। ४. 'नवे…इन्द्र' 'एका…इन्द्रः' इति नास्ति मैं० ।
५. 'स नो विराड्रूपा' इति सूत्रांशस्तद् व्याख्या च नास्ति पु० १, पु० २ ।
६. का० सर्वा० परि० ६।६।

[२२] त्रिकद्रुकेषु चतुष्कमष्ट्याद्यतिशाक्वरमन्त्याष्टिर्वा ॥१४॥

महिषः । चतुर्ऋचम्[1] । अष्टचादि । अष्टिरादिः प्रथमा यस्मिन् तत् । अतिशाक्वरम् । अतिशक्वरीछन्दस्कम् । उत्तरपदवृद्धिरणि च्छान्दसी । चतुर्थ्यष्टिरतिशक्वरी वा । व्यूहेनाष्टित्वम् । श्रुतिदर्शनाद् विकल्पः । गृत्समदः । इन्द्रः[1] ॥१४॥

[२३] गणानामेकोना ब्राह्मणस्पत्यं ह बार्हस्पत्यास्तु दृष्टलिङ्गाः पञ्चदश्यन्त्ये त्रिष्टुभौ ॥१५॥

त्वा गणपतिम् । एकोनविंशतिः[2] । ब्राह्मणस्पत्यं ह । इदमादीनि चत्वारि सूक्तानि ब्रह्मणस्पतिदेवत्यानि । तत्र बृहस्पते देवनिद[3] इत्यादिदृष्टबृहस्पतिशब्दाद् बृहस्पतिदेवत्याः । पञ्चदशी चान्त्या च त्रिष्टुभौ । शिष्टा जगत्यः । गृत्समदः[2] ॥१५॥

॥ इति चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

---

[१५]

[२४] सेमां षोडशान्त्या त्रिष्टुब् द्वादशी च सैन्द्री च ॥१॥

अविड्ढि[4] । अन्त्या त्रिष्टुप् द्वादशी च त्रिष्टुप् । शिष्टाश्चतुर्दश जगत्यः । सैन्द्री च ।[4] सा द्वादशीन्द्रदेवत्या ब्रह्मणस्पतिदेवत्या च । गृत्समदः[5] ॥१॥

[२५] इन्धानः पञ्च जागतं तु ॥२॥

अग्नि वनवत् । इदमादि द्वे सूक्ते जागते । गृत्समदः । ब्रह्मणस्पतिः[5] ॥२॥

[२६] ऋजुश्चतुष्कम् ॥३॥

इच्छंसः । चतुर्ऋचम् । गृत्समदः । ब्रह्मणस्पतिः । जगती[5] ॥३॥

[२७] इमास्त्र्यूना[6] कूर्मो गार्त्समदो हि वादित्येभ्यः ॥४॥

गिर आदित्येभ्यः । सप्तदश[7] । गृत्समदपुत्रः[8] कूर्मो नामेदमादिषु त्रिषु सूक्तेषु

---

१. 'महिषः···चम्' 'गृत्स···इन्द्रः' इति नास्ति मै० ।

२. 'त्वा···विंशतिः' 'पञ्च···मदः' इति नास्ति मै० । ३. ऋ० १।२३।८॥

४. 'अविड्ढि' 'शि···च' 'गृत्समदः' इति नास्ति मै० ।

५. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० । ६. 'इमा गिरस्त्र्यूना' इति पु० १, पु० २, गो० ।

७. 'गिरः···दश' इति नास्ति मै० ।

८. 'गृत्समदः' इत्यपपाठः मै० ।

वाशब्देन गृत्समदेन सह विकल्प्यते । अयं तु वाविशिष्टत्वाद् उत्तरत्रानुवर्त्तितुं नेष्टः । गृत्समद इष्ट एव । आदित्याः । आदित्यदेवत्याः । त्रिष्टुप्[१] ।।४।।

[२८] इदमेकादश वारुणम्[२] ।।५।।

कवेरादित्यस्य । वरुणदेवत्यम् । कूर्मो गृत्समदो वा । त्रिष्टुप्[३] ।।५।।

[२९] धृतव्रताः सप्त वैश्वदेवम् ।।६।।

आदित्याः । कूर्मो गृत्समदो वा । त्रिष्टुप्[३] ।।६।।

[३०] ऋतमेकादश जगत्यन्तं षष्ठचैन्द्रासौमी सरस्वति त्वमिति सारस्वतोऽर्धर्चो यो नो बार्हस्पत्या तं वो मारुती ।।७।।

देवाय । आदितो दश त्रिष्टुभः । अन्त्या जगती[४] । इन्द्रासोमदेवत्या षष्ठी प्र हि क्रतुमित्येषा[४] । देवताद्वन्द्वे चेत्यानङ्[५] उभयपदवृद्धिश्च[६] । सरस्वति त्वमस्मान्[७] इत्यर्धर्चः सरस्वतिदेवत्यः । यो नः सनुत्य[८] इत्येषा बृहस्पतिस्तवः । तं वः शर्धम्[९] इत्येषा मारुती । इन्द्रः । वा[१०] गृत्समदः[४] ।।७।।

[३१] अस्माकं सप्त वैश्वदेवं त्रिष्टुबन्तम् ।।८।।

मैत्रावरुणा । षडादौ जगत्यः । अन्त्या त्रिष्टुप् । गृत्समदः[३] ।।८।।

[३२] अस्य मे अष्टौ जागतं त्र्यनुष्टुबन्तं द्यावापृथिव्यैका द्वे ऐन्द्रयौ त्वाष्ट्र्यौ वा द्वे द्वे राकासिनीवाल्योरन्त्या लिङ्गोक्त-देवता ।।९।।

द्यावापृथिवी । आदितः पञ्च जगत्यः । तिस्रोऽन्तेऽनुष्टुभः[११] । द्यावापृथिव्यैका । आद्या द्यावापृथिवीदेवत्या । तत्रैकशब्दः प्रथमपर्यायः । एकेऽल्पप्राणा[१२] एको गोत्र[१३] इति यथा । य एक इद्धव्यश्चर्षणीनाम्[१४] इति च । द्वे द्वितीयातृतीये इन्द्रदेवत्ये त्वष्ट्र-

---

१. 'आदित्या···त्रिष्टुप्' इति नास्ति मै० ।
२. 'उपान्त्यादुःस्वप्ननाशिनी' इत्यधिकः पाठः पु० २ ।
३. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।
४. 'देवाय···जगती' 'प्र···एषा' 'इन्द्र···मदः' इति नास्ति मै० ।
५. अष्टा० ६।३।२६।।   ६. तु०—अष्टा० ७।३।२१।।
७. ऋ० २।३०।८।।   ८. ऋ० २।३०।९।।   ९. ऋ० २।३०।११।।
१०. 'वा' इति पु० १ विहाय नास्त्यन्यत्र ।
११. 'द्यावा···ष्टुभः' इति नास्ति मै० ।
१२. महाभाष्य १।१।९।।   १३. अष्टा० ४।१।९३।।   १४. ऋ० ६।२२।१।।

देवत्ये वा। ततः सिद्धेऽप्येका द्वे इति पदद्वयं द्वन्द्वशङ्कानिवृत्त्यर्थम्। तदन्यतरेण सिद्धमिति चेदनुक्रमण्यन्तरानुकरणम्। द्वे द्वे राकासिनीवाल्योः। ऋचाविति शेषः। चतुर्थीपञ्चम्यो राकामहं यास्ते राक इत्येते[1] राकास्तुतिः। षष्ठीसप्तम्यौ सिनीवालि पृथुष्टुके या सुबाहुरिति च[1] सिनीवाल्याः स्तुतिः। अन्त्या या गुङ्गूर्या सिनीवालीत्येषा[1] गुङ्ग्वादिषड्देवत्या। गृत्समदः[1] ॥६॥

[३३] आ ते पञ्चोना रौद्रम् ॥१०॥

पितर्मरुताम्। पञ्चदश[2]।

अन्नादिमोक्षान्तफलप्रसिद्ध्यै तुष्टो मुनिर्गृत्समदाभिधानः।
त्रिष्टुप्छन्दः पञ्चदशर्चकेन भिषक्तमं रुद्रमस्तौन्महात्मा ॥१॥
आतेपितीयं[3] यदि रुद्रसूक्तं मरुद्गणः कीर्त्यते द्विः किमत्र।
त्रयोदश्यामाद्यमन्त्रे च रुद्रः सर्वत्र वा मारुते स्तूयते किम् ॥२॥
निपातभाजो मरुतो न चात्र प्रायेणैन्द्रे मरुतः सूत्रदृष्टेः।
नैतद् रुद्रो मरुतां यत्पितासीन्निपातभाजो मरुतस्ततोऽत्र ॥३॥
निपातभाङ् मारुते न तु रुद्रः प्रायेणैन्द्रेत्यादि सूत्रं च तत्र।
इन्द्रेण सख्यातिशयादनुक्तं तेषां च तस्यापि च सख्यमेतत् ॥४॥
हनिष्यन्तं वृत्रमन्ये[4] पुरेन्द्रं हित्वा[5] जहुर्मरुतोऽवर्धयंस्तम्[6]।
प्रायेणैन्द्रेत्यादिसूत्रेऽपि वाच्यं रौद्रे[7] चेति खलु किं तत्र नोक्तम् ॥५॥
प्रायग्रहो बहुलार्थे यतोऽत्र तस्मादैन्द्रे बहुशो योग एषाम्।
अनैन्द्रेषु त्वल्पशो योग एषामित्येषोऽर्थो वेदितव्यो हि तत्र ॥६॥
कथं ह्यभून्मरुतां वै पितृत्वं जगद्गुरोर्देवदेवस्य शम्भोः।
यथा रुद्रो मरुतां वै पितासीत् तथेतिहासः प्रतिदर्श्यतेऽत्र[8] ॥७॥
शतक्रतोरसुरादेर्वधार्थं दितिस्तु गर्भं लभते स्म भर्तुः।
शुश्रूषमाणः किल तामथेन्द्रो मायाविदामग्रणी रन्ध्रदर्शी ॥८॥
प्रकीर्णकेशीं च दितिं[9] प्रसुप्तामालक्ष्य[10] वज्री ह्यणुमात्ररूपः।

---

१. 'राका…एते' 'सिनी…च' 'या…एषा' 'गृत्समदः' इति नास्ति मै०।
२. 'पित…दश' इति नास्ति मै०।
३. '०तयं' इति पु० २।
४. 'अन्यैः' इति पु० २।
५. 'हित्या' इति पु० १, गो०। 'हत्वा' इति पु० २।
६. 'वर्धयंस्ते' इति पु० २। 'वद्धयंस्त' इति गो०।
७. 'रुद्रे' इति पु० १। 'रुद्र' इति पु० २।
८. 'प्रतिदर्श्यते' इत्येव पु० १, पु० २। 'प्रतिदर्श्यतेधुना इति गो०।
९. 'रुदितिं' इति पु० १।
१०. '०मवेक्ष्य' इति पु० १, गो०। '०मवैक्ष्य' इति पु० २।

प्रविश्य कुक्षि प्रबिभेद गर्भं मा रोद रोदेति वदंस्तु गर्भम् ॥९॥
भित्त्वा गर्भं निर्गते वै महेन्द्रे प्रबुध्य[1] सा रोदिति स्मार्तरूपा ।
अत्रान्तरे त्वन्तरिक्षे तदासीज्जगज्जनित्री त्वखिलेशपत्नी ॥१०॥
वृषेन्द्रमारुह्य गिरीन्द्रपुत्री सुरेन्द्रवृन्दैरभिवन्द्यमाना ।
नद्याहृतैः पङ्कजकुण्डलाद्यैर्हारेण संभूषितसर्वदेहा ॥११॥
संसारवृक्षस्य कुठारकेण शशाङ्कचूडामणिमण्डितेन ।
देवेन सार्धं सुरसिद्धसंघैः स्त्रीणां[2] गणैश्चाभिपूज्यमाना ॥१२॥
गर्भस्य मातुश्च तदार्तनादं शुश्राव चाकाशगता यदृच्छया[3] ।
सुराङ्गनानामवलोक्य वृन्दं कृपापरा साथ हरं ययाचे ॥१३॥
वज्रेण भिन्नानि तु यानि[4] देवखण्डानि गर्भस्य तनूनि चापि ।
सप्तात्मके सप्तकभेदने न बहूनि खण्डानि बहूनि सन्ति ॥१४॥
एकैकमेषां लभतां शरीरं मदर्थमेतत् क्रियतां महेश ।
स्युश्चैव सर्वे तरुणाः सदैव स्वलङ्कृतास्तव पुत्रा भवन्तु ॥१५॥
मा रोद वादान्मृतियोगतो वाख्याताश्च लोके मरुतश्च नाम्ना ।
सख्यं च तैरस्तु सुरेश्वरस्य सुरैस्तुल्यं नियतं[5] महेश ॥१६॥
न ज्येष्ठता नापि कनिष्ठतैषां वेषो वयश्चैव समानमेषाम्[6] ।
घृणाब्धित्वं व्यक्तम्[7] एवं तव स्यान्मयि प्रीतिश्चातुला वै महेश ॥१७॥
पादादिकेशान्तमलङ्कृताश्च भवन्त्वेते सर्वमेतन्ममास्तु ।
तथेति देवः प्रतिपन्नवाक्यो देव्या यथोक्तं प्रचकार सर्वम् ॥१८॥
इत्थं तु सिद्धं मरुतां पितृत्वं जगद्गुरोर्देवदेवस्य शम्भोः ।
अथापरे वर्णयन्तीतिहासं यथा रुद्रो मरुतां वै पितासीत् ॥१९॥
इमां हि[8] गारूपधरां तु पृश्निं वृषोऽथ भूत्वारमयन्महेशः ।
अजीजनन्मरुतः पृश्निपुत्रा रुद्रस्य पुत्रा अपि ते बभूवुः ॥२०॥
रौद्रेषु सूक्तेष्वथ मारुतेषु कथाद्वयं श्रूयते तत्र तत्र । १०॥

[३४] धारावरा मारुतं त्रिष्टुबन्तम् ॥११॥

पञ्चोनेत्येव । मरुतः । आदौ चतुर्दश जगत्यः । अन्त्या त्रिष्टुप् । गृत्समदः । मरुद्देवत्यम्[9] ॥११॥

---

१. 'प्रबुद्धा' इति पु० १, पु० २ । २. 'सस्त्रीगणै०' इति पु० १, पु० २, गो० ।
३. यथाकोशं पाठः । अक्षरेणातिरिच्यते पादः सप्तमचतुर्थपादवद् इति मै० ।
४. 'रूपाणि' इति पु० १, पु० २, गो० ।
५. 'महेश्वरस्य सुरैश्च तुल्यं मरुतां' इति पु० १, पु० २, गो० ।
६. 'समानतैषाम्' इति पु० १ । ७. '०युक्तम्' इति पु० १, पु० २ । 'तत्पितृत्वयुक्तम्' इति गो० । ८. 'तु' इति पु० १, पु० २, गो० । ९. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।

[३५] उपेमपोनप्त्रीयम् ।।१२।।

पञ्चोनेत्येव । असृक्षि[1] । अपोनप्त्रीयम्[2] । अपोनप्त्रपांनप्तृभ्यां घः[3] । छ च[4] । अपांनपाद्देवत्यम् । वरुणवाचिनोऽपांनपाच्छब्दस्यापोनप्तृभावः प्रत्ययसंनियोगेन हि निपात्यते । त्रिष्टुप् । गृत्समदः[1] ।।१२।।

[३६] तुभ्यं षड् ऋतव्यं तु जागतं तु ।।१३।।

हिन्वानः[5] । इदमादि द्वे सूक्ते ऋतुदेवत्ये जगतीछन्दस्के च[6] । ऋतुदेवताः[7] सर्वत्रेत्युक्तेरिन्द्रार्दिमित्रावरुणान्ताः षट् प्रत्यृचं देवताः । गृत्समदः[5] ।।१३।।

।। इति पञ्चदशोऽध्यायः ।।१५।।

---

[१६]

[३७] मन्दस्व ।।१।।

षडित्येव । होत्रात् । जागतम्[8] । ऋतव्यम् । तत्र द्रविणोदसश्चतस्रः । अश्विनोः पञ्चमी । अग्नेः षष्ठी । इन्द्राद्यग्नचन्तद्वादशकस्य प्रतिसूक्तम् ऋतव्यत्वप्राप्तौ सत्यां सामर्थ्याद् द्वयोः सूक्तयोर्द्वादशस्वृक्षु निवेशः । ऐन्द्रीत्यादिदेवताशब्दानाम्[7] ऋगन्वयित्वदर्शनात् । अर्धर्चपादान्वयश्च दुर्घटः । तथा च सूत्रकारोऽपि । ऋतुयाजेषु द्वादशेति सूत्रयति—तुभ्यं हिन्वानो वसिष्ठ गा अप इति द्वादशेति[9] । गृत्समदः[10] ।।१।।

[३८] उदु ष्य एकादश सावित्रम् ।।२।।

देवः सविता । त्रिष्टुप् । गृत्समदः[11] ।।२।।

---

१. 'पञ्चो···सृक्षि' 'त्रि···मदः' इति नास्ति मै० ।
२. 'अपोनप्त्रियम्' इति मै० । नास्ति पु० १, पु० २, गो० ।
३. अष्टा० ४।२।२७।।
४. अष्टा० ४।२।२८।।
५. 'हिन्वानः' 'गृत्समदः' इति नास्ति मै० ।
६. 'ते च जागते' इति पु० १, 'जागते च' इति पु० २ । नास्ति गो० ।
७. का० सर्वा० १।२०।।
८. 'षडि··· जागतम्' इति नास्ति मै० ।
९. आश्व० श्रौ० ८।१।८।।
१०. 'गृत्समदः' इति नास्ति मै० ।
११. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।

[३९] ग्रावाणेवाष्टावाश्विनम् ॥३॥

तत् । त्रिष्टुप् । गृत्समदः । आश्विनम्[1] ॥३॥

[४०] सोमापूषणा षट् सोमापौष्णमन्त्योऽर्धर्चोऽप्यदितेः ॥४॥

जनना[2] । सोमापौष्णम् । देवताद्वन्द्वाद्[3] उभयपदवृद्धौ प्राप्तायां पूर्वपदवृद्ध्यभावश्छान्दसः । अन्त्योऽर्धर्चः सोमापूष्णोरदितेश्च[4] । गृत्समदः । त्रिष्टुप्[2] ॥४॥

[४१] वायो सका गायत्रमुक्ता देवताः प्रउगेणाद्ये तु तृचेऽन्त्यैन्द्र-वायवी द्यावापृथिव्योऽन्त्यस्तृचो हाविर्धानो वा तृतीयः पादो वाग्नेयोऽम्बितमेऽनुष्टुभौ बृहती च ॥५॥

ये ते[5] । एकविंशतिः । उक्ता देवताः प्रउगेण[6] । वायुरिन्द्रवायू मित्रावरुणावश्विनाविन्द्रो विश्वे देवाः सरस्वतीति प्रउगदेवताः सप्त क्रमेण देवता भवन्तीत्यर्थः । तत्राद्यदेवतायास्तृचभाक्त्वापवादमाह—आद्ये तु तृचेऽन्त्यैन्द्रवायवीति । तु शब्दो विशेषार्थः । आद्ये तृचे वायुदेवत्ये प्राप्तेऽयं विशेषः । शुक्रस्याद्येत्येषा[7] तृतीयैन्द्रवायवी । आदितो द्वे वायुदेवत्ये । मित्रावरुणादिसरस्वत्यन्ताः पञ्च देवता अयं वां[8] मित्रावरुणेत्यादिपञ्चतृचभाज एव । इत्यष्टादश गताः । अन्त्यस्तृचो द्यावापृथिवीदेवत्यो हविर्धानाख्य एकदेवत्यो वा । प्रेतां यज्ञस्य शंभुवेत्यादि[9] ब्राह्मणे सूत्रे चोभयत्र विनियोगो दृश्यते । प्रेतां यज्ञस्य शंभुवेति द्यावापृथिवीयम्[10] इति । प्रेतां यज्ञस्येति तृचं द्यावापृथिवीयमन्वाह । तदाहुर्यद्धविर्धानाभ्याम्[11] इत्यादि च । अभि त्वा देव सवितः[12] प्रेतां यज्ञस्य शंभुवाऽयं देवाय जन्मन[13] इति तृचा[14] इति द्यावापृथिव्याः । युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिः[15] प्रेतां यज्ञस्य शंभुवा यमे इव यतमाने यदैतम्[16] इति[17] हविर्धानयोरिति । अत्र तृतीयः पादोऽग्निं च हव्यवाहनमित्यग्निदेवत्यो वा । तत्राम्बितमे नदीतम[18] इति सारस्वते तृचे षष्ठे छन्दोविशेषमाह आदितोऽनुष्टुभौ तृतीया बृहती चेत्यर्थः ।

---

१. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।
२. 'जनना' 'गृत्समदः । त्रिष्टुप्' इति नास्ति मै० । ३. अष्टा० ७।३।२१॥
४. 'सोम ··दितेश्च' इति नास्ति पु० १, पु० २ । ५. 'ये ते' इति नास्ति मै० ।
६. द्र०—का० सर्वा० १।४॥ ७. ऋ० २।४१।३॥ ८. ऋ० २।४१।४॥
९. ऋ० २।४१।१९॥ १०. ऐत० ब्रा० ५।१७।६॥
११. ऐत० ब्रा० १।२९।३-४॥ १२. ऋ० १।२४।३॥
१३. ऋ० १।२०।१॥ १४. आश्व० श्रौ० ८।६।५॥ १५. ऋ० १०।१३।१॥
१६. ऋ० १०।१३।२॥ १७. आश्व० श्रौ० ४।९।४॥ १८. ऋ० २।४१।१६॥

नन्वेवं कस्मान्न व्याख्यायते। आद्यो द्वृचो वायव्यः। तृतीयाद्याश्चतस्र इन्द्रवायुदेवत्याः। अथ मित्रावरुणावश्विनाविन्द्रो विश्वे देवा इति चतस्रो देवतास्तृचभाजः। सप्तमतृचस्य देवतान्तरदृष्टत्वात् सरस्वतीति निवर्ततामिति[1]। उच्यते। वायो ये ते सहस्रिण इति प्रउगम्[2] इति ब्राह्मणं व्याचक्षाणेन सूत्रकारेणेन्द्रवाय्वोरेकर्चत्वस्य सारस्वततृचसंभवस्य चात्र दर्शितत्वात् तथा हि सूत्र्यते। वायो ये ते सहस्रिण इति द्वे तीव्राः सोमास आ [3]गहीत्येकोभा देवा दिविस्पृशेति[4] द्वे शुक्रस्याद्य गवाशिर[5] इत्येकाऽयं वां मित्रावरुणेति[6] पञ्च तृचा गार्त्समदं प्रउगमित्येतदाचक्षत[7] इत्येष हि तृचभाग्भ्यः सप्तभ्यः प्रउगदेवताभ्यस्तृचं प्रयच्छन्नयं वां मित्रावरुणेति पञ्च तृचा इति मित्रावरुणादिसरस्वत्यन्तेभ्यः[8] चतुर्थ्याद्याष्टादश्यन्तान् पञ्च तृचान् दत्त्वैवात्मैकर्चाय हि वायवे लब्धैकर्चाभ्यां द्वाभ्यामिन्द्रवायुभ्यां च तीव्रा इति वायव्यामुभेत्यैन्द्रवायव्यौ च यथाक्रमं ददाति। मन्त्रे लिङ्गं चेन्त्येवमनुस्तृतं भवति ।।५।।

[४२] कनिक्रदत् तृचम् ।।६।।

जनुषम्। तिस्रोऽपि त्रिष्टुभः। देवतोत्तरत्र[9]। गृत्समदः[10] ।।६।।

[४३] प्रदक्षिणिज्जागतं मध्येऽतिशक्वर्यष्टिर्वा ।।७।।

तृचमित्येव। अभि गृणन्ति[11]। द्वितीयातिशक्वर्यष्टिर्वा। गृत्समदः[11] ।।७।।

कनिक्रददित्यादिसूक्तद्वयस्य देवतामाह—

एताभ्यामृषिरध्वनि वाश्यमानं शकुन्तं तुष्टाव ।।८।।

एताभ्यां प्रदक्षिणित् कनिक्रददित्येताभ्यां सूक्ताभ्यामृषिर्गृत्समदोऽध्वनि मार्गे वाश्यमानम्। वाशृ शब्दे[12]। दिवादिः। अनुदातेत्। शकुन्तं कपिञ्जलाख्यं पक्षिरूपिणमिन्द्रं तुष्टाव। अस्तौदिति लाघवेन वाच्ये तुष्टावेत्युपदेशप्रत्यभिज्ञानार्थम्। उक्तं हि बृहद्देवतायां व्यक्तम्—

स्तुतिं तु पुनरेवेच्छन्निन्द्रो भूत्वा कपिञ्जलः।

---

१. 'सप्तमतृचः यद्देवतांतरावष्टब्धत्वात् सरस्वती निवर्ततामिति' इति पु० १, पु० २। '०तरत्वावष्टब्धत्वात्०' इति गो०। २. ऐत० ब्रा० ४।३१।६।।

३. ऋ० १।२३।१।। ४. ऋ० १।२३।२।। ५. ऋ० २।४१।३।।

६. ऋ० २।४१।४।। ७. आश्व० श्रौ० ७।६।२-३।।

८. '०त्यन्ताः' इति पु० १, पु० २, गो०। त्रिष्वपि कोशेषु व्याख्यात्रैव समाप्यते। अग्रिमा व्याख्या मैक्डानलानुसारिणी। ९. अत्रैवाष्टमे सूत्रे।

१०. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै०। ११. 'अभि गृणन्ति' 'गृत्समदः' इति नास्ति मै०।

१२. धा० ४।५४।।

ऋषेर्जिगमिषोराशां ववाशास्थाय[1] दक्षिणाम् ॥
स तमार्षेण संप्रेक्ष्य चक्षुषा पक्षिरूपिणम् ।
एताभ्याम्[2] अभितुष्टाव सूक्ताभ्यां तु कनिक्रदत् ॥[3] इति ।

एताभ्यमिति योगविभागेन भगवानपीमां कथामसूचयत् । सूक्तद्वयं स्वस्त्ययनमित्याहुर्ब्रह्मवादिनः । तथा च सूत्र्यते गृह्ये—वयसाममनोज्ञा वाचः श्रुत्वा कनिक्रदज्जनुषं प्रब्रुवाण इति सूक्ते जपेदिति[4] ॥८॥

॥ इति गार्त्समदं द्वितीयं मण्डलं समाप्तम् ॥

[अथ तृतीयं मण्डलम्]

अथ तृतीयमण्डले[5]ऽसत्यपवादे स्वयमृषित्वमनुभवतो विश्वामित्रस्य गोत्रविवक्षयेतिहासमाह—

कुशिकस्त्वैषीरथिरिन्द्रतुल्यं पुत्रमिच्छन् ब्रह्मचर्यं चचार तस्येन्द्र एव गाथी पुत्रो जज्ञे गाथिनो विश्वामित्रः स तृतीयं मण्डलमपश्यत् ॥९॥

इषीरथसुतस्त्वासीत् कुशिको नाम नामतः ।
इन्द्रतुल्यः सुतो मे स्यादितीच्छन्नकरोत् तपः ॥१॥
ब्रह्मचर्यं तु चरतस्तस्माद् इन्द्रोऽभ्यजायत ।
मत्समोऽन्यो न चैव स्यादहमेवास्य पुत्रताम् ॥२॥
गच्छामि सम्यगेवं स्यादिति मत्वा[6] शतक्रतुः ।
स गाथी नाम कुशिकादिषीरथसुतादभूत् ॥३॥
इन्द्ररूपाद् गाथिनस्तु विश्वामित्रोऽपि जज्ञिवान् ।
तृतीयं मण्डलमिदं तपसा सोऽथ दृष्टवान् ॥४॥

इषीरथाद् बाह्वादित्वाद्[7] इञ् । गाथिन इतीन्नन्तादण्[8] । कुतः ? तस्मात्

---

१. 'ववाश स्थाप्य' इति पु० १ । ययाशे दर्प्पेण(?)इति पु०२ । 'ववाशेय' इति गो० ।
२. 'पराभ्याम्' इति मुद्रिते । ३. बृ० दे० ४।९३-९४॥
४. आश्व० गृह्य० ३।१०।९॥
५. 'तृतीयं मण्डलं दर्शिनो' इति पु० १; पु० २, गो० ।
६. 'गत्वा' इति पु० १; पु० २, गो० । ७. तु०—अष्टा० ४।१।९६॥
८. अष्टः पाठः पु० १ । 'इति स्वतत्र्यतस्यांतः' इति पु० २ । 'इति स्वातंत्र्यं' इति गो० । 'इतीणंतादण्' इति मै० । तु०—अष्टा० ५।२।११६॥ तथा अष्टा० ४।१।९२॥

तत इति वानुक्तेः। गाथिशब्दादणि गाथिविदथीति[1] प्रकृतिभावः ॥९॥

[१] सोमस्य त्र्यधिका ॥१०॥

मा तवसम्। त्रयोविंशतिः। गाथिनो विश्वामित्रः। त्रिष्टुप्[2]। अग्निर्देवता।[2] मण्डलादिष्वाग्नेयमैन्द्रादिति[3] ॥१०॥

[२] वैश्वानराय पञ्चोना वैश्वानरीयं तु जागतं तु ॥११॥

धिषणाम्। पञ्चदश। इदमादिद्वे सूक्ते विश्वानराग्निदेवत्ये जगतीछन्दस्के च। विश्वामित्रः[4] ॥११॥

[३] वैश्वानरायैकादश ॥१२॥

पृथुपाजसे। विश्वामित्रः। जगत्यः। अग्निर्वैश्वानरः[4] ॥१२॥

[४] समित्समिदाप्रियः ॥१३॥

एकादशेत्येव। सुमनाः। विश्वामित्रः। त्रिष्टुप्[5]। इध्मादि स्वाहाकृत्यन्ता आप्रीदेवताः ॥१३॥

[५] प्रत्यग्निः ॥१४॥

एकादशेत्येव। उषसः। विश्वामित्रः। त्रिष्टुप्। अग्निः[4] ॥१४॥

[६] प्र कारवः ॥१५॥

एकादशेत्येव। मनना। विश्वामित्रः। त्रिष्टुप्। अग्निः[4] ॥१५॥

इत्याग्नेययोरन्यासामपि निपातो दृश्यते ॥१६॥

इत्याग्नेययोः। प्रत्यग्निः प्र कारव इत्यग्निदेवत्ययोः सूक्तयोरन्यासामपि देवतानां द्यावापृथिव्याब्देवपितृमित्राख्यानां निपातोऽभ्यागतभोजनभाक्त्वं दृश्यत उपलक्ष्यते। उक्तं हि बृहद्देवतायाम्—

द्वे अग्नय[6] उत्तरे त्वस्य[7] सूक्ते।

द्यावापृथिव्यौ तु निपातभाजावापोऽथ[8] देवाः पितरश्च मित्रः[9]॥ इति ॥१६॥

॥ इति षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

---

१. अष्टा० ६।४।१६५॥ २. मा…त्रिष्टुप्' 'देवता' इति नास्ति मै०।

३. का० सर्वा० परि० १२।१२॥ ४. सूत्रव्याख्या त्यक्ता गो०, मै०।

५. 'एका –त्रिष्टुप्' इति नास्ति मै०। ६. 'आग्नेये' इति मुद्रिते।

७. 'त्वत्र' इति मुद्रिते।

८. 'द्यावापृथिव्या उषस्यौ निपाताद्यौ निपातभाजाविति आपो०' इति पु० १, पु० २। 'द्यावापृथिव्यावुषसो निपाता' इति मुद्रिते।

९. बृ० दे० ४।९६॥

[१७]

[७] प्र ये ॥१॥

एकादशेत्येव । आरुः । विश्वामित्रः । त्रिष्टुप् । अग्निः[1] ॥१॥

[८] अञ्जन्ति यूपस्तुतिः षष्ठ्याद्याभिर्बहवोऽन्त्या व्रश्चन्यष्टमी[2] वैश्वदेवा वा तृतीयासप्तम्यावनुष्टुभौ ॥२॥

एकादशेत्येव । त्वामध्वरे[3] । यूपः स्तूयते[4] । षष्ठ्याद्याभिर्यान् वो नर[3] इत्यादिभिर्बहवो यूपाः स्तूयन्ते । किमर्थमिदं षष्ठ्याद्याभिर्बहव इति ? यूपस्तुतेरेव सिद्धत्वाद् यूपदेवतात्वस्य षष्ठ्यादेर्विनियोगो यूपैकदशिन्यां नैकयूप इति । यत्रैकतन्त्रे बहवः सपशवोऽन्त्यं परिधाय संस्तुयादनभिहिंकृत्य यान् वो नरो देवयन्तो निमिम्युरिति षड्भिः पञ्चभिर्वेति[5] सूत्रोक्तप्रयोगविशेषदर्शनार्थम् । अन्त्या व्रश्चनी[6] । अधिकरणे ल्युट्[7] । यत्र स्थाणौ यूपो वृक्णः[8] स स्थाणुः स्तूयते । देवताण्यादिवृद्ध्यभावश्छान्दसः । ङीप् । अष्टमी—आदित्या रुद्रा वसव इत्येषा[9]—वैश्वदेवी वा यौपी वा । तृतीयोच्छ्रयस्व वनस्पत इत्येषा सप्तमी ये वृक्णास इत्येषा चानुष्टुभौ । शिष्टा नव त्रिष्टुभः । विश्वामित्रः[9] ॥२॥

[९] सखायो नव बार्हतं त्रिष्टुबन्तम् ॥३॥

त्वा । अन्त्या त्रिष्टुप् । शिष्टा अष्टौ बृहत्यः । बार्हतमिति शिष्टा जगत्य[10] इत्यपवादः[11] । विश्वामित्रः । अग्निः[1] ॥३॥

[१०] त्वामग्न औष्णिहम् ॥४॥

नवेत्येव । मनीषिणः । उष्णिक् । विश्वामित्रः । अग्निः[1] ॥४॥

[११] अग्निर्होता गायत्रं तु ॥५॥

नवेत्येव । पुरोहितः । इदमादिद्वे सूक्ते गायत्रे । विश्वामित्रः । अग्निः[1] ॥५॥

---

१. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।

२. 'व्रश्चिन्यष्टमी' इति सार्वत्रिकः पाठः । सायणभाष्ये च तथैव ।

३. 'एका…ध्वरे' 'यान्…नरः' इति नास्ति मै० ।

४. 'यूपस्तुतये' इति पु० १, पु० २ ।

५. आश्व० श्रौ० ३।१।१०-११।

६. 'व्रश्चिनी' इति सार्वत्रिकः पाठः ।

७. तु०—अष्टा० ३।३।११७।

८. 'रूपो वृविक्णः' इत्यपपाठः पु० १ । 'यूपवृक्ष' इति पु० २ ।

९. 'आदित्य…एषा' 'तृतीयो… मित्रः' इति नास्ति मै० ।

१०. का० सर्वा० परि० १२।१३।

११. 'जगत्यपवादः' इति कोशेषु ।

[१२] इन्द्राग्नी ऐन्द्राग्नम् ॥६॥

नवेत्येव । आ गतम् । विश्वामित्रः । गायत्री । इन्द्राग्निदेवत्यम्[१] ॥६॥

[१३] प्र वः सप्त ऋषभस्त्वानुष्टुभम् ॥७॥

देवाय[२] । इदमादिद्वे सूक्ते ऋषभो ददर्श स च वैश्वामित्रः । वक्ष्यति—ऋषभस्तौ वैश्वामित्राविति[३] । अग्निः[२] ॥७॥

[१४] आ होता ॥८॥

सप्तेत्येव । मन्द्रः । ऋषभः । त्रिष्टुप् । अग्निः[१] ॥८॥

[१५] वि पाजसा कात्य उत्कीलस्तु ॥९॥

सप्तेत्येव । पृथुना[४] । उत्कीलो नाम कात्यः । कतगोत्रः । गर्गादिभ्यो यञ्[५] । अयमिदमादिद्वे सूक्ते अपश्यत् । त्रिष्टुप् । अग्निः[४] ॥९॥

[१६] अयमग्निः षट् प्रागाथम् ॥१०॥

सुवीर्यस्य । कात्य उत्कीलः । अयुजो बृहत्यः । अग्निः[१] ॥१०॥

[१७] समिध्यमानः पञ्च कतो वैश्वामित्रस्तु ॥११॥

प्रथमा । विश्वामित्रगोत्रः कता नामेदमादिद्वं सूक्ते ददर्श । त्रिष्टुप् । अग्निः[१] ॥११॥

[१८] भवा नः ॥१२॥

पञ्चेत्येव । अग्ने । त्रिष्टुप् । कतो वैश्वामित्रः । अग्निः[१] ॥१२॥

[१९] अग्निं होतारं गाथी ह ॥१३॥

पञ्चेत्येव । प्र वृणे[६] । गाथी नामायं कौशिक इदमादीनि चत्वारि सूक्तानि ददर्श । त्रिष्टुप् । अग्निः[६] ॥१३॥

[२०] अग्निमुषसमाद्यान्त्ये वैश्वदेव्यौ ॥१४॥

पञ्चेत्येव । अश्विना[७] । द्वितीयाद्यास्तिस्र आग्नेय्यः । प्रथमापञ्चम्यौ विश्वेदेवदेवत्ये । गाथी । त्रिष्टुप्[७] ॥१४॥

---

१. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० । २. 'देवाय' 'अग्निः' इति नास्ति मै० ।

३. का० सर्वा० ५०।८-९॥ ४. 'सप्ते ना' 'त्रि···अग्निः' इति नास्ति मै० ।

५. अष्टा० ४।१।१०५॥

६. 'पञ्चे···वृणे' 'त्रि···अग्निः' इति नास्ति मै० ।

७. 'पञ्चे···अश्विना' 'गाथी त्रिष्टुप्' इति नास्ति मै० ।

[२१] इमं न उपाद्ये अनुष्टुभौ विराड्रूपा सतोबृहती चान्त्या ॥१५॥

पञ्चेत्येव । यज्ञम्[१] । आद्याचतुर्थ्यौ त्रिष्टुभौ । द्वितीयातृतीये अनुष्टुभौ । ओजिष्ठं त इति[१] पञ्चमी विराड्रूपा सतोबृहती च । एकादशिनस्त्रयोऽष्टकश्च विराड्रूपेति[२] लक्षणाभावेऽपि श्रुतिदर्शनाद् विराड्रूपेत्युक्तम् । सर्वश्रुतिदर्शी ह्ययमाचार्यः । एषा हि लक्षणतः सतोबृहत्येव । अयुजौ जागतौ सतोबृहतीति[३] । छन्दोनुक्रमण्यामपि सतोबृहत्येषा । तथा चोक्तम्—

सतोबृहत्यौ तत्र द्वे[४] ओजिष्ठं ते दश क्षिपः[५] ॥ इति ।

कौशिको गाथी । अग्निः[१] ॥१५॥

[२२] अयं स उपान्त्यानुष्टुप् पुरीष्येभ्योऽग्निभ्यः ॥१६॥

पञ्चेत्येव । अग्निः । चतुर्थ्यनुष्टुप् । शिष्टास्त्रिष्टुभः । कौशिको गाथी[६] । पुरीष्येभ्यः पुरीष्यनामकाग्नीनामर्थाय । पुरीष्यसंज्ञका अग्नयो देवता इत्यर्थः । पुरीषमिति चयनस्याभिधानम् । भवार्थे यत् ॥१६॥

[२३] निर्मथितो देवश्रवा देववातश्च भारतौ तृतीया सतोबृहती॥१७॥

पञ्चेत्येव । सुधितः[७] । भरतगोत्रौ देवश्रवा देववातश्चेत्युभावृषी । तृतीया सतोबृहती । शिष्टास्त्रिष्टुभः । अग्निः[७] ॥१७॥

[२४] अग्ने सहस्व गायत्रमाद्यानुष्टुप् ॥१८॥

पञ्चेत्येव । पृतनाः । आद्यानुष्टुप् । शिष्टा गायत्र्यः । गाथिनो विश्वामित्रः । अग्निः[८] ॥१८॥

[२५] अग्ने दिवो वैराजमुपान्त्याग्नेन्द्री ॥१९॥

पञ्चेत्येव । सूनुः[९] । विराट् छन्दः । उपान्त्याग्न इन्द्रश्चेषेन्द्राग्निदेवत्या । आनङ् । अण्यादिवृद्धिः । नेन्द्रस्य परस्येति[१०] नोत्तरपदवृद्धिः । आद् गुणः[११] । ङीप् । शिष्टा आग्नेय्यः । विश्वामित्रः[९] ॥१९॥

---

१. 'पञ्चे ··यज्ञम्' 'ओजिष्ठं ··इति' 'कौशिको···अग्निः' इति नास्ति मै० ।
२. का० सर्वा० परि० ९।६॥ ३. का० सर्वा० परि० ८।४॥
४. 'सतोबृहत्यौ त ··' इति पु० १ । 'सतोवृहत्यः' इति पु० २ । 'सतोबृहत्यावत्र' इति गो० । ५. ऋ० ३।२३।३॥ ६. 'पञ्चे ··गाथी' इति नास्ति मै० ।
७. 'पञ्चे ··धितः' 'तृतीया···अग्निः' इति नास्ति मै० ।
८. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० । ९. 'पञ्चे ··सूनुः' 'विश्वामित्रः' इति नास्ति मै० ।
१०. अष्टा० ७।३।२२॥ ११. अष्टा० ६।१।८७॥

[२६] वैश्वानरं नर तृचौ वैश्वानरीयमारुतौ जागतौ द्वृच आत्म-स्तुतिर्वा पूर्वात्मगीतान्त्योपाध्यायस्तुतिः ।।२०।।

मनसा[1] । आद्यौ तृचौ जागतौ । प्रथमस्य वैश्वानरोऽग्निर्देवता । द्वितीयस्य मारुतोऽग्निः । शिष्टास्त्रिष्टुभः । अग्निरस्मीति द्वृचस्याग्निः परं ब्रह्म वा । नवम्या उपाध्यायस्तुतिः । सप्तमीवर्जस्य सूक्तस्य विश्वामित्र ऋषिः । सप्तम्या ब्रह्मवाक्यत्वाद् यस्य वाक्यम्[2] इति न्यायेन ब्रह्मर्षिः[3] ।।२०।।

[२७] प्र वः पञ्चोना गायत्रं त्वृतव्या वाग्र्या ।।२१।।

वाजाः । पञ्चदश । इदमादिन्द्रे सूक्ते गायत्रे । आद्या सूक्तस्य ऋतुदेवत्या वाग्नेयी वा । विश्वामित्रः[4] ।।२१।।

[२८] अग्ने जुषस्व षट् तृतीयाद्युष्णिक् त्रिष्टुब्जगत्यः ।।२२।।

नो हविः । तृतीयोष्णिक् । चतुर्थी त्रिष्टुप् । पञ्चमी जगती । शिष्टास्तिस्रो गायत्र्यः । विश्वामित्रः । अग्निः[4] ।।२२।।

[२९] अस्तीदं षोळशाद्याचतुर्थीदशमीद्वादश्योऽनुष्टुभः षष्ठ्येकादश्युपान्त्ये च जगत्यः पञ्चम्यृत्विग्भ्यो वा ।।२३।।

अधिमन्थनम् । आद्या चतुर्थी दशमी द्वादशी चेत्यनुष्टुभः । षष्ठ्येकादशी-चतुर्दशी पञ्चदशी च चतस्रो जगत्यः । उपान्त्यासाहचर्याच्चतुर्दश्यप्युपान्त्या । शिष्टा अष्टौ त्रिष्टुभः । पञ्चमी मन्थता नर इत्येषर्त्विग्भ्यः । ऋत्विजामर्थायाग्नेरर्थाय वा । विश्वामित्रः । अग्निः[5] ।।२३।।

।। इति सप्तदशोऽध्यायः ।।१७।।

---

[१८]

[३०] इच्छन्ति द्व्यधिकैन्द्रम् ।।१।।

त्वा सोम्यासः । द्वाविंशतिः । विश्वामित्रः । त्रिष्टुप्[6] । ऐन्द्रमिति मण्डला-

---

१. 'मनसा' इति नास्ति मै० । २. का० सर्वा० परि० २१४।।

३. पु० १, पु० २, गो० कोशस्थव्याख्यातः शब्दभेदोऽभिप्रायस्तु समान एव मै० संस्करणे, तदेवात्राङ्गीक्रियते । ४. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।

५. 'पञ्चम्यृत्विग्देवत्या वा' इति वर्जं सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।

६. 'त्वा···त्रिष्टुप्' इति नास्ति मै० ।

दिष्वाग्नेयमैन्द्राद्[1] इत्यपवादः ॥१॥

[३१] शासत् कुशिको विश्वामित्र एव वा श्रुतेः ॥२॥

द्वयधिकेत्येव । वह्निः[2] । ऐषीरथिः कुशिकः । स हेक्षांचक्रे विश्वामित्र इत्यादि । अभितष्टेव दीधया मनीषामित्यादि[3] ब्राह्मणश्रुतिदर्शनादधिकृत एव गाथिपुत्रो विश्वामित्रो वा। सर्वत्र श्रुतिमूलत्वेऽप्यत्र श्रुतिरिति प्रत्यक्षश्रुतिरिति[4] वक्तुम्[5]। एवेति पौनर्वचनीयको[6] वाविशिष्टत्वादस्योत्तरत्र[7] निवृत्तिर्मा भूदिति। माण्डलिको ह्ययम्। त्रिष्टुप् । इन्द्रः[2] । उक्तं चार्षानुक्रमण्याम्—

कुशिकं शासदित्याहुर्विश्वामित्रं[8] यथाश्रुति[9] ॥२॥

[३२] इन्द्र सोमं त्र्यूना ॥३॥

सोमपते । सप्तदश । विश्वामित्रः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः[10] ॥३॥

[३३] प्र पर्वतानां सप्तोना संवादो नदीभिर्विश्वामित्रस्योत्तितीर्षो-स्तत्र नदीवाक्यं चतुर्थीषष्ठ्यष्टमीदशम्यः षष्ठीसप्तम्यो-स्त्विन्द्रस्तुतिरन्त्यानुष्टुप् ॥४॥

उशती । त्रयोदश[11] । विश्वामित्रस्योत्तितीर्षोर्नदीभिः सह संवादोऽत्र सूक्ते प्रतिपाद्यते । तॄ प्लवनसंतरणयोः[12] । सनि ग्रहगुहोश्चेत्युगन्तत्वाद्[13] न सनीट् । इत्वरपरत्वद्वित्वदीर्घत्वषत्वेषु सनाशंसभिक्ष उः[14] । ततो ङस् ।[11] तत्र संवादे चतुर्थी षष्ठ्यष्टमी दशमी चेति चतस्रो नदीनां वाक्यम् । शिष्टा विश्वामित्रस्य । षष्ठ्यां सप्तम्यां चेन्द्रः स्तूयते । त्रयोदश्यनुष्टुप् । शिष्टास्त्रिष्टुभः[11] । षष्ठीसप्तम्योस्त्विन्द्रस्तुतिरिति षष्ठ्यां विश्वामित्रदेवत्वं सप्तम्यां नदीदेवत्वं च मा भूदिति ॥४॥

---

१. का० सर्वा० परि० १२।१२॥ 'मण्डलादिष्वाग्नेयत्वापवादः' इति पु० १, पु० २, गो० ।
२. 'द्वय···वह्नि' 'त्रिष्टुप् । इन्द्रः' इति नास्ति मै० । ३. ऐत० ब्रा० ६।१८।२॥
४. '॰रि···त्यक्षश्रु॰' इति पु० १, '॰रित्यक्षरश्रु॰' इति पु० २ ।
५. 'अत्र मूलमिति वक्तु' इति पु० १, पु० २, गो० ।
६. 'पौनवचचिको' इति पु० १, गो० । 'पौनर्वाचिको' इति पु० २ ।
७. '॰त्तरनि॰' इति पु० १, पु० २ । '॰त्तरानि॰' इति गो० ।
८. '॰त्रो' इति पु० १, पु० २ । ९. '॰श्रुतेरिति' इति पु० १, पु० २ ।
१०. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।
११. 'उशती···दश' 'तॄ···ङस्' 'त्रयो···त्रिष्टुभः' इति नास्ति मै० । 'तॄ···ङस्' इति नास्ति गो० । १२. धा० १।१०१८॥
१३. अष्टा० ७।२।१२॥ १४. अष्टा० ३।२।१६८॥

[३४] इन्द्रः पूर्भिदेकादश ।।५।।

आतिरत् । विश्वामित्रः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः[१] ।।५।।

[३५] तिष्ठा हरी ।।६।।

एकादशेत्येव । रथः । विश्वामित्रः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः[१] ।।६।।

[३६] इमामू षूपान्त्यां घोरोऽपश्यत् सा निर्दहेच्छस्यमानेति श्रूयते।।७।।

एकादशेत्येव । प्रभृतिम् । विश्वामित्रः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः । अस्मे प्रयन्धित्युपान्त्यां[२] दशमीं घोर आङ्गिरसोऽपश्यत् । सा च दशम्यृक् शस्यमाना यज्ञेषु निर्दहेत् सर्वमिति हि श्रूयते श्रुतिषु । उक्तं चार्षानुक्रमण्याम्—

ऋगेकास्मे[३] प्र यन्धीति घोरस्याङ्गिरसस्य तु[४] ।
निर्दहेच्छस्यमानेति श्रूयते सा न शस्यते ।। इति ।

सूत्र्यते चाच्छावाकशस्त्रे—इमामू ष्वित्युपोत्तमामुद्धरेत् सर्वत्रेति[५] । सर्वत्र श्रौतेकर्मणीत्यर्थः । सापि निर्दहेदिति श्रुतिदर्शनादेवं ह्युद्धारं विदधाति[६] । शस्यमानेति विशेषणं गृह्ये जातकर्मण्यंसाभिमर्श इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेह्यस्मे[७] प्र यन्धि मघवन्नृजीषिन्निति चेत्यत्र[८] निर्दहो नास्तीति वक्तुम् । न ह्यत्रांसाभिमर्शनं शंसतीति चोदितम् ।।७।।

[३७] वार्त्रहत्याय गायत्रमन्त्यानुष्टुप् ।।८।।

एकादशेत्येव । शवसे । विश्वामित्रः । इन्द्रः । एकादश्यनुष्टुप् । शिष्टा गायत्र्यः[१] ।।८।।

[३८] अभि तष्टेव दश प्रजापतिः स वैश्वामित्रो वाच्यो द्वौ वा तौ न वैकोऽपि ।।९।।

दीधय[९] । प्रजापतिर्नामर्षिः । स वैश्वामित्रो वाच्यो वा । वाचोऽपत्यं वा । वाङ्मतिपितृमताम्[१०] इति ण्यः । द्वौ वा तौ । वाच्यवैश्वामित्रप्रजापती सहापश्यतां

१. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।
२. 'एका ··इति' इति नास्ति मै० ।
३. 'ऋगस्मै' इति पु० १, पु० २ ।
४. '०ङ्गिरस्यत्' इति पु० १ । '०ङ्गिसोपश्यत्' इति पु० २ ।
५. आश्व० श्रौ० ५।१६।२।।
६. 'देवत्यद्वारं विदधाति' इति पु० १, पु० २ ।
७. ऋ० २।२१।६।।
८. आश्व० गृह्य० १।१५।३।।
९. 'दीधय' इति नास्ति मै० ।
१०. महा० वा० ४।१।८५।।

वा। न वैकोऽपि। एनयोर्मध्य एकोऽपि नापश्यदिति वा। अत्र पक्षे गाथिपुत्रो विश्वामित्र ऋषिः। उक्तं चार्षानुक्रमण्याम्—

इमं त्रीण्यभितष्टीयं वैश्वामित्रः[1] प्रजापतिः।
वाच्यः प्रजापतिर्वा स चतुर्थमुभयोर्न वा ॥ इति।

तत्रेमं मह[2] इत्यादित्रीणि सूक्तानि चतुर्थमभितष्टीयमित्यर्थः। त्रिष्टुप्। इन्द्रः[3] ॥९॥

[३९] इन्द्रं मतिर्नेव ॥१०॥

हृद आ। विश्वामित्रः। त्रिष्टुप्। इन्द्रः[4] ॥१०॥

॥ इत्यष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

---

[१९]

[४०] इन्द्र त्वा गायत्रं हि ॥१॥

नवेत्येव। वृषभम्। इदमादीनि त्रीणि सूक्तानि गायत्रीछन्दस्कानि। विश्वामित्रः। इन्द्रः[4] ॥१॥

[४१] आ तू नः ॥२॥

नवेत्येव। इन्द्र। विश्वामित्रः। गायत्री। इन्द्रः[4] ॥२॥

[४२] उप नः ॥३॥

नवेत्येव। सुतम्। विश्वामित्रः। गायत्री। इन्द्रः[4] ॥३॥

[४३] आ याह्यष्टौ ॥४॥

अर्वाङ्। विश्वामित्रः। त्रिष्टुप्। इन्द्रः[4] ॥४॥

[४४] अयं ते पञ्च बार्हतं तु ॥५॥

अस्तु। इदमादिद्वे सूक्ते बृहतीछन्दस्के। विश्वामित्रः। इन्द्रः[4] ॥५॥

[४५] आ मन्द्रैः ॥६॥

पञ्चेत्येवं। इन्द्र। विश्वामित्रः। बृहती। इन्द्रः[4] ॥६॥

[४६] युध्मस्य ॥७॥

पञ्चेत्येव। ते। विश्वामित्रः। त्रिष्टुप्। इन्द्रः[4] ॥७॥

---

१. 'विश्वामित्रः' इति पु० १, पु० २। २. ऋ० ३।५४॥
३. 'त्रि...इन्द्रः' इति नास्ति मै०। ४. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै०।

[४७] मरुत्वान् ॥८॥

पञ्चेत्येव । इन्द्र । विश्वामित्रः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः[१] ॥८॥

[४८] सद्यो ह ॥९॥

पञ्चेत्येव । जातः । विश्वामित्रः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः[१] ॥९॥

[४९] शंसा महाम् ॥१०॥

पञ्चेत्येव । इन्द्रम् । विश्वामित्रः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः[१] ॥१०॥

[५०] इन्द्रः स्वाहा ॥११॥

पञ्चेत्येव । पिबतु । विश्वामित्रः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः[१] ॥११॥

[५१] चर्षणीधृतं द्वादशाद्यान्त्यौ तृचौ जागतगायत्रौ ॥१२॥

मघवानम्[२] । आदितस्तिस्रो जगत्यः[३] । अन्त्यास्तिस्रो गायत्र्यः । मध्ये षट् त्रिष्टुभः । विश्वामित्रः । इन्द्रः[२] ॥१२॥

[५२] धानावन्तमष्टौ पूर्वार्धे गायत्रं षष्ठी जगती ॥१३॥

करम्भिणम्[४] । आदितश्चतस्रो गायत्र्यः । तृतीये धाना इति[४] षष्ठी जगती । शिष्टास्तिस्रस्त्रिष्टुभः[४] । विश्वामित्रः । इन्द्रः[४] ॥१३॥

[५३] इन्द्रापर्वता चतुर्विंशतिराद्यैन्द्रापार्वती पञ्चदश्यादिद्वे वाचे ससर्पर्यै चतस्रो रथाङ्गस्तुतयोऽन्त्या अभिशापास्ता वसिष्ठ-द्वेषिण्यो न वसिष्ठा शृण्वन्ति । दशमीषोळश्यौ जगत्यौ त्रयोदशी गायत्री द्वादशीविंशीद्वाविंश्योऽनुष्टुभोऽष्टादशी बृहती ॥१४॥

बृहता[५] । सचतुष्केत्यनुक्तिर्वैचित्र्याय । आद्येन्द्रापर्वतदेवत्या । देवताद्वन्द्वे चेत्यानङ्[६] । उभयपदवृद्धिः[५] । पञ्चदश्यादिद्वे वाचे ससर्पर्यै ससर्परी नाम वाक् । तादर्थ्ये ङे ।

ससर्परीद्वृचे प्राहुरितिहासं पुराविदः ।
सौदासनृपयज्ञे वै वसिष्ठात्मजशक्तिना ॥१॥

---

१. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।
२. 'मघवानम्' 'विश्वा ··इन्द्रः' इति नास्ति मै० ।
३. '०तस्तृचो जागतः' इति मै० ।
४. 'करम्भिणम्' 'तृ···इति' 'तिस्रः' 'वि···इन्द्रः' इति नास्ति मै० ।
५. 'बृहता' 'देव···वृद्धिः' इति नास्ति मै० ।
६. अष्टा० ६।३।२६॥

विश्वामित्रस्याभिभूतं बलं वाक् च[1] समन्ततः।
वासिष्ठेनाभिभूतः स ह्यवासीदच्च[2] गाथिजः ॥२॥
तस्मै[3] ब्राह्मीं तु सौरीं वा नाम्ना वाचं ससर्परीम्।
सूर्यवेश्मन[4] आहृत्य दुदुर्व[5] जमदग्नयः ॥३॥
कुशिकानां ततः[6] सा वागमतिं[7] तामपानुदत्[8]।
उप प्रेतेति[9] कुशिकान् विश्वामित्रोऽन्वयोजयत्[10] ॥४॥
लब्ध्वा वाचं च हृष्टात्मा जमदग्नीनपूजयत्[11]।
ससर्परीरिति द्वाभ्यामृग्भ्यां वाचं स्तुवन् स्वयम् ॥५॥ इति।

अथ चतस्रो रथाङ्गस्तुतयः। ताः स्थिरौ गावावित्याद्याः[12]। रथाङ्गानि रथावयवा इत्यर्थः। अन्त्या [13]इन्द्रोतिभिरित्याद्याश्चतस्रोऽभिशापार्थाः। अभिशापोऽप्रियशंसनमर्थो यासां ताः। ताश्च वसिष्टद्वेषिण्यो[14] नाम। प्रयोजनं शौनकोपदेशे च—वसिष्ठद्वेषिणीः पठन्नित्यादि[15]। ताश्च न वसिष्ठाः श्रृण्वन्ति। लिङ्गे लट्। श्रृणुयुः[16]। यदि श्रृणुयुः शिरः शतधा भिद्येत। तथा बृहद्देवतायाम्—

शतधा भिद्यते मूर्धा कीर्तितेन[17] श्रुतेन वा।
तेषां बाला प्रमीयन्ते तस्मात्तास्तु न कीर्तयेत्[18] ॥ इति।

दशमी षोडशी च द्वे जगत्यौ। त्रयोदशी गायत्री। द्वादशीविंशीद्वाविंश्य इति तिस्रोऽनुष्टुभः। [द्वादश] विंशतिद्वाविंशतिभ्यः पूरणार्थे डट्। टेरिति[19] टिलोपः। ति विंशतेर्डितीति[20] तिलोपश्च। टित्त्वाद् ङीप्। अष्टादशी बृहती। शिष्टास्त्रि-

---

१. 'च' इति नास्ति पु० १। 'स' पु० २, गो०। २. '०सीदथ' इति पु० २, गो०।
३. इत आरभ्य श्लोकत्रयं बृहद्देवतातः (४।११३—११६) समुद्धृतम्।
४. 'सूर्यक्षयादिह' इति बृ० दे०। ५. 'दुदुस्ते' इति बृ० दे०।
६. 'मतिं' इति पु० १, पु० २, गो०। ७. 'वाममतिं' इति पु० १, पु० २।
८. 'उपानुदत्' इति पु० २, गो०। 'अपाहनत्' इति बृ० दे०।
९. 'उपेति चास्यां' इति बृ० दे०।
१०. 'त्वयोजयत्' इति पु० २। 'अनुबोधयत्' इति बृ० दे०।
११. 'तानृषीन् प्रत्यपूजयत्' इति बृ० दे०।
१२. 'ताः…द्याः' इति नास्ति मै०। ऋ० ३।५३।१७॥
१३. 'इन्द्रो…द्याः' इति नास्ति मै०। ऋ० ३।५३।२१॥
१४. तु०—बृ० दे० ४।११८॥ १५. ऋग्विधान २।१८।२॥
१६. 'श्रृणुयुः' इति नास्ति मै०, गो०। १७. 'कीर्तिता च' इति पु० २।
१८. 'तस्मा…कीर्तयेत्' इति नास्ति पु० १। बृ० दे० ४।१२०॥
१९. अष्टा ६।४।१४३॥ २०. अष्टा० ६।४।१४२॥

ष्टुभः सप्तदश । विश्वामित्रः । इन्द्रश्चानुक्तविषयः[1] ॥१४॥

[५४] इमं महे द्व्यधिकोक्तगोत्रः प्रजापतिर्हि वैश्वदेवं ह ॥१५॥

विदथ्याय । द्वाविंशतिः[2] । प्रजापतिर्ऋषिः । स चाभितष्टीयसूक्ते[3] प्रतिपादितगोत्रद्वयः । वैश्वामित्रो वाच्यो वेति । ननु च क्वचित् कथंचिदिति सिद्धेरुक्तगोत्र इत्येतन्न वक्तव्यम् । वक्तव्यमवश्यम् । किम् ? नियमार्थम् । नासत् सप्त प्रजापतिः परमेष्ठी भाववृत्तं त्विति[4] परमेष्ठिगुणस्य वक्ष्यमाणस्य प्रजापतेर्वैश्वामित्रत्वं वाच्यत्वं च मा भूदयमेवोक्तगोत्रो यथा स्यादिति । हि । इन्द्रमादीनि त्रीणि सूक्तान्यपश्यत् । इदमादीनि चत्वारि सूक्तानि वैश्वदेवानि । त्रिष्टुप्[2] ॥१५॥

[५५] उषसः ॥१६॥

द्व्यधिकेत्येव । पूर्वाः । प्रजापतिः । त्रिष्टुप् । विश्वे देवाः[5] ॥१६॥

॥ इत्येकोनविंशतितमोऽध्यायः ॥१९॥

—:०:—

[२०]

[५६] न ताष्टौ ॥१॥

मिनन्ति । प्रजापतिः । त्रिष्टुप् । विश्वे देवाः[5] ॥१॥

[५७] प्र मे षट् ॥२॥

विविक्वान् । प्रजापतिः । त्रिष्टुप् । विश्वे देवाः[5] ॥२॥

[५८] धेनुर्नवाश्विनम् ॥३॥

प्रत्नस्य । प्रजापतिः । त्रिष्टुप् । आश्विनम्[5] ॥३॥

[५९] मित्रो मैत्रं चतुर्गायत्र्यन्तम् ॥४॥

नवेत्येव । जनान् । मित्रदेवत्यम् । आदितः पञ्च त्रिष्टुभः । अन्ते चतस्रो गायत्र्यः । विश्वामित्रः[5] ॥४॥

[६०] इहेह वः सप्तार्भवं जागतं तृचोऽन्त्य ऐन्द्रश्च ॥५॥

---

१. 'दशमी···विषयः' इति नास्ति मै० ।

२. 'विद···शतिः' 'हि···त्रिष्टुप्' इति नास्ति गो० । ३. का० सर्वा० १८।९॥

४. का० सर्वा० ६३।१०॥ ५. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।

वो मनसा। आर्भवम्। ऋभुदेवत्यम्। जगतीछन्दस्कम्। अन्त्यस्तृच इन्द्रदेवत्य ऋभुदेवत्यश्च। विश्वामित्रः[1] ॥५॥

[६१] उष उषस्यम् ॥६॥

सप्तेत्येव। वाजेन। विश्वामित्रः। त्रिष्टुप्। उषोदेवत्यम्[1] ॥६॥

[६२] इमा उ द्व्यूनैन्द्रावरुणबार्हस्पत्यपौष्णसावित्रसौम्य-मैत्रावरुणास्तृचा अन्त्यो जमदग्न्यार्षो वा चतुर्थ्याद्या गायत्र्यः ॥७॥

वां भूमयः। अष्टादश[2]। मित्रावरुणदेवत्यस्तृचो जमदग्न्यार्षो वैश्वामित्रो वा। आर्ष इति तस्येदमण्[3]। जमदग्निऋषिर्वेत्यर्थः। जमदग्न्यार्ष इति वचनं देवतात्व-भ्रान्तिनिवृत्त्यर्थम्। आदितस्तिस्रस्त्रिष्टुभः। चतुर्थ्याद्याः पञ्चदश गायत्र्यः। विश्वा-मित्रः[2] ॥७॥

॥ इति तृतीयं मण्डलं समाप्तम् ॥

—:०:—

[अथ चतुर्थं मण्डलम्]

अथासत्यपवादे चतुर्थमण्डले वामदेवस्यर्षित्वायाह[4]—

वामदेवो गौतमश्चतुर्थं मण्डलमपश्यत् ॥८॥

गोतमाद् ऋष्यणि वृद्धिः[5] ॥८॥

[१] त्वां ह्यग्ने विंशतिरष्ट्यतिजगतीधृतय आद्या उपाद्याश्चतस्रो वारुण्यश्च वा ॥९॥

सदमित्[6]। आद्याष्टिः। चतुःषष्टयक्षरा द्व्यर्धर्चा। द्वितीयातिजगती द्विपञ्चा-शदक्षरा। तृतीया धृतिर्द्विसप्तत्यक्षरा त्र्यर्धर्चा। चतुर्थ्याद्याः सप्तदश त्रिष्टुभः। उपाद्या द्वितीयाद्याश्चतस्रो वरुणदेवत्याश्च वा। अग्नीवरुणदेवत्याः शुद्धाग्निदेवत्या वेत्यर्थः। पुरस्ताच्च परस्ताच्च षोडश शुद्धाग्निदेवत्या एव। मण्डलादिष्वाग्नेयमैन्द्राद्[7] इति ह्युक्तम्। वामदेवः[6] ॥९॥

---

१. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै०।
२. 'वा…दश' 'आदि ''मित्रः' इति नास्ति मै०।
३. अष्टा० ४।३।१२०॥
४. '०त्वमाह' इति पु० २, गो०।
५. 'गो…वृद्धिः' इति नास्ति मै०।
६. 'सदमित्' 'वामदेवः' इति नास्ति मै०।
७. का० सर्वा० परि० १२।१२॥

[२] यो मर्त्येषु ।।१०।।

विंशतिरित्येव । अमृत ऋतावा । वामदेवः । त्रिष्टुप् । अग्निः[1] ।।१०।।

[३] आ वः पोळशाद्या रौद्री ।।११।।

राजानम् । वामदेवः । त्रिष्टुप्[2] । अग्निः । अत्राद्या वो राजानम् इत्येषा यजुर्वेदे ऽग्नये रुद्रवत[3] इत्यारम्य दर्शनाद् रुद्रगुणाग्निदेवत्या । अस्माकं तु बह्वृचानामियं शुद्धाग्निदेवत्या । अग्नेरेव विशेषणं रुद्र इति । रोरूयमाणत्वाद् रुद्र[4] इति निर्वचनमिति नैरुक्ताः । युद्धेषु शत्रून् रोदयन्तीत्यैतिहासिकाः[5] । सामवेदे[6]त्वियं भगवतो रुद्रस्यैव प्रतिपादिका । सैषा रौद्री संहितेति[7] सामगाः समामनन्ति । तत्र हीयमन्यथाम्नायते । आ वो राजा तद्वोवर्ग[7] इति[8] । एकस्यैव हि मन्त्रस्य वेदभेदेन देवताभेदो दृश्यते[9] । यथा—गावश्चिद्धा समन्यव[10] इति बह्वृचानां मारुती सैव सामवेदविदां[11] गोदेवत्या गवां तृणमुष्टिदानदर्शनात्[12] ।।११।।

[४] कृणुष्व पञ्चोना राक्षोघ्नम् ।।१२।।

पाजः । पञ्चदश[13] । राक्षोघ्नम् । रक्षोहेत्यग्नेर्गुणः । देवताणि षपूर्वहन्नित्यलोपः[14] । हो हन्तेरिति[15] कुत्वं घकारः । आदिवृद्धिः । वामदेवः । त्रिष्टुप् । रक्षोहाग्निः[13] ।।१२।।

।। इति विंशोऽध्यायः ।।२०।।

———

१. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० । २. 'राजा ··त्रिष्टुप्' इति नास्ति मै० ।

३. तै० सं० २।२।२।३।। तु०—तै० सं० १।३।१४।१।। तै० ब्रा० २।८।६।९।।

४. निरु० १०।५।।

५. 'शुद्धेषु···न्येदयतीतिज्ञासिकाः' इति पु० १ । 'शुद्धेषु अन्येदयतीतिज्ञासिकारः' अति पु० २ । 'शुद्धेषुशत्रुनादयन्ती०' इति गो० । ६. साम० १।१।२।२।७।।

७. सामविधान ब्रा० १।४।१७।।

८. इतोऽग्रेऽधिकः पाठः गो० कोशे—'एतदभिप्रायं पुराणवचनं । मन्त्रा ऊचुः सुरापेतं तमोपहर चेतसः । येनाध्वरस्य राजानं न ये सध्वे महेश्वरमिति' ।

९. 'आ···दृश्यते' इति नास्ति पु० १, पु० २ । १०. ऋ० ८।२०।२१।।

११. साम० १।५।१।८।६।। तु०—सामविधान ब्रा० ३।२।६।।

१२. 'तृणमग्नि०' इति पु० १, पु० २ ।

१३. 'पाजः ' दश' 'वाम···अग्निः' इति नास्ति मै० । १४. अष्टा० ६।४।१३५।।

१५. अष्टा० ७।३।५४।।

[२१]

[५] वैश्वानराय वैश्वानरीयम् ॥१॥

पञ्चेत्येव । मीढुषे । रक्षोहवद्[1] वैश्वानर इत्यग्नेर्गुणः । वामदेवः । त्रिष्टुप्[1] । वैश्वनरोऽग्निः ॥१॥

[६] ऊर्ध्व ऊ ष्वेकादश ॥२॥

णो अध्वरस्य । वामदेवः । त्रिष्टुप् । अग्निः[2] ॥२॥

[७] अयमिहादौ जगती पञ्चानुष्टुभः ॥३॥

एकादशेत्येव । प्रथमः । आद्या जगती । द्वितीयाद्याः पञ्चानुष्टुभः । शिष्टास्त्रिष्टुभः । वामदेवः । अग्निः[2] ॥३॥

[८] दूतं वोऽष्टौ गायत्रं तु ॥४॥

विश्ववेदसम् । इदमुत्तरं च द्वे गायत्रे । वामदेवः । अग्निः[2] ॥४॥

[९] अग्ने मृळ ॥५॥

अष्टावित्येव । महाँ असि । वामदेवः । गायत्रम् । अग्निः[2] ॥५॥

[१०] अग्ने तमद्य पदपाङ्क्तं पञ्चमी महापदपङ्क्तिरन्त्योष्णिक् चतुर्थीषष्ठ्युपान्त्या वा सप्तम्याः पञ्चकौ मुख्यौ तृतीयः सप्तको नवकश्चाष्टम्याः पञ्चकः पादश्चतुष्कः सप्तकस्त्रैष्टुभश्च ॥६॥

अष्टावित्येव । अश्वं न[3] । पदपङ्क्तिच्छन्दस्कम् । पञ्चकाश्चत्वारः षट्कश्चैकश्चतुर्थश्चतुष्को वा पदपङ्क्तिरित्युक्तम्[4] । पञ्चमी महापदपङ्क्तिः । एतदप्युक्तम्—पञ्च पञ्चकाः षट्कश्चैको महापदपङ्क्तिरिति[5] । अन्त्योष्णिक् । चतुर्थी षष्ठी सप्तमी वेति विकल्पेनोष्णिहस्तिस्रः । वामदेवः । अग्निः[6] । सप्तम्यष्टम्योः पङ्क्तित्व उष्णिक्त्वे चानुक्तरूपत्वादवश्यं[7] ज्ञेयत्वाच्च पादव्यवस्थामाह—सप्तम्या इत्यादि ।

---

१. 'पञ्चे···वद्' 'वाम···त्रिष्टुप्' इति नास्ति मै० ।
२. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।
३. 'अष्टा०···न' इति नास्ति मै० ।
४. का० सर्वा० परि० ४।२॥ 'पञ्च···उक्तम्' इति नास्ति मै० ।
५. का० सर्वा० परि० ६।२॥ 'एत···रिति' इति नास्ति मै० ।
६. 'वामः · अग्निः' इति नास्ति मै० ।
७. '०दवश्यज्ञेय०' इति पु० १ । 'चानुरुक्तरूपत्वादवश्याग्नेय०' इति पु० २ ॥

सप्तम्या मुख्यौ प्रथमद्वितीयौ पादौ पञ्चाक्षरौ। तृतीयः सप्ताक्षरः। चतुर्थो नवाक्षरः। अष्टम्याः प्रथमः पादः पञ्चाक्षरो द्वितीयश्चतुरक्षरस्तृतीयः सप्ताक्षरश्चतुर्थ एकादशाक्षरः। तद्यथा। कृतं चिद्धि ष्मा। सनेमि द्वेषः। अग्न इनोषि मर्तात्। इत्था यजमानादृतावः। शिवा नः सख्या। सन्तु भ्राता। अग्ने देवेषु युष्मे। सा नो नाभिः सदने सस्मिन्नूधन्। असति पादव्यवस्थावचने सप्तम्याः पदपङ्क्तित्वे पञ्चकाश्चत्वारः षट्कश्चैकश्चतुर्थं[1] इति पादव्यवस्था स्यात्। अस्या एवोष्णिक्त्वेऽष्टकौ दशाक्षर इति स्याद् विराडुष्णिग्[2] इति कृत्वा। अष्टम्यास्तूष्णिक्त्वादष्टकौ द्वादशक[2] इति स्यात्॥६॥

[११] भद्रं षट् ॥७॥

ते अग्ने। वामदेवः। त्रिष्टुप्। अग्निः[3] ॥७॥

[१२] यस्त्वाम् ॥८॥

षडित्येव वामदेवः। त्रिष्टुप्। अग्निः[3] ॥८॥

[१३] प्रत्यग्निः पञ्च लिङ्गोक्तदैवतं त्वेके ॥९॥

उषसाम्[4]। इदमुत्तरं च द्वे सूक्ते लिङ्गोक्तदेवते। स्वसामर्थ्यप्रतिपादितोषःप्रभृतिदेवत्यमेके वदन्ति। अपरे तु[4] सिद्धाग्निदेवत्यमेव। वामदेवः। त्रिष्टुप्[4] ॥९॥

[१४] प्रत्यग्निः ॥१०॥

पञ्चेत्येव। उषसः। वामदेवः। त्रिष्टुप्। अग्निः[3] ॥१०॥

[१५] अग्निर्होता दश गायत्रम् ऋषिर्बोधदित्याभ्यां सोमकं साहदेव्यमभ्यवदत् पराभ्यामस्याश्विनावायुरयाचत ॥११॥

नो अध्वरे[6]। ऋषिर्वामदेवः। बोधद् यन्मा हरिभ्याम्[7] इत्याभ्यामृग्भ्यां सहदेवस्य पुत्रकं सोमकं राजानमभ्यवदद् आशीर्भिरपूरयत्। पराभ्यामेष वां देवावश्विनेत्याभ्याम्[8] ऋग्भ्यामस्य सोमस्य राज्ञ आयुर्जीवनं शतसंवत्सरलक्षणमश्विनौ देवते प्रार्थयांचक्रे। सोमको हि राजा वामदेवस्य याज्यत्वादिनातिबन्धुः[9]। सोमकस्य राजत्वं

---

१. का० सर्वा० परि० ४।२॥ २. तु०— का० सर्वा० परि० ५।१॥
३. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै०। ४. 'उषसाम्' 'वाम···त्रिष्टुप्' इति नास्ति मै०।
५. 'यथा' इति पु० १, पु० २, गो०। ६. 'नो अध्वरे' इति नास्ति मै०।
७. ऋ० ४।१५।७-८॥ ८. ऋ० ४।१५।९-१०॥
९. 'नातिस्तिक्यबन्धुः' इति पु० १। 'नास्तिक्यं बन्धुः' इति पु० २।

ब्राह्मणे[1] स्पष्टमीरितम् । एतमु हैव प्रोचतुः पर्वतनारदौ सोमकायेत्यादिना[2] सर्वे हैव महाराजा आसुरित्यन्तेन[2] । बोधद् इति द्वृचेन सोमकः स्तूयत एष वामिति द्वृचेनाश्विनौ स्तूयेते । शिष्टाभिः षड्भिरग्निः स्तूयते । वामदेवः । गायत्री[3] ॥११॥

[१६] आ सत्यः सैकैन्द्रम् ॥१२॥

यातु । एकविंशतिः । वामदेवः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः[4] । ऐन्द्रमिति मण्डलादिष्वाग्नेय बाधित्वार्थम् ॥१२॥

[१७] त्वं महाँ असिक्न्यामेकपदा ॥१३॥

इन्द्र । एकविंशतिः[5] । असिक्न्यां यजमान[6] इत्येकपदा दशाक्षरा । विंशतिका द्विपदा विराजस्तदर्धमेकपदेत्युक्तम्[7] । वामदेवः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः[5] ॥१३॥

[१८] अयं पन्थाः सप्तोना संवाद इन्द्रादितिवामदेवानाम् ॥१४॥

अनुवित्तः । त्रयोदश । त्रिष्टुप्[8] । अत्र

गर्भस्थो ज्ञानसम्पन्नो वामदेवो महामुनिः ।
मतिं चक्रे न जायेयं योनिदेशात्तु मातृतः ॥१॥
किन्तु पार्श्वादितश्चेति[9] ज्ञात्वास्य[10] जननी त्विदम् ।
दध्यौ शान्त्यै शचीं देवीमदितिं त्विन्द्रमातरम् ॥२॥
अदितिस्त्विन्द्रसहिता गर्भिणीमभ्यगाद् वने ।
अदितीन्द्रवामदेवाः संवादमथ चक्रिरे ॥३॥
संवाद इति सूत्रेण कथा सैषात्र[11] सूच्यते ।
नोक्तो वक्तृविशेषोऽत्र ह्यु पदेशेष्वनुक्तितः ॥
अर्थतस्त्ववगन्तव्यो वक्तृभेद इति स्थितिः ॥४॥
इन्द्रोऽदितिर्ऋषिश्चास्मिन् मिथः सूक्ते समूदिरे ।

---

१. 'ब्राह्मणेन' इति पु० १ । २. ऐत० ब्रा० ७।३४।९॥
३. 'वाम...यत्री' इति नास्ति मै० ।
४. 'यातु...इन्द्रः' इति नास्ति मै० ।
५. 'इन्द्र...शतिः' 'वाम...इन्द्रः' इति नास्ति मै० ।
६. ऋ० ४।१७।१५॥ ७. का० सर्वा० परि० १२।८-९॥
८. 'अनु...त्रिष्टुप्' इति नास्ति मै० । ९. '०दितिश्चेति' इति पु० १, पु० २ ।
१०. 'ज्ञात्वा पु' इति पु० १, पु० २, गो० ।
११. '०वसूच्यते' इति पु० १; '०नु सूच्यते' इति पु० २ ।

गर्भे शयानं सुचिरं मातुर्गर्भादनिर्गतम्[1] ॥५॥
वामदेवं प्रति ब्रूत आद्ययर्चा शतक्रतुः ।
द्वितीयादिभिरर्धर्चैर्ऋषिरत्राह पञ्चभिः[2] ॥६॥
न ही न्वस्येति सप्त स्युरर्धर्चा अदितेर्वचः ।
ममच्चन त्वा युवतिरित्यृचः पञ्च वै मुनेः ॥७॥
दौर्गत्यशान्तिमत्राह वामदेवस्तथान्त्यया ।
एवमर्थाद् वक्तृभेद इति बह्वृचशासनम् ॥८॥
अर्थो विवेकस्पष्टत्वादुपदेशेषु नेरितः[3] ।
ऋषिदंत्रतसिद्धयर्थं विवेकत्वेऽर्थं[4] ईरितः ॥९॥[5] ॥१४॥

॥ इत्येकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

---

[२२]

[१९] एवैकादश ॥१॥

त्वामिन्द्र । वामदेवः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः[6] ॥१॥

[२०] आ नः ॥२॥

एकादशेत्येव । इन्द्रो दूरात् । वामदेवः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः[6] ॥२॥

[२१] आ यातु ॥३॥

एकादशेत्येव । इन्द्रोऽवसे । वामदेवः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः[6] ॥३॥

[२२] यन्नः ॥४॥

एकादशेत्येव । इन्द्रो जुजुषे । वामदेवः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः[6] ॥४॥

[२३] कथोपान्त्यास्तिस्र ऋतदेव्यो वा ॥५॥

---

१. 'आद्यैन्द्रयं द्वितीयाद्यर्धर्चाः पञ्च वै मुनेः' इति श्लोकार्धः पञ्चमश्लोकस्य स्थाने दृश्यते पु० १, षष्ठश्लोकस्य स्थाने च गो० । २. षष्ठः श्लोको नास्ति पु० १ ।

३. निरितः' इति पु० १ । 'नोदितः' इति पु० २ ।

४. 'विवेकत्वे त्वर्थं' इति पु० १ । 'विवेकादर्थं' इति पु० २ ।

५. इमे श्लोकाः सायणभाष्य (ऋ० ४।१८) उद्धृताः ।

६. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।

एकादशेत्येव । मंहाम्[1] । उपान्त्यास्तिस्र ऋतस्य हीत्याद्या[2] ऋताख्यदेव्यो[3] वा । ऋतस्य देवे[4]ऽभिधायकत्वेन साधना[5] वैन्द्रचो वा । भवे छन्दसीति[6] यत् तत्र साधुरिति[7] वा । वामदेवः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः[1] ॥५॥

[२४] का सुष्टुतिरुपान्त्यानुष्टुप् ॥६॥

एकादशेत्येव । शवसः । दशम्यनुष्टुप् । शिष्टास्त्रिष्टुभः । वामदेवः । इन्द्रः[8] ॥६॥

[२५] को अद्याष्टौ ॥७॥

नर्यः । वामदेवः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः[8] ॥७॥

[२६] अहं मनु सप्ताद्याभिस्तिसृभिरिन्द्रमिवात्मानमृषिस्तुष्टावेन्द्रो वात्मान परा नवाष्टौ वा श्येनस्तुतिः ॥८॥

अभवम्[9] । ऋषिर्वामदेवः सप्तसु[9] आद्याभिस्तिसृभिरात्मानं स्वयमिन्द्रमिव स्तुतवान् । स्वयं वेन्द्र आत्मानं तुष्टाव । ततश्चाद्ये तृच इन्द्रवामदेवयोर्ऋषित्वं त्रिकल्प्यते । इन्द्रवामदेवात्मनोदेवतात्वं च । परा नव । चतुर्थ्याद्याश्चतस्रः पञ्चर्चोत्तरसूक्तं च श्येनस्तुतिः । श्येन इति सुपर्णात्मनो ब्रह्मणो नाम । स आभिः स्तूयते । अथ नव श्येनस्तुतिः । किन्त्वष्टौ[10] । अत्र पक्ष उत्तरसूक्तस्यान्त्या श्येनस्तुतिरैन्द्री वा । उत्तरसूक्तस्याप्यत्रैव देवताभिधानं लाघवार्थम् । तथा हि । परा नवेत्यादिके त्वसति वचनेऽत्रैव पराः श्येनस्तुतिरित्युक्त उत्तरसूत्रेऽपि[11] गर्भे नु पञ्चान्त्या शक्वरीत्यस्यानन्तरमाद्यश्चतस्रः श्येनस्तुतिः सर्वा वेति वाच्यं स्यात् । सप्तापि त्रिष्टुभः । चतुर्थ्यादिचतुष्कं नित्यं वामदेवार्षम् ॥८॥

[२७] गर्भे नु पञ्चान्त्या शक्वरी ॥९॥

सन्ननु । वामदेवः । त्रिष्टुप् । पञ्चमी शक्वरीछन्दः षट्पञ्चाशदक्षरा । श्येनः । पञ्चम्या इन्द्री वा[8] ॥९॥

---

१. 'एका…महाम्' 'वाम…इन्द्र' इति नास्ति मै० । २. ऋ० ४।२३।८-१०॥

३. 'ऋतदेव्यो' इति पु० १, पु० २ । ४. 'देव' इति पु० २ ।

५. '०भावः । साधा वा' इति पु० १ । '०भात्रः । साधु वा' इति पु० २ । '०कत्वेन साध्यो वा' इति गो० । अत्र मैक्डानलस्य टिप्पणी द्रष्टव्या पृ० १८१ ।

६. अष्टा० ४।४।११०॥ ७. अष्टा० ४।४।९८॥

८. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० । ९. 'अभवम्' 'सप्तसु' इति नास्ति मै० ।

१०. 'वा' इत्यधिको गो० । ११. '०सुक्तेऽपि' इति मै० ।

[२८] त्वा युजेन्द्रासोमं वा ॥१०॥

पञ्चेत्येव । तव तत् । वामदेवः । त्रिष्टुप्[१] । ऐन्द्रासोमं सूक्तम् । इन्द्रश्च सोमश्च । आनङ् । अण्यादिवृद्धिः । उत्तरपदवृद्ध्यभावश्छान्दसः । शुद्धेन्द्रदेवत्यं वा ॥१०॥

[२९] आ नः स्तुतः ॥११॥

पञ्चेत्येव । उप । वामदेवः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः[२] ॥११॥

[३०] नकिश्चतुर्विंशतिर्दिवश्चित्तृच उषस्यश्च गायत्रं ह्यष्टम्यन्त्ये अनुष्टुभौ ॥१२॥

इन्द्र[३] । चतुर्विंशतिरित्युक्तौ चोद्यं तीव्राश्चतुर्विंशतिरित्युक्तं[४] परिहृतं च । दिवश्चित्तृच[५] इत्युषोदेवत्यश्चकारादैन्द्रश्च । इदमादीनि त्रीणि सूक्तानि गायत्रीछन्दस्कानि अष्टमीचतुर्विंश्यौ द्वे अनुष्टुभौ । वामदेवः । इन्द्रः[३] ॥१२॥

[३१] कया पञ्चोनाभी षु पादनिचृत् ॥१३॥

नश्चित्र[६] । अभी षु णः सखीनाम्[७] इति पादनिचृद् गायत्री । त्रयः सप्तकाः पादनिचृद्[८] इत्युक्तम् । वामदेवः । गायत्री । इन्द्रः[६] ॥१३॥

[३२] आ तू नश्चतुर्विंशतिरन्त्याभ्यामिन्द्राश्वौ स्तुतौ ॥१४॥

इन्द्र वृत्रहन् । कनीनिकेव विद्रधे इति[९] त्रयोविंशीचतुर्विंशीभ्यामैन्द्रयोरश्वयोः स्तुतिः क्रियते । वामदेवः । गायत्री । आदित ऐन्द्रचो द्वाविंशतिः[९] ॥१४॥

॥ इति द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

---

[२३]

[३३] प्र ऋभुभ्य एकादशाभव वै ॥१॥

दूतमिव[१०] । इदमादीनि पञ्च सूक्तान्यृभुदेवत्यानि । वामदेवः । त्रिष्टुप्[१०] ॥१॥

---

१. 'पञ्चे···त्रिष्टुप्' इति नास्ति मै० ।
२. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।
३. 'इन्द्र' 'इदमा ··इन्द्रः' इति नास्ति मै० ।
४. का० सर्वा० २।४॥
५. ऋ० ४।३०।९-११॥
६. 'नश्चित्र' 'गायत्री···इन्द्रः' इति नास्ति मै० ।
७. ऋ० ४।३१।३॥
८. का० सर्वा० परि० ४।४॥
९. 'इन्द्र···इति' 'वाम···शतिः' इति नास्ति मै० ।
१०. 'दूतमिव' 'वाम··· त्रिष्टुप्' इति नास्ति मै० ।

[३४] ऋभुर्विभ्वा ॥२॥

एकादशेत्येव । वाजः । वामदेवः । त्रिष्टुप्[१] । आर्भवं वा ऋभुर्विभ्वेति सूत्रयोः सन्धावायादेशे[२] शाकल्यलोपे[३] । प्र ऋभुभ्य इत्यृत्यक[४] इति ह्रस्वप्रकृतिभावौ ॥२॥

[३५] इहोप नव ॥३॥

यात । वामदेवः । त्रिष्टुप् । आर्भवम्[५] ॥३॥

[३६] अनश्वोऽन्त्या त्रिष्टुप् ॥४॥

नवेत्येव । जातः । वामदेवः । आर्भवम् । आदितोऽष्टौ जगत्यः । अन्त्या त्रिष्टुप्[५] ॥४॥

[३७] उप नोऽष्टौ चतुरनुष्टुबन्तम् ॥५॥

वाजाः । वामदेवः । आर्भवम् । आदितश्चतस्रस्त्रिष्टुभः । ततश्चतस्रोऽनुष्टुभः[५] ॥५॥

[३८] उतो हि दश दाधिक्रं हि द्यावापृथिव्याद्या ॥६॥

वाम्[६] । इदमादीनि त्रीणि सूक्तानि दधिक्राख्यदेवताया अभिधायकानि । आद्या द्यावापृथिवीदेवत्या । वामदेवः । त्रिष्टुप्[६] ॥६॥

[३९] आशुं षळन्त्यानुष्टुप् ॥७॥

दधिक्राम् । आदितः पञ्च त्रिष्टुभः । षष्ठ्यनुष्टुप् । वामदेवः । दधिक्राः[५] ॥७॥

[४०] दधिक्राव्णः पञ्च चतस्रोऽन्त्या जगत्योऽन्त्या सौरी ॥८॥

इदु नु । आद्या त्रिष्टुबनादेशात् । शिष्टा जगत्यः । पञ्चमी हंस शुचिषद् इति सूर्यदेवत्या । वामदेवः । अन्त्यावर्जं दधिक्राव्णः[५] ॥८॥

[४१] इन्द्रा को वामेकादशैन्द्रावरुणं तु ॥९॥

वरुणा । इदमादिद्वे सूक्ते इन्द्रावरुणदेवत्ये । आनङ् । दीर्घाच्च वरुणस्येत्युत्तरपदवृद्धिप्रतिषेधः[७] । वामदेवः । त्रिष्टुप्[५] ॥९॥

[४२] मम द्विता दश त्रसदस्युः पौरुकुत्स्यः षळाद्या आत्मस्तवः ॥१०॥

राष्ट्रम्[८] । पुरुकुत्सस्य पुत्रस्त्रसदस्यू राजर्षिः । त्र्यरुणत्रसदस्यू राजानाविति[९]

१. 'एका···त्रिष्टुप्' इति नास्ति मै० । २. 'वयादेशे' इति पु० १, पु० २ ।
३. अष्टा० ८।३।१९॥ ४. अष्टा० ६।१।१२८॥
५. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० । ६. 'वाम्' 'आद्या ··त्रिष्टुप्' इति नास्ति मै० ।
७. अष्टा० ७।३।२३॥ ८. 'राष्ट्रम्' इति नास्ति मै० ।
९. का० सर्वा० २५।१९॥

वक्ष्यति । स आदितः षड्भिरात्मानं तुष्टाव । शिष्टा ऐन्द्रावरुण्यः । पुरुकुत्सो गर्गादिः[1] । त्रिष्टुप्[2] ॥१०॥

[४३] क उ श्रवत् सप्त पुरुमीढाजमीढौ सौहोत्रौ त्वाश्विनं हि ॥११॥

कतमः[3] । सुहोत्रपुत्रौ पुरुमीढाजमीढौ द्वावृषी सूक्तस्य चोत्तरस्य च । इदमादीनि त्रीणि सूक्तान्यश्विदेवत्यानि । त्रिष्टुप्[3] ॥११।

[४४] तं वाम् ॥१२॥

सप्तेत्येव । रथम् । पुरुमीढाजमीढौ । त्रिष्टुप् । अश्विनौ[4] ॥१२॥

[४५] एष स्य त्रिष्टुबन्तम् ॥१३॥

सप्तेत्येव । भानुः । आदितः षड् जगत्यः । सप्तमी त्रिष्टुप् । वामदेवः । अश्विनौ[4] ॥१३॥

[४६] अग्रं वायव्याद्यैन्द्रवायवं तु गायत्रम् ॥१४॥

सप्तेत्येव । पिब[5] । आद्या वायुदेवत्या । इदमाद्यावर्जमुत्तरं चेन्द्रवायुदेवत्यम्[6] । सप्तापि गायत्र्यः । वामदेवः[5] ॥१४॥

[४७] वायो चतुष्कमाद्या वायव्यानुष्टुभं तु ॥१५॥

शुक्रः । इदमादिद्वे सूक्ते आनुष्टुभे[7] । आद्या वायव्या । ऐन्द्रवायवं तु सूक्तम् । एवं तर्ह्याद्या वायव्येत्यनुक्त्वा पूर्वसूत्र एव वायव्यादि त्वैन्द्रवायवं त्विति वाच्यं लाघवं भविष्यतीति कृत्वा । सत्यम् । तथा तु न कृतम् । किं कुर्मः ? प्रतिपत्तारो हि वयं न कर्तारः । वामदेवः[7] ॥१५॥

[४८] विहि पञ्च वायव्यम् ॥१६॥

होत्राः । वायुदेवत्यं सूक्तम् । वामदेवः । अनुष्टुप्[4] ॥१६॥

[४९] इदं वां षळैन्द्राबार्हस्पत्यं गायत्रम् ॥१७॥

---

१. अष्टा० ४।१।१०५॥ कुरुकत (पुरुकत) इति पाठभेदेन पुरुकुत्स इति गणे पठितः ।
२. 'त्रिष्टुप्' इति नास्ति मै० ।
३. 'कतमः' 'इदमा··· त्रिष्टुप्' इति नास्ति मै० ।
४. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।
५. 'सप्ते···पिब' 'सप्ता · देवः' इति नास्ति मै० ।
६. 'इदमादि द्वे सूक्ते इन्द्रवायुदेवत्ये' इति पु०१, पु०२, गो० ।
७. 'शुक्रः···आनुष्टुभे' 'वामदेवः' इति नास्ति मै० ।

आस्ये। देवताद्वन्द्वे चेत्यानङ्[1]। उभयपदवृद्धिश्च[2]। षडपि गायत्र्यः। वामदेवः[3] ॥१७॥

[५०] यस्तस्तम्भदकादश बार्हस्पत्यमन्त्ये ऐन्द्र्यौ चोपान्त्या जगती ॥१८॥

सहसा। बृहस्पतिदेवत्यम्[4]। दशम्येकादश्याविन्द्रदेवत्ये चकाराद् बृहस्पतिदेवत्ये च। उपान्त्या दशमी जगती। शिष्टा दश त्रिष्टुभः। वामदेवः[4] ॥१८॥

॥ इति त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

---

[२४]

[५१] इदमुषस्यं तु ॥१॥

एकादशेत्येव। उ त्यत्। इदमाद्युषोदेवत्ये द्वे सूक्ते। वामदेव.। त्रिष्टुप्[3] ॥१॥

[५२] प्रति ष्या सप्त गायत्रम् ॥२॥

सूनरी। वामदेवः। गायत्री। उषाः[3] ॥१॥

[५३] तद्देवस्य सावित्रं तु जागतम् ॥३॥

सप्तेत्येव। सवितुः। इदमादिद्वे सूक्ते सवितृदेवत्ये। सप्तापि जगत्यः। वामदेवः[3] ॥३॥

[५४] अभूद्देवः षट् त्रिष्टुबन्तम् ॥४॥

सविता। आदितः पञ्च जगत्यः। षष्ठी त्रिष्टुप्। वामदेवः। सविता[3] ॥४॥

[५५] को वो दश वैश्वदेवं त्रिगायत्र्यन्तं तु ॥५॥

त्राता[5]। अष्टम्याद्यास्तिस्रो गायत्र्यः। उत्तरं च सूक्तं त्रिगायत्र्यन्तम्। शिष्टास्त्रिष्टुभः। वामदेवः। विश्वेदेवाः[5] ॥५॥

[५६] मही सप्त द्यावापृथिवीयम् ॥६॥

---

१. अष्टा० ६।३।२६॥ २. अष्टा० ७।३।२१॥

३. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै०।

४. 'सहसा...देवत्यम्' 'उपान्त्या...देवः' इति नास्ति मै०।

५. 'त्राता' 'शिष्टा ...देवाः' इति नास्ति मै०।

द्यावापृथिवी। आदितश्चतस्रस्त्रिष्टुभः। पञ्चम्याद्यास्तिस्रो गायत्र्यः। वामदेवः। द्यावापृथिव्यौ देवते[1] ॥६॥

[५७] क्षेत्रस्याष्टौ तिस्रः क्षैत्रपत्याः शुनायैका परा पुरउष्णिक् सान्त्या च शुनासीराभ्यामुपान्त्ये सीतायै ते चानुष्टुभावाद्याचतुर्थ्यौ च ॥७॥

पतिना[2]। क्षेत्रपतिदेवत्या आदितस्तिस्रः। क्षेत्रपतिशब्दात् पत्युत्तरपदाण्ण्यापवादेऽश्वपत्यादित्वादणि[3] ङीप्। जसि यण्।[4] अथैका चतुर्थी शुनं वाहा इति[2] शुनाख्यदेवतार्था। शुन इति वायोरभिधानम्। आहुर्बृहद्देवताविदः—

वायुः शुनः सूर्य एवात्र[5] सीरः शुनासीरौ वायुसूर्यौ वदन्ति।
शुनासीरमिन्द्रं यास्कस्तु[6] मेने सूर्येन्द्रौ तु मन्यते शाकपूणिः[7] ॥ इति।

परा पञ्चमी शुनासीराविमामित्येषा[2] पुरउष्णिक्। त्रिपाद् द्वादशकस्त्वाद्यः पादावष्टाक्षराविति। आद्यश्चेत् पुरउष्णिग्[8]इत्युक्तम्[2]। सा पञ्चमी शुनं नः फाला[2]इत्यष्टमी च शुनासीराभ्यां शुनासीरदेवतार्थे स्तुतित्वेन। उपान्त्ये। अर्वाची सुभगे इति[2] षष्ठी इन्द्रः सीतामिति[2] सप्तमी च सीतास्तुत्यर्थे। सीता लाङ्गलपद्धतिः। ते उपान्त्ये अनुष्टुभौ। प्रथमाचतुर्थ्यौ चानुष्टुभौ। शिष्टास्त्रिष्टुभः। वामदेवः ॥७॥

[५८] समुद्रादेकादशाग्नेयं जगत्यन्तं सौर्यं वापं वा गव्यं वा घृतस्तुतिर्वा ॥८॥

ऊर्मिः। एकादशी जगती। आद्या दश त्रिष्टुभः[9]। अग्निदेवत्यं सूर्यदेवत्यं वाब्देवत्यं वा घृतं वा स्तूयते। वामदेवः[9] ॥८॥

[इति चतुर्थं मण्डलं समाप्तम्]

---

१. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै०।

२. 'पतिना' 'शुनं ··इति' 'शुना···एषा' 'त्रि···उक्तम्' 'शुनं···इति' 'अर्वा इति' 'इन्द्र···इति' इति नास्ति मै०।

३. तु०—अष्टा० ४।१।८४॥

४. 'पत्युत्तरपदाण्युः। पदण्यपवादश्वपत्यन्ताद्यवि ङीप् जस्। यण्' इति पु० १। 'पत्युत्तरपदात् ण्यः पदण्यपवादश्च पत्यन्तार्थञ्चाचीति ङीप्। जम्। यण्' इति पु० २, गो०। षड्गुरुशिष्यः स्वव्याख्ययात्र क्षैत्रपत्य इति पदं साधयति, कोशेषु क्षैत्रपत्या इति पाठः सार्वत्रिकः। अपि द्र०—मैक्डानल, टिप्पणी पृ० १८१।

५. 'सूर्यं व सीरः' इति पु० १। 'सूर्यं नुः सीरः' इति पु० २।

६. 'शुनासीरं यास्क इन्द्रं तु' इति मुद्रिते।

७. बृ० दे० ५।८॥

८. का० सर्वा० परि० ५।२॥

९. 'ऊर्मि···त्रिष्टुभः' 'वामदेवः' इति नास्ति मै०।

[अथ पञ्चमं मण्डलम्]

नमोऽत्रिभ्यो भौमोऽत्रिः पञ्चमे मण्डलेऽनुक्तगोत्रमात्रेय विद्यात् पङ्क्त्यन्तस्य च सूक्तस्य शेषमानुष्टुभम् ॥६॥

नमोऽत्रिभ्यः। अत्रिशब्दात् पूजायां बहुवचनम्। नमःस्वस्तीति[1] चतुर्थी। अत्रये भगवते नमस्कुर्मः। अथवा[2] बहुवचनेनात्रिवंश्या गृह्यन्ते। कथम्? इतश्चानित्र[3] इत्यत्रेर्ढकि तस्यात्रिभृगुकुत्सवसिष्ठगोतमाङ्गिरोभ्यश्चेति[4] बहुषु लुगत्रयः। अत्रिश्चात्रिश्चैकशेषोऽत्रयः। तेभ्यो नमस्कुर्म इति। अत्र पुरस्ताच्च[5] कृतेनानेन नमस्कारेण श्रुतिमहाभारतानुक्रमण्याद्युक्तमत्रिमाहात्म्यं सूचयति भगवान् कात्यायनः। श्रूयते हि—

यं वै सूर्यं स्वरभानुस्तमसाविध्यदासुरः।
अत्रयस्तमन्वविन्दन् नह्यन्ये अशक्नुवन् ॥[6] इति।

महाभारते चात्रिमाहात्म्यमुक्तमर्जुनजन्मनि—

भारद्वाजः कश्यपो गोतमश्च विश्वामित्रो जमदग्निर्वसिष्ठः।
यश्चोदितो भास्करोऽभूत् प्रणष्टे[7] सोऽप्यत्रात्रिर्भगवान्[8] संबभूव ॥[9] इति।

नमस्कार एवार्षानुक्रमण्यां प्रयुक्तः[10]—नमोऽत्रिभ्यस्त्ववोधीति। अत्रशब्दयोगाद् अत्रिनामेति बृहद्देवताविदः। तथा हि—

त्रिसांवत्सरिकं सत्रं प्रजाकामः प्रजापतिः।
आहरत् सहितः साध्यैर्विश्वैश्चैवेति नः श्रुतम्[11] ॥१॥
तत्र वाग्दीक्षणीयायाम्[12] आजगाम शरीरिणी।
तां दृष्ट्वा युगपत् तत्र कस्याथ वरुणस्य च ॥२॥
शुक्रं चस्कन्द तद्वायुरग्नौ प्रास्यद् यदृच्छया।
ततोऽर्चिभ्यो[13] भृगुर्जज्ञेऽङ्गारेष्वङ्गिरा[14] ऋषिः ॥३॥

---

१. अष्टा० २।३।१६॥ '०स्वस्तीत्यादि' इति पु० १। 'नमस्करोतीत्यादि' इति पु० २।
२. 'अत्र' इति पु० १। 'अत्र ब' इति पु० २।
३. अष्टा० ४।१।१२२॥
४. अष्टा० २।४।६५॥
५. 'पुरस्तात्परस्ताच्च' इति पु० १, पु० २।
६. ऋ० ५।४०।९॥
७. 'प्रनष्टेः' इति पु० १, पु० २। 'प्रतिष्ठः' इति मै०।
८. '०प्यत्रिरत्र' इति पु० १, पु० २।
९. महा० आदि० १२२।५१॥
१०. 'प्रत्युक्तः' इति पु० १, पु० २।
११. 'विश्वैर्देवैः सहेति च' इति मुद्रिते।
१२. 'वार्षीक्षणांया' इति पु० १।
१३. '०त्रिम्यो' इति पु० २।
१४. 'आगिरेष्वं०' इति पु० १। 'अंतरेष्वं' इति पु० २।

प्रजापतिं सुतौ दृष्ट्वा दृष्टा[1] वागभ्यभाषत ।
आभ्यामृषिस्तृतीयोऽपि भवत्वत्रैव[2] मे सुतः ॥४॥
प्रजापतिस्तथेत्याह भाषमाणां तु[3] भारतीम् ।
ऋषिरत्रिस्ततो जज्ञे सूर्यानलसमद्युतिः ॥५॥[4] इति ।

अत्रशब्दोऽस्यास्तीत्यत्रिः । पृषोदरादित्वाद्[5] अत इनि[6] नलोपे[7] चात्रिः । अथात्रेर्गोत्रमाह—भौमोऽत्रिः । भूम्यामत्रेति निर्दिष्टे प्रदेशे जात एष हि । अथ पञ्चममण्डलवर्त्तिनामनिर्दिष्टगोत्राणां क्वचित् कथंचिद्[8] इत्यादिपरिभाषोक्तमाङ्गिरसत्वं निरस्यन्[9] गोत्रमाह—पञ्चमे मण्डलेऽनुक्तगोत्रमात्रेयं विद्यात् । पञ्चम इति प्रथमादौ मा भूत् । अतश्चेमं षोडश कुत्स[10] इत्याङ्गिरसत्वमेव भवति । मण्डल इति पञ्चम इत्यस्य विशेष्यत्वाय[11] । पञ्चमे मण्डल इत्युत्तरत्राप्यनुवर्तते ।[12] किमर्थम् ? तं गूर्धय यो यजात्यग्निनेन्द्रेणेति सूक्तत्रयस्य[13] पङ्क्त्यन्तत्वेऽप्यपञ्चममण्डलवर्तित्वाच्छेषमानुष्टुभं मा भूदिति वक्तुम् । अनुक्तगोत्रमिति वृशो वा जान[14] इत्युक्तगोत्रस्य वृशस्यात्रेयत्वं मा भूदिति । विद्यादवगच्छेत् सर्वानुक्रमणीजिज्ञासुः । पङ्क्त्यन्तस्य च सूक्तस्य शेषमानुष्टुभम् । विद्यादित्येव । अस्मिन् पञ्चमे मण्डले सखाय इषः पङ्क्त्यन्तम्[15] इत्यादौ शिष्टा ऋचोऽनुष्टुभो विद्यात् ॥९॥

इति परिभाष्यारभते—

[१] अबोधि द्वादश बुधगविष्ठिरौ ॥१०॥

अग्निः[16] । बुधश्च गविष्ठिरश्च द्वावृषी आत्रेयौ । मण्डलादिष्वाग्नेयमैन्द्राद्[17] इत्यग्निर्देवता । त्रिष्टुप् छन्दः[16] ॥१०॥

[२] कुमारं कुमारो वृशो वा जान उभौ वा शक्वर्यन्तं कं वीत्यृचोस्तु वृश एव ॥११॥

---

१. त्यक्तः पु० १ । 'दृष्ट' इति पु० २ । 'तुष्टा' इति मै० ।
२. 'भवेदत्रैव' इति मुद्रिते । ३. 'तथेत्युक्तः प्रत्यभाषत' इति मुद्रिते ।
४. बृ०दे०५।९७-१०१॥ ५ तु०—अष्टा०६।३।१०९॥ ६. अष्टा० ५।२।११५॥
७. 'अत इति नलोपे' इति पु० १, पु० २ । 'अत इनि नलोपे' इति गो० । तु०—उ० ४।६९॥ ८. का० सर्वा० परि० २।३॥
९. 'निस्यन् आंगिरस उक्तं च गोत्रमाह' इति पु० १, पु० २ ।
१०. का० सर्वा० ६।१४॥
११. 'विशेष्यत्वात्' इति पु० २ । 'विशेषित्काय' इति गो० ।
१२. '०चानुवर्तते' इति पु० १, पु० २ । १३. ऋ० ८।१९,३१,३५॥
१४. का० सर्वा० २४।११॥ १५. का० सर्वा० २४।१६॥
१६. 'अग्निः' 'त्रि ''छन्दः' इति नास्ति मै० । १७. का० सर्वा० परि० १२।१२॥

द्वादशेत्येव । माता[१] । कुमार इत्यृषेर्नामात्रेयो जननाम्न ऋषेः पुत्रो वृशो वा । उभौ वा वृशकुमारौ सह वेत्यर्थः । कमेतं त्वं वि ज्योतिषेत्यृचौ[२] वृश एवापश्यत् । न कुमारो न चोभौ । द्वादशी शक्वरी । एकादशादितस्त्रिष्टुभः । अग्निः[१] ॥११॥

[३] त्वमग्ने वसुश्रुतः ॥१२॥

द्वादशेत्येव । वरुणः । वसुश्रुतो नामात्रेयः । त्रिष्टुप् । अग्निः[३] ॥१२॥

[४] त्वमग्न एकादश ॥१३॥

वसुपतिम् । वसुश्रुतः । त्रिष्टुप् । अग्निः[३] ॥१३॥

[५] सुसमिद्धायाप्रं गायत्रम् ॥१४॥

एकादशेत्येव । शोचिषे[४] । आप्रमित्यक्तेर्नात्र तनूनपात् । वसुश्रुत ऋषिः[४] । अत्राप्रीसूक्तदेवताः ॥१४॥

[६] अग्निं तं दश पाङ्क्तम् ॥१५॥

मन्ये । वसुश्रुतः । अग्निः[३] ॥१५॥

[७] सखाय इषः पङ्क्त्यन्तम् ॥१६॥

दशेत्येव । सं वः । इषो नामर्षिः । दशमी पङ्क्तिः । आदितो नवानुष्टुभः पङ्क्त्यन्तस्येत्यादिपरिभाषया[५] । अग्निः[३] ॥१६॥

[८] त्वामग्ने सप्त जागतम् ॥१७॥

ऋतायवः । इषः । सप्तापि जगत्यः । अग्निः[३] ॥१७॥

॥ इति चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

---

[२५]

[९] त्वामग्ने गयोऽन्त्यापञ्चम्यौ पङ्क्ती ॥१॥

सप्तेत्येव । हविष्मन्तः[६] । गयो नामात्रेयः पञ्चमे मण्डलेऽनुक्तगोत्रत्वात् । ननु

---

१. 'द्वा···माता' 'द्वा···अग्निः' इति नास्ति मै० । २. ऋ० ५।२।२,६॥
३. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० । ४. 'एका···चिषे' 'वसु···ऋषिः' इति नास्ति मै० ।
५. का० सर्वा० २४।६॥ ६. 'सप्ते··· मन्तः' इति नास्ति मै० ।

क्वचित् कथंचिद्[1] इत्यादेर्ह्ययमपवादः पञ्चमे मण्डलेऽनुक्तगोत्रत्वमिति, ततश्च तस्याङ्गिरसत्वं नास्ति परावतस्त्मूना गयः प्लात[2] इति प्लातस्य वक्ष्यमाणत्वादस्य प्लातत्वमेव नात्रेयत्वमिति। नैवम् तस्माद् गयादयमन्यो गयः। तत्र च हेतुरत्र प्लातत्वानुक्तिः। न चोत्तरत्र प्लातत्वोक्तावृषभस्तौ वैश्वामित्राविति[3] परत्र वैश्वामित्रोक्ताविव लाघवं[4] भवतीत्यात्रेयोऽयं गयोऽत्रान्यस्मादृषेः। अत्र मण्डले त्वेकस्य दर्शितत्वाभावात् पूर्वोक्तैव परिभाषा ऋषिश्चान्यस्मादिति[5]। न प्लात इति सिद्धम्। अन्त्या सप्तमी पञ्चमी च द्वे पङ्क्ती। शिष्टाः पञ्चानुष्टुभः। अग्निः[6]। १॥

[१०] अग्न ओजिष्ठमन्त्याचतुर्थ्यौ[7] च ॥२॥

सप्तेत्येव। आ भर[8]। चकारः[9] पङ्क्त्यनुकर्षणार्थः। अन्त्या सप्तमी चतुर्थी च द्वे पङ्क्ती। अन्या अनुष्टुभ इत्यर्थः। आत्रेयो गयः। अग्निः[8] ॥२॥

[११] जनस्य षट् सुतम्भरो जागतम् ॥३॥

गोपाः। आत्रेयः सुतम्भर इत्यृषिः। षडपि जगत्यः। अग्निः[10] ॥३॥

[१२] प्राग्नये ॥४॥

षडित्येव। बृहते। सुतम्भरः। अग्निः। त्रिष्टुप्[10] ॥४॥

[१३] अर्चन्तो गायत्रं तु ॥५॥

षडित्येव। त्वा। इदमादिद्वे सूक्ते गायत्रे। सुतम्भरः। अग्निः[10] ॥५॥

[१४] अग्निं स्तोमेन ॥६॥

षडित्येव। बोधय। सुतम्भरः। गायत्री। अग्निः[10] ॥६॥

[१५] प्र वेधसे पञ्चाङ्गिरसो धरुणः ॥७॥

कवये। धरुणो नाम ऋषिः[11]। आङ्गिरस इत्यात्रेयनिवृत्त्यर्थम्। त्रिष्टुप्। अग्निः[11] ॥७॥

---

१. का० सर्वा० २।३॥ २. का० सर्वा० ४८।२॥ ३. का० सर्वा ४०।८,६॥
४. कोशेषु पाठः। 'प्लातुत्वं' इति शोधः प्रदर्शितः औ०। ६. 'अन्त्या अग्निः' इति नास्ति औ०।
५. का० सर्वा० परि० १२।२॥
७. '०न्त्याचतुर्थी च' इति पु०, १, पु० २।
८. 'सप्ते…भर' 'अन्या… अग्निः' इति नास्ति औ०।
९. 'चेति' इति पु० १, पु० २। १०. सूक्तभाष्यस्था संख्या औ०।
११. 'कवये… ऋषिः' 'त्रिष्टुप्। अग्निः' इति नास्ति औ०।

[१६] बृहत्पूरुः पङ्क्त्यन्तं हि ॥८॥

पञ्चेत्येव । वयो हि भानवे । पूरुर्नामात्रेयः । इदमादीनि त्रीणि सूक्तानि पङ्क्त्यन्तानि । शिष्टा अनुष्टुभः । अग्निः[1] ॥८॥

[१७] आ यज्ञैः ॥९॥

पञ्चेत्येव । देव । आदौ चतस्रोऽनुष्टुभः । पञ्चमी पङ्क्तिः । पूरुः । अग्निः[1] ॥९॥

[१८] प्रातर्मृक्तवाहा द्वितः ॥१०॥

पञ्चेत्येव । अग्निः । आदौ चतस्रोऽनुष्टुभः । पञ्चमी पङ्क्तिः । मृक्तवाहा इति विशेषणमात्रेयत्वसिद्ध्यर्थं द्वितस्य । गोत्रतोऽयमात्रेय एव । मृक्तवाहोविशेषण-मन्यत्र प्र पुनानाय षड् द्वित आप्त्य[2] इति वक्ष्यमाणस्य द्वितादन्यस्मादन्यत्वार्थम् । असत्यस्मिन्नयमाप्त्य एव स्यान्नात्रेयः, क्वचित्कथंचिदविशेषितविषयाङ्गिरसत्वा-पवादेनात्रेयविधानादस्य चोत्तरत्राप्त्य इति विशेषितत्वात् । एवं तर्हि गयस्योत्तरत्र प्लातत्वोक्तेरिहात्रेयत्ववदेतस्याप्युत्तरत्राप्त्योक्तेरस्याप्यात्रेयत्वं सिद्धमिति चेदनुक्रमण्य-न्तरानुकरणमिति ब्रूमः । उक्तं ह्यार्षानुक्रमण्याम् —

मृक्तवाहा द्वितः प्लातः प्र पुनानाय चाप्तिजः । इति ।

मृक्तः । गतः । परिचरणेन प्राप्तो वाहो वह्निर्येन[3] स मृक्तवाहा इति विशेषणार्थः । वाहसौ वह्न्यजगराविति[4] नैघण्टुकाः । अग्निः ॥१०॥

[१९] अभ्यवस्था वव्रिर्गायत्र्यावनुष्टुभौ विराड्रूपा ॥११॥

पञ्चेत्येव । प्र । आदितो द्वे गायत्र्यौ । अथ द्वे अनुष्टुभौ । अन्त्या पञ्चमी विराड्रूपा । आत्रेयो वव्रिः । अग्निः[1] ॥११॥

[२०] यमग्ने चतुष्कं प्रयस्वन्तः पङ्क्त्यन्तं ह ॥१२॥

वाजसातम । चतुर्ऋचम्[5] । प्रयस्वन्त इति जसन्तं[6] प्रयस्वन्तो हवामहे[7] इति

---

१. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० । २. का० सर्वा० ५३।३॥

३. प्राप्तेति चरणेन प्राप्तो वह्निर्येन' इति पु० १ । 'प्राप्वेति चरणाम प्राप्तो विह्निर्येव' इति पु० २ । 'गतः परिचरणेन प्राप्तो वाहो अग्निर्येन' इति गो० ।

४. 'वहसौ वह्वाजगराविति' इति पु० १ । 'वाह्वासौ वह्वा जगराविति' इति पु० २ । 'वहते सौ वाह्वाजरविति' इति गो० । 'वहसो वा वाह्वागताविति' इति मै० । वैजयन्ती पृष्ठ २४४, पंक्ति १३० ॥ अत्र मैक्डानलो नैघण्टुकपदेन भ्रान्तः ।

५. 'वाज ⋯ऋचम्' इति नास्ति मै० । सूत्रव्याख्या व्यस्ता विच्छिन्ना च पु० १, पु० २ ।

६. 'पङ्क्त्यन्तं' इति गो० । ७. ऋ० ५।२०।३॥

मन्त्रलिङ्गात् । एतच्चर्षेर्नाम । प्रयस्वन्त ऋषय आत्रेयाः संभूयापश्यन् । इदमादीनि चत्वारि सूक्तानि पङ् क्तयन्तानि । शिष्टा अनुष्टुभः । अग्निः[1] ।।१२।।

[२१] मनुष्वत् ससः ।।१३।।

चतुष्कमित्येव । त्वा । ससो नामात्रेयः । आदितस्तिस्रोऽनुष्टुभः । चतुर्थी पङ्क्तिः । अग्निः[2] ।।१३।।

[२२] प्र विश्वसामन् विश्वसामा ।।१४।।

चतुष्कमित्येव । अत्रिवत्[3] ।

प्रमात्रमेव सूक्तादि[4] प्र सप्तोनेति[5] वै यथा ।
विश्वसामेत्यृषेर्नाम स चात्रेयो हि गोत्रतः ।।

आदावनुष्टुभस्तिस्रः । चतुर्थी पङ्क्तिः । आग्नेयम्[3] ।।१४।।

[२३] अग्ने द्युम्नो विश्वचर्षणिः ।।१५।।

चतुष्कमित्येव । सहन्तम्[6] । द्युम्नो नामात्रेयः । विश्वचर्षणिरिति विशेषणमनुक्रमण्यन्तरानुकरणमेव मृक्तवाहोवत्[7] । विश्वे सर्वे चर्षणयो मनुष्या बन्धवो यस्य स विश्वचर्षणिरिति विशेषणार्थः । आदितोऽनुष्टुभस्तिस्रः । चतुर्थी पङ् क्तिः । आग्नेयम्[6] ।।१५।।

[२४] अग्ने त्वं गौपायना लौपायना वा बन्धुः सुबन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुश्चैकर्चा द्वैपदम् ।।१६।।

चतुष्कमित्येव । नः[8] । बन्ध्वादयश्चत्वार ऋषयो यथाक्रममेकर्चाः । एक ऋग्दृश्या यस्य स एकर्चः । चतस्रो द्विपदाः । विंशतिका द्विपदा विराज[9] इत्युक्तम् । अग्निः[8] ।।१६।।

---

१. 'इदमा · अग्निः' इति नास्ति मै० । सूत्रव्याख्या व्यस्ता विच्छिन्ना च पु० १, पु०२ ।

२. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।

३. 'चतुष्क···वत्' 'आदा ··आग्नेयम्' इति नास्ति मै० ।

४. 'प्र विश्वसामा' इत्येव सूत्रमिति षड्गुरुशिष्यवचनेनानेन ज्ञायते । कोशेषु यथानिर्दिष्टं सार्वत्रिकः प्रतीकपाठः ।

५. का० सर्वा० ५।१।।

६. 'चतु · तम्' 'आदि···आग्नेयम्' इति नास्ति मै० ।

७. 'मृक्तवाहास्त्ववत् द्वितः' इति पु० १ । '०वाहाः स च द्वितः' इति पु० २ । '०वाहवत्' इति गो० ।

८. 'चतु···नः' 'चतस्रो·· अग्निः' इति नास्ति मै० ।

९. का० सर्वा० परि० १२।८।।

[२५] अच्छा वो नव वसूयव आनुष्टुभम् ॥१७॥

अग्निम्[1]। वसूयव इति जस्त्वम्, एवाँ अग्निं वसूयवः सहसानं ववन्दिमेति[2] मन्त्रलिङ्गात्। वसूयवो नामर्षय आत्रेयाः संभूयापश्यन्। नवाप्यनुष्टुभः। अग्निः[3] ॥१७॥

[२६] अग्ने गायत्रमन्त्या लिङ्गोक्तदेवता[4] ॥१८॥

नवेत्येव। पावक[5]। वसूयवः। गायत्री। अग्निः ॥१८॥

[२७] अनस्वन्ता षट् त्रैवृष्णपौरुकुत्स्यौ द्वौ त्र्यरुणत्रसदस्यू राजानौ भारतश्चाश्वमेधोऽन्त्यास्तिस्रोऽनुष्टुभो नात्मात्मने दद्यादिति सर्वास्वत्रिं केचिदन्त्यैन्द्राग्नी ॥१९॥

सत्पतिः[6]। त्रिवृष्णपुत्रस्त्रैवृष्णः, स च त्र्यरुणाभिधानः, पुरुकुत्सपुत्रस्त्रसदस्युर्नाम राजानौ च भरतपुत्रोऽश्वमेधश्च राजेति त्रयोऽपि संभूयैतत् सूक्तमपश्यन्। चेति राजत्वानुकर्षणार्थः। राजानाविति द्विवचनादेव सिद्धे द्वावित्यनुक्रमण्यन्तरानुकरणम्। आदितस्तिस्रस्त्रिष्टुभः। चतुर्थ्याद्यास्तिस्रोऽनुष्टुभः[6]। सर्वास्वृक्ष्वत्रिमेवर्षिं मन्यन्ते केचित्। कुत इत्याह—नात्मने दद्यादिति। न ह्यात्मा स्वयमात्मने स्वस्मै ददातीत्यस्माद्धेतोः। तथा हि। यो मे शता चेत्यादौ[7] त्र्यरुणाय मे त्र्यरुणो ददाति तस्मै त्र्यरुणाय शर्माग्ने देहीत्यर्थोऽनुपपन्नः। अतोऽत्रिरेव सर्वास्वृषी राजानो दातारस्त्र्यरुणादयः। तेभ्यः शर्माग्ने प्रयच्छेत्यत्रिरग्निं प्रत्याह। अत्रिर्भौम इति। पूर्वस्मिंस्तु पक्ष आत्मकृतपुण्यपापयोरात्मन्यध्यारोपात्।

आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः[8]।

इत्यादावात्मानमेव प्रत्यात्मनो बन्धुरिपुत्वोक्तिवदत्रापि गवादिलाभहेतुभूतकर्मणार्जकोपायमात्मने गवादि ददाति। तस्मै त्र्यरुणाय मह्यमग्ने शर्म देहीति सम्बन्धोऽपपत्तिर्वर्त्तित्वाद्[9] राज्ञामेवर्षित्वमुक्तमित्याहुः। आदितः पञ्चाग्नेय्यः। षष्ठीन्द्राग्निदेवत्या[6] ॥१९॥

---

१. 'अग्निम्' इति नास्ति मै०।

२. ऋ० ५।२५।९॥

३. 'नवा अग्निः' इति नास्ति मै०।

४. 'अग्ने गायत्रम्' इत्येव पु० १, पु० २।

५ 'पावक' इति नास्ति मै०।

६. 'सत्पतिः' 'आदितः...नुष्टुभः' 'आदितः...देवत्या' इति नास्ति मै०।

७. ऋ० ५।२७।२॥

८. भगवद्गीता ६।५॥ तु०—मनु० ८।८४॥

९. '०पत्तिमत्वाद्' इति पु० १, पु० २।

[२८] समिद्धो विश्ववारात्रेयी त्रिष्टुब्जगती त्रिष्टुबनुष्टुब्गायत्र्यौ ॥२०॥

षडित्येव । अग्निः ।[१] विश्ववारा नामात्रेय्यृषिका । आत्रेयी । अत्रिगोत्रजा । इतश्चानित्र[२] इति ढक् । ङीप्[१] । गोत्रोक्तिः पञ्चमे मण्डल[३] इत्यस्य क्वचित्कथंचित्सूत्रविषयत्वात्[४] तत्र[५] चास्त्रियमित्युक्तेः । आद्या त्रिष्टुप् । द्वितीया जगती । तृतीया त्रिष्टुप् । चतुर्थ्यनुष्टुप् । पञ्चमीषष्ठ्यौ गायत्र्यौ । अग्निः । मण्डलाद्याग्नेयत्वस्य पूर्णोऽवधिः[१] ॥२०॥

[२९] त्र्यर्यमा पञ्चोना गौरिवीतिः शाक्त्य ऐन्द्रमुशना यदौशनसो वा पादः ॥२१॥

पञ्चदश । मनुषो देवताता । शक्तिगोत्रो गौरिवीतिर्नामर्षिः[६] । ऐन्द्रमित्याग्नेयावध्यर्थम् । अत्र सूक्त उशना यत्सहस्यैरयातमिति[७] पाद उशनोदेवत्यः । ऐन्द्रो वा । त्रिष्टुप्[६] ॥२१॥

[३०] क्व स्य बभ्रुर्ऋणञ्चयोऽप्यत्र राजा स्तुतः ॥२२॥

पञ्चोनेत्येव । वीरः । बभ्रुर्नामर्षिः । आत्रेयः[८] । अत्र सूक्त ऋणञ्चयो नाम राजर्षिरपि बभ्रुणा स्तुतः । न हि केवलमिन्द्र एव । त्रिष्टुप्[८] ॥२२॥

[३१] इन्द्रो रथाय सप्तोनावस्युरुग्रमिति कौत्स्यौशनसौ वा पादौ परैन्द्राकौत्सी ॥२३॥

प्रवतम् । त्रयोदश । अवस्युर्नामर्षिः । आत्रेयः[९] । उग्रमयातमवहो ह कुत्समिति[१०] पादः कुत्सदेवत्य ऐन्द्रो वा । सं ह यद्वामिति[१०] पाद औशनस ऐन्द्रो वा । इन्द्राकुत्सा वहमानेति[११] पर ऋगिन्द्राकुत्सदेवत्या । द्वन्द्वादर्णि देवताद्वन्द्वे चेत्यानङ्[१२] । उभयपदवृद्धिः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः[९] ॥२३॥

[३२] अदर्दर्द्वादश गातुः ॥२४॥

---

१. 'षडि⋯अग्निः' 'इत⋯ङीप्' 'आद्या वधिः' इति नास्ति मै० ।
२. अष्टा ४।१।१२२॥ ३. का० सर्वा० २४।६॥
४. तु०—का० सर्वा परि० २।३॥ ५. 'तथा' इति पु० १, पु० २, गो० ।
६. 'पञ्च⋯मर्षिः' 'ऐन्द्रो⋯त्रिष्टुप्' इति नास्ति मै० । ७. ऋ० ५।२९।९॥
८. 'पञ्चो⋯आत्रेयः' 'त्रिष्टुप्' इति नास्ति मै०
९. 'प्रवतम्⋯आत्रेयः' 'इन्द्रा⋯नेति' 'द्वन्द्वा⋯इन्द्रः' इति नास्ति मै० ।
१०. ऋ० ५।३१।८॥ ११. ऋ० ५।३१।९॥ १२. अष्टा ६।३।२६॥

उत्सम् । गातुर्नामात्रेयः[1] । इशि[2] चेत्युत्वेनाददर्दो द्वादशेति प्राप्ते प्रातिशाख्ये—

दीधरभारदरीवरदर्दर्दर्दर्रदर्धरजागरजीगः ।
वारपुनः पुनर् ।[3]

इति रेफित्वाद् अदर्दर्द्वादशेत्युक्तं प्रकृतिवदनुकरणं भवतीति । त्रिष्टुप् । इन्द्रः[1] ॥२४॥

॥ इति पञ्चविंशोऽध्यायः ॥२५॥

—:०:—

[२६]

[३३] महि दश प्राज पत्यः संवरणः ॥१॥

महे । संवरणो नाम प्रजापतिपुत्रः : त्रिष्टुप् । इन्द्रः[4] ॥१॥

[३४] अजातशत्रुं नव त्रिष्टुबन्तम् ॥२॥

अजरा । आदितोऽष्टौ जगत्यः । अन्त्या त्रिष्टुप् । प्राजापत्यः संवरणः । इन्द्रः[4] ॥२॥

[३५] यस्तेऽष्टौ प्रभूवसुराङ्गिरसः पङ्क्त्यन्तम् ॥३॥

साधिष्ठः । अङ्गिरो गोत्रः प्रभूवसुर्नामर्षिः । आदितः सप्तानुष्टुभः । अन्त्या पङ्क्तिः । इन्द्र.[4] ॥३॥

[३६] स आ गमत् षट् तृतीया जगती ॥४॥

इन्द्रं । आदितो द्वे चतुर्थ्याद्याश्च तिस्र इति पञ्च त्रिष्टुभः । तृतीया जगती । प्रभूवसुराङ्गिरसः । इन्द्रः[4] ॥४॥

[३७] सं भानुना पञ्चात्रिः ॥५॥

यतते । भौमोऽत्रिः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः[4] ॥५॥

[३८] उरोरानुष्टुभम् ॥६॥

पञ्चेत्येव । ते । अत्रिः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः[4] ॥६॥

[३९] यदिन्द्र पङ्क्त्यन्तम् ॥७॥

---

१. 'उत्स '' त्रेयः' 'त्रिष्टुप् । इन्द्रः' इति नास्ति मै० । २. अष्टा० ६।१।११४॥
३. ऋ० प्रा० १।१०३॥ ४. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।

पञ्चेत्येव । चित्र । आदितश्चतस्रोऽनुष्टुभः । पञ्चमी पङ्क्तिः । इन्द्रः । अत्रिः[1] ।।७।।

[४०] आ याहि नव त्र्युष्णिगाद्यन्त्यानुष्टुम्मध्ये च सा सौरी तदादीतिहासः स्तुतिकर्मत्वादत्रिर्देवतैव ।।८।।

अद्रिभिः । आदितस्तिस्र उष्णिहः[2] । अस्य सूक्तस्य नवम्यनुष्टुम्मध्ये वर्त्तमाना या सा चानुष्टुप् । यत्त्वा सूर्येत्येषा[3] । किं च सौरी सूर्यदेवत्या । सौरीत्यनन्तरं तदादी-त्युक्तत्वादत्रिदेवत्यत्वं मा भूदिति । पञ्चम्यनुष्टुप् सूर्यदेवत्येति यावत् । तदादीति-हासः । अत्रिर्देवः । कुतः ? अत्रेः स्तुतिं प्रति कर्मत्वात् । अत्रिर्ह्यत्र स्तूयत एवेति[4] कर्मार्थे । षष्ठ्यादिचतुर्ऋचमत्रिदेवत्यम् । अत्र्यार्षेयमेवेति यथाप्राप्तमेवोक्तम् । अन्यानुक्तेरत्रादौ चतस्र ऐन्द्र्यः । पञ्चमी सौरी । षष्ठ्याद्याश्चतस्रोऽत्रिदेवत्याः । अत्र्यार्षेयाश्चतुर्थीषष्ठीसप्तम्यष्टम्यश्चतस्रस्त्रिष्टुभः[2] । षष्ठ्याद्यत्रिदेवत्यमिति वाच्ये-ऽन्यत् सर्वं विस्पष्टार्थम् । न ह्यन्यत्रेतिहासो देवतात्वहेतुश्च वर्ण्यते । अत्रिश्चायं भौमः[2] ।।८।।

[४१] को नु विंशतिर्वैश्वदेवं वै तत् षोळश्याद्यतिजगत्याव न्त्यैकपदा ।।९।।

वाम्[5] । वै तत् । एकादशेत्यर्थः तुह्यादिसूत्रे[6] वै पञ्च तत् षडित्येवमीरितम् । एतदादीन्येकादश सूक्तानि वैश्वदेवानि । षोडशीसप्तदश्यावतिजगत्यौ । सिषक्तु न इतीयं विंश्येकपदा दशाक्षरा विराट् । तदर्धमेकपदेत्युक्तम्[7] । शिष्टाः सप्तदश त्रिष्टुभः । भौमोऽत्रिः[5] ।।९।।

[४२] प्र शतमा द्व्यूनैकादशी रौद्री ।।१०।।

वरुणम् । अष्टादश । भौमोऽत्रिः । त्रिष्टुप् । विश्वे देवाः । तमु ष्टुहि य स्विषु-रित्येकादशी रुद्रदेवत्या[8] । एकादशी रौद्रीति वचनं सूक्तरूपविनियोगेऽप्येवमन्त्यासा-मपि वैश्वदेवत्वम्[9] इति प्राप्तस्य वैश्वदेवत्वस्य निवृत्त्यर्थम् । ऋग्रूपविनियोगे हि सूक्त-भेदप्रयोग[9] इत्येव रौद्रत्वं सिद्धम् ।।१०।।

---

१. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।
२. 'अद्रि···उष्णिहः' 'अन्या···त्रिष्टुभः' 'अत्रि ··भौमः' इति नास्ति मै० ।
३. ऋ० ५।४०।५।।
४. 'एव' इति नास्ति पु० १, पु० २, गो० ।
५. 'वाम्' 'षोडशी ···ऽत्रिः' इति नास्ति मै० ।
६. का० सर्वा० परि० १२।३।।
७. का० सर्वा० परि० १२।६।।
८. 'वरुण ··देवत्या' इति नास्ति मै०।
९. का० सर्वा० १०।३।।

[४३] आ धेनवस्त्र्यूना ॥११॥

पयसा । सप्तदश । अत्रिः । त्रिष्टुप् । विश्वे देवाः[१] ॥११॥

एतयोरुपान्त्यैकपदा ॥१२॥

एतयोः प्र शंतमीयाधेनवीययोः[२] सूक्तयोर्यथाक्रममुपान्त्या सप्तदशी षोडशी चोरौ देवा अनिबाधे स्यामेत्येकपदा[३] द्वयोरप्येकरूपैवाम्नायते[२]। लाघवार्थमिदम्। अन्यथा प्र शंतमा द्व्यूनैकादशी रौद्री सप्तदश्येकपदा धेनवस्त्र्यूना षोडश्येकपदेति वाच्यं स्यात्। द्विर्वोपान्त्यैकपदेति। तर्हि सूत्रमिदमन्तिममकृत्वा प्र शंतमा द्व्यूनैकादशी रौद्र्युपान्त्यैकपदा त्विति[४] सूत्र्यताम्।

एवं न सूत्रितं येन पृच्छ कात्यायनं तु तम्[५] ॥१२॥

[४४] तं प्रत्नथा पञ्चोना काश्यपोऽवत्सारोऽन्ये च ऋषयोऽत्र दृष्टलिङ्गा द्वित्रिष्टुबन्तम् ॥१३॥

पूर्वथा। पञ्चदश। काश्यपगोत्रोऽवत्सारो नामर्षिः[६]। अत्र सूक्ते ये दृष्टलिङ्गका अधीतस्वनामका सदापृणयजतबाहुवृक्तश्रुतवित्तर्यादयस्ते चर्षित्वेऽवत्सारेण समुच्चीयन्ते स्वनामवतीष्वृक्ष्वित्यर्थः। चतुर्दशीपञ्चदश्यौ त्रिष्टुभौ। आदितस्त्रयोदश जगत्यः। विश्वे देवाः[६] ॥१३॥

[४५] विदा एकादश सदापृणः ॥१४॥

दिवः। सदापृणो नामात्रेयः। त्रिष्टुप्। विश्वे देवाः[१] ॥१४॥

[४६] हयोऽष्टौ प्रतिक्षत्रोऽन्त्यो द्वृचो देवपत्नीस्तवोऽन्त्या त्रिष्टुब् द्वितीया च ॥१५॥

न। प्रतिक्षत्रो नामात्रेयः[७]। अन्त्यो द्वृचो देवपत्नीस्तवः। देवानां पत्नीरुत ग्ना व्यन्त्वित्येतां[७] देवपत्न्यः स्तूयन्त इत्यर्थः। अत्र देवपत्नीस्तव इत्येकादशी रौद्रीतिवत्[८] सूत्रं सूक्तविनियोगार्थः। उत ग्ना व्यन्त्वित्यष्टमी त्रिष्टुप्। सूक्तस्य द्वितीयाग्न इन्द्र वरुणेति च त्रिष्टुप्। शेषाः षड् जगत्यः। आदितः षड् वैश्वदेव्यः[७] ॥१५॥

॥ इति षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥

---

१. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै०।
२. 'प्र ···वीययोः' 'उरौ···म्नायते' इति नास्ति मै०।
३. '०पदेत्याद्या' इति कोशेषु।
४. '०पदेति' इति कोशेषु।
५. 'तम्' इति नास्ति कोशेषु।
६. 'पूर्व···मर्षिः' 'चतु···देवाः' इति नास्ति मै०।
७. 'न···त्रेयः' 'देवानां···त्येतां' 'अत्र ··देव्यः' इति नास्ति मै०।
८. का० सर्वा० २६।१०॥

[२७]

[४७] प्रयुञ्जती सप्त प्रतिरथः ।।१।

दिवः । प्रतिरथो नामात्रेयः । त्रिष्टुप् । विश्वेदेवा[1] ।।१।।

[४८] क्रतु पञ्च प्रतिभानुर्जागतम् ।।२।।

प्रियाय । प्रतिभानुर्नामात्रेयः । जगती । विश्वेदेवाः[1] ।।२।।

[४९] देव वः प्रतिप्रभोऽन्त्या तृणपाणिः ।।३।।

पञ्चेऽयेव । अद्य[2] । प्रतिप्रभो नामात्रेयः । अन्त्या तृणपाणिः । प्र ये वसुभ्य इति[2] पञ्चमीमधीयानः पाणौ तृणं गृह्णातीत्यध्ययनद्वारेणेयं तृणपाणिर्भवति । अतोऽत्रार्थादध्येतुस्तृणपाणित्वं विधीयते । किमर्थम् ? रक्षसां हननाय । अधीत्यान्ते तच्च तृणमग्नावप्सूषरे[3] वा प्रक्षिपेत् । नान्यत्र । यज्ञायज्ञिये[4] तृणपाणिसूक्त ऋग्विधाने तथा दर्शनात् । उपदेशस्तूपदेशमुपोद्वलयतीत्यतः[5] । तथा हि—

तृणपाणिर्जपेत्[6] सूक्तं रक्षोघ्नं दस्युभिर्वृतः ।
न भयं विद्यते[7] किञ्चिद्[8] रक्षोभ्योऽरिभ्य एव च[9] ।।
पाणिना तृणमादाय यज्ञायज्ञेति योऽभ्यस्येत् ।
सोऽधीतस्यास्य सूक्तस्य फलं प्राप्नोति पुष्कलम्[10] ।।
सूक्तान्ते च तृणं त्वग्नाविरिणे[11] वोदकेऽपि वा ।
निक्षिपेत्[12] तत् प्रयत्नेन त्यक्त्वान्यत्र भयावहम् ।।[13] इति ।[14]

त्रिष्टुप् । विश्वे देवाः[2] ।।३।।

[५०] विश्वः स्वस्त्यात्रेयः पङ्क्त्यन्तम् ।।४।।

पञ्च । देवस्य[15] । स्वस्त्यात्रेयो नामात्रेयः । आदौ चतस्रोऽनुष्टुभः । पञ्चमी

---

१. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।
२. 'पञ्च…अद्य' 'प्र…इति' 'त्रि – देवाः' इति नास्ति मै० ।
३. '०प्सूविरे' इति पु० १, पु० २ । 'वसुषिरे' इति गो० ।
४. ऋ० ६।४८।।
५. '०द्वयत्यती०' इति पु० १ । '०द्वलयतीतः' इति गो० ।
६. 'जपन्त' इत्यृग्विधाने ।
७. 'विदन्ते' इत्यृग्विधाने ।
८. 'क्वचिद्' इत्यृग्विधाने ।
९. ऋग्विधान २।११७।।
१०. 'नातृणः' इत्यृग्विधाने ।
११. '०वरण्ये' इति पु० २ ।
१२. 'प्रक्षिपेत्' इति पु० १, पु० २ ।
१३. ऋग्विधान २।११५-११६।।
१४. 'भयावहं भवेदिति' इति पु० १, पु० २ । 'भयं भवेदिति' इति गो० ।
१५. 'पञ्च देवस्य' इति नास्ति मै० ।

पङ्क्तिः । विश्वे देवाः[1] ॥४॥

[५१] अग्ने पञ्चोना चतस्रो गायत्र्यः षळुष्णिहस्तिस्रो जगत्यस्त्रिष्टुभो वान्त्ये अनुष्टुभौ ॥५॥

सुतस्य । पञ्चदश । आदितश्चतस्रो गायत्र्यः । अथ पञ्चम्यादिषडुष्णिहः[2] । अथैकादश्याद्यास्तिस्रो व्यूहेन जगत्यः । त्रिष्टुभो वाप्यव्यूहेन । अन्त्ये चतुर्दशीपञ्चदश्यावनुष्टुभौ । स्वस्त्यात्रेयः । विश्वे देवाः[2] । वैश्वदेवत्वस्य पूर्णोऽवधिः । अन्त्ये इति विस्पष्टार्थं पारिशेष्यादेव सिद्धेः ॥५॥

[५२] प्र श्यावाश्व त्र्यूना श्यावाश्वो मारुतं ह तत् पङ्क्तिः षष्ठ्यन्त्ये च ॥६॥

धृष्णुया । सप्तदश । श्यावाश्वो नामात्रेयः[3] । ह तत् दश । इदमादीनि दश सूक्तानि मरुद्देवत्यानि[3] । षष्ठी षोडशी सप्तदशी च पङ्क्तयः[4] । शिष्टाश्चतुर्दशानुष्टुभः[5] ॥६॥

[५३] को वेद षोळश ककुब् बृहत्यनुष्टुप् पुरउष्णिक् ककुप्सतोबृहत्यौ गायत्री सतोबृहती ककुभौ गायत्री सतोबृहत्यौ ककुप्सतोबृहती ॥७॥

जानम् । षोडशानामृचां छन्द आह यथाक्रमम् । ककुबाद्या । बृहती द्वितीया । अनुष्टुप् तृतीया । पुरउष्णिक् चतुर्थी । ककुप् पञ्चमी । सतोबृहत्यौ षष्ठीसप्तम्यौ । गायत्र्यष्टमी । सत बृहती नवमी । ककुभौ दशम्येकादश्यौ । गायत्री द्वादशी । सतोबृहत्यो त्रयोदशोचतुर्दश्यौ । ककुप् पञ्चदशी । सतोबृहती षोडशी ।[6] चतुर्दशी विष्टारपङ्क्तिरिति केचित् । तत्र पाठे गायत्री सतोबृहती विष्टारपङ्क्तिः ककुप् सतोबृहती । एवं ककुबादिसतोबृहत्यन्तानीत्युक्तम् ।[8] आद्यापञ्चमीदशम्येकादशीपञ्चदश्यः

---

१. 'आदौ देवाः' इति नास्ति मै० ।

२. 'सुतस्य ··अथ' 'अन्त्ये···देवाः' इति नास्ति मै० ।

३. 'धृष्णु ··मात्रेयः' 'इदमा ···देवत्यानि' इति नास्ति मै० ।

४. 'षष्ठी सप्तदशी च पङ्क्तिः' इति पु० १, पु० २ । '०दश्यश्च पंक्तयः' इति गो० ।

५. '०पञ्चदशा०' इति पु० १, पु० २ ।

६. 'जानम् ··षोडशी' इति नास्ति मै० ।

७. 'चतुर्दशी' इति नास्ति पु० १, पु० २, गो० ।

८. '०नादित्युक्तं' इति पु०१ । '०तादिति उक्तं' इति पु०२ । '०ता:इत्युक्तं' इति गो० ।

ककुभः षष्ठीसप्तमीनवमीत्रयोदशीचतुर्दशीषोडश्यः सतोबृहत्योऽष्टमीद्वादश्यौ गायत्र्यौ द्वितीया बृहती तृतीयानुष्टुप् चतुर्थी पुरउष्णिग् इत्युक्तावन्यथा समुच्चितग्रन्थच्छन्दः-कथनेन[1] ग्रन्थगौरवमक्षरकृतं प्रतिपत्तिकृतं च ग्रन्थगौरवं स्याद् इत्युभयलाघवाय[2] यथाक्रमं छन्दोऽभिधानम् । श्यावाश्वः । मरुतः[3] ॥७॥

[५४] प्र शर्धाय पञ्चोना जागतमुपान्त्या त्रिष्टुप् ॥८॥

मारुताय । पञ्चदश । उपान्त्या चतुर्दशी त्रिष्टुप् । शिष्टा जगत्यः । श्यावाश्वः । मरुतः[4] ॥८॥

[५५] प्रयज्यवो दशान्त्या त्रिष्टुप् ॥९॥

मरुतः । अन्त्या दशमी त्रिष्टुप् । आदितो नव जगत्यः । श्यावाश्वः । मरुतः[4] ॥९॥

[५६] अग्ने नव बार्हतं तृतीयासप्तम्यौ सतोबृहत्यौ ॥१०॥

शर्धन्तम् । बार्हतं बृहतीछन्दसि भवम् । भवार्थेऽण्यादिवृद्धिः । तृतीया सप्तमी च सतोबृहत्यौ । श्यावाश्वः । मरुतः[4] ॥१०॥

[५७] आ रुद्रासोऽष्टौ द्वित्रिष्टुबन्तम् ॥११॥

इन्द्रवन्तः । आदौ षड् जगत्यः । सप्तम्यष्टम्यौ त्रिष्टुभौ । श्यावाश्वः । मरुतः[4] ॥११॥

[५८] तमु ॥१२॥

अष्टावित्येव । नूनम् । त्रिष्टुप् । श्यावाश्वः । मरुतः[4] ॥१२॥

[५९] प्र वस्त्रिष्टुबन्तम् ॥१३॥

अष्टावित्येव । स्पट् । आदितः सप्त जगत्यः । अष्टमी त्रिष्टुप् । श्यावाश्वः । मरुतः[4] ॥१३॥

[६०] ईळे द्विजगत्यन्तमाग्नेयं च वा ॥१४॥

अष्टावित्येव । अग्निम् । आदितः षट् त्रिष्टुभः । सप्तम्यष्टम्यौ जगत्यौ[5] । आग्नेयं च वा । आग्निमारुतं वेदं[6] सूक्तं केवलं मारुतं वा । चेत्यसति केवलाग्निदेवत्यं

---

१. 'ग्रंथनेन' इति पाठोऽधिकः पु० १ । २. 'इत्युत्तरला०' इति पु०१, पु० २, गो० ।
३. 'श्यावा…मरुतः' इति नास्ति मै० ।
४ सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० । ५. 'अष्टा ° जगत्यौ' इति नास्ति मै० ।
६. '०रुत्यदेवं' इति पु० १, पु० २ । 'मरुद्देवत्यं' इति गो० ।

स्यात्। वेत्यसति शुद्धमारुतं पक्षे न स्यादित्याग्नेयं च वेत्युक्तम् । श्यावाश्व आत्रेयः[1] ॥१४॥

[६१] के ष्ठैकोना गायत्रं श्यावाश्वोऽत्र वैददश्वी तरन्त पुरुमीढौ दार्भ्यं रथवीतिं मरुतश्च दानतुष्टः प्रशशंस बुद्ध्वा च तरन्त-महिषीं शशीयसीं पञ्चम्यनुष्टुम्नवमी सतोबृहती ॥१५॥

नरः । एकोनविंशतिः। गायत्री छन्दः । पञ्चम्यनुष्टुम्नवमी सतोबृहती[2]। अत्र सूक्ते श्यावाश्व ऋषिः विददश्वस्य राज्ञः पुत्रौ वैददश्वी तरन्ताख्यं राजानं पुरुमीढाख्यं च राजानं दल्भस्य राज्ञः[3] पुत्रं रथवीतिनामनं च तृतीयं[4] मरुतश्चात्मनो दत्तरुक्माभरणान् दानतुष्टः[5] स्तुतवान् । तरन्तस्य वैददश्वेर्महिषीमधिराज्ये सहाभिषिक्तां च शशीयसीं नाम पूर्वं विस्मृत्य पुनर्बुद्ध्वा स्तुतवान् । शशीयसी हि श्यावाश्वाय बहु वसु दत्तवती। प्रकृते श्यावाश्व इति[6]—इतिहाससूचनार्थम् । वैददश्वी इति । विददश्वशब्दात इञ्[7] । दाल्भ्य इति[8]। दल्भाद् यञ्[9]ण्यो[10]वा। श्यावाश्वस्येतिहासोऽयं वैशद्याय प्रदर्श्यते—

राजर्षिरभवद् दाल्भ्यो रथवीतिरिति श्रुतः ।
स यक्ष्यमाणो राजात्रिम् अभिगम्य प्रसाद्य च ॥१॥
आत्मानं कार्यमर्थं[11] च ख्यापयन् प्राञ्जलिः[12]स्थितः ।
अवृणीतर्षिमात्रेयम्[13] आर्त्विज्यायार्चनानसम् ॥२॥
स सपुत्रोऽभ्यगच्छत् तं राजानं यज्ञसिद्धये ।
श्यावाश्वस्त्वत्रिपुत्रस्य[14] पुत्रः खल्वर्चनानसः ॥३॥
साङ्गोपाङ्गान् सर्ववेदान् यः पित्राध्यापितो[15] मुदा ।

---

१. 'श्या...त्रेयः' इति नास्ति मै० ।
२. 'नरः...बृहती' इति नास्ति मै० ।
३. 'दल्लभराजपुत्रं' इति पु० १ । 'दत्तराजपुत्रं' इति पु० २ ।
४. 'नृयं' इति पु० १, पु० २ ।
५. 'दत्तरुक्माभरणं दानं तुष्टावात्मानं' इति पु० १, पु० २ ।
६. 'इति' इति नास्ति मै० ।
७. अष्टा० ४।१।९५॥
८. 'दा...इति' नास्ति मै० ।
९. तु०—अष्टा० ४।१।१०५॥
१०. तु०—अष्टा० ४।१।१५१॥
११. '०मर्थे' इति पु० १, पु० २ ।
१२. 'ख्यापयत् पाञ्जलि' इति पु० १, पु० २, गो० ।
१३. 'अवरिष्ठार्त्रि' इति पु० १, पु० २ ।
१४. 'श्यावश्वस्यात्रि०' इति पु०१, पु० २, गो० ।
१५. 'पुत्रानध्या०' पु० १, पु० २ ।

अर्चनानाः[१] सपुत्रोऽथ गत्वा[२] नृपमयाजयत् ।।४।।
यज्ञेऽथ विततेऽपश्यद् राजपुत्रीं यशस्विनीम् ।
स्नुषा मे राजपुत्री स्यादिति तस्य मनोऽभवत् ।।५।।
श्यावाश्वस्य च तस्यां वै सक्तमासीत् तदा मनः ।
संयुज्यस्व मया राजन्निति याज्यं[३] च सोऽब्रवीत् ।।६।।
श्यावाश्वाय सुतां दित्सुर्महिषीं स्वां नृपोऽब्रवीत् ।
किं ते मतमहं कन्यां श्यावाश्वाय ददामि हि ।।७।।
अत्रिपौत्रोऽदुर्बलो[४] हि जामाता त्वावयोरिति ।
राजानमब्रवीत् सापि नृपर्षिकुलजा ह्यहम् ।।८।।
नानृषिर्नौ तु जामाता नैष मन्त्रान् हि[५] दृष्टवान् ।
ऋषये दीयतां कन्या वेदस्याम्बा[६] भवेद् यथा ।।९।।
ऋषिर्मन्त्रदृशं[७] वेदपितरं[८] मन्यते यतः ।
इति तद्वचनं श्रुत्वा[९] प्रत्याचष्ट मुनिं नृपः ।।१०।।
अनृषिर्नैव जामाता कश्चिद् भवितुमर्हति[१०] ।
प्रत्याख्यात ऋषिस्तेन वृत्ते यज्ञे न्यवर्तत ।।११।।
श्यावाश्वस्य तु कन्यायां मनो नैव न्यवर्तत ।
तेन स्वस्थो वसेत्युक्तो नृपोऽगान् मन्दिरं प्रति ।।१२।।
अर्चनानाः सपुत्रोऽथ याज्यावस्य नृपौ[११] पथि ।
तरन्तपुरुमीढाख्यौ प्राप्य पुत्रमदर्शयत् ।।१३।।
तौ चक्रतुस्तयोः पूजां विददश्वसुतौ नृपौ ।
तरन्तमहिषी तत्र नाम्नाख्याता शशीयसी ।।१४।।
तस्यै स[१२] दर्शयामास त्वृषिपुत्रं[१३] महानृपः ।

---

१. 'अर्चनासपुत्रो०' इति पु० १, पु० २ । २. 'मत्वा' इति पु० १, पु० २ ।
३. 'राजन्...राजमब्रवीत्' इति पु० १ । 'राजन्निति याराज सोमब्रवीत्' इति पु० २ । 'राजन् इति याज्यं वचोब्रवीत्' इति गो० । ४. 'पुत्रो दु०' इति कोशेषु ।
५. 'मैषमंताभि' इति पु० १ । 'मैषमंताभिर' इति पु० २ । 'नैष मंत्राग्नि' इति गो० ।
६. 'चेदस्यां वा' इति पु० १ । 'देवस्यां वा' इति पु० २ । 'वेदस्या वा' इति गो० ।
७. 'ऋर्षि' इति पु० १, गो० । ८. 'वेदं पितर' इति पु० १, पु० २, गो० ।
९. '०नं राजा' इति पु० २ । '०नाद् राजा' इति गो० ।
१०. अयं श्लोकार्धस्त्यक्तः पु० १, पु० २ ।
११. '०र्वातिनृपौ' इति पु० १ । '०र्वात्तनृपो' इति पु०२ । '०वत्रेनृंपौ' इति गो० ।
१२. 'च' इति पु० १ । 'व' इति पु० २ ।
१३. 'त्वत्रिपौत्रं' इति पु० १, पु० २, गो० ।

तरन्तानुमता सास्मै प्रादाद् वहुविधं वसु ॥१५॥
अजाविकं गवाश्वं च महिषी सा शशीयसी ।
अत्रिं याज्यार्चितौ गत्वा पितापुत्रौ स्वमाश्रमम् ॥१६॥
अभ्यवादयतामत्रिं महर्षिं दीप्ततेजसम् ।[1]
श्यावाश्वस्य मनस्यासीन् मन्त्रस्यादर्शनादहम् ॥१७॥
न लब्धवांस्तु तां[2] कन्यां हन्त सर्वाङ्गसुन्दरीम् ।
अप्यहं मन्त्रदर्शी स्यां भवेद्धर्षो[3] महान् मम ॥१८॥
इत्यरण्ये[4] चिन्तयतः प्रादुरासीन् मरुद्गणः ।
ददर्श संस्थितान् पार्श्वे तुल्यरूपान् महात्मनः ॥१९॥
समानवयसो रुक्मवक्षसः पुरुषाकृतीन् ।
श्यावाश्वो विस्मितो[5]ऽपश्यत् के ष्ठानरचतुष्कतः ॥२०॥
ततः स मरुतो देवान् रुद्रपुत्रान् अबुध्यत[6] ।
य ईं वहन्तेत्यादिभिर्बुद्ध्वा तुष्टाव तानृषीन्[7] ॥२१॥
अतिक्रमं हि तं मेन[8] ऋषिर्विपुलमात्मनः ।
यच्च[9] दृष्ट्वैव तुष्टाव यच्च[10] के ष्ठेति पृष्टवान् ॥२२॥
अथास्य मरुतो रुक्मान् स्ववक्षोभ्योऽवमुच्य ते[11] ।
कण्ठे चासज्य[12] त्रिदिवं प्रययुस्तस्य पश्यतः ॥२३॥
मरुत्सु तु[13] प्रयातेषु श्यावाश्वः सुमहायशाः ।
रथवीतेर्दुहितरम् अगच्छन्[14] मनसा तदा[15] ॥२४॥

---

१. श्लोकत्रयमग्रिमं त्यक्तं गो० ।
२. 'लब्धवा सुतां' इति पु०, १, पु० २ ।
३. 'न वेदर्थो' इति पु० १ । 'भवेदर्थो' इति पु० २ ।
४. 'इत्यारण्यके' इति पु० १, पु० २ ।
५. 'धिष्ठितो' इति पु० १, पु० २ ।
६. 'अबोध्यत' इति पु० १ । 'अबाध्यते' इति पु० २ ।
७. अयं श्लोकार्धस्त्यक्तः पु० १, पु० २ ।
८. 'ते मेने' इति पु० २ । 'वै मेने' इति गो० ।
९. 'यं न' इति पु० १ । 'येन' इति पु० २ । 'यत्र' इति गो० ।
१०. 'यष्टायस्' इति पु० १ । 'दृष्ट्वाथ यस्' इति पु० २ ।
११. '०मुच्यन्त' इति पु० १, पु० २, गो० ।
१२. 'वसति' इति पु० १ । 'वसवस्' इति पु० २ ।
१३. 'च' इति पु० १, पु० २ । 'रुद्रपुत्र' इति गो० ।
१४. 'मागच्छन्' इति पु० १, पु० २ ।
१५. 'कृतां' इति पु० १ । 'तु तां' इति गो० ।

ऋषित्वमात्मनस्तत्र[1] विवक्षू[2] रथवीतये ।
एतं मे स्तोममित्याभ्यां दूत्ये रात्रिं न्यवेदयत् ।।२५।।
रात्रावनिद्रां जानासि मम रात्रिर्महाद्युते ।
रथवीतिमहिष्या मां मन्त्रयुक्तं निवेदय[3] ।।२६।।
रथवीतिमपश्यन्तं[4] संप्रेक्ष्यार्षेण चक्षुषा ।
रम्ये हिमवतः पृष्ठ एष क्षेतीति चाब्रवीत् ।।२७।।
ऋषेर्नियोगमाज्ञाय[5] देव्या रात्र्या प्रचोदितः ।
आदाय कन्यां तां दाल्भ्य उपेयायार्चनानसम्[6] ।।२८।।
पादौ तस्योपसंगृह्य स्थित्वा प्रह्वः कृताञ्जलिः ।
रथवीतिरहं दाल्भ्य इति स्वं नाम चाब्रवीत्[7] ।।२९।।
मया सङ्गतिम्[8] इच्छन्तं त्वां प्रत्याचक्षि[9] यत् पुरा ।
तत् क्षमस्व नमस्तेऽस्तु मा च मे भगवन् क्रुधः ।।३०।।
ऋषेः पुत्रः स्वयमृषिः पितासि भगवन्नृषेः ।
हन्त प्रतिगृहाणेमां स्नुषामित्येवमब्रवीत् ।।३१।।
पाद्यार्घ्यं[10] मधुपर्कं च शुक्लमश्वशतं तथा ।
पूर्वं दत्त्वात्रिपुत्राय श्यावाश्वाय ददौ सुताम् ।।३२।।
रुक्माभरणयुक्तं तु सोऽत्रिर्दृष्ट्वा स्वपौत्रकम्[11] ।
महान् प्रसादो[12] मरुतामिति हृष्टो[13] बभूव ह ।।३३।।
अथात्रिः पुत्रमित्येव श्यावाश्वं बह्वमन्यत ।
श्यावाश्वः कृतदारोऽस्तौत्[14] स्वोपकारकरान् बहून् ।।३४।।
अतः प्रष्टव्यरूपेण[15] वाच्यत्वे[16] मरुतां स्तुतेः[17] ।

---

१. 'स सद्य ऋषिरात्मानं' इति गो० । २. 'विवक्षा' इति पु० १, पु० २ ।
३. 'रथवीतिर्महिमानं च युक्तमत्र निवेदयत्' इति पु० १, पु० २ ।
४. '०तिं न प०' इति पु० १, पु० २ । ५. 'आस्थाय' इति पु० २ ।
६. 'उपेयात्' इति पु० १ । 'उपादाय' इति पु० २ ।
७. 'चाब्रुवान्' इति पु० १ । 'चोक्तवान्' इति गो० ।
८. 'संयोगम्' इति कोशेषु । ९. 'प्रत्याचक्षीय' इति पु० १, पु० २, गो० ।
१०. 'पाद्यार्थं' इति पु० १, पु० २ । ११. 'स्वपुत्रकं' इति पु० १, पु० २ ।
१२. 'महाप्रसादो' इति पु० २ ।
१३. 'हृष्टा' इति पु० १ । 'दृष्ट्वा' इति पु० २ । 'पृष्टो' इति गो० ।
१४. '०स्तोत्' इति पु० १, '०सौ' पु० २ ।
१५. 'पृष्टव्य०' इति पु० १ । 'प्रवृत्त०' इति पु० २, गो० ।
१६. 'वाच्यत्वान्' इति पु० १ । 'वाच्यतां' इति पु० २ । 'वाच्यस्त्वं' इति गो० ।
१७. 'स्तुते' इति पु० १ । 'तु ये' इति पु० २ ।

चतुष्के देवताः के ष्ठ य ईं षट्के च[1] ते स्तुताः ॥३५॥
सनत्साश्व्यचतुष्के[2] च तरन्तमहिषी स्तुता।
उत मे पुरुमीढस्तु स्तुतो यो मे तरन्तकः ॥३६॥
एतं मे तत्तृचे[3] दाल्भ्यो रथवीतिः स्तुतस्तथा।
उक्ता बृहद्देवतायां शौनकेन कथा त्वियम् ॥३७॥[4] ॥१५॥

[६२] ऋतेन नव श्रुतविन्मैत्रावरुणं व तत् ॥१६॥

ऋतम्। श्रुतविन्नामात्रेयः। वै तत्। इदमादीन्येकादश सूक्तानि मित्रावरुणदेवत्यानि। तुह्यादिसूत्रेण[5] वै पञ्च तत् षडित्येवमीरितम्। त्रिष्टुप्। मैत्रावरुणम्[6] ॥१६॥

॥ इति सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

---

[२८]

[६३] ऋतस्य सप्तार्चनाना जागतम् ॥१॥

गोपौ। अर्चनानोनामात्रेयः। सप्तापि जगत्यः। मैत्रावरुणम्[6] ॥१॥

[६४] वरुणं पङ्क्त्यन्तं तु ॥२॥

सप्तेत्येव। वः। सप्तमी पङ्क्तिः। आदितः षडनुष्टुभः। उत्तरसूक्तमपि पङ्क्त्यन्तम्। अर्चनानाः। मित्रावरुणौ[6] ॥२॥

[६५] यश्चिकेत षड् रातहव्यः ॥३॥

सः। आदौ पञ्चानुष्टुभः। अन्त्या पङ्क्तिः। रातहव्यो नामात्रेयः। मित्रावरुणौ[6] ॥३॥

[६६] आ चिकितानानुष्टुभं तु ॥४॥

षडित्येव। सुक्रतू। इदमादिद्वे सूक्ते अनुष्टुप्छन्दस्के। रातहव्यः। मित्रावरुणौ[6] ॥४॥

[६७] बळित्था पञ्च यजतः ॥५॥

---

१. 'ष च' इति पु० १। 'वहंते थ' इति पु० २। 'षट्केति च' इति गो०।
२. '०श्व्यं' इति कोशेषु। ३. 'मे त्ये तत्तृचे' इति पु० १। 'तत्तृचो' इति गो०।
४. बृ० दे० ५।५०-८०॥ ५. का० सर्वा० परि० १२।३॥
६. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै०।

देव । यजतो नामात्रेयः । अनुष्टुप् । मित्रावरुणौ[1] ॥५॥

[६८] प्र वो गायत्रम् ॥६॥

पञ्चेत्येव । मित्राय । यजतः । गायत्री । मित्रावरुणौ[1] ॥६॥

[६९] त्री रोचना चतुष्कमुरुचक्रिः ॥७॥

वरुण । उरुचक्रिर्नामात्रेयः । त्रिष्टुप् । मित्रावरुणौ[1] ॥७॥

[७०] पुरूरुणा गायत्रं तु ॥८॥

चतुष्कम् । चित् । उरुचक्रिः । मित्रावरुणौ । गायत्री । उत्तरं च गायत्रं सूक्तम्[1] ॥८॥

[७१] आ नस्तृचं वाहुवृक्तः ॥९॥

गन्तम् । वाहुवृक्तो नामात्रेयः । गायत्री । मित्रावरुणौ[1] ॥९॥

[७२] आ मित्र औष्णिहम् ॥१०॥

तृचम् । वरुणे । वाहुवृक्तः । उष्णिक् । मित्रावरुणौ[1] ॥१०॥

[७३] यदद्य दश पौर आश्विनं तदानुष्टुभं तु ॥११॥

स्थः । पौरो नामात्रेयः । आश्विनम् । उत्तराणि पञ्च । आनुष्टुभमिदमुत्तरं च[2] । पुरादयं पौरः । न पौरोऽयं वाहुवृक्तो यथा नाम्ना[3] वाहुवृक्तः । पुराख्यर्षी[4] न स्तः । ऋषिनामापि[5] नोच्यते[6] ॥११॥

[७४] कूष्ठः ॥१२॥

दश । देवौ । पौरः । अनुष्टुप् । अश्विनौ[1] ॥१२॥

[७५] प्रति नवावस्युः पाङ्क्तम् ॥१३॥

प्रियतमम् । अवस्युर्नामात्रेयः । नवापि पङ्क्तयः । सूत्रं चात्रामनन्ति—प्रति प्रियतममिति पाङ्क्तम्[7] इति । आश्विनम्[1] ॥१३॥

[७६] आ भाति पञ्चात्रिः ॥१४॥

---

१. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।
२. 'स्थः…च' इति नास्ति मै० ।
३. 'यथा मिना' इति पु० १, पु० २ ।
४. 'पुराख्याषी' इति पु० २ ।
५. 'न स्तो षिना०' इति पु० १, पु० २ ।
६. 'न…नोच्यते' इति त्यक्तो गो० । अत्र मैक्डानलटिप्पणी द्रष्टव्या (पृ० १८१) ।
७. आश्व० श्रौ० ४।१५।१॥

अग्निः[1] । अत्रिर्नाम भौमः । भौमोऽत्रिरिति[2] ह्यु क्तम् । ननु पञ्चमे मण्डले-ऽनुक्तगोत्रत्वाद्[3] आत्रेयत्वं यदि हि स्याद् भौमोऽत्रिरिति सूत्रमनर्थकं स्यात् । तद्धि पञ्चमे मण्डलेऽत्रेरात्रेयत्वं मण्डलान्तर आङ्गिरसत्वं च मा भूदित्येवमर्थम् । मण्डला-न्तरस्यात्रेर्भौमत्वार्थं तच्चेदत्र वचनमसंगतम्[4] । परिभाषात्वेन तत्रैव भौमत्वं वाच्य-मित्यत्राप्यत्रेर्भौमत्वं[5] भविष्यतीत्येतच्च नास्ति । तत्रोक्तावप्यत्रेः क्वचित् कथंचिद्[6] इति भौमत्वमन्यत्र स्यादेव । किं च न ह्यत्रिरात्रेयोऽव्यपत्यं भवति विरोधान्न च द्वावत्री स्तो[7]ऽन्यायश्चानेकार्थत्वमिति[8] । तर्हि सर्वत्रात्रेर्भौमत्वमेवेति । ननु भौमोऽत्रि-रिति सूत्रमकृत्वा सर्वास्वत्रिमिति[9] केचिदित्यत्र भौममित्युक्त्वा क्वचित् कथंचिद्[6] इत्यादिना सर्वत्रात्रेर्भौमत्वं साध्यम् । एवं चैकम्[10] अत्रिग्रहणं न कार्यं स्यात् । सत्यम् । तथा तु न कृतम् । किं कुर्मो वयम् । अत्रिः । त्रिष्टुप् । अश्विनौ । सूत्र्यते हि—आ भात्यग्निरित्यारभ्य तदु त्रैष्टुभमिति[11] ॥१४॥

[७७] प्रातर्यावाणा । १५॥

पञ्च । प्रथमा । अत्रिः । त्रिष्टुप् । अश्विनौ[12] ॥१५॥

[७८] आश्विनौ नव सप्तवध्रिस्त्र्युष्णिगगादि चतुर्थी त्रिष्टुप् पश्चानुष्टुभोऽन्त्याः पञ्च गर्भस्राविण्युपनिषत् ॥१६॥

एह । सप्तवध्रिर्नामात्रेयः । आदौ तिस्र उष्णिहः । चतुर्थी त्रिष्टुप् । [13]अथा-न्त्याः पञ्चानुष्टुभः । विजिहीष्वेत्याद्याः । ता एव गर्भस्राविण्युपनिषच्च । पञ्चर्च-समुदायोपदेष्टत्वाद्[14] वेदाः[15] प्रमाणमितिवदेकत्वम् । एतासां हि जपात् सुखप्रसवो भवति । अथानुष्टुभो गर्भस्राविण्युपनिषदिति सिद्धे पञ्चान्त्या इति शक्यमकर्तुम्[16] । अश्विदेवत्यम्[13] । इहापक्रामन्तु गर्भिण्य इत्युक्त्वा पञ्चैता अधीयते श्रवणमात्रेण किल

---

१. 'अग्निः' इति नास्ति मै० । २. का० सर्वा० २४।६॥
३. '०गोत्रम्' इति पु० १, पु० २ ।
४. 'वचनसगतार्थं' इति पु० १ । 'वचनं संगतार्थं' इति पु० २ । '०संगतार्थं' इति गो० ।
५. '०त्यत्रेयाक्तेरत्रा०' इति पु० १ । '०त्यत्रोक्तेरत्रा०' इति पु० २ ।
६. का० सर्वा० परि० २।३॥
७. 'नाङ्स्योऽत्रिः' (का० सर्वा० ६४।१) इति दर्शनादिदं न युक्तमिति मैक्डानलः ।
८. '०र्थ इति' इति पु० २ । ९. '०त्रि' इति पु० १, गो० ।
१०. 'चैवम्' इति पु० १ । ११. आश्व० श्रौ० ४।१५।२॥
१२. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० । १३. 'एह···अथ' 'अ त्यम्' इति नास्ति मै० ।
१४. '०दायस्योप' इति पु० १, पु० २, गो० । १५. 'वेधा' इति पु० १, पु० २ ॥
१६. 'सकृति दावयमक्षतु' इति पु० १ । 'सकृति वाक्यमकतु' इति पु० २ ।

गर्भध्वंसं मन्यमानाः । न चैतत् सुष्ठु । न ह्येताः श्रवणमात्रेण गर्भिणीर्बाधन्ते, किन्त्वेतदनुमन्त्रितजलपानेन[1] सुखप्रसवकारिणः प्रसववेदनानाम्[2]। उक्तं ह्यृग्विधाने—

वि जिहीष्व वनस्पते तदिदं च्यावनं[3] स्मृतम् ।
यं च्यावयितुकामः[4] स्यात् च्यावयेत्[5] तमिदं[6] जपन्[7] ।।१।।
द्विषन्तं वा पदाक्रम्य[8] भूमौ पांशुमयीं कृतिम्[9] ।
निष्पेक्ष्यन्निव[10] संग्रामाच्च्यवते[11] नात्र संशयः[12] ।।२।।
स्त्रियं गर्भप्रमूढां वा पाययेदनुमन्त्रितम् ।
उदकं च्यावनेनैव[13] गर्भः प्रच्यवते[14] सुखम्[15] ।।३।।[16] इति ।

किं च ।[17] यत्र हि श्रवणं नेच्छति तत्र ब्रवीति । यथा न वसिष्ठाः शृण्वन्तीति[18] । न चैवमत्रोक्तं न हि गर्भिण्यः शृण्वन्तीति । अत्र च गर्भस्राविण्युक्तेरुपांशुत्वमिच्छतः प्रजापते न त्वद्[19] इत्येतस्याः क्रियमाणमुपांशुत्वं न घटते । तद् उपनिषदुक्तेरुपांशुत्वं चेद् उद्यन्[20]—तृचस्यात्मोपनिषत्[21] संहितोपनिषदात्मकस्याप्युपांशुत्वं स्यात् । एतेन प्र मन्दिन[22] इत्येषा व्याख्याता ।।१६।।

---

१. '०पायसेन' इति पु० १ । 'प्राशनेन' इति पु० २ ।
२. '०दनां' इति पु० १ । '०दिनां' इति पु० २ । '०दनामुत्पत्ते.' इति गो० ।
३. 'ख्यापनं' इति पु० १, पु० २, गो० । ४. 'यः ख्याप०' इति पु० २, गो० ।
५. 'ख्यापयेत्' इति पु० २, गो० । ६. 'तदिदं' इति पु० २, गो० ।
७. 'जपेत्' इति पु० २, गो० । ८. 'चापदं क्रम्यं' इति पु० २ ।
९. '०मधिकृतम्' इति पु० २ । '०मयीकृतम्' इति पु० १, गो० । श्लोकार्धं त्यक्तं पु० १ ।
१०. 'निष्पीड्यन्निव' इत्यृग्विधाने । 'निष्पेषन्निव' इति पु० १ । 'निधेष्पेदनिच' इति पु० २ । 'निःशेषं निव' इति गो० ।
११. 'संग्रामान्मुच्यते' इति पु० १, गो० । 'संग्रामान्मुत' इति पु० २ ।
१२. 'नामा प्रशंसयः' इति पु० २ ।
१३. 'चवने०' इति पु० १ । 'वचने०' इति पु० २, गो० ।
१४. 'गर्भोऽधश्च०' इत्यृग्विधाने । १५. 'स्वय सुखम्' पु० १, पु० २ ।
१६. ऋग्विधान २।८७-९०।। १७. 'किं च' नास्ति पु० १, पु० २ ।
१८. का० सर्वा० १९।१४।। १९. ऋ० १०।१२१।१०।।
२०. ऋ० १।५०।११-१३।।
२१. '०चस्यात्मो०' इति पु० १ । '०चस्यांत्योर्धो०' इति पु० २ ।
२२. ऋ० १।१०१।१।।

[७९] महे दश सत्यश्रवा उषस्यं तु पाङ्क्तम् ॥१७॥

नः । सत्यश्रवा नामात्रेयः । दशापि पङ्क्तयः । उषोदेवत्यमिदमुत्तरं च सूक्तम्[1] ॥१७॥

[८०] द्युतद्यामानं षट् ॥१८॥

बृहतीम् । सत्यश्रवाः । त्रिष्टुप् । उषाः[1] ॥१८॥

[८१] युञ्जते पञ्च श्यावाश्वः सावित्रं तु जागतम् ॥१९॥

मनः । श्यावाश्वो नामात्रेयः । पञ्चापि जगत्यः । सवितृदेवत्यमिदमुत्तरं च[1] ॥१९॥

[८२] तत्सवितुर्नव गायत्रमाद्यानुष्टुप् ॥२०॥

वृणीमहे । प्रथमानुष्टुप् । शिष्टा अष्टौ गायत्र्यः । श्यावाश्वः । सविता[1] ॥२०॥

[८३] अच्छ दशात्रिः पार्जन्यमुपाद्यास्तिस्रो जगत्य उपान्त्यानुष्टुप् ॥२१॥

वद । अत्रिर्भौम इत्युक्तम् । यत् पर्जन्येत्येषा नवम्यनुष्टुप् । वि वृक्षानित्यादिद्वितीयाद्यास्तिस्रो जगत्यः । शिष्टाः षट् त्रिष्टुभः । पर्जन्यदेवत्यम्[1] ॥२१॥

[८४] बळित्था तृचं पार्थिवमानुष्टुभम् ॥२२॥

पर्वतानाम् । आनुष्टुभं तृचं सूक्तम् । पृथिवीदेवत्यं त्विदम् । भौमोऽत्रिः[1] ॥२२॥

[८५] प्र सम्राजेऽष्टौ वारुणम् ॥२३॥

बृहत् । अत्रिः । त्रिष्टुप् । वरुणः[1] ॥२३॥

[८६] इन्द्राग्नी षड् ऐन्द्राग्नमानुष्टुभं विराट् पूर्वान्तम् ॥२४॥

यम् । इन्द्राग्निदेवत्यम् । पञ्चानुष्टुभः । षष्ठी विराट्पूर्वा । आद्यौ दशकावष्टकास्त्रय[2] इत्यर्थः । भौमोऽत्रिः[1] ॥२४॥

[८७] प्र वो नवैवयामरुन्मारुतमतिजागतम् ॥२५॥

महे । एवयामरुन्नामात्रेयः । मरुद्देवत्यम्[3] । अतिजागतम् । अतिजगतीछन्दस्कम् । अण्युत्तरवृद्धिश्छान्दसी ॥२५॥

॥ इति पञ्चमं मण्डलं समाप्तम् ॥

१. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।
२. का० सर्वा० परि० ६।११॥
३. 'महे ''देवत्यम्' इति नास्ति मै० ।

[अथ षष्ठं मण्डलम्]

बार्हस्पत्यो भरद्वाजः षष्ठं मण्डलमपश्यत् ।।२६।।

भरद्वाजः ।[1] अपवादानुक्तावयमेवर्षिः । षष्ठे मण्डले वा विशिष्टत्वं[2] चास्य न बाधकमित्यर्थः ।।२६।।

[१] त्वं ह्यग्ने सप्तोना ।।२७।।

प्रथमः । त्रयोदश । भरद्वाजः । त्रिष्टुप् । अग्निः[3] । पिबा सोममभीयात्[4] प्राङ् मण्डलादिष्वाग्नेयमैन्द्राद्[5] इत्याग्नेयत्वम् ।।२७।।

।। इत्यष्टाविंशोऽध्यायः ।।२८।।

---

[२९]

[२] त्वं ह्येकादशानुष्टुभं शक्वर्यन्तम् ।।१।।

क्षैतवत् । एकादशी शक्वरी । शिष्टा अनुष्टुभः । भरद्वाजः । अग्निः[6] ।।१।।

[३] अग्नेऽष्टौ ।।२।।

सः । भरद्वाजः । त्रिष्टुप् । अग्निः[6] ।।२।।

[४] यथा होतः ।।३।।

अष्टौ । मनुषः । भरद्वाजः । त्रिष्टुप् । अग्निः[6] ।।३।।

[५] हुवे सप्त ।।४।।

वः । भरद्वाजः । त्रिष्टुप् । अग्निः[6] ।।४।।

[६] प्र नव्यसा ।।५।।

सप्त । सहसः । भरद्वाजः । त्रिष्टुप् । अग्निः ।।५।।

[७] मूर्धानं वैश्वानरीयं हि द्विजगत्यन्तम् ।।६।।

---

१. 'भरद्वाजः' इति नास्ति पु० १, पु० २, गो० ।

२. 'अवाविशिष्टत्वं' इति पु० १, पु० २, गो० । तु०—का० सर्वा० परि० १२।२।।

३. 'प्रथमः···अग्निः' इति नास्ति मै० ।

४. ऋ० ६।१७।।

५. का० सर्वा० परि० १२।१२।।

६. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।

सप्त । दिवः[1] । वैश्वानर इत्यग्नेर्गुणः । इदमादिषु त्रिषु ह्यग्निर्वैश्वानरोऽस्ति । षष्ठीसप्तम्यौ जगत्यौ । शिष्टाः पञ्च त्रिष्टुभः । भरद्वाजः[1] ॥६॥

[८] पृक्षस्यान्त्या त्रिष्टुप् ॥७॥

सप्त । वृष्णः । भरद्वाजः । अग्निर्वैश्वानरः । षडादौ जगत्यः । सप्तमी त्रिष्टुप्[2] ॥७॥

[९] अहश्च ॥८॥

सप्त । कृष्णम् । भरद्वाजः । त्रिष्टुप् । अग्निर्वैश्वानरः[2] ॥८॥

[१०] पुरो वो द्विपदान्तम् ॥९॥

सप्त । मन्द्रम् । आदितः षट् त्रिष्टुभः । सप्तमी विद्वेषांसीति विंशिका द्विपदा विराट् । भरद्वाजः । अग्निः[2] ॥९॥

[११] यजस्व षट् ॥१०॥

होतः । भरद्वाजः । त्रिष्टुप् । अग्निः[2] ॥१०॥

[१२] मध्ये ॥११॥

षडित्येव । होता । भरद्वाजः । त्रिष्टुप् । अग्निः[2] ॥११॥

[१३] त्वद्विश्वा ॥१२॥

षट् । सुभग । भरद्वाजः । त्रिष्टुप् । अग्निः[2] ॥१२॥

[१४] अग्ना य आनुष्टुभं शक्वर्यन्तम् ॥१३॥

षट् । मर्त्यः । पञ्चादावनुष्टुभः । षष्ठी शक्वरी । भरद्वाजः । अग्निः[2] ॥१३॥

[१५] इममू ष्वेकोना वीतहव्य ऋषिर्वा जागतं प्राग् दशम्या-स्तृतीया पञ्चदश्यौ शक्वर्यौ षष्ठ्यतिशक्वर्यनुष्टुब्बृहत्या उपान्त्ये ॥१४॥

वः । एकोनविंशतिः[3] । वीतहव्यो नामाङ्गिरसोऽथर्वर्षिः प्रकृतो वा[4] भरद्वाजः । ननु वीतहव्यो वेत्येतदेवास्तु । तस्मिन् विकल्पिते माण्डलिको भरद्वाजः स्वयमेव संपत्स्यते । किमृषिरिति ? विस्पष्टार्थम् । तर्हि वाविशिष्टत्वाद् भरद्वाजस्योत्तरत्रानुवृत्तिर्न स्यात् । नैतत् । वाविशिष्टत्वं चास्य न बाधकम्[5] इति ह्युक्तम् । किं

---

१. 'सप्त । दिवः' 'षष्ठी···भरद्वाजः' इति नास्ति मै० । २. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।
३. 'वः···तिः' इति नास्ति मै० । ४. 'वा' इति नास्ति मै० ।
५. का० सर्वा० २८।२६॥ वेदार्थदीपिका . . . .

चारण्यकेऽपि पिबा सोममिति द्वे तदु भारद्वाजीयम्[1] ग्रामनन्ति[2]। ग्रादौ नव जगत्यः। तत्र तृतीया शक्वरी पञ्चदशी च। षष्ठ्यतिशक्वरी। सप्तदश्यनुष्टुप्। ग्रष्टादशी बृहती। दशम्याद्याः पञ्च षोडश्येकोनविंशी चेति सप्त त्रिष्टुभः[3]। बृहत्या उपान्त्ये इत्यावादेशे शाकल्यवलोपे[4] पूर्वत्रासिद्धम्[5] इत्याद्गुणाभावः। यथा—उभा उ नूनम्[6] इति। ग्रग्निः[7] ॥१४॥

[१६] त्वमग्नेऽष्टाचत्वारिंशद् गायत्रं वर्धमानाद्या षष्ठी च सप्तविंश्यनुष्टुप् त्रिष्टुप्पूर्वे चान्त्ये ॥१५॥

यज्ञानाम्। ग्राद्या वर्धमाना। यस्यास्तु षट्सप्तकाष्टकाः सा वर्धमाना[8]। षष्ठी च वर्धमाना[9]। सप्तविंश्यनुष्टुप्। ते ते ग्रग्न इत्यनुष्टुप्। ग्रा ते ग्रग्न[10] ग्रग्निं देवास[11] इति द्वे च। तयोः पूर्वा त्रिष्टुप्। त्रिष्टुप्पूर्वे। वीति यो देवम्[12] इति त्रिष्टुब् ययोः पूर्वा ते इत्यर्थः। साहचर्याद् उपान्त्याप्यन्त्या। शिष्टाश्चत्वारिंशद् गायत्र्यः। भरद्वाजः। ग्रग्निः[9]। मण्डलाद्यग्नेः पूर्णोऽवधिः ॥१५॥

॥ इत्येकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥

———

[३०]

[१७] पिब पञ्चोनैन्द्रं त्रैष्टुभं द्विपदान्तम् ॥१॥

सोमम्। पञ्चदश[13]। ऐन्द्रमित्याग्नेयावध्यर्थम्। पञ्चदश्यया वाजमिति द्विपदा। [14]नन्वनादेशपरिभाषया त्रिष्टुभि प्राप्तायां त्रैष्टुभग्रहणं व्यर्थमिति चेद् द्विपदान्तम् इत्युक्तेऽनादिष्टत्वेनाया वाजमिति द्विपदाया विंशतिका द्विपदा विराज[15]

---

१. '०द्वाजं। यमा०' इति पु० २।

२. तु०—ऐत० ग्रा० १।२।२।६-८॥

३. 'ग्रादौ…त्रिष्टुभः' इति नास्ति मै०।

४. ग्रष्टा० ८।३।१९॥

५. ग्रष्टा० ८।२।१॥

६. ऋ० १०।१०६।१॥

७. 'ग्रग्निः' इति नास्ति मै०।

८. का० सर्वा० परि० ४ ७॥

९. 'यज्ञा…माना' 'साह…ग्रग्निः' इति नास्ति मै०।

१०. ऋ० ६।१६।४७॥

११. ऋ० ६।१६।४८॥

१२. ऋ० ६।१६ ४६॥

१३. 'सो…दश' इति नास्ति मै०।

१४. 'नन्वनादेश…भवति' इत्यस्य स्थाने पु० १, पु० २, गो० पाठस्तु—'ग्रनादेशादेव त्रैष्टुभत्वे सिद्धे त्रैष्टुभत्वमिति। ग्रया वाजमित्यन्त्याया द्विपदाया विंशतिका द्विपदा विराज इति विंशत्यक्षरविराट्त्वं च मा भूदिति। किं तर्हि। द्वयेकादशाक्षरत्रिष्टुप्त्वं च यथा स्यादिति' इति।

१५. का० सर्वा० १२।८॥

इति विंशत्यक्षरविराट्त्वं मा भूदित्येतदर्थं त्रैष्टुभमिति । तथा चान्त्यैकादशाक्षरा त्रिष्टुब् द्विपदेति सिद्धं भवति । तर्ह्यन्त्या द्विपदा त्रिष्टुब् द्विपदान्त्या त्रिष्टुप् कस्मान्नोक्ता । शृणु । एवमुक्त्वादितश्चतुर्दश जगत्यः स्युः । त्रिष्टुवन्तस्य सूक्तस्य शिष्टा जगत्यः[1] परिभाषिताः । भरद्वाजः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः[2] ॥१॥

[१८] तमु ष्टुहि ॥२॥

पञ्चदश । यः । भरद्वाजः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः[3] ॥२॥

[१९] महान्त्सप्तोना ॥३॥

इन्द्रः । त्रयोदश । भरद्वाजः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः[3] ॥३॥

[२०] द्यौर्न वि पिप्रोर्विराट् ॥४॥

सप्तोनेत्येव । यः[4] । वि पिप्रोरहिमायस्येति दशकचतुष्टययुक्ता[5] विराट् । सप्तमी विराडित्यनुक्तिर्लाघवे विशेषाभावाद् विस्पष्टाच्च । भरद्वाजः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः[4] ॥४॥

[२१] इमा उ द्वादश नवम्येकादश्यौ वैश्वदेव्यौ ॥५॥

त्वा । नवम्येकादशी चेति द्वे वैश्वदेव्यौ । ऐन्द्रस्यापवादः । भरद्वाजः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः[3] ॥५॥

[२२] य एक एकादश ॥६॥

इत् । भरद्वाजः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः[3] ॥६॥

[२३] सुत इद् दश ॥७॥

त्वम् । भरद्वाजः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः[3] ॥७॥

[२४] वृषा ॥८॥

दश । मदः । भरद्वाजः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः[3] ॥८॥

[२५] या ते नव ॥९॥

ऊतिः । भरद्वाजः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः[3] ॥९॥

[२६] श्रुधी नोऽष्टौ ॥१०॥

इन्द्रः । भरद्वाजः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः[3] ॥१०॥

---

१. का० सर्वा० परि० १२।१३॥ २. 'भर…इन्द्रः' इति नास्ति मै० ।
३. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० । ४. 'सप्तो… यः' 'भर…इन्द्रः' इति नास्ति मै० ।
५. '०चतुष्क०' इति मै० ।

[२७] किमस्यान्त्या चायमानस्याभ्यावर्तिनो दानस्तुतिः ॥११॥

अष्टौ । मदे[1] । द्वयाँ अग्ने रथिन इत्यष्टम्यां चायमाननाम्नो युद्धेऽभिमुखग-मनात् प्राप्ताभ्यावर्तित्वगुणस्य[2] चायमानस्य राज्ञो दानं स्तौति । अभ्यावर्त्युक्तिरभ्या-वर्ती चायमानो ददातीति दर्शनात् प्रशंसार्था । भरद्वाजः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः[1] ॥११॥

[२८] आ गावो गव्यं द्वितीयन्द्री वान्त्यश्च पादोऽन्त्यानुष्टुब् जागतस्तृचो द्वितीयादिः ॥१२॥

अष्टौ । अग्मन्[3] । गव्यं गोदेवत्यम् । इन्द्रो यज्वन इति[3] द्वितीया गव्या । ऐन्द्री वा । सूक्तान्त्यः पादश्चैन्द्रः । द्वितीयाया ऋचोऽन्त्य इति सम्बन्धे कृते कृतकार-कत्वाद् वैयर्थ्यं स्यात् । उपेदमित्यन्त्यानुष्टुप् । इन्द्रो यज्वन इत्याद्यस्तृचो जागतः । शिष्टाश्चतस्रस्त्रिष्टुभः । भरद्वाजः[3] ॥१२॥

॥ इति त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥

---

[३१]

[२९] इन्द्रं षट् ॥१॥

वः । भरद्वाजः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः[4] ॥१॥

[३०] भूयः पञ्च ॥२॥

इत् । भरद्वाजः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः[4] ॥२॥

[३१] अभूरेकः सुहोत्रस्तु चतुर्थी शक्वरी ॥३॥

पञ्च । रयिपते ।[5] सुहोत्रो नाम भारद्वाजोऽयम् । कुत एतत् ? वक्ष्यति हि— सुहोत्रादयोऽनुक्तगोत्रा भारद्वाजा[6] इति । इदमुत्तरं च द्वे सूक्ते अपश्यत् । चतुर्थी शक्वरी[5] । सत्यपि लाघवे शक्वर्युपान्त्येत्यनुवतौ प्रयोजनं चिन्त्यम् । शिष्टाश्चत-स्रस्त्रिष्टुभः । इन्द्रः[5] ॥३॥

---

१. 'अष्टौ' मदे' 'भर ··इन्द्रः' इति नास्ति मै० ।

२. 'प्राप्तास्याम०' इति पु० १, पु० २ । 'प्राप्तावभ्या०' इति गो० ।

३. 'अष्टौ । अग्मन्' 'इन्द्रो···इति' 'उपे···भरद्वाजः' इति नास्ति मै० ।

४. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।

५. 'पञ्च···पते' 'इदमु···वरी' 'शिष्टा···इन्द्रः' इति नास्ति मै० ।

६. का० सर्वा० ३२।६॥

[३२] अपूर्व्या ॥४॥

पञ्च। पुरुतमानि। सुहोत्रः। त्रिष्टुप्। इन्द्रः[१] ॥४॥

[३३] य ओजिष्ठः शुनहोत्रस्तु ॥५॥

पञ्च। इन्द्रः। शुनहोत्रो नाम भारद्वाज इदमुत्तरं चापश्यत्। त्रिष्टुप्। इन्द्रः[१] ॥५॥

[३४] सं च त्वे ॥६॥

पञ्च। जग्मुः। शुनहोत्रः। त्रिष्टुप्। इन्द्रः[१] ॥६॥

[३५] कदा नरस्तु ॥७॥

पञ्च। भुवन्। नरो नाम भारद्वाज इदमुत्तरं चापश्यत्। त्रिष्टुप्। इन्द्रः[१]॥७॥

[३६] सत्रा ॥८॥

पञ्च। मदासः। नरः। त्रिष्टुप्। इन्द्रः[१] ॥८॥

[३७] अवाक् ॥९॥

पञ्च। रथम्। भरद्वाजः। त्रिष्टुप्। इन्द्रः[१] ॥९॥

[३८] अपात् ॥१०॥

पञ्च। इतः। भरद्वाजः। त्रिष्टुप्। इन्द्रः[१] ॥१०॥

[३९] मन्द्रस्य ॥११॥

पञ्च। कवेः। भरद्वाजः। त्रिष्टुप्। इन्द्रः[१] ॥११॥

[४०] इन्द्र पिब ॥१२॥

पञ्च। तुभ्यम्। भरद्वाजः। त्रिष्टुप्। इन्द्रः[१] ॥१२॥

[४१] अहेळमानः ॥१३॥

पञ्च। उप। भरद्वाजः। त्रिष्टुप्। इन्द्रः[१] ॥१३॥

[४२] प्रत्यस्मै चतुष्कमानुष्टुभं बृहत्यन्तम् ॥१४॥

पिपीषते। आदितस्तिस्रोऽनुष्टुभः। चतुर्थी बृहती। भरद्वाजः। इन्द्रः ॥१४॥

[४३] यस्यौष्णिहम् ॥१५॥

---

१. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै०।

चतुष्कम् । त्यत् । भरद्वाजः । उष्णिक् । इन्द्रः[1] ।।१५।।

[४४] यो रयिवश्चतुर्विंशतिः शंयुर्बार्हस्पत्य आदौ षळनुष्टुभ-स्तिस्रश्च विराजो मध्यमैव वासाम् ।।१६।।

रयितमः । बृहस्पतेः पुत्रः शंयुर्नामेदमादीनि त्रीणि सूक्तान्यपश्यत् । उक्तगोत्रत्वान्नायं भारद्वाजः । आदौ षडनुष्टुभः[2] । तिस्रश्च विराजः । अथ तिस्रो विराजः । अथार्थे चेति । आसां तिसृणां मध्यमैव वा[3] सूक्तस्याष्टम्यृतस्य पथीत्येषैव वा[3] विराट् । न सप्तमीनवम्यौ । ते त्रिष्टुभावेव । शिष्टाः पञ्चदश त्रिष्टुभ[4] इत्यर्थः । इन्द्रः[2] ।।१६।।

[४५] य आनयत् त्रयस्त्रिंशद् गायत्रं पुरूतममतिनिचृदन्त्यानुष्टुप् तृचेऽन्त्ये बृबुस्तक्षा दैवतम् ।।१७।।

परावतः[5] । पुरूतमं पुरूणां स्तोतृणाम्[6] इत्यतिनिचृत्[7] । त्रयः सप्तका पादनिचृत् । मध्यमः षट्कश्चेदतिनिचृदित्युक्तम्[8] । अन्त्या त्रयस्त्रिंशी तत् सु नो विश्व इत्येषानुष्टुप्[5] । अन्त्ये तृचेऽधि बृबुः पणीनामित्यत्र बृबुर्नाम तक्षा दैवतं देवता । अथ हि बृबुस्तक्षेन्द्रभक्तः शंयोर्बन्धुरिति श्रूयते[9] । वार्हस्पत्यः शंयुः । अन्त्यतृचवर्जमिन्द्रः[5] ।।१७।।

[४६] त्वामिद्धि षळूना प्रागाथम् ।।१८।।

हवामहे । चतुर्दश । बार्हतेन प्रगाथेन व्याप्तम् । बृहतीसतोबृहत्यौ[10] । शंयुर्बार्हस्पत्यः । इन्द्रः[1] ।।१८।।

[४७] स्वादुरेकत्रिंशद् गर्गः पञ्चादौ सौम्योऽगव्यूत्यर्धर्चो लिङ्गोक्तदेवतः प्रस्तोक इति त्रिष्टुबनुष्टुब्गायत्री द्विपदा साञ्जयस्य प्रस्तोकस्य दानस्तुतिः परौ तृचौ रथदुन्दुभिदेवत्यावैन्द्रोऽन्त्यो-

---

१. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० । २. 'रयि...नुष्टुभ' 'इन्द्रः' इति नास्ति मै० ।

३. 'वा' इति नास्ति मै० ।

४. सायणस्त्वेतत्सूक्तोत्थानिकायाम्—'आदितः षडनुष्टुभः सप्तम्यष्टमीनवम्यो विराजोऽष्टम्येकैव वा विराट् शिष्टास्त्रिष्टुभः'—इत्याह ।

५. 'परावतः' 'त्रयः...अनुष्टुप्' 'बार्ह.. इन्द्रः' इति नास्ति मै० ।

६. ऋ० ६।४५।२९।। ७. 'पुरूणामिति सप्तकषट्कसप्तकवती' इति पु०१,पु०२,गो० ।

८. का० सर्वा० परि० ४।४-५।। ९. 'स्तूयते' इति गो० । द्र०— बृ० दे० ५।१०८।

१०. तु०—का० सर्वा० परि० ११।२।।

ऽर्धर्चौ युजानो बृहती त्रिष्टुम्महि द्विपदा दिवस्पृथिव्या जगती ॥१९॥

॑केलायम् । गर्गोनाम भारद्वाजः । आदौ पञ्चर्चः सोमदेवत्याः । अगव्यूति क्षेत्र-मागन्नेत्यर्धर्चौ[1] लिङ्गोक्तदेवतः । देवान् भूमिं च स्तौतीत्यर्थः । उक्तं हि बृहद्देवतायाम्—

अगव्यूति स्तौति देवान् पादो भूमिमथोत्तरः[2] ॥ इति ।

लिङ्गोक्तदेवतवचनं लाघवाय । अगव्यूतीत्यर्धर्चे पादौ देवभूमिदेवत्याविति हि गुरु स्यात् । अगव्यूत्यर्धर्चो देवभौम[3] इत्युक्तावपि पादद्वयस्यापि द्विदेवत्यत्वं स्यात् । तर्ह्यर्धर्च[4] इत्यकृत्वागव्यूतिपादौ देवभौमावित्यस्तु[5] । अत्रापि पूर्वोक्त एव दोषो यथा-संख्यमिति नियमाभावात् । तत्रैन्द्री मारुती त्वाष्ट्रीत्यादित[6] उक्तेरेव क्रमसिद्धिरिति चेद्, विस्पष्टार्थम् । प्रस्ताक इत्नु राधसस्त इन्द्रेति[7] त्रिष्टुप् । अनुवादोऽयम् । न त्वनु-ष्टुबादिवद् विधिरनुक्तसिद्धेः । असत्यस्मिन् प्रस्तोक इत्यस्या अनुष्टुप्त्वमित्यादिदोषः[8] स्यात् । दशाश्वान्[9] इत्यनुष्टुबित्याद्युक्तौ दानस्तुत्यादि प्रस्तोक इति नोक्तं स्यात् । ततो दशाश्वानि त्यनुष्टुप् । दश रथान् प्रष्टिमत[10] इति गायत्री । महि राध[11] इति द्विपदा द्व्येकादशिका । कुतः ? वक्ष्यति हि त्रिष्टुब् द्विपदेति । इति शब्द आद्यर्थः । प्रस्तोक इत्न्वित्याद्युक्तच्छन्दस्कश्चतुर्ऋचः[12] सृञ्जयपुत्रस्य प्रस्तोकनाम्नो राज्ञो दान-स्तुतिः । परौ तृचौ वनस्पते वीड्वङ्ग[13] उप श्वासय पृथिवीम्[14] इति यथाक्रमं रथ-दुन्दुभिदेवत्यौ । श्रूयते हि—वनस्पते वीड्वङ्गो हि भूया इत्यस्य रथोपस्थमभिमृशे-दिति[15] । गृह्ये सूत्र्यते—उप श्वासय पृथिवीमुत द्यामिति तृचेन दुन्दुभिमभिमृशे-दिति[16] । समश्वपर्णाश्चरन्तीति[17] दुन्दुभितृचस्यान्त्योऽर्धर्च इन्द्रदेवत्यः । ऐन्द्र इति दौन्दुभत्वापवाद[18] । युजानो हरिता रथ[19] इति बृहती । त्रिष्टुब्द्विपदा पूर्वमुक्ता महि

---

१. ऋ० ६।४७।२०॥ २. बृ० दे० ५।१११॥

३. 'देवभूमीत्यु०' इति पु० २। 'देवभूमिरित्यु०' इति पु०२ । 'देवभूमि इत्यु०' इति गो०।

४. 'तर्हि' इति नास्ति मै० गो० । ५. 'देवभूमा०' इति कोशेषु ।

६. का० सर्वा० १।२०॥ ७. ऋ० ६।४७।२२॥

८. '०शेषः' इति पु० १, पु० २ । ९. ऋ० ६।४७।२३॥

१०. ऋ० ६।४७।२४॥ ११. ऋ० ६।४७।२५॥

१२. '०छन्दसः चतुर्ऋचः' इति पु० १ । '०क्तं छन्दसः चतुर्ऋचं' इति पु० २ ।

१३. ऋ० ६।४७।२६॥ १४. ऋ० ६।४७।२९॥

१५. ऐत० ब्रा० ८।१०।२॥ तु०—अश्व० गृह्य० २।६।५,७॥

१६. आश्व० गृह्य० २।१२।१७॥ १७ ऋ० ६।४७।३१॥

१८. 'ऐन्द्र···वादः' इति नास्ति मै०। १९. ऋ० ६।४७।१९॥

राव इति द्विपदा त्रिष्टुब् द्व्येकादशका न तु विंशतिका द्विपदा विराज[1] इति विंशत्यक्षरा विराट्। तर्हि तत्रैव द्विपदा त्रिष्टुप् त्रिष्टुब् द्विपदेति वास्तु। नैतत्। त्रिष्टुब् द्विपदेत्युक्तौ महि राध इत्यस्यास्त्रिष्टुप्त्वं वनस्पत इतस्या द्विपदात्वं पञ्चानां दानस्तुतित्वं च स्यात्। द्विपदा त्रिष्टुबित्युक्तौ वनस्पत इत्यस्यास्त्रिष्टुभः प्रस्तोकस्य दानस्तुतित्वं च स्यात्। नैष दोषः। प्रस्तोकादिपञ्चचस्य दानस्तुतित्वे परौ तृचावित्युक्तिर्नोपपद्यते। दानस्तुतिपञ्चर्चात् परस्य तृचद्वयस्य[2] सूक्तेऽभावात्। अतो वनस्पत इत्यस्या न दानस्तुतित्वं नाप्यस्या द्विपदात्वं स्वरूपादेव। न हि चतुश्चत्वारिंशदक्षरा चतुष्पदा द्विपदा भवति। तत् किं त्रिष्टुब् द्विपदेति पृथगुक्तम्? सत्यम्—

पृच्छ कात्यायनं येन द्विः कृतं द्विपदेति ह।
वयं हि प्रतिपत्तारो न कर्तारोऽस्य चाञ्जसा ।।

एकत्र त्रिष्टुब्द्विपदाशब्दयोः पृथगर्थत्वावबोधापनोदार्थमिति ब्रूमः। दिवस्पृथिव्या इत्येषा जगती। सप्तविंशीत्यनुक्तिः प्रतिपत्तिलाघवाय। शिष्टास्त्रिष्टुभः। अनुक्तदेवता त्विन्द्रः[3] ।।१६।।

।। इत्येकत्रिंशोऽध्यायः ।।३१।।

---

[३२]

[४८] यज्ञायज्ञा द्व्यधिका शंयुस्तृणपाणिकं[4] पृश्निसूक्तं प्रगाथौ बृहती महासतोबृहती महाबार्हतबार्हतौ प्रगाथावित्याग्नेय्यः काकुभः प्रगाथः पुरउष्णिग् बृहत्यतिजगतीति मारुत्योऽन्त्यास्तिस्रो वासां लिङ्गोक्तदेवताः काकुभः प्रगाथः पुरउष्णिग् बृहतीति पौष्ण्यो बृहती महाबृहती यवमध्यान्त्यानुष्टुम्मारुत्योऽन्त्या द्यावाभूम्योर्वा पृश्नेर्वा ।।१।।

वः। द्वाविंशतिः। शंयुर्नाम बार्हस्पत्य इत्युक्तम्[3]। यदत्र तृणपाणित्वे वाच्यं तस्य तत् पूर्वमीरितम्[4]। प्र ये वसुभ्य[5] इत्यस्यास्तृणपाणित्वं वर्तते। पृश्निसूक्तं पृश्निदेवत्यम्। पृश्निर्नाम मरुतां माता। सा देवता। प्रगाथौ। बार्हतप्रगाथद्वयमादित इत्यर्थः। बृहतीसतोबृहत्यौ बार्हतः[6]। प्रगाथाश्चात्र बार्हताः। अथ पञ्चमी बृहती।

---

१. का० सर्वा० परि०, १२।८।। २. 'षड्चस्य परस्य' इति पु० १, पु० २।
३. 'शिष्टा...इन्द्रः' 'वः...उक्तम्' इति नास्ति मै०।
४. द्र०—का० सर्वा० २७।३ वेदार्थदीपिका।
५. ऋ० ५।४६।५।।
६. का० सर्वा० परि० ११;२।।

तृतीयो द्वादशकोऽष्टकाश्च[1]। षष्ठी महासतोबृहती। अष्टका द्विर्द्वादशकाः[2]। महावार्हतवार्हतौ प्रगाथौ। सप्तमी महाबृहती। चत्वारोऽष्टका जागतश्च महाबृहती[3]। अष्टमी महासतोबृहती। अष्टिनस्त्रयः स्वौ च द्वौ महासतोबृहती[2]। नवमी बृहती। दशमी सतोबृहती। अयुजौ जागतौ सतोबृहती[4]। दश। इत्याग्नेय्यः। इत्युक्तछन्दस्का दशाग्निदेवत्याः। न पृश्निदेवत्याः। अथ काकुभः प्रगाथः। एकादशी ककुप्। अष्टकयोर्द्वादशको मध्यमश्चेत् ककुप्[5] इत्युक्तम्। द्वादशी सतोबृहती। ककुप् चेत् पूर्वा काकुभो हि सः। प्रगाथोक्तौ वार्हतत्वं मा भूदिति काकुभ इति विशेषणम्। अथ त्रयोदशी पुरउष्णिक्। आद्यो द्वादशकाऽष्टकौ द्वौ[6]। चतुर्दशी बृहती। पञ्चदश्यतिजगती। इति मारुत्यः। इत्युक्तछन्दस्का पञ्च मरुद्देवत्याः। अन्त्यास्तिस्रो वासां लिङ्गोक्तदेवताः। आसामुक्तछन्दोदेवतानामेकादश्यादीनामन्त्यास्त्रयोदश्याद्यास्तिस्रोऽपि पक्षे लिङ्गोक्तदेवता मारुत्यो वा। मारुतीत्वापवादो हि लिङ्गोक्तवचनम्[7] आसामिति सूक्तान्त्यनिवृत्त्यर्थम्। अथ काकुभः प्रगाथः। षोडशी ककुप्। सप्तदशी सतोबृहती[7]। अत्र पूर्वत्र च प्रगाथ इति शक्यमकर्तुम्, काकुभ इत्येव प्रगाथप्रतीतेः। अष्टादशी पुरउष्णिक्। एकोनविंशी बृहती। इति पौष्ण्यः। षोडश्याद्याश्चतस्रः पूषदेवत्याः[7]। अत्र त्रयोऽपीतिकरणाः समाप्त्यर्थाः। दश पञ्च चतस्र इति वाच्यत्वार्थाः। विंशी बृहती। एकविंशी महाबृहती यवमध्या। अष्टकौ द्वौ द्वादशक एको द्वावष्टकावियं महाबृहती[8]। महाबृहतीविशेषणं दशकश्चेद् यवमध्येति[9] गायत्रो यवमध्या सा मा भूदिति[7]। अथान्त्या द्वाविंश्यनुष्टुप् सती[10] द्यावाभूम्योर्वा पृश्नेर्वा स्तुतिः। पृश्नेर्वा बृहती महाबृहती यवमध्या[11]। ननु चादौ पृश्निसूक्तमित्युक्त्वा बृहती महाबृहती यवमध्यानुष्टुबिति पृश्नेरन्त्या[12] द्यावाभूम्योर्वेति कस्मान्नोक्तं लाघवाय[13]? विशेषाभावात्। किं च। अनुक्रमण्यन्तरानुकरणार्थं च।।१।।

[४६] स्तुषे पञ्चोन ऋजिश्वा ह वैश्वदेवं ह शक्वर्यन्तम् ।।२।।

---

१. तु०—का० सर्वा० परि० ७।१।।
२. तु०—का० सर्वा० १०।२।।
३. का० सर्वा० परि० ६।६।।
४. का० सर्वा० परि० ८।४।।
५. का० सर्वा० परि० ५।२।।
६. तु०—का० सर्वा० परि० ५।२।।
७. 'प्रगाथौ वचनम्' 'षोडशी...बृहती' 'अष्टा.. देवत्याः' 'विंशी...भूदिति' इति नास्ति मै०।
८ तु०—का० सर्वा० परि० ६।६-१०।।
६. का० सर्वा० परि० ४।६।।
१०. 'सा' इति पु० १, पु० २, गो०।
११. '०मध्यावत्' इति पु० १, पु० २, गो०।
१२. 'पृश्नेत्या' इति पु० १। 'पृश्नेवाद्या०' इति पु० २।
१३. 'लाघवं' इति पु० १, पु० २।

जनम् । पञ्चदश[1] । पञ्चोन ऋजिश्वा हेति । ऋत्यक[2] इति ह्रस्वप्रकृतिभावौ । ऋजिश्वा ह । ऋजिश्वनाम भारद्वाज इदमपश्यद् उत्तराणि च त्रीणि । वैश्वदेवमुत्तराणि च त्रीणि । आदितश्चतुर्दश त्रिष्टुभः । पञ्चदशी शक्वरी[1] ॥२॥

[५०] हुवे वः ॥३॥

पञ्चोना । देवीम् । ऋजिश्वा । त्रिष्टुप् । विश्वेदेवाः[3] ॥३॥

[५१] उदु त्यत् षोळश त्र्युष्णिगनुष्टुबन्तम् ॥४॥

चक्षुः[1] । त्र्युष्णिगनुष्टुबन्तमिति कर्मधारयद्वन्द्वबहुव्रीहिः । तिस्र उष्णिह एकानुष्टुबन्ते[4] यस्येति विग्रहः । आद्या द्वादश त्रिष्टुभः । त्रयोदश्याद्यास्तिस्र उष्णिहः । षोडश्यनुष्टुप् । ऋजिश्वा । विश्वेदेवाः[1] ॥४॥

[५२] न तत् त्र्यूना सप्तम्याद्याः षड् गायत्र्यश्चतुर्दशी जगती ॥५॥

दिवा । सप्तदश । आदितः षट् त्रिष्टुभः । सप्तम्याद्याः षड् गायत्र्यः । त्रयोदशी त्रिष्टुप् । चतुर्दशी जगती । अथ तिस्रस्त्रिष्टुभः[1] । ऋजिश्वा । विश्वे देवाः । अस्यैषां च पूर्णोऽवधिः ॥५॥

अथाभूरेकः सुहोत्रस्तु[5] इत्याद्येवमन्तोक्तानां[6] सुहोत्रादीनामनुक्तगोत्राणां गोत्रा विशेषमाह—

सुहोत्रादयोऽनुक्तगोत्रा भारद्वाजाः पौत्रा बृहस्पतेर्दौःषन्तेर्वा भरतस्य ॥६॥

सुहोत्रशुनहोत्रनरगर्गऋजिश्वान इत्येते सुहोत्रादयः । अनुक्तगोत्रा इति शंयोर्बार्हस्पत्योक्तगोत्रस्य[7] भारद्वाजनिवृत्त्यर्थम् । भारद्वाजा भरद्वाजपुत्रा इत्यर्थः । विदादिभ्यो[8] बहुषु लुक् । एते च बृहस्पतेः पौत्राः । दुःष्यन्तनृपपुत्रस्य भरतस्य वा पौत्राः । भारद्वाजा इत्येव गोत्रज्ञाने सिद्धे पौत्रत्वविकल्पोपदेशोऽ दृष्टार्थो रोगघ्नोपनिषदित्यादिवत् । एतत्पौत्रा एत इति ज्ञाने[9]ऽपि महदभ्युदयरूपं फलमस्तीति कथमेतान् प्रति द्वयोः पितामहत्वं विकल्पेनोपपद्यते ? द्वैमातुरा हि दृष्टा न द्विपितृकाः ।

---

१. 'जन…दश' 'ऋजि…शक्वरी' 'चक्षुः' 'आद्या…देवाः' 'दिवा…त्रिष्टुभः' इति नास्ति मै० । २. अष्टा० ६।१।१२८।। ३. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।

४. 'पूर्वति' इति पु० १, पु० २, गो० । ५. का० सर्वा० ३१।३।।

६. '०नमंतमुक्ता०' इति पु० १ । '०वेमंत उक्ता०' इति पु० २ ।

७. का० सर्वा० ३१।१६।।

८. तु०—अष्टा०४।१।१०४।। अपि च अष्टा०२।४।६५।। ९. 'ज्ञाते' इति पु०१ ।

सुहोत्रादिमहर्षीणां पौत्रत्वस्य विकल्पनात्[1] ।
इतिहासो हेतुभूतो विस्पष्टार्थं[2] प्रवर्ण्यते ॥१॥
प्रजापतेः पुत्र आसीदङ्गिरा नाम वै मुनिः ।
तस्य पुत्रास्त्रयस्त्वासस्त्रेताग्निसमतेजसः ॥२॥
उचथ्यो ज्येष्ठ इत्येव मध्यमस्तु बृहस्पतिः ।
संवर्तस्तु कनिष्ठोऽथ ज्येष्ठो गुणगणैर्भुवि ॥३॥
यः संवर्तो मत इति[3] प्रथितो भारते भृशम् ।
उचथ्यभार्या ममता[4] नाम्नासीद् वरवर्णिनी ॥४॥
उचथ्याहितगर्भात्तीं चकमेऽथ बृहस्पतिः ।
उचथ्यपुत्रो ममतागर्भस्थोऽब्रवीचदुत्तरम् ॥५॥
ज्येष्ठपत्नीं मातृतुल्यां मैनां गन्तुं मनः कृथाः ।
अहो कामस्य दौरात्म्यं यदि मां त्वमिहागतः ॥६॥
किं चाहमत्र प्रविष्टः क्व ते[5] गर्भो निधीयताम् ।
अमोघरेतास्त्वं चासि न द्वयोरिह सम्भवः ॥७॥
द्वितीयस्तात मा[6] मैवमकार्यं च कृथा महत् ।
इति गर्भवचः श्रुत्वा शशापैनं बृहस्पतिः ॥८॥
दीर्घं तमस्त्वं प्रविश मद्वाक्यादन्ध एव च ।
ततो दीर्घतमा नाम [7]ह्यु चथ्यतनयोऽभवत् ॥९॥
शप्त्वा गर्भं ममतया सम्बभूव बृहस्पतिः ।
ततो बृहस्पतेर्गर्भो ममतायामभूत् तथा[8] ॥१०॥
पूर्वगर्भो दीर्घतमास्तदथाच्यावयद्[9] बलात् ।
स्वमातुरुदराद् गर्भः स्वयं च निरगात् ततः ॥११॥
बृहस्पतेः स पुत्रो वै भरद्वाज इति श्रुतः ।
अत्रान्तरे तु भरतो दौःषन्तिश्चक्रवर्त्यभूत् ॥१२॥

---

१. 'विकल्पः' इति पु० १, पु० २ । 'विकल्पने' इति गो० ।
२. '०ष्टाय' इति पु० । '०ष्टार्थः' इति पु० २, गो० ।
३. 'मत्तीये' इति पु० । स्ति मर्त्तीयि' इति पु० २ । 'मरुत्त इति' इति गो० ।
४. 'महता' इति पु० २ ।
५. 'केन' इति पु० २ । '०ष्टस्तुद्युते' इति गो० ।
६. 'मे वैवम्०' इति पु० १ । 'मेत्रैवम०' इति पु० २ । 'मेनैवम०' इति गो० ।
७. 'उचथ्य०' इति पु० १, पु० २ ।
८. 'तदा' इति पु० १, पु० २, गो० ।
९. '०भ्यापवद्' इति पु० १ । '०भ्यावपद्' इति पु०, गो० ।

स पुत्रेषु मृतेष्वार्तो[1] बृहस्पत्युपदेशतः ।
दत्तपुत्रविधानेन भरद्वाजं गृहीतवान् ।।१३।।
दौःषन्तेर्भरतस्यासीद् भरद्वाज सुतस्ततः[2] ।
स्वपत्न्यां पुष्करिण्यां च पञ्च पुत्रानजीजनत् ।।१४।।
सुहोत्रं शुनहोत्रं च नरं गर्गमृजिश्वनम् ।
इति सिद्धं सुहोत्रादेः पौत्रत्वस्य विकल्पनम् ।।१५।। ।।६।।

[५३] वयं दश पौष्णं तद् गायत्रं वै यां पूषन्ननुष्टुप् ।।७।।

उ त्वा । इदमादीनि षट् सूक्तानि पूषदेवत्यानि । इदमादीनि पञ्च सूक्तानि गायत्रीछन्दस्कानि[3] । यां पूषन् ब्रह्मचोदनीमित्येषानुष्टुप् । अष्टम्यनुष्टुबित्युक्तौ ऽतिपत्तिगौरवं स्यात् । बार्हस्पत्यो भरद्वाजः[3] ।।७।।

[५४] सं पूषन् ।।८।।

दश । विदुषा । भरद्वाजः । गायत्री । पूषा[4] ।।८।।

[५५] एहि वां षट् ।।९।।

विमुचः । भरद्वाजः । गायत्री । पूषा[4] ।।९।।

[५६] य एनमन्त्यानुष्टुप् ।।१०।।

षट् । आदिदेशति । आदौ पञ्च गायत्र्यः । षष्ठ्यनुष्टुप् । भरद्वाजः । पूषा[4] ।।१०।।

[५७] इन्द्रा न्विन्द्रं च ।।११।।

षट् । पूषणा । ऐन्द्रम् । चकारात् पौष्णं च । इन्द्रापूषदेवत्यमित्यर्थः । भरद्वाजः । गायत्री[4] ।।११।।

[५८] शुक्रं चतुष्कं द्वितीया जगती ।।१२।।

ते । आद्यातृतीयाचतुर्थ्यस्त्रिष्टुभः । द्वितीया जगती । भरद्वाजः । पूषा[4] ।।१२।।

[५९] प्र नु दशैन्द्राग्नं तु बार्हतं चतुरनुष्टुबन्तम् ।।१३।।

वोचा । इन्द्राग्निदेवत्यमिदमुत्तरं च । आदितः षड् बृहत्यः । अन्त्याश्चतस्रोऽनुष्टुभः । भरद्वाजः[4] ।।१३।।

---

१. 'पुत्रे य मृते त्व०' इति पु० २ ।
२. 'सुतस्तुतः' इति पु० १ । 'ततः सुतः' इति गो० ।
३. 'उ…कानि' 'बार्ह…द्वाजः' इति नास्ति मै० ।
४. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।

[६०] श्नथत् पश्चोना गायत्रं तु त्रित्रिष्टुबादि त्रिष्टुब्बृहत्यनुष्टुबन्तम् ॥१४॥

वृत्रम् । पञ्चदश । गायत्रमिदमुत्तरं च । आदौ तिस्रस्त्रिष्टुभः । त्रयोदश्यपि त्रिष्टुप् । चतुर्दशी बृहती । पञ्चदश्यनुष्टुप् । मध्ये नव गायत्र्यः । त्रित्रिष्टुबादीति त्रिष्टुब्बृहत्यनुष्टुबन्तमिति च गायत्रत्वापवादः । भरद्वाजः । इन्द्राग्नी[1] ॥१४॥

[६१] इयं षळूना सारस्वतं त्रिजगत्यादि जगतीत्रिष्टुबन्तम् ॥१५॥

अददात् चतुर्दश[2] । सारस्वतं सरस्वतीदेवत्यं सरस्वतीमा विवासेमेति[3] लिङ्गात् । आदौ तिस्रो जगत्यः । त्रयोदश्यपि जगती । चतुर्दशी त्रिष्टुप् । चतुर्थ्याद्या नव गायत्र्यः । त्रिजगत्यादि जगतीत्रिष्टुबन्तमिति च गायत्रत्वापवादः । बार्हस्पत्यो भरद्वाजः[2] ॥१५॥

॥ इति द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥३२॥

---

[३३]

[६२] स्तुष एकादशाश्विनं तु ॥१॥

नरा । अश्विदेवत्यमिदमुत्तरं च । बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । त्रिष्टुप्[1] ॥१॥

[६३] क्व त्यैकपदान्तं त्रैष्टुभम् ॥२॥

एकादश । वल्गू[2] । सांहितिकः कम्पो नैकश्रुत्य इति क्व १ त्येति नोक्तम् । न ह्यन्यं[4] व्युषा आव[5] इति च सूत्रे यथा । आ वां सुम्न इत्येकादशी त्रिष्टुबेकपदा । कुतः ? त्रैष्टुभमित्युक्तेः । तद्धि[6] तदर्धमेकपदेति[7] दशाक्षरविराट्त्वं[8] मा भूदिति । सूक्तं[9] ह्यनुक्तेरेव त्रैष्टुभं भविष्यति । भरद्वाजः । अश्विनौ[2] ॥२॥

[६४] उदु श्रिये षड् उषस्यं तु ॥३॥

उषसः । उषोदेवत्यमिदमुत्तरं च । भरद्वाजः । त्रिष्टुप्[1] ॥३॥

---

१. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।

२. 'अद…दश' 'आदौ …भरद्वाजः' 'एका…वल्गू' 'भर…नौ' इति नास्ति मै० ।

३. ऋ० ६।६१।२॥

४. 'न ह्यष्टौ' इति पु० १, पु० २ । 'न ह्यन्यं बळाकरमित्यष्टौ' इति गो० । द्र०—का० सर्वा० ४५।१३॥ ५. तु०—का० सर्वा० ३७।१६॥ ६. 'तर्हि' इति पु०२, गो०। ७. का० सर्वा० परि० १२।६॥ ८. '०क्षरावि०' इति पु० १, पु० २, गो० । ९. 'सूक्ते' इति पु० १, पु० २ । 'सूक्तेरनु०' इति गो० ।

[६५] एषा स्या ।।४।।

षट् । नः । भरद्वाजः । त्रिष्टुप् । उषाः[1] ।।४।।

[६६] वपुर्न्वेकादश मारुतम् ।।५।।

तत् । भरद्वाजः । त्रिष्टुप् । मरुतः[1] ।।५।।

[६७] विश्वेषां मैत्रावरुणम् ।।६।।

एकादश । वः । भरद्वाजः । त्रिष्टुप् । मित्रावरुणौ[1] ।।६।।

[६८] श्रुष्टी वामैन्द्रावरुणमुपान्त्ये जगत्यौ ।।७।।

एकादश । यज्ञः । भरद्वाजः । त्रिष्टुप् । प्र सम्राज[2] इन्द्रावरुणा सुतपाविति[3] जगत्यौ । इन्द्रावरुणौ[1] ।।७।।

[६९] सं वामष्टावैन्द्रावैष्णवम् ।।८।।

कर्मणा[4] । ऐन्द्रावैष्णवम् । श्रोर्गुण[5]—इति च । देवताद्वन्द्वे चेत्यानङ्[6] । उभयपदवृद्धिः । भरद्वाजः । त्रिष्टुप्[4] ।।८।।

[७०] घृतवती षड् द्यावापृथिवीयं जागतम् ।।९।।

भुवनानाम् । षडपि जगत्यः । भरद्वाजः । द्यावापृथिव्यौ[1] ।।९।।

[७१] उदु ष्य सावित्रं त्रित्रिष्टुबन्तम् ।।१०।।

षट् । देवः । आदितस्तिस्रो जगत्यः । चतुर्थ्याद्यास्त्रिष्टुभः । भरद्वाजः । सविता[1] ।।१०।।

[७२] इन्द्रासोमा पञ्चैन्द्रासोमम् ।।११।।

महि[4] । ऐन्द्रासोममिति पूर्ववत् । वृद्ध्यानङौ । भरद्वाजः । त्रिष्टुप्[4] ।।११।।

[७३] यो अद्रिभित् तृच बार्हस्पत्यम् ।।१२।।

प्रथमजाः । तृचं सूक्तम् । तिस्रोऽपि त्रिष्टुभः । बृहस्पतिर्देवता । भरद्वाजः[1]।१२।

[७४] सोमारुद्रा चतुष्कं सोमारौद्रम् ।।१३।।

---

१. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।
२. ऋ० ६।६८।९।।
३. ऋ० ६।६८।१०।।
४. 'कर्मणा' 'भर···ष्टुप्' 'महि' 'भर···ष्टुप्' इति नास्ति मै० ।
५. अष्टा० ६।४।१४६।।
६. अष्टा० ६।३।२६।।

धारयेथाम्[1]। चतस्रोऽपि त्रिष्टुभः। सोमारौद्रमिति पूर्वपदादिवृद्धयनुक्तिश्छान्दसी[2]। सोमारौद्रं तु बह्वेना इति मानवे शास्त्रे[3] यथा। भरद्वाजः[1] ॥१३॥

[७९] जीमूतस्येवकोना पायुर्भारद्वाजः सङ्ग्रामाङ्गान्यृक्शोऽभितुष्टाव वर्म धनुर्ज्यामार्त्नी इषुधिं जगत्यर्धे सारथिमर्धे रश्मीनश्वान् रथं रथगोपाञ्जगत्यां लिङ्गोक्तदेवता द्वाभ्यामिषूः प्रतोदं हस्तघ्नं द्वाभ्यामिषूः पराः पङ्क्त्यादयो लिङ्गोक्तदेवताः सङ्ग्रामाशिषोऽन्त्यानुष्टुब्जीत आलाक्तेति च द्वे द्वे ॥१४॥

भवति। एकोनविंशतिः[1] भरद्वाजपुत्रः पायुर्नामर्षिः। पा रक्षणे[4]। कृवापाजीत्युणि[5] युक्[6]। सूक्तदर्शनेन सर्वान् राज्ञो युद्धेषु पाति रक्षतीति पायुः। एवं हि श्रूयते—पुरा खलु भरद्वाजस्य याज्यभूतौ चायमानप्रस्तोकाख्यौ पारशिखाख्यैः[7] प्रबलैः[8] शत्रुभिर्युद्धे[9] जितौ भरद्वाजं स्वगुरुमुपेत्योचतुः—भगवन्नावां भवत्पुरोहितौ सन्तौ पारशिखैर्युद्धे[9] जितौ। ततश्च यथावा[10] जयेव तथा कुर्विति। भरद्वाजोऽपि स्वपुत्रं पायुमुवाच—एतौ विजयिनौ कुर्विति। ततः[11] पायुस्तदर्थमेतत्सूक्तदर्शी सन्[12] सङ्ग्रामाङ्गानि कवचादीन्यृग्भिस्तुष्टाव[13], तौ चैतत्सूक्ताभिमन्त्रितैः[14] सङ्ग्रामैस्ताञ्जित्वा सपुत्रं[15] भरद्वाजमुपेत्य[16] महद् धनं ददतुरिति। तदेतदाह[17]—संग्रामाङ्गान्यृक्शोऽभि-

---

१. 'धारयेथाम्' 'भरद्वाज' 'भव···शतिः' इति नास्ति मै०।
२. 'पूर्वपदादिश्छन्दोनुक्तिः' इति पु० १, पु० २। 'पूर्वपदवृध्याछन्दोनुक्ति०' इति गो०।
३. मनु० ११।२५४॥
४. धा० २।४७॥
५. उणा० १।१॥
६. तु०—अष्टा० ७।३।३३॥
७. '०शिकाख्यौ' इति पु० १, पु० २।
८. 'प्रबन्ध' इति पु० १। 'प्रबव' इति पु० २।
९. 'युद्धेषु' इति पु० १, पु० २, गो०।
१०. 'भवानावां' इति पु० १। 'भगवान्नावां' इति पु० २। 'तानावां' इति गो०।
११. 'तव' इति पु० १। 'ऋचः' इति गो०।
१२. 'ददर्श' इति गो०।
१३. '०ऋशोभि०' इति पु० १, पु० २, गो०।
१४. '०त०' इति पु० १। '०त' इति पु० २।
१५. 'स्व पुत्रं' इति पु० १; पु० २, गो०।
१६. '०मेत्य' इति पु० १, पु० २।
१७. 'तदेतदाह' इति नास्ति पु० १, पु० २।

तुष्टावेत्यादि। सङ्ग्रामाङ्गानि युद्धोपकरणानि वर्मादीनि। ऋक्श एकैकय[1] ऋग्भिः। अस्तौदिति वाच्ये तुष्टावेत्यनुक्रमण्यन्तरानुकरणम्[2]। अङ्गानि कानीमानीत्याह[3]—वर्मेत्यादि। वर्म कवचमाद्ययास्तौत्। धनुश्चापि[4] द्वितीयया। ज्यां मौर्वीं तृतीयया। आर्त्नी ज्यावन्धकौ द्वौ चतुर्थ्या। इषुधिं शरकोशं[5] पञ्चम्या। एताः पञ्च त्रिष्टुभः। उत्तरा षष्ठी रथे तिष्ठन्नित्येषा[6] जगती। तस्या जगत्याः पूर्वार्धे सारथिमस्तौत्। उत्तरार्धे रश्मीन् अभीशून्। अथ सप्तम्याद्याभिस्तिसृभिस्त्रिष्टुब्भिर्यथाक्रममश्वान् रथं च रथगोपान् रथरक्षितृंश्च[7]। इति नव गताः। अथ दशमी ब्राह्मणासः पितर इति जगती। तया[8] लिङ्गोक्तदेवता अस्तौत्। ब्राह्मणपितृसोम्यद्यावापृथिवीपूष्णोऽस्तौत्[9]। अथ द्वाभ्यामेकादशोद्वादशीभ्यामिषूञ् शरानस्तौत्[10]। अथ त्रयोदश्या प्रतोदमश्वप्रेरकम्। अथ चतुर्दश्या हस्तघ्नम्। अथ द्वाभ्यां पञ्चदशीषोडशीभ्यामिषूञ् शरानस्तौत्। अतः परा यत्र वाणाः संपतन्तीति पङ्क्त्यादयः[11] सप्तदश्याद्यास्तिस्रो लिङ्गोक्तदेवताः। युद्धभूमिकवचवन्धनब्रह्मणस्पत्यदितिसोमवरुणदेवब्रह्मदेवत्याः। सङ्ग्रामाशिषश्च योधानाम्[12] आशीर्भिः पूरयित्र्यश्च रोगघ्नप्रायश्चित्तादिवत्। सङ्ग्रामाशीरूपमपि[13] ज्ञेयमित्युच्यते। अन्त्या सूक्तस्यान्त्या, यो नः स्वो अरण इत्येषानुष्टुप्। ऋजीते परि वृङ्धि न[14] आ जङ्घन्ति सान्वेषाम्[15] इति च द्वे अनुष्टुभौ। आलाक्ता या रुरुशीर्ष्णी[16] अवसृष्टा परा पतेति[17] च[18] द्वे अनुष्टुभौ। द्वे द्वे इति वचनं[19] प्रतिप्रतीकं द्वित्वार्थम्[20]। शिष्टास्त्रिष्टुभः ॥१४॥

॥ इति षष्ठं मण्डलं समाप्तम् ॥

---

१. 'ऋच एकाभिर्ऋ०' इति पु० १, पु० २। '०एकैकाभिर्ऋ०' इति गो०।
२. '०नुक्रमण्यनुकरणं' इति पु० १, पु० २। ३. 'तानी०' इति मै०।
४. 'ञ्चायं' इति पु० १, पु० २।
५. 'शरवापं' इति पु० १। 'शरचापं' इति पु० २ गो०।
६. '०त्येव' इति पु०, १, पु० २। ७. 'रथरक्षितृंश्च' इति नास्ति पु० १, पु० २।
८. 'पितर इति या लिं०' इति पु० १। 'इति सालिं' इति पु० ३।
९. '०पूषणम०' इति पु० १, पु० २। १०. 'शरान्' इति नास्ति पु० १, पु०२।
११. 'पंक्ति' इति पु० १। त्यक्तः पु० २। १२. 'योद्धृनाम्' इति पु० १।
१३. '०मवि' इति पु० १। १४. ऋ० ६।७५।१२॥ १५. ऋ० ६।७५।१३॥
१६. ऋ० ६।७५।१५॥ १७. ऋ० ६।७५।१६॥
१८. 'एते च' इति पु० १, पु० २। १९. 'च' इति पु० १, पु० २।
२०. 'द्वित्वं विस्पष्टार्थं' इति पु० १, पु० २, गो०।

[अथ वासिष्ठं सप्तमं मण्डलम्]

अथ सप्तमस्य प्र धान्येन द्रष्टारमाह—

सप्तमं मण्डलं वसिष्ठोऽपश्यत् ॥१५॥

मैत्रावरुणिर्वसिष्ठ इत्युक्तं मित्रावरुणयोर्दीक्षितयोरित्यत्र[1] ॥१५॥

[१] अग्नि पञ्चाधिका विराजोऽष्टादशाद्याः ॥१६॥

नरः । पञ्चविंशतिः[2] । अत्र सूक्त आदितोऽष्टादश विराजः । ताश्च त्र्येकादशकाः । शिष्टाः सप्त[2] त्रिष्टुभः । अस्य सूक्तस्य नानाछन्दस्त्वमस्मद्ब्राह्मणे[3] सूत्रे च सूच्यते[4] । ता उ विच्छन्दसः सन्ति विराजः सन्ति त्रिष्टुभः[5] । अष्टादशोत्तमे विराज[6] इति च । तत्र ह्युत्तम इत्यग्निनरीयमुच्यते । मण्डलादित्वादग्निः । वसिष्ठः[2] ॥१६॥

॥ इति त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥

---

[३४]

[२] जुषस्वैकादशाप्रम् ॥१॥

नः[2] । आप्रमित्युक्तेर्द्वितीयात्र नाराशंसी न तानुनपाती[7] । वसिष्ठः । त्रिष्टुप्[2] ॥१॥

[३] अग्निं वो दश ॥२॥

देवम् । वसिष्ठः । त्रिष्टुप् । अग्निः[8] ॥२॥

[४] प्र वः ॥३॥

दश । शुक्राय । वसिष्ठः । त्रिष्टुप् । अग्निः[8] ॥३॥

[५] प्राग्नये नव वैश्वानरीयं तु ॥४॥

---

१. का० सर्वा० १२।१॥
२. 'नरः ... शतिः' 'सप्त' 'वसिष्ठः' 'नः' 'वसि...ष्टुप्' इति नास्ति मै० ।
३. 'त्वं ब्राह्मणे' इति पु० १, पु० २ ।
४. 'श्रूयते' इति पु० १, गो० । 'श्रूयते हि' इति पु० २ ।
५. ऐत० ब्रा० ५।५।१७॥
६. आश्व० श्रौ० ८।८।४॥
७. 'न तानुनपात्' इति पु० १ । त्यक्तः पु० २ । 'अतनुपाति' इति गो० ।
८. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।

तवसे । अत्र वैश्वानरो देवता । उत्तरत्र च[1] । वसिष्ठः । त्रिष्टुप्[2] ॥४॥

[६] प्र सम्राजः सप्त ॥५॥

असुरस्य । वसिष्ठः । त्रिष्टुप् । विश्वानरगुणोऽग्निः[2] ॥५॥

[७] प्र वो देवम् ॥६॥

सप्त । चित् । वसिष्ठः । त्रिष्टुप् । अग्निः[2] ॥६॥

[८] इन्धे ॥७॥

सप्त । राजा । वसिष्ठः । त्रिष्टुप् । अग्निः[2] ॥७॥

[९] अबोधि पट् ॥८॥

जारः । वसिष्ठः । त्रिष्टुप् । अग्निः[2] ॥८॥

[१०] उषो न पञ्च ॥९॥

जारः । वसिष्ठः । त्रिष्टुप् । अग्निः[2] ॥९॥

[११] महान् ॥१०॥

पञ्च । अस्यध्वरस्य । वसिष्ठः । त्रिष्टुप् । अग्निः[2] ॥१०॥

[१२] अगन्म तृचम् ॥११॥

महा । वसिष्ठः । त्रिष्टुप् । अग्निः[2] ॥११॥

[१३] प्राग्नये वैश्वानरीयम् ॥१२॥

तृचम् । विश्वगुचे । वसिष्ठः । त्रिष्टुप् । वैश्वानरोऽग्निः[2] ॥१२॥

[१४] समिधा बृहत्यादि ॥१३॥

तृचम् । जातवेदसे । आदौ बृहती यस्य सूक्तस्य तद् बृहत्यादि । द्वितीया-तृतीये त्रिष्टुभौ । वसिष्ठः । अग्निः[2] ॥१३॥

[१५] उपसद्याय पञ्चोना गायत्रम् ॥१४॥

मीढुषे । पञ्चदश । गायत्र्यः । वसिष्ठः । अग्निः[2] ॥१४॥

[१६] एना वो द्वादश प्रागाथम् ॥१५॥

अग्निम् । प्रागाथं च बार्हतम् । अयुजो बृहत्यो युजः सतोबृहत्य इत्यर्थः । वसिष्ठः । अग्निः[2] ॥१५॥

---

१. 'उत्तरत्र च' इति नास्ति पु० १, पु० २ । २. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।

[१७] अग्ने भव सप्त द्वैपदं त्रैष्टुभम् ॥१६॥

सुषमिधा[1]। सप्तापि द्विपदा द्वयेकादशकाः । त्रैष्टुभमिति विंशतिका द्विपदा विराज[2] इति मा भूदिति। आग्नेयाधिकारस्य पूर्णोऽवधिः ॥१६॥

[१८] त्वे ह पञ्चाधिकैन्द्रं सुदासः पैजवनस्यान्त्याश्चतस्रो दानस्तुतिः ॥१७॥

यत्। पञ्चविंशतिः[1]। अवध्यर्थमैन्द्रमित्युक्तम्। अन्त्याभिश्चतसृभिर्द्वे नप्तुर्देववत इति[1] द्वाविंश्यादिभिः पिजवनपुत्रस्य[3] राज्ञः सुदानाम्नो दानं स्तूयते। वसिष्ठः। त्रिष्टुप्[1] ॥१७॥

[१९] यस्तिग्मश्रृङ्ग एकादश ॥१८॥

वृषभः। वसिष्ठः। त्रिष्टुप्। इन्द्रः[4] ॥१८॥

॥ इति चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३४॥

---

[३५]

[२०] उग्रो दश ॥१॥

जज्ञे। वसिष्ठः। त्रिष्टुप्। इन्द्रः[4] ॥१॥

[२१] असावि ॥२॥

दश। देवम्। वसिष्ठः। त्रिष्टुप्। इन्द्रः[4] ॥२॥

[२२] पिब नव वैराजमृतेऽन्त्याम् ॥३॥

सोमम्[1]। आदितोऽष्टौ विराट्छन्दस्काः[5]। दशकास्त्रयः[6]। अन्त्यामृते। ङसेरम् व्यत्ययाच्छन्दोवद्भावाच्छन्द एव वा[7]। सा त्रिष्टुप्। ऋतेऽन्त्यामिति लाघवात्। त्रिष्टुबन्तम् अन्त्या त्रिष्टुबिति हि गुरुः। वसिष्ठः। इन्द्रः[1] ॥३॥

[२३] उदु षट् ॥४॥

---

१. 'सुषमिधा' 'यत्…शतिः' 'द्वे… इति' 'वसि…ष्टुप्' 'सोमम्' 'वासिष्ठः। इन्द्रः' इति नास्ति मै०।
२. का० सर्वा० परि० १४।८॥
३. तु०—निरु० २।२४॥
४. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै०।
५. 'विराजः' इति मै०।
६. तु०—का० सर्वा० परि० ६।७॥
७. का० सर्वा० १४।२ वेदार्थदीपिका।

ब्रह्माणि । वसिष्ठः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः[1] ॥४॥

[२४] योनिः ।.५॥

षट् । ते । वसिष्ठः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः[1] ॥५॥

[२५] आ ते ॥६॥

षट् । महः । वसिष्ठः । इन्द्रः । त्रिष्टुप्[1] ॥६॥

[२६] न सोमः पञ्च ॥७॥

इन्द्रम् । वसिष्ठः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः[1] ॥७॥

[२७] इन्द्रं नरः ॥८॥

पञ्च । नेमधिता । वसिष्ठः । इन्द्रः । त्रिष्टुप्[1] ॥८॥

[२८] ब्रह्माणः ॥९॥

पञ्च । इन्द्र । वसिष्ठः । त्रिष्टुप[1] ॥९॥

[२९] अयं सोमः ॥१०॥

पञ्च । इन्द्र । वसिष्ठः । इन्द्रः । त्रिष्टुप्[1] ॥१०॥

[३०] आ नः ॥११॥

पञ्च । देव । वसिष्ठः । इन्द्रः । त्रिष्टुप्[1] ॥११॥

[३१] प्र वो द्वादश गायत्रं त्रिविराळन्तम् ॥१२॥

इन्द्राय । आदौ नव गायत्र्यः[2] । दशम्याद्यास्तिस्रो विराजोऽन्ते यस्य तत् सूक्त त्रिविराडन्तम् । ताश्च त्र्येकादशकाः । वसिष्ठः । इन्द्रः[2] ॥१२॥

[३२] मो षु सप्ताधिका प्रागाथं तृतीया द्विपदा सौदासैरग्नौ प्रक्षिप्यमाणः शक्तिरन्त्यं प्रगाथमालेभे सोऽर्धर्चे उक्तेऽदह्यत । तं पुत्रोक्तं वसिष्ठः समापयतेति शाट्यायनकं वसिष्ठस्यैव हतपुत्रस्यार्षमिति ताण्डकम् ॥१३॥

त्वा । सप्तविंशतिः । प्रागाथं बार्हतम् । आद्या बृहती । द्वितीया सतोबृहती[2] ।

---

१. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।

२. 'इन्द्राय···यत्र्यः' 'वसिष्ठ । इन्द्रः' 'त्वा · बृहती' इति नास्ति मै० ।

तृतीयाया बृहतीत्वे चतुर्थ्याः सतोबृहतीत्वे च क्रमात् सप्तविंश्याश्चानादेशात् त्रिष्टुप्त्व 'एकपुरोडाशेष्ट्य[1] पांशुयाजन्यायेनाद्योपादानान्त्यलोपन्यायेन वा बृहतीत्वे प्राप्त आह—तृतीयाद्विपदेति। रायस्कामो वज्रहस्तमित्येषा सूक्तस्य तृतीया[2] विंशत्यक्षरा विराट्। ततश्चतुर्थ्याद्या द्वादश प्रगाथाः। ते च बृहतीमुखाः सतोबृहत्यन्ताः।[2] इन्द्रं क्रतुं न आ भरेति षड्विंश्यादिप्रगाथे कयाभृषिविकल्पायाह—सौदासैरित्यादिना। पुरा किल—

वसिष्ठस्य सुतः शक्तिः पुष्पाद्यार्थं ययौ वनम्।
राज्ञः सुदासो दासास्तु[3] वासिष्ठं ददृशुश्च तम् ॥१॥
विश्वामित्रप्रयुक्तंस्तु रक्षोभिर्वष्टिताश्च[4] ते।
वनाग्नौ प्राक्षिपंश्चैनं देवभक्तोऽयमित्युत ॥२॥
आस्तिकोऽयं वसिष्ठस्य पुत्र इत्येव च क्रुधा।
प्रक्षिप्यमाणः सोऽपश्यदिन्द्र क्रतुमिति द्वृचम् ॥३॥
अर्धर्चमुक्तवानाद्यं ततोऽदह्यत सोऽग्निना।
चिरायमाणे पुत्रे तु पुत्रस्नेहपरिप्लुतः ॥४॥
मार्गविक्षिप्तनयनो[5] वसिष्ठोऽभ्यागमद् वनम्।
दग्धं सुतमथ श्रुत्वा भूतेभ्यः शोककर्शितः ॥५॥
ज्ञात्वा तु दृष्टशिष्टं तु शिक्षा णादि समापयत्।
यद्यर्धर्चत्रयं शिष्टमद्रक्ष्यन्[6] मम वै सुतः ॥६॥
अजीविष्यदयं सम्यक् सुखी च[7] शरदां शतम्।
इत्युक्त्वा धृतिमालम्ब्य प्रययावाश्रमं पुनः ॥७॥
एवं तु शाट्यायनकं वदति[8] ब्राह्मणं किल।
आद्यार्धर्चमेव[9] शक्तिर्दृष्टवान् दग्ध एव सः ॥८॥
द्वृचं सर्वं वसिष्ठस्तु दृष्टवानिति ताण्डकम्।
इति ब्राह्मणवैमत्यं विकल्पाय प्रदर्शितम् ॥९॥
अतश्च[10] इन्द्रक्रतुं द्वृचे[11] शक्तिराद्येऽर्धर्चे विकल्पितः[12]।

---

१. 'एके पुरोढादशेष्ट्य०' इति पु० १, पु० २।
२. 'राय...तृतीया' 'तत...त्यन्ताः' इति नास्ति मै०।
३. 'च' इति पु० १, पु० २, गो०।
४. '०वेषिताश्च' इति पु० १। 'विषिताश्च' इति पु० २।
५. 'मार्गे' इति पु० २।
६. '०दृक्षन्' इति पु० १, पु० २। '०रक्षन्' इति गो०।
७. 'ससुखी' इति पु० १, पु० २, गो०।
८. 'वदंति' इति कोशेषु।
९. 'आद्यार्धर्चांत्येव' इति पु० २।
१०. 'अतश्च' इति नास्ति पु० २, गो०।
११. '०क्रतु०' इति पु० १, पु० २।
१२. 'आद्येऽर्धर्चविकल्पतः' इति पु० १, पु० २, गो०।

ऋषिर्वसिष्ठः सूक्तस्य देवता त्विन्द्र एव हि[1] ।।१०।।

अत्रारेभ इति रभ राभस्य[2] आङ्पूर्वः । अत्र पश्यतिकर्मा धातुर्द्रष्टुमिति वा शेषः[3] । ततो लिट् । तस्यात एकहल्मध्य[4] इत्येत्वाभ्यासलोपौ । प्रक्षिप्यमाणः । कर्मणि लटि यकि शानचि मुक् । अदह्यत कर्मणि लङ् । समापयत । आप्लृ व्याप्तौ[5] संपूर्वः । हेतुकर्मणि णिच् । लङि णिचश्चेत्यात्मनेपदम्[6] लङः । दृचो हि समाप्ति गच्छति । तमसो गमयतीति । शाटचात् फक् वुञ् च शाटचायनकम्[7] । ताण्डिनामाम्नायस्ताण्डकम्[8] ।।१३।।

[३३] श्वित्यञ्च षळ्ना संस्तवो वसिष्ठस्य सपुत्रस्येन्द्रेण वा संवादः ।।१४।।

मा । चतुर्दश[9] । वसिष्ठस्य सपुत्रस्य संस्तवः सहस्तुतिः परस्परस्तुतिरित्यर्थः । आदितो नवभिर्वसिष्ठः स्वान् पुत्रपौत्रान्[10] स्तुतवान । विद्युतो ज्योतिरित्यादि पञ्चभिस्ते वसिष्ठं स्तुतवन्तः । अथवा वसिष्ठस्येन्द्रेण सह संवादः । स्वान् पुत्रपौत्रान्[10] आदितो नवभिः स्तुतवान् वसिष्ठो विद्युतो ज्योतिरित्यादिभिः पञ्चभिरिन्द्रेण स्तूयते स्मेत्यर्थः । संवादः परस्परसंभाषणम् । संवादे वक्तृविवेकानुक्रम[11] उपदेशेष्व नुक्तेः ।।१४।।

[३४] प्र शुक्रा पञ्चाधिका वैश्वदेवं ह्याद्या एकविंशतिर्द्विपदा अब्जामहेरर्धर्च उत्तरोऽहिर्बुध्न्याय ।।१५।।

एतु । पञ्चविंशतिः । वैश्वदेवं सूक्तमिदमुत्तराणि त्रीणि च[9] । आद्या एकविंशतिर्द्विपदाः । आदित एकविंशतिर्ऋचो विंशत्यक्षरा विराज इत्यर्थः । द्वाविंश्याद्याश्चतस्रस्त्रिष्टुभः । श्रूयते हि ब्राह्मणसूत्रयोः प्र शुक्रेत्यारभ्य ता उ विच्छन्दसः सन्ति द्विपदा सन्ति चतुष्पदा[12] इत्येकविंशतिर्वैश्वदेवसूक्त[13] इति च । तत्र[14] हि द्विपदा इति वर्तते

---

१. अयं श्लोकः कोशेषु सप्तमश्लोकार्धतोऽधो लिखितः । २. धा० १।१०२३।।
३. '०मित्येकशेषः' इति पु० १, पु० २, गो० । ४. अष्टा० ६।४।१२०।।
५. धा० ५।१४।। ६. अष्टा० १।३।७४।।
७. 'शाटचायनमतं शाटचायनकं' इति पु० १, पु० २, गो० ।
८. 'ताण्डिनो मतं ताडकं' इति पु० १, पु० २ । 'तांडिवचनाम्नातस्तांडकम्' इति गो० ।
९. 'मा...दश' 'एतु...च' इति नास्ति मै० । १०. 'पुत्रान पौत्रान्' इति पु०१, पु०२ ।
११. '०क्रमप०' इति पु० १ । '०क्रममुप०' इति पु० २, गो० ।
१२. ऐत० ब्रा० ५।५।१०-११।। १३. आश्व० श्रौ० ८।८।५।।
१४. 'अत्र' इति मै० ।

मारुत[1] इत्यतः[2] । अत्र चाब्जामुक्थैरहिं गृणीष[3] इत्यर्धर्चोऽहिनाम्नो दैवतस्य[4] स्तुतिः । मा नोऽहिर्बुध्न्य[5] इत्यर्धर्चोऽहिर्बुध्न्यनाम्नो दैवतस्य[4] वैश्वदेवत्वादेव ऋग्रूपविनियोगोक्तदेवतात्वे[6] सिद्धेऽनयोर्देवतयोरुपदेशः[7] सूक्तविनियोगे[8]ऽपि स्मरणार्थः ॥१५॥

[३५] शं नः पञ्चोना शान्तिः ॥१६॥

पञ्चदश । इन्द्राग्नी । वसिष्ठः । त्रिष्टुप् । विश्वे देवाः[9] । सर्वशान्तिकरं सूक्तं रोगघ्नत्वादिवदयमपि गुणो ज्ञातव्य इत्युक्तम् ॥१६॥

॥ इति पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥३५॥

---

[३६]

[३६] प्र ब्रह्म नव ॥१॥

एतु । वसिष्ठः । त्रिष्टुप् । विश्वे देवाः[10] ॥१॥

[३७] आ वोऽष्टौ ॥२॥

वाहिष्ठः । वसिष्ठः । त्रिष्टुप् । विश्वे देवाः[10] ॥२॥

[३८] उदुष्य सावित्रमन्त्ये वाजिन्यौ भगमिति भागो वार्धर्चः ॥३॥

अष्टौ । देवः । सवितृदेवत्यम्[9] । अन्त्ये सप्तम्यष्टम्यौ वाजिनां स्तुतिः । वाजिनो वाजिनाख्यहविर्देवताः[11] । केचिद् देवताविशेषाः । भगमुग्रोऽवस[12] इत्यर्धर्चो भगदेवत्यः । वेत्युक्तेः सावित्रो वा । वसिष्ठः । त्रिष्टुप्[9] ॥३॥

[३९] ऊर्ध्वः सप्त वैश्वदेवं तु ॥४॥

अग्निः । वैश्वदेवमिदमुत्तरं च । वसिष्ठः । त्रिष्टुप्[10] ॥४॥

---

१. आश्व० श्रौ० ८।८।५॥ २. 'इत्यतः' इति नास्ति गो० । ३. ऋ० ७।३४।१६।
४. 'देवस्य' इति पु० १, पु० २ । 'दैवतस्तुतिः' इति गो० ।
५. ऋ० ७।३४।१७॥ ६. '०र्यं विनियोगे वैश्वदेवत्वे' इति पु० १, पु० २ ।
७. 'तयोर्देव०' इति पु० १, पु० १ । ८. 'सूक्तं वि०' इति पु० २ ।
९. 'पञ्च…देवाः' 'अष्टौ…देवत्यम्' 'वसि…ष्टुप्' इति नास्ति मै० ।
१०. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० । ११. '०नाख्या हृ०' इति पु० १ ।
१२. ऋ० ७।३८।६॥

[४०] ओ श्रुष्टिः ॥५॥

सप्त । विदथ्या । वसिष्ठः । त्रिष्टुप् । विश्वेदेवाः[1] ॥५॥

[४१] प्रातर्भागं जगत्याद्या लिङ्गोक्तदेवतान्त्योषस्या ॥६॥

सप्त । अग्निः । भगदेवत्यमिदम्[2] । आद्या जगती लिङ्गोक्तदेवता । अग्नीन्द्रमित्रावरुणाश्विभगपूषब्रह्मणस्पतिसोमरुद्रदेवत्येत्यर्थः । शिष्टाः षट् त्रिष्टुभः । अश्वावतीरित्यन्त्या सप्तम्युषोदेवत्या । वसिष्ठः[2] ॥६॥

[४२] प्र ब्रह्माणः षड् वैश्वदेवं तु ॥७॥

अङ्गिरसः । इदमुत्तरं च वैश्वदेवम् । वसिष्ठः । त्रिष्टप्[1] ॥७॥

[४३] प्र वः पञ्च ॥८॥

यज्ञेषु । वसिष्ठः । त्रिष्टुप् । विश्वे देवाः[1] ॥८॥

[४४] दधिक्रां दाधिक्रं जगत्याद्या लिङ्गोक्तदेवता ॥९॥

पञ्च । वः । दधिक्रादेवत्यं सूक्तम्[2] । आद्यां जगती लिङ्गोक्तदेवता । दधिक्राश्व्युषोऽग्न्याादिस्वसामर्थ्यप्रतिपादितदेवतेत्यर्थः[3] । अथ चतस्रः केवलदधिक्रादेवत्याः । त्रिष्टुभश्च । वसिष्ठः[2] ॥९॥

[४५] आ देवश्चतुष्कं सावित्रम् ॥१०॥

यातु । सवितृदेवत्यम् । चतस्रोऽपि त्रिष्टुभः । वसिष्ठः[1] ॥१०॥

[४६] इमा रौद्रं त्रिष्टुवन्तम् ॥११॥

चतुष्कम् । रुद्राय । आद्यास्तिस्रो जगत्यः । अन्त्या त्रिष्टुप् । रुद्रदेवत्यम् । वसिष्ठः[1] ॥११॥

[४७] आपो यमापम् ॥१२॥

चतुष्कम् । वः । अब्देवत्यम् । वसिष्ठः । त्रिष्टुप्[1] ॥१२॥

[४८] ऋभुक्षण आर्भवमन्त्या वैश्वदेवी वा ॥१३॥

चतुष्कम् । वाजाः । आर्भवमिदं सूक्तम्[2] । अन्त्या चतुर्थी वैश्वदेवी । आर्भवी

---

१. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।

२. 'सप्त…मिदम्' 'शिष्टा…वसिष्ठः' 'पञ्च…सूक्तम्' 'अथ…वसिष्ठः' 'चतु:…सूक्तम्' इति नास्ति मै० ।

३. 'सामर्थ्य' इति नास्ति पु० १, पु० २, गो० ।

वा[1] । वसिष्ठः । त्रिष्टुप्[2] ॥१३॥

[४९] समुद्रज्येष्ठा आपम् ॥१४॥

चतुष्कम् । सलिलस्य । अब्देवत्यम् । वसिष्ठः । त्रिष्टुप्[3] ॥१४॥

[५०] आ मां मैत्रावरुण्य ग्नेयी वैश्वदेवी नदीस्तुतिर्जागत-मन्त्यातिजगती शक्वरी वा ॥१५॥

चतुष्कम् । मित्रावरुणा । प्रथमा मित्रावरुणदेवत्या । द्वितीयाग्निदेवत्या । तृतीया वैश्वदेवी[2] । चतुर्थी गङ्गादिसर्वनदीस्तुतिः । आद्यास्तिस्रो जगत्यः । चतुर्थ्यति-जगती । शक्वरी वा व्यूहेन । वसिष्टः[2] ॥१५॥

[५१] आदित्यानां तृचमादित्यं तु ॥१६॥

अवसा[2] । आदित्यदेवत्यमिदमुत्तरं च[2] । आदित्या नामादितेः पुत्रा आदित्याना-मिति लिङ्गात् । आदित्यग्रहेण चरन्तीति[4] सूत्रे । वसिष्ठः । त्रिष्टुप्[2] ॥१६॥

[५२] आदित्यासः ॥१७॥

तृचम् । अदितयः । वसिष्ठ. । त्रिष्टुप् । आदित्याः[3] ॥१७॥

[५३] प्र द्यावा द्यावापृथिवीयम् ॥१८॥

तृचम् । यज्ञैः । वसिष्ठः । त्रिष्टुप् । द्यावापृथिवी[3] ॥१८॥

[५४] वास्तोष्पते वास्तोष्पत्यम् ॥१९॥

तृचम् । प्रति । वसिष्ठः । त्रिष्टुप्[2] । वास्तोष्पतिदेवत्यम् । पत्य-न्ताण्ण्यः[5] ॥१९॥

[५५] अमीवहाष्टौ वास्तोष्पत्याद्या गायत्री शेषास्त्र्युपरिष्टाद्-बृहत्पादयोऽनुष्टुभः प्रस्वापिन्य उपनिषत् ॥२०॥

वास्तोष्पते[2] । आद्या गायत्री वास्तोष्पतिदेवत्या । शेषाः । शिषोऽसर्वोपयोगे[6]

---

१. इतोऽग्रे कोशेषु 'आर्भव इति विधिगर्भानुवादः । आर्भवमन्त्येत्यनुक्तिर्लाघवार्थं' इत्य-धिकः पाठः ।

२. 'वसि···ष्टुप्' 'चतुष्क · देवी' 'आद्या···वसिष्ठः' 'अवसा' 'इदं···च' 'वसि···ष्टुप्' 'तृच···ष्टुप्' 'वास्तोष्पते' इति नास्ति मै० ।

३. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।

४. आश्व० श्रौ० ५।१७।१॥

५. तु०—अष्टा० ४।१।८५॥

६. धा० १०।२७४॥

कर्मणि घञ्। शिष्टा इत्यर्थः। ताः प्रस्वापिन्य उपनिषद्। प्रस्वापिन्यः प्रस्वापिनः स्तुतय उपनिषच्च भवति। ताश्च चछन्दस्तस्त्र्युपरिष्टाद्बृहत्यादयोऽनुष्टुभः। तिस्र उपरिष्टाद्बृहत्य आदौ यासां चतसृणां ता इमाः। यदर्जुनसारमेयेत्याद्यास्तिस्र[1] उपरिष्टाद्बृहत्यः। सस्तु मातेत्याद्याश्चतस्रोऽनुष्टुभः। अष्टकाश्चतुर्थद्वादशाक्षरोपरिष्टाद्बृहती[2]।

आसां प्रस्वापिनीत्वं तु कथासु परिकल्प्यते।
वसिष्ठस्तृषितोऽन्नार्थी त्रिरात्रालब्धभोजनः।
चतुर्थरात्रौ चौर्यार्थं वारुणं गृहमेत्य तु ॥१॥
कोष्ठागारप्रवेशाय[3] पालकश्वादिसुप्तये।
यदर्जुनादि सप्तर्चं ददर्श च जजाप च ॥२॥[4] इति ॥२०॥

[५६] क ईं पञ्चाधिका मारुतं ह्याद्या एकादश द्विपदाः ॥२१॥

व्यक्ताः। पञ्चविंशतिः। मरुद्देवत्यमिदमुत्तराणि च त्रीणि[1]। अत्र सूक्त आद्या एकादश द्विपदाः। विंशतिका द्विपदा विराजः[5]। अथ चतुर्दश त्रिष्टुभः। श्रूयते हि ब्राह्मणसूत्रयोः—क ईं व्यक्ता इत्यारभ्य ता उ विच्छन्दसः सन्ति द्विपदाः सन्ति चतुष्पदा[6] इति, द्विपदा एकादश मारुत[7] इति च। वसिष्ठः[1] ॥२१॥

[५७] मध्वः सप्त ॥२२॥

वः। वसिष्ठः। त्रिष्टुप्। मरुतः[8] ॥२२॥

[५८] प्र साकमुक्षे षट् ॥२३॥

अर्चत। वसिष्ठः। त्रिष्टुप्। मरुतः[8] ॥२३॥

[५९] यं त्रायध्वे द्वादश त्रिप्रगाथादि नवम्याद्या गायत्र्योऽन्त्यानुष्टुब्रौद्री मृत्युविमोचनी ॥२४॥

इदमिदम्। त्रिप्रगाथादि। त्रयः प्रगाथा बार्हता यस्यादौ सूक्तस्य तत्। आद्यातृतीयापञ्चम्यो बृहत्यः। द्वितीयाचतुर्थीषष्ठ्यः सतोबृहत्यः। अथ सप्तम्यष्टम्याव-

१. 'तिस्र…द्याः' 'व्यक्ताः …त्रीणि' 'वसिष्ठः' इति नास्ति मै०।
२. 'अष्ट…बृहती' इति नास्ति मै०। तु०—का० सर्वा० परि० ७।४॥
३. 'गोष्टा०' इति पु० २। 'काष्ठ०' इति गो०।
४. सायणः स्वोपाद्घाते ऋ० ७।५५ इमे पद्ये उद्धृतवान्।
५. का० सर्वा०परि० १२।८॥
६. ऐत० ब्रा० ५।५।१३-१४॥
७. आश्व० श्रौ० ८।८।५॥
८. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै०।

नुक्तेस्त्रिष्टुभौ। नवमीदशम्येकादश्यो गायत्र्यः[1]। अन्त्या द्वादशी त्र्यम्बकमित्येषा-नुष्टुप्। एकाक्षराधिकेयं भुरिगनुष्टुब् वेदितव्या। रुद्रदेवत्या। मृत्युविमोचनी। पूर्णो मरुतामवधिः। वसिष्ठः[1] ॥२४॥

॥ इति षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥३६॥

---

[३७]

[६०] यदद्य मैत्रावरुणं तु वै सौर्याद्या ॥१॥

द्वादश। सूर्यं। मैत्रावरुणं तु वै। मित्रावरुणदेवत्यमिदमुत्तराणि [च] षट्। आद्या सूर्यदेवत्या। वसिष्ठः। त्रिष्टुप्[2] ॥१॥

[६१] उद्वां सप्त ॥२॥

चक्षुः। वसिष्ठः। त्रिष्टुप्। मित्रावरुणौ[2] ॥२॥

[६२] उत् सूर्यः षळाद्यास्तिस्रः सौर्यः ॥३॥

बृहत्। आदौ तिस्रः सूर्यदेवत्याः। अथ तिस्रो मैत्रावरुण्यः। वसिष्ठः। त्रिष्टुप्[2] ॥३॥

[६३] उद्वेतीति चार्धपञ्चमाः ॥४॥

षट्। सुभगः[1]। इति। आदौ। अर्धर्चपञ्चमाः सार्धर्चाः सूर्यदेवत्याश्चतस्रः। चेति सौर्यं इत्यनुकर्षणाय। अथ त्रयोऽर्धर्चा मैत्रावरुणाः। वसिष्ठः। त्रिष्टुप्[1] ॥४॥

[६४] दिवि पञ्च ॥५॥

क्षयन्ता। वसिष्ठः। त्रिष्टुप्। मित्रावरुणौ[2] ॥५॥

[६५] प्रति वाम् ॥६॥

पञ्चेत्येव। सूरः। वसिष्ठः। त्रिष्टुप्। मित्रावरुणौ[2] ॥६॥

[६६] प्र मित्रयोरेकोना गायत्रं दशम्यादयस्त्रयः प्रगाथाः पुरउष्णिक् चतुर्थ्याद्या दशादित्यास्तिस्रः सौर्यः ॥७॥

वरुणयोः। एकोनविंशतिः। गायत्रं सूक्तम्। दशम्याद्यास्त्रयः प्रगाथा बार्हताः।

---

१. 'इद...गायत्र्यः' 'वसिष्ठः' 'षट् सुभगः' 'वसि... ष्टुप्' इति नास्ति मै०।
२. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै०।

दशमी बृहती । एकादशी सतोबृहती । द्वादशी बृहती । त्रयोदशी सतोबृहती । चतुर्दशी बृहती । पञ्चदशी सतोबृहती । अथ षोडशी पुरउष्णिक्[1] । चतुर्थ्याद्यास्त्रयोदश्यन्त्या दशादित्या आदित्यदेवत्याः । अथ चतुर्दश्याद्याः षोडश्यन्त्यास्तिस्रः सौर्यः । आदितस्तिस्रोऽन्त्यास्तिस्रश्चेति षण् मैत्रावरुण्यः । वसिष्ठः । मित्रावरुणयोः पूर्णोऽवधिः[1] ।।७।।

[६७] प्रति वां दशाश्विनं तु तत ।।८।।

रथम् । आश्विनं तु तत् । आश्विनमिदं सूक्तमुत्तराणि च सप्त । तु तदित्यष्टौ । वसिष्ठः । त्रिष्टुप्[2] ।।८।।

[६८] आ शुभ्रा नव सप्ताद्या विराजः ।।९।।

यातम् । आदौ सप्त विराजः । अथ द्वे त्रिष्टुभौ । वसिष्ठः । अश्विनौ[2] ।।९।।

[६९] आ वां रथोऽष्टौ ।।१०।।

रोदसी । वसिष्ठः । त्रिष्टुप् । अश्विनौ[2] ।।१०।।

[७०] आ विश्ववारा सप्त ।।११।।

अश्विना । वसिष्ठः । त्रिष्टुप् । अश्विनौ[2] ।।११।।

[७१] अप स्वसुः षट् ।।१२।।

उषसः । वसिष्ठः । त्रिष्टुप् । अश्विनौ[2] ।।१२।।

[७२] आ गोमता पञ्च ।।१३।।

नासत्या । वसिष्ठः । त्रिष्टुप् । अश्विनौ[2] ।।१३।।

[७३] अतारिष्म ।।१४।।

पञ्च । तमसः । वसिष्ठः । त्रिष्टुप् । अश्विनौ[2] ।।१४।।

[७४] इमा उ वां षट् प्रागाथम् ।।१५।।

दिविष्टयः । आद्यातृतीयापञ्चम्यो बृहत्यः । द्वितीयाचतुर्थीषष्ठ्यः सतोबृहत्यः । वसिष्ठः । अश्विनौ । अश्विनोश्च पूर्णोऽवधिः[2] ।।१५।।

[७५] व्युषा अष्टा उषस्यं तु वै ।।१६।।

---

१. 'वरुण···उष्णिक्' 'अथ···वधिः' इति नास्ति मै० ।

२. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।

आव:[१] । सांहितिकस्त्रैस्वरित: कम्प ऐकश्रुत्ये नास्तीत्युक्तम् । उषस्यं तु वै । उषोदेवत्यमिदमुत्तराणि च षट् । वसिष्ठ: । त्रिष्टुप्[१] ॥१६॥

[७६] उदु सप्त ॥१७॥

ज्योति: । वसिष्ठ: । त्रिष्टुप् । उषा:[२] ॥१७॥

[७७] उपो रुरुचे षट् ॥१८॥

युवति: । वसिष्ठ: । त्रिष्टुप् । उषा:[२] ॥१८॥

[७८] प्रति पञ्च ॥१९॥

केतव: । वसिष्ठ: । त्रिष्टुप् । उषा:[२] ॥१९॥

[७९] व्युषा: ॥२०॥

पञ्च । आव:[१] कम्पाभाव: पूर्ववत् । वसिष्ठ: । त्रिष्टुप् । उषा:[१] ॥२०॥

[८०] प्रति तृचम् ॥२१॥

स्तोमेभि: । वसिष्ठ: । त्रिष्टुप् । उषा:[२] ॥२१॥

॥ इति सप्तत्रिंशोऽध्याय: ॥३७॥

---

[३८]

[८१] प्रत्यु षट् प्रागाथम् ॥१॥

अदर्शि । प्रागाथं बार्हतम् । आद्यातृतीयापञ्चम्यो बृहत्य: । द्वितीयाचतुर्थीषष्ठ्य: सतोबृहत्य: । वसिष्ठ: । उषा:[२] ॥१॥

[८२] इन्द्रावरुणा दशैन्द्रावरुणं ह जागतं तु ॥२॥

युवम् । ऐन्द्रावरुणं ह । इन्द्रावरुणदेवत्यमुत्तराणि च त्रीणि । जगतीछन्दस्कमिदमुत्तरं च । वसिष्ठ:[२] ॥२॥

[८३] युवां नरा ॥३॥

दश । पश्यमानास: । वसिष्ठ: । त्रिष्टुप्[१] । इन्द्रावरुणौ[२] ॥३॥

---

१. 'आव:' 'उषस्यं···ष्टुप्' 'पञ्च । आव:' 'वसिष्ठ···उषा:' इति नास्ति मै० ।
२. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।

[८४] आ वां पञ्च ॥४॥

राजानौ । वसिष्ठः । त्रिष्टुप् । इन्द्रावरुणौ[1] ॥४॥

[८५] पुनीषे ॥५॥

पञ्च । वाम् । वसिष्ठः । त्रिष्टुप् । इन्द्रावरुणौ[1] ॥५॥

[८६] धीराष्टौ वारुणं ह ॥६॥

त्वस्य । वारुणं ह । इदं वरुणदेवत्यमुत्तराणि च त्रीणि । वसिष्ठः । त्रिष्टुप्[1] ॥६॥

[८७] रदत् सप्त ॥७॥

पथः । वसिष्ठः । त्रिष्टुप् । वरुणः[1] ॥७॥

[८८] प्र शुन्ध्युवमन्त्या पाशविमोचनी ॥८॥

सप्त । वरुणाय । वसिष्ठः । त्रिष्टुप् । वरुणः[2] । अन्त्या पाशविमोचनी ॥८॥

[८९] मो षु पञ्च गायत्रं जगत्यन्तम् ॥९॥

वरुण । आदौ चतस्रो गायत्र्यः । पञ्चमी जगती मता । वसिष्ठः । वरुणः[1] ॥९॥

[९०] प्र वीरया सप्त वायव्यं ह्यैन्द्र्यश्च या द्विवदुक्ताः ॥१०॥

शुचयः । वायुदेवत्यमिदमुत्तरे च द्वे[3] । अत्र सूक्ते या ऋचो द्विवदुक्ता वामित्यादिद्विवचनान्तपदयुक्तास्ता ऐन्द्र्यश्चकाराद् वायव्यश्च । अत एव ब्राह्मणसूत्रयोः प्रउगे वायव्यत्वाय प्रवीरया शुचयो दद्रिरे त[4] इति वामिति द्विवचनस्य स्थाने त इत्येकवचनपाठः कृतः । वामित्युक्तावैन्द्रत्वं च स्यादिति । द्विवदुक्ता इति द्वित्वमर्हतीति च द्विवचनम् । द्विशब्दो भावप्रधानः । यथा द्व्येकयोरिति[5] तदुक्तम् । यास्तु ता द्विवदुक्ता ऐन्द्र्यश्च पञ्चम्याद्यास्तिस्रो द्विवचनमुक्ताद्या च । ते सत्येनेति पञ्चम्याद्यास्तिस्रश्चैन्द्रवायव्या[6] इत्यर्थः । वसिष्ठः । त्रिष्टुप्[3] ॥१०॥

[९१] कुविदङ्ग ॥११॥

---

१. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० । २. 'सप्त · वरुणः' इति नास्ति मै० ।
३. 'शुचय ··द्वे' 'वसि ष्टुप्' इति नास्ति मै० ।
४. ऐत० ब्रा० ५।२०।८। आश्व० श्रौ० ८।११।१॥
५. अष्टा० १।४।२२॥
६. 'चेन्द्रवायुदेवत्या' इति पु० १ । 'चेन्द्रवायुदेवतेत्यर्थः' इति पु०२ ।

सप्त । नमसा । वसिष्ठः । त्रिष्टुप् । वायुः[१] ॥११॥

[९२] आ वायो पञ्च ॥१२॥

भूष । वसिष्ठः । त्रिष्टुप् । वायुः[१] ॥१२॥

[९३] शुचिं न्वष्टावैन्द्राग्नं तु ॥१३॥

स्तोमम् । इन्द्राग्निदेवत्यमिदमुत्तर च । वसिष्ठः । त्रिष्टुप्[१] ॥१३॥

[९४] इयं वां द्वादश गायत्रमन्त्यानुष्टुप् ॥१४॥

अस्य । द्वादश्यनुष्टुप् । शिष्टा गायत्र्यः । वसिष्ठः । इन्द्राग्नी[१] ॥१४॥

[९५] प्र क्षोदसा षट् सारस्वतं तु तृतीया सरस्वते ॥१५॥

धायसा । सरस्वतीदेवत्यमिदमुत्तरं च[२] । सरस्वत्या अण् न सरस्वच्छब्दात् । अत एव हि तृतीया सरस्वत इत्युक्तम् । सरस्वती धरुणमिति[३] लिङ्गात् । स वावृध इति तृतीया सरस्वते सरस्वदर्थम् । वसिष्ठः । त्रिष्टुप्[२] ॥१५॥

[९६] बृहदु प्रगाथः प्रस्तारपङ्क्तिः परास्तिस्रो गायत्र्यः सरस्वते ॥१६॥

षट् । गायिषे । आदावेव प्रगाथो बार्हतः । आद्या बृहती । द्वितीया सतोबृहती । अथ तृतीया प्रस्तारपङ्क्तिः । आद्यौ चेत् प्रस्तारपङ्क्तिरित्युक्तम्[४] । आद्यौ पादौ द्वादशाक्षरावित्यर्थः । अतः परं चतुर्थ्याद्या गायत्र्यः । सरस्वते । आदितस्तृचः सरस्वत्यै । वसिष्ठः[१] ॥१६॥

[९७] यज्ञे दशैन्द्र्यादि बार्हस्पत्यमन्त्यैन्द्री च तृतीयानवम्या-
वैन्द्राब्राह्मणस्पत्ये ॥१७॥

दिवः ।[२] बृहस्पतिदेवत्यमैन्द्र्यादि च । ऐन्द्र्यादिर्यस्य तत् सूक्तम् । अन्त्या दशमी बृहस्पते युवमिति[२] ऐन्द्री च बार्हस्पत्या च । इन्द्राबृहस्पतिदेवत्येति यावत् । तृतीयानवम्याविन्द्राब्रह्मणस्पतिदेवत्ये । देवताद्वन्द्वे चेत्यानङ्[५] । उभयपदवृद्धौ चैन्द्राब्राह्मणस्पत्ये । शिष्टाः षट् बार्हस्पत्याः । वसिष्ठः । त्रिष्टुप्[२] ॥१७॥

[९८] अध्वर्यवः सप्तोक्तदेवतान्त्या ॥१८॥

अरुणम्[२] । अन्त्या सप्तम्यैन्द्री चेति पूर्वसूत्र एवोक्तदेवता । इन्द्राबृहस्पति-

१. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।
२. 'धा…च' 'वसि…ष्टुप्' 'दिवः' 'बृह…मिति' 'तृती…ष्टुप्' 'अरुणम्' इति नास्ति मै० । ३. ऋ० ७।९५।१॥ ४. का० सर्वा० परि० ८।६॥
५. अष्टा० ६।३।२६॥

देवत्येत्यर्थः । सैव ह्यत्र पुनराम्नायते। आद्याः षड् ऐन्द्रच एव । वसिष्ठः । त्रिष्टुप्[1] ॥१८॥

[९९] परो वैष्णवं तूरुमित्यैन्द्रयश्च तिस्रः ॥१९॥

सप्त । मात्रया । विष्णुदेवत्यमिदमुत्तरं च[1] । उरुं यज्ञाय चक्रथुरित्याद्यास्तिस्र[2] ऐन्द्रयश्चकाराद् वैष्णव्यश्च । ऐन्द्रावैष्णव्य इत्यर्थः । वसिष्ठः । त्रिष्टुप्[1] ॥१९॥

[१००] नू मर्त्तः ॥२०॥

सप्त । दयते । वसिष्ठः । त्रिष्टुप् । विष्णुः[1] । ननु [3]चैतत्सूक्तवर्तिन्योः प्र तत्ते किमित्त[4] इत्यनयोर्विष्णोः शिपिविष्टगुणत्वं किं नोच्यते । यथा वया इत् सप्त वैश्वानरीयम्[5] इत्यग्नेर्वैश्वानरत्वम् । दृष्टश्चानयोः[6] सूत्रे शिपिविष्टगुणकविष्णोर्विनियोगः । कथम् ? पुरस्ताच्चन्द्रमसेत्यारभ्य वषट् ते विष्णवास आ कृणोमि[7] प्र तत्ते अद्य शिपिविष्ट नामेति[8] त्रिरुच्यते[9] । अयं हि ऋत्वर्थो[10] गुणविधिर्न सार्वत्रिकः । यथा । उप ते स्तोमान् पशुपा इवाकरम्[11] इति द्वे[12] इत्यत्र रुद्रस्य पशुमद्गुणत्वं पशुपतिगुणत्वं चेति मन्यते । किं च । यथोपदेशम्[13] इत्युक्तेर्देवतानुक्रमणीबृहद्देवतयोः शिपिविष्टगुणत्वादर्शनान्[14] नैतदादरणीयमिति । नन्वाश्वलायनोपदेशो वाङ्गीकृत एव[15] । अपि वान्यां वैष्णवीम्[16] इति लिङ्गोक्ता[17] । अतो देवा दैवी वेत्यत्र[18] वैष्णवीत्वोक्तेः । सत्यम् । अत्र त्वतो देवा अवन्तु न इति जपेद्[19] इत्युक्तेः कर्मविशेषसम्बन्धान्न[19] सार्वत्रिकमेवेत्यत्रापि वाच्यमेवेति मन्यते । तस्मात् कर्मविशेषादियोगिषु[20]

---

१. 'आद्याः ˚ ष्टुप्' 'सप्त ˙˙च' 'वसि˙˙˙ष्टुप्' 'सप्त ˙˙विष्णुः' इति नास्ति मैं० ।
२. ऋ० ७।९९।४-६॥ ३. 'चात्र' इति पु० १, पु० २ ।
४. ऋ० ७।१००।५-६॥ ५. का० सर्वा० ४।१४॥
६. 'वैश्वानरसंदृष्टयोः' इति पु० १, पु० २ ।
७. ऋ० ७।१००।७॥ ऋ० ७।९९।७ । ८. ऋ० ७।१००।५॥
९. द्र०—आश्व० श्रौ० ३।१३।१३-१४॥
१०. 'ऋत्वर्थे सूक्ते धर्म्यो गुण०' इति पु० २ । ११. ऋ० १।११४।९॥
१२. आश्व० श्रौ० ४।११।६॥ १३. का० सर्वा० परि० १।१॥
१४. '०गुणत्वदर्श०' इति पु० १, पु० २, गो० ।
१५. 'नत्वाश्वलायनोऽङ्गीकृत एव' इति पु० १ पु० २ । 'नत्वाश्व०' इति गो० ।
१६. द्र०—का० सर्वा० २।३ वेदार्थदीपिका ।
१७. 'लिङ्गोक्तता' इति पु० १, गो० । 'लिङ्गोक्त एव' इति पु० २ ।
१८. का० सर्वा० २।३॥ १९. 'न' इति नास्ति पु० १, पु० २ ।
२०. '०योगेषु' इति पु० २ ।

गुणवचनादि तत्कर्मावधिकमेव न सार्वत्रिकम्। यथा हिरण्यगर्भ[1] इति षड्चस्य कदेवत्यस्य हिरण्यगर्भः समवर्तताग्र इति षट् प्राजापत्याः[2] इति प्रजापतिदेवतात्वं पश्ववधिकमेव। यथा कया नश्चित्र आ भुवद्[3] इत्यैन्द्रीन्द्राग्नी मरुतो वरुणः क[4] इति कदेवत्यत्वमिति सर्वमनवद्यम्[5] ॥२०॥

॥ इत्यष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥३८॥

---

[३९]

[१०१] तिस्रः षट् पार्जन्यं तु ॥१॥

वाचः। पर्जन्यदेवत्यमिदमुत्तरं च। त्रिष्टुप्। ऋषिर्हि वक्ष्यते[6] ॥१॥

[१०२] पर्जन्याय तृच गायत्रम् ॥२॥

प्र। तृचं सूक्तम्। तिस्रोऽपि गायत्र्यः। पर्जन्यः[6] ॥२॥

अथ तिस्रोवाचीयपर्जन्यायीययोर्ऋषिमाह[6]—

एते कुमार आग्नेयोऽपश्यद् वसिष्ठ एव वा वृष्टिकामः ॥३॥

एते द्वे सूक्ते अग्निपुत्रः कुमारनामा ददर्श वृष्टीच्छाविशिष्टः प्रकृत एव वा वसिष्ठः। नन्विदं सूत्रमकृत्वा तिस्रः षट् पार्जन्यं त्वाग्नेयः कुमारस्तु वसिष्ठ एव वा वृष्टिकाम इति सूत्र्यताम्। एवं हि लघु। सत्यम्। तथा न कृतं प्रतिपत्तिसुखाय हि[7] ॥३॥

[१०३] संवत्सरं दश पर्जन्यस्तुतिसंहृष्टान् मण्डूकांस्तुष्टावा-द्यानुष्टुप् ॥४॥

शशयानाः। पार्जन्यं त्वित्युक्तम्[8]। तेन पर्जन्यस्तोत्रेण संहृष्टान् अस्माकं वृष्टिर्भविष्यतीति संयुक्तान्[9] पर्जन्यस्तुत्यनुमोदकान् ऋषिस्तुष्टाव। कः ? वसिष्ठः। वाविशिष्टत्वेऽपि माण्डलिकत्वादस्यैवानुवृत्तिर्युक्ता। एवेत्यनेनोत्तरार्थं[10] प्रकृतत्व-

---

१. ऋ० १०।१२१॥ २. आश्व० श्रौ० ३।८।१॥
३. ऋ० ४।३१।१॥ ४. आश्व० श्रौ० २।१७।१४॥
५. 'सर्वमवदातम्' इति पु० १, पु० २। ६. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै०।
७. द्वितीयायाः पादनिचृत्त्वं न सूचितं मूले व्याख्यायां चेति मैक्डानल टिप्पण्यामास।
८. 'शश···उक्तम्' इति नास्ति मै०।
९. 'संहृष्टान्' इति पु० १, पु० २, गो०। १०. द्र०—तृतीयं सूत्रम्।

सूचनाच्च । अन्यथा वसिष्ठो वा वृष्टिकाम इत्येव वक्तव्यम् । अथवा वाविशिष्टो[1] माण्डलिकवसिष्ठो निवर्तताम् । केवलवसिष्ठो[2] माण्डलिकोऽनुवर्तिष्यते । यद्वा[3] वेति कुमारेण[4] सम्बध्यते । वसिष्ठ इति तु वृष्टिकामगुणविशेषित्वाय । आद्यानुष्टुप् । अथ नव त्रिष्टुभः[5] ।।४।।

[१०४] इन्द्रासोमा पञ्चाधिकैन्द्रासोमं राक्षोघ्नं शापाभिशापप्रायं षट् सप्त वाद्या जगत्य एकविंशीत्रयोविंश्यौ चाष्टादशी मारुती च दशमीचतुर्दश्यावाग्नेय्यौ दैव्येकादश्यन्त्यानुष्टुम्नवमी द्वादशी त्रयोदशी सौम्यः सप्तदशी ग्राव्ण्यष्टमीषोळश्यावैन्द्र्यौ प्र वर्तयेति चतस्र[6] ऐन्द्र्यो मा नो रक्ष इत्यृषेरात्मन आशीरुत्तरोऽर्धर्चः पृथिव्यन्तरिक्षदैवतः ।।५।।

तपतम् । पञ्चविंशतिः[7] । रक्षोहेतीन्द्रासोमयोर्गुणः । राक्षोघ्नमैन्द्रासोममिदम् । रक्षसां हन्तारावेन्द्रासोमावस्य देवतेत्यर्थः । रक्षोहशब्दाद् देवताणि षपूर्वहन्नित्यलोपे[8] हो हन्तेरिति[9] कुत्वम् । देवतावद्[10] गुणादपि तद्धितो वैश्वानरो यथा ।[11] ऐन्द्रासोममिति देवताद्वन्द्वेचेत्यानङ्[12] । उभयपदवृद्धौ प्राप्तायामुत्तरपदवृद्ध्यभावश्छान्दसः । शाप आक्रोशश्छान्दसः । असतो दोषस्याध्यारोपो[13]ऽभिशापः । एतौ शापाभिशापावत्र प्रायो वहुलं भवतः । आद्याः षट् सप्त वा जगत्यः । प्रति स्मेरथामिति[7] सप्तमी त्रिष्टुब् जगती वेत्यर्थः । सप्तमी वेति नोक्तं गुरुत्वात् । एकविंशीत्रयोविंश्यौ च जगत्यौ । वि तिष्ठध्वं मरुत इत्यष्टादशी मरुद्देवत्या सती च जगती । चकारो जगत्यनुकर्षणार्थः । शिष्टाः पञ्चविंशीवर्जं चतुर्दश त्रिष्टुभः । तस्यास्तु स्वयमेव वक्ष्यति । दशमीचतुर्दश्यावग्निदेवत्ये । एकादशी देवदेवत्या । अन्त्या प्रति

---

१. 'वसिष्ठो' इति पु० १, पु० २ । २. 'केवलं वसि०' इति पु० १, पु० २ ।
३. 'यथा' इति पु० १, पु० २ । ४. '०णैव' इति पु० १, पु० २ ।
५. 'आद्या…त्रिष्टुभः' इति नास्ति मै० ।
६. 'पञ्च' इति मै०, पु० १; पु० २, गो० । 'चतस्र' इति गो० मूलमात्रे ।
७. 'तप…शतिः' 'रक्षोह…नङ' 'आद्याः…मिति' इति नास्ति मै० ।
८. अष्टा० ६।४।१३५।। ९. अष्टा० ७।३।५४।।
१०. 'देवतावत्त्वाद्' इति पु० १, पु० २ ।
११. 'वैश्वानरीयं' इति पु० १, पु० २, गो० । १२. अष्टा० ६।३।२६।।
१३. 'अध्याहारो' इति पु० २ । तु०—निरु० ७।३ दुर्गवृत्तिः ।।

चक्ष्वेत्यनुष्टुप् । नवमी द्वादशी त्रयोदशी चेति तिस्रः सोमदेवत्याः । प्र या[1] जिगातीति[1] सप्तदशी ग्राव्णी ग्रावदेवत्या । अणोऽणीति[2] प्रकृतिभावाभावश्छान्दसः । ग्रावण्यश्मनि दैवते देवतात्वाच्ये तद्धिते ङ्यन्तं न तु ङीषन्तम्[3] । अष्टमीषोडश्याविन्द्रदेवत्ये[1] । प्रवर्तय दिवो अश्मानमिति चतस्र इन्द्रदेवत्याः । मा नो रक्षो अभि नडिति त्रयोविंश्या पूर्वार्धर्चो वसिष्ठस्यात्मन आशीः प्रार्थना । उत्तरार्धर्चः पृथिवी न पार्थिवादिति पृथिव्यन्तरिक्षदैवतः । वसिष्ठः[1] ॥५॥

॥ इति वासिष्ठं सप्तमं मण्डलं समाप्तम् ॥

[अथाष्टमं मण्डलम्]

न चात्राष्टमं मण्डलमित्यनुक्तेः सप्तममण्डलस्यासमाप्तिराशङ्कनीया, मा चिदन्यद् इत्यारभ्य स्वादिष्ठयेत्यन्तस्याष्टमं मण्डलमिति प्रसिद्धेः । किं चानुवाकानुक्रमण्यां मण्डलस्थानुवाकसूक्तयोः संख्याने[4] दशाष्टमम्[5] इति द्वे चैव सूक्ते नवतिं च विद्यादथाष्टमम्[6] इति चोक्तेर्माचिद् इत्यादेरष्टमत्वमेव संगच्छते । तथोपाकर्मणि मण्डलान्त्यानामृचामनुक्रमणे[7] प्रति चक्ष्व वि चक्ष्वेत्येषापि[8] गृह्यते । कुषुम्भकादिमण्डलर्षितर्पणे[9] च वसिष्ठस्य पावमानीनां च मध्ये प्रगाथ इति मन्त्र उच्यते । आरण्यके च तस्माद् वसिष्ठस्तस्मात् पावमान्य[10] इति सप्तमनवममण्डलस्थप्रशंसामध्ये तस्मात् प्रगाथा[11] इति हि समामनन्ति । यद्येवमेभिरेव हेतुभिरन्यत्रापि मण्डलग्रहणं न कर्तव्यम् । सत्यम् । यत्र यत्र क्रियते[12] तत्र तत्रान्यदेव[13] प्रयोजनमस्ति । किं तत् ? असत्यपवादे सामान्यर्षित्वादिति ।

अथोत्तरार्थं परिभाषते—

परं गायत्रं प्राग्वत्सप्रेः ॥६॥

प्र देवं दश वत्सप्रीर्भालन्दन[14] इति वक्ष्यति । दिवस्परि द्वादश वत्सप्रीराग्नेयं

---

१. 'शिष्टा...गातीति' 'अष्ट...वत्ये' 'वसिष्ठः' इति नास्ति मै० ।
२. 'यथाकोशं पाठः ! 'अन्नणीति' पाठः स्यात् ? तु०—अष्टा० ६।४।१६७॥
३. अयं पक्षो वैकल्पिकः प्रतिभाति ।
४. 'संख्या' इति पु० १, पु० २, गो० ।
५. अनुवाकानु० श्लोक ३२ ।
६. अनुवाकानु० श्लोक ३५ ।
७. तु०—मैक्समूलरकृते 'प्राचीनसंस्कृतवाङ्मय'-ग्रन्थे टिप्पणी (चौखम्बा सं० पृष्ठ १६४) ।
८. ऋ० ७।१०४।२५
९. '०तर्पणं' इति पु० १, पु० २ ।
१०. ऐत० आ० २।२।२।२.४॥
११. ऐत० आ० २।२।२।३॥
१२. 'प्रयोजनं' इति पु० १, पु० २ ।
१३. 'तत्रान्यत् प्र०' इति गो०, मै० ।
१४. का० सर्वा० ५०।५॥

त्विति[1] तु[2] न गृह्यतेऽवरत्वात् । अतो वत्सप्रिसंशब्दनात् प्रागतः परं छन्दोऽनुक्तौ गायत्रं छन्द इति वेदितव्यम् । तेनेदं वसो द्विच-वारिंशद्[3] इत्यादौ गायत्री छन्दः । परमिति शक्यमकर्तुम् ।।६।।

ऋषिश्चानुक्तगोत्र प्राङ् मत्स्यात् काण्वः ।।७।।

त्यान्नु सैका मत्स्यः सांमद[4] इति वक्ष्यति । अतो मत्स्यसंशब्दनात् प्रागतः परमनुक्तगोत्रोऽर्षिश्च[5] काण्वः कण्वगोत्र इति वेदितव्यम् । तेन वक्ष्यमाणमेधातिथ्यादयः काण्वा भवन्ति । चेति प्रागिति च शक्यमकर्तुम् । परमित्यनुकर्षणार्थस्तु चकारो न भवति, पूर्वत्रैव तस्य व्यर्थत्वात् । प्राक् पञ्चम्याः प्रत्यासत्तेश्च लभ्यते । यथा[6]—स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनाद्[7] इति ।।७।।

[१] मा चिच्चतुस्त्रिंशन् मेधातिथिमेध्यातिथी ऐन्द्रं बार्हतं द्विप्रगाथादि द्वित्रिष्टुबन्तमाद्यं द्वृचं प्रगाथोऽपश्यत् स घौरः सन् भ्रातुः कण्वस्य पुत्रतामगात् प्लायोगिश्चासङ्गो यः स्त्रीभूत्वा पुमानभूत् स मेध्यातिथये दानं दत्त्वा स्तुहि स्तुहीति चतसृभिरात्मानं तुष्टाव पत्नी चास्याङ्गिरसी शश्वती पुंस्त्वमुपलभ्यैनं प्रीतान्त्यया तुष्टाव ।।८।।

अन्यत् ।[8] मेधातिथिर्मेध्यातिथिश्च द्वावृषी सहापश्यतां तौ च काण्वौ[9] । अत्र मेधातिथेः काण्वत्वं न विधेयम् अग्निं द्वादश मेधातिथिः काण्व[10] इत्युक्तेरेव सिद्धेर्मेध्यातिथेस्तु विधेयमेव । ऐन्द्रमिति मण्डलाद्याग्नेयत्वनिवृत्त्यर्थम् । बृहतीछन्दस्कं सूक्तम् । द्विप्रगाथादि द्वित्रिष्टुबन्तम् । द्वौ प्रगाथावादौ यस्य तद् द्विप्रगाथादि । द्वे त्रिष्टुभावन्ते यस्य तद् । बहुव्रीहिभ्यां कर्मधारयः । द्वावेव बहुव्रीहिव्यस्तौ प्रगाथौ च बार्हतौ । आद्यातृतीये बृहत्यौ द्वितीयचतुर्थ्यौ सतोबृहत्यावित्यर्थः । अयं च गायत्र्यपवादः[8] । अत्राद्यं द्वृचं प्रगाथो नामर्षिरपश्यत् । मेध्यातिथिमेधातिथ्योरपवादः[8] ।

---

१. का० सर्वा० ५६।१३।।
२. 'वत्सप्रिरित्ययं तु' इति पु० १, पु० २, गो० ।
३. का० सर्वा० ३६।६।।
४. का० सर्वा० ४४।२२।।
५. 'च' इति नास्ति पु० १, पु० २ ।
६. 'यथा' इति नास्ति पु० १, पु० २ ।
७. अष्टा० ४।१।८७।।
८. 'अन्यत्' 'बृहती…वादः' 'मेधा…वादः' इति नास्ति मै० ।
९. 'काण्वावित्युक्तं' इति पु० १, पु० २, गो० ।
१०. का० सर्वा० १।१३।।

अनश्यदिति विस्पष्टार्थम् । न च प्रगाथशब्दस्य बृहतीसतोबृहतीत्वं निवर्त्यर्षिनामत्वार्थता[1] द्विप्रगाथादीत्येव तस्योक्तत्वाद्, आद्यं द्वृचं प्रगाथ इत्यनन्वयाच्च ।

आरण्यके तर्पणे च प्रगाथा इति यद्वृचः[2] ।
तत्रान्येषामप्यृषीणां प्रगाथत्वमनेन हि ॥
मण्डलादेर्दर्शकेन साहचार्याच्छतर्चिवत् ।
व्याख्यातं हि शतर्चित्वमाद्यमण्डलदर्शिनाम् ॥

अथ प्रगाथस्य घोरपुत्रस्य कण्वभ्रातुः पुत्रत्वम्[3] उपपादयति—स घौर इत्यादि । स प्रगाथो घोरपुत्रः सन् भवन्[4] भ्रातुर्ज्येष्ठस्य कण्वस्य पुत्रतां पुत्रत्वं प्राप्तवान् । कथम् ? अत्रेतिहासः—

प्रगाथो घोरतनयः कण्वे ज्येष्ठं तु निर्गते ।
प्रविश्य तद्गृहं श्रान्तस्तत्पत्न्यङ्के[5] निषण्णवान् ॥१॥
सुष्वाप च ततः कण्वः क्षुधितोऽभ्यागतो वनात् ।
पत्नीमपृच्छत् क्रोधान्धस्त्वदङ्के कः स्वपित्ययम् ॥२॥
सोवाच[6] त्वत्कनिष्ठोऽयं पुत्रवल्लालितो मया ।
युष्मज्जनन्यङ्कमत्या[7] विश्वस्तः स्वपिति प्रभो ॥३॥
जहि कोपं शाम्य मुने पुत्र एवावयोरिति ।
इति पत्न्या वचः श्रुत्वा गतक्रोध उवाच सः ॥४॥
अद्य प्रभृति न भ्राता मम पुत्रो भवत्विति[8] ।
इत्थं[9] भ्रातुस्तु कण्वस्य प्रगाथः पुत्रतामगात् ॥५॥[10]

अथ[11] स्तुहि स्तुहीदेत इति चतुर्ऋचस्यान्वस्य स्थूरमित्यन्त्यायाश्चर्षिदैवतविशेषज्ञानर्थम्[12] इतिहासमाह—प्लायोगीत्यादि । प्लायोगिः[13] प्लयोगनाम्नः[13] पुत्रश्चासङ्गो नामासीत् । तं विशिनष्टि—यः स्त्रीत्यादि । य आसङ्गो देवशापात् पूर्वं स्त्रीभूत्वा पश्चात् तपोबलेन पुमानेवाभूत् स एवंभूत[14] आसङ्गो मेधातिथये महर्षये

---

१. '०तीत्वर्षिनामत्वार्थं' इति पु० १, पु० २। '०तीत्वनिवृत्त्यर्थं ऋषिनाम०' इति गो०।
२, 'यद्वृचः' इति पु० १, गो० । 'बह्वृचः' इति पु० २ ।
३. 'काण्वत्वं' इति पु० १, पु० २ ।
४. 'भवन्' इति नास्ति पु० १, पु० २ ।
५. 'शान्त०' इति पु० १, पु० २ ।
६. 'सावोच' इति पु० १, गो० ।
७. '०न्यंक इव' इति पु० १, पु० २, गो० ।
८. '०स्त्वयं त्विति' इति पु० १।
९. 'इति' इति पु० १, पु० २, गो० ।
१०. तु०—बृ० दे० ६।३५-३९॥
११. 'अथ' इति नास्ति पु० १, पु० २ ।
१२. '०ज्ञापनार्थम्' इति पु० २ ।
१३. 'प्र०' इति पु० १ ।
१४. 'एवं त' इति पु० १, पु० २ ।

वहु दानं दत्त्वात्मानं स्वान्तरात्मानं दत्तदानं स्तुहि स्तुहीति चतसृभिर्ऋग्भिः स्तुतवान्। अस्यासङ्गस्य पत्नी च भर्तुः स्त्रीत्वेन खिन्ना सती शश्वती नामाङ्गिरस्यङ्गिरसः पुत्री तपोवलेन लब्धपुंस्त्वं प्रजननमुपलभ्य प्रीतैनमासङ्गम्[1] अन्त्ययान्वस्य स्थूरमित्येतया तुष्टाव स्तुतवती[2] ॥८॥

[२] इदं वसो द्विचत्वारिंशन मेधातिथिराङ्गिरसश्च प्रियमेधः स्वादवोऽनुष्टुवन्त्याभ्यां मेधातिथिर्विभिन्दोर्दानं तुष्टाव ॥९॥

सुतम्। काण्वो मेधातिथिः प्रियमेधस्त्वङ्गिरोगोत्र इति द्वावृषी सहापश्यताम्[3]। स्वादवः सोमा आ याहीत्येषानुष्टुप्[4]। शिष्टा एकचत्वारिंशद् गायत्र्यः।[3] शिक्षा विभिन्दो[5] इत्याभ्यां काण्वो मेधातिथिरेव प्रियमेधरहितो विभिन्दोर्महाराजस्य दानं स्तुतवान्। अनयोरयमेवर्षिः। न प्रियमेध इत्यर्थः। सर्वत्रास्तौदिति वाच्ये तुष्टावेत्यनुक्रमण्यनुकरणमेव। आदितश्चत्वारिंशत् इन्द्रः। अन्त्ये द्वे विभिन्दुदानदेवत्ये[3] ॥९॥

[३] पिव चतुर्विंशतिर्मेध्यातिथिः प्रागाथं त्वनुष्टुप् गायत्र्यौ बृहती चान्त्या कौरयाणस्य पाकस्थाम्नो दानस्तुतिः ॥१०॥

सुतस्य। मेध्यातिथिर्नाम काण्वः। बार्हतं प्रागाथमिदं सूक्तमुत्तरं च। यं मे दुरिन्द्रो मरुत [3]इत्येकविंश्यनुष्टुप्। अथ द्वे गायत्र्यौ। अथ बृहती। एताश्च तस्रोऽन्त्याः कुरयाणपुत्रस्य पाकस्थाम्नो राज्ञो दानस्तुतिः। आसामनुष्टुब्गायत्र्युवितः प्रगाथत्वापवादः। प्रागाथं त्विति गायत्रत्वापवादः। आदौ विंशताविन्द्रः। अथ पाकस्थामानम्[3] ॥१०॥

[४] यदिन्द्र सैका देवातिथिस्तृचोऽन्त्यः पुरउष्णगन्तः कुरुङ्गस्य दानस्तुतिस्तत्पूर्वाश्चतस्रः पौष्ण्यो वा ॥११॥

प्राक्। एकविंशतिः। देवातिथिर्नाम काण्वः[3]। स्थूरं राधः शताश्वमित्यन्त्यस्तृचः पुरउष्णिगन्तः। वृक्षाश्चिन्म इत्येषा पुरउष्णिक्। आद्यो द्वादशको द्वावष्टकौ[6]

१. 'प्रीतमेन०' इति पु० १, पु० २। 'प्रीत एन०' इति गो०।
२. सायणोऽपि स्वभाष्ये (ऋ० ८।१।१) कथानकमिदं वर्णयामास।
३. 'सुत…ताम्' 'शि…त्र्यः' 'आदि…देवत्ये' 'सुतस्य…इति' 'आसाम…मानम्' 'प्राक्…काण्वः' इति नास्ति मै०।
४. ऋ० ८।२।२८॥
५ ऋ० ८।२।४१-४२॥
६. द्र०—का० सर्वा० परि० ५।२॥

यस्य[1]। स एव तृचः कुरुङ्गस्य राज्ञो दानस्तुतिः। तत्पूर्वाः कुरुङ्गदानदेवत्यतृचात् पूर्वभूताश्चतस्रः प्र पूषणं वृणीमह इति[1]। पञ्चदश्याद्याः पूषदेवत्या इन्द्रदेवत्या वा। न चात्र देवतानुक्रमण्यां[2] देवातिथेर्यच्चेत्यादौ पूषदेवत्यत्वविकल्पादर्शनाद्[3] यथोपदेशम्[4] इति प्रतिज्ञाबाधः शङ्कनीयः। बृहद्देवतायाम्—

पौष्णौ प्रेति[5] प्रगाथौ द्वौ मन्यते शाकटायनः।[6]

इत्युपदेशात्। इदं च प्रागाथम्। अयुजो बृहत्यो युजः सतोबृहत्यः। अन्त्या पुरउष्णिक्[1] ॥११॥

॥ इत्येकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥३९॥

---

[४०]

[५] दूरादेकान्नचत्वारिंशद् ब्रह्मातिथिराश्विने द्विबृहत्यनुष्टुबन्तेऽन्त्याः पञ्चार्धर्चाश्चैद्यस्य कशोर्दानस्तुतिः ॥१॥

इहेव। एकेन चत्वारिंशन्न भवतीत्येकान्नचत्वारिंशत्। एकोनचत्वारिंशदिति यावत्। एकादिश्चैकस्य चादुग्[7] इत्यादुक्प्रकृतिभावौ। ब्रह्मातिथिर्नाम काण्वः।[1] आश्विने। अश्विदेवत्ये। द्विबृहत्यनुष्टुबन्ते। द्वे बृहत्यावनुष्टुप् चान्ते यस्य तस्मिन्नेव विशिष्टे सूक्तेऽन्त्या अर्धर्चाः पञ्च चैद्यस्य चेदिराजपुत्रस्य कशुनाम्नो नृपस्य दानस्तुतिः। चेदिशब्दाद् वृद्धेत्कोसलाजादाञ्ञ्यङ्[8] चैद्यः। आदौ षट्त्रिंशद् गायत्र्यः। अन्त्यपञ्चार्धर्चवर्जम् इन्द्रः। तत्र कशुदानम्[1] ॥१॥

[६] महाँ इन्द्रोऽष्टाचत्वारिंशद् वत्सस्तृचोऽन्त्यस्तिरिन्दिरस्य पार्शव्यस्य दानस्तुतिः ॥२॥

यः। वत्सो नाम काण्वः। शतमहं तिरिन्दिर इत्यन्त्यस्तृचः पर्शुनामराजपुत्रस्य[9] तिरिन्दिरनाम्नो राज्ञो दानस्तुतिः। पर्शोरपत्ये[10] प्राप्तस्याणो ण्यः। ओर्गुणः[11]। गायत्री। आदौ पञ्चचत्वारिंशतीन्द्रः[1] ॥२॥

---

१. 'वृक्षा · यस्य' 'प्र···इति' 'इदं···उष्णिक्' 'इहेव · काण्वः' 'आदौ···दानम्' 'यः··· इति' 'आदौ ··तीन्द्रः' इति नास्ति मै०। २. '०नुक्रमः' इति पु० १, पु० २।

३. '०कल्पदर्श०' इति पु० १, पु० २, गो०। ४. का० सर्वा० परि० १।१॥

५. 'प्रात' इति नास्ति पु० १, पु० २। 'प्रति' इति गो०।

६. बृ० दे० ६।४३॥ ७. अष्टा० ६।३।७६॥ ८. अष्टा० ४।१।१७१॥

९. 'परश्व०' इति पु० १। १०. 'परशोः' इति पु० १, पु० २।

११. अष्टा० ६।४।१४६॥

[७] प्र यद्वः षट्त्रिंशत् पुनर्वत्सो मारुतम् ।।३।।

त्रिष्टुभम् । पुनर्वत्सो नाम काण्वः । मारुतं मरुद्देवत्यम् । गायत्रम्[1] ।।३।।

[८] आ नस्त्र्यधिका सध्वंस आश्विनं ह्यानुष्टुभं तु ।।४।।

विश्वाभिः । त्रयोविंशतिः । सध्वंसो नाम काण्वः । आश्विनमिदमुत्तरे च द्वे । अनुष्टुप्छन्दस्कमिदमुत्तरं च । गायत्रत्वापवादः[1] ।।४।।

[९] आ नूनं सैका शशकर्णोऽन्त्ये गायत्र्या उपाद्ये चाद्या चतुर्थी षष्ठी चतुर्दश्याद्ये च बृहत्यः पञ्चमी ककुब् दशम्याद्यास्त्रिष्टुब्विराड्जगत्यः ।।५।।

अश्विना । एकविंशतिः । शशकर्णो नाम काण्वः । विंश्येकविंश्यावुपाद्ये च द्वितीयातृतीयाविति चतस्रो गायत्र्यः । आद्या प्रथमा चतुर्थी षष्ठी[2] चतुर्दश्याद्ये च द्वे चतुर्दशी पञ्चदशी चेति पञ्च बृहत्यः । पञ्चमी ककुप्, अष्टकद्वादशाष्टकरूपा[3] । दशम्याद्यास्त्रिष्टुब्विराड्जगत्यः । दशमी त्रिष्टुप्, एकादशी विराट्, द्वादशी जगतीत्यर्थः । शिष्टा अनुष्टुभः । तत्र गायत्रीबृहतीककुप्त्रिष्टुब्विराड्जगतीवचनं गायत्रापवादानुष्टुभत्वापवादः । अश्विनौ[2] ।।५।।

[१०] यत् स्थः षट् प्रगाथोऽपश्यद् बृहती मध्येज्योतिरनुष्टुबास्तारपङ्क्तिः प्रगाथः ।।६।।

दीर्घप्रसद्मनि । प्रगाथो नाम काण्वः । स घोरः सन् भ्रातुः कण्वस्य पुत्रतामगादित्युक्तम्[2] । छन्दःसाङ्कर्यबाधार्थमपश्यदिति[4] कीर्तितम्[5] । प्रगाथशब्दे संदेहश्छन्दो वाप्यृषिरिति[6] । अन्यथोत्तरप्रगाथस्याप्यृषिनामत्वमाद्यस्यच्छन्दोवाचित्वं च स्यात् । तत्र द्वितीया सतोबृहती षष्ठ्यास्तारपङ्क्तिरिति[7] प्रसज्येत । प्रथमाबृहती । द्वितीया मध्येज्योतिः । तृतीयानुष्टुप् । चतुर्थ्यास्तारपङ्क्तिः । पञ्चमी बृहती । षष्ठी सतोबृहती । छन्दोवचनं गायत्रत्वापवादः । तत्र मध्येज्योतिरुक्ता—द्वादशिनस्त्रयोऽष्टकश्च ज्योतिष्मती, यतोऽष्टकस्ततो ज्योतिरिति[8] । आस्तारपङ्क्तिः । सादावष्टाक्षरौ

---

१. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।

२. 'अश्विना ··षष्ठी' 'इति पञ्च···अश्विनौ' 'दीर्घ ··त्युक्तम्' इति नास्ति मै० ।

३. द्र०—का० सर्वा० परि० ५।३।।

४. 'सांकर्यंनाधर्यंणपश्यदिति' इति पु० १ । 'शाकटायनाचार्येणापश्यदिति' इति पु० २ ।

५. का०सर्वा० ३९।८।।

६. '०षिस्त्विति' इति पु० १, गो० । '०षि' इति पु० २ ।

७. '०बृहती प्रस्तार०' इति पु० १, पु० २, गो० ।

८. का० सर्वा० परि० ६।७-८।।

यस्यास्ततो द्वौ द्वादशाक्षरौ[1]। अश्विनौ[2] ॥६॥

[११] त्वमग्ने दश वत्स आग्नेये गायत्रेऽन्त्या[3] त्रिष्टुबाद्या प्रतिष्ठोपाद्या वर्धमाना ॥७॥

व्रतपाः। वत्सो नाम काण्वः। अग्निदेवत्यम्। गायत्रेऽस्मिन् सूक्तेऽन्त्या त्रिष्टुप्[2]। गायत्र इत्यनुवादो[4] न विधिः। स च त्रिष्टुबन्तत्वप्राप्तशिष्टाजगतीत्वनिवृत्त्यर्थम्[5]। आद्या प्रथमा प्रतिष्ठा। अष्टकसप्तकषट्कवती[6]। उपाद्या द्वितीया वर्धमाना[7]। षट्सप्तकाष्टकवती[2] ॥७॥

॥ इति चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४०॥

---

[४१]

[१२] य इन्द्र त्रयस्त्रिंशत् पर्वत औष्णिहं तु ॥१॥

सोमपातमः। पर्वतो नाम काण्वः। उष्णिक्छन्दस्कमिदमुत्तरं च। इन्द्रः[8] ॥१॥

[१३] इन्द्रः सुतेषु नारदः ॥२॥

त्रयस्त्रिंशत्। सोमेषु। नारदो नाम काण्वः। उष्णिक्। इन्द्रः[8] ॥२॥

[१४] यदिन्द्र पञ्चोना गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्व्यायनौ ॥३॥

अहं यथा। पञ्चदश[2]। गोषूक्तिश्चाश्वसूक्तिश्च द्वावृषी। तौ गोत्रतः काण्व्यायनौ। कण्वशब्दाद् गर्गादित्वाद्[9] यञ्। यञिञोश्चेति[10] फक्। आपत्यस्य च तद्धितेऽनातीति[11] यलोपाभावः। इदन्ते नामनी नैव नान्ते इति विनिर्णयः। गोषूक्तिश्चाश्वसूक्तिश्चेत्येवं सामसु[12] दर्शनात्। गायत्रम्। इन्द्रः[2] ॥३॥

[१५] तम्वभि सप्तोनौष्णिहम् ॥४॥

---

१. तु०—का० सर्वा० परि० ८।७॥

२. 'प्रथमा…अश्विनौ' 'व्रत…त्रिष्टुप्' 'आद्या…ष्टकवती' 'अहं…दश' 'गायत्रं। इन्द्रः' इति नास्ति मै०। ३. '०न्त्या दैवी त्रि०' इति गो० मूलमात्रे। ४. का० सर्वा० ३९।६।

५. का० सर्वा० परि० १२।१३। ६. का० सर्वा० परि० ४।८॥

७. का० सर्वा० परि० ४।७॥ ८. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै०।

९. द्र०—अष्टा० ४।१।१०५॥ १०. अष्टा० ४।१।१०१॥

११. अष्टा० ६।४।१५१॥

१२. तु०—आर्षेय ब्रा० २।१।९॥ पञ्चविंश ब्रा० १९।४।१०॥

प्र गायत । त्रयोदश । उष्णिक्छब्दादुष्णिहाशब्दाद्वा तद्धित आदिवृद्धिः[1]। उष्णिगक्षरैर्भवति[2] उष्णिहया सविता सं बभूवेति चाम्नायते[3] । गोषूक्तचश्वसूक्तिनौ काण्व्यायनौ । इन्द्रः[1] ।।४।।

[१६] प्र सम्राजं द्वादशेरिम्बिठिः ।।५।।

चर्षणीनाम् । इरिम्बिठिर्नाम काण्वः । गायत्रम् । इन्द्रः[4] ।।५।।

[१७] आ याहि पञ्चोना प्रगाथान्तम् ।।६।।

सुषुमा । पञ्चदश । गायत्रं सूक्तम् । तत्र चतुर्दशी बृहती । पञ्चदशी सतोबृहती । इरिम्बिठिः । इन्द्रः[4] ।।६।।

[१८] इद ह द्व्यधिकादित्यमौष्णिहमष्टम्यश्विभ्यां पराग्निसूर्यानिलानाम्[5] ।।७।।

नूनम् । द्वाविंशतिः । आदित्यदेवत्यम् । उत त्या दैव्येत्यष्टम्यश्विभ्याम्[6], अश्विनोरर्थाय । परा नवमी [6]शमग्निरित्येषाग्निसूर्यानिलानां स्तुतित्वेन सम्बन्धिनी । तत्रानिलो वायुः । शिष्टा विंशतिरादित्यदेवत्याः । इरिम्बिठिः[6] ।।७।।

[१९] तं गूर्धय सप्तत्रिंशत् सोभरिराग्नेयं काकुभं प्रागाथं ह पितुर्न द्विपदान्त्ये ककुप्पङ्क्ती त्रसदस्योर्दानस्तुतिस्तत्पूर्वे उष्णिक्सतोबृहत्यावादित्येभ्यः ।।८।।

स्वर्णरम् । सोभरिर्नाम काण्वः । आग्नेयं सूक्तम् । काकुभं प्रागाथं ह । काकुभप्रगाथेन ककुप्सतोबृहतीद्वन्द्वेन व्याप्तम् । अयुजः ककुभः, युजः सतोबृहत्य इत्यर्थः । काकुभमिति बार्हतत्वं मा भूत् । प्रागाथमिति ककुम्मात्रव्याप्तिर्मा भूत् । एवमिदमुत्तराणि च त्रीणि । पितुर्न पुत्रः सुभृतो दुरोण इति सप्तविंशी द्विपदा विंशत्यक्षरा विराट् । अदान्मे पौरुकुत्स्य उत मे प्रयियोरिति[1] सूक्तस्यान्त्ये षट्त्रिंशीसप्तत्रिंश्यौ यथासंख्यं ककुप्पङ्क्ती सत्यौ त्रसदस्युनाम्नो राज्ञो दानस्तुतिः। तत्पूर्वे त्रसदस्युदानस्तुतिद्व्यचात् पूर्वे यमादित्यास इति[1] चतुस्त्रिंशी यूयं राजान इति[1] पञ्चत्रिंशी च

---

१. 'प्र···वृद्धिः' 'गो०···इन्द्रः' इति नास्ति मै० । 'उष्णिक्छन्दानुष्णिहादुष्णिहाशब्दाद्वात्यादि वृद्धिः' इति पु० १, गो० । 'उष्णिक्छन्दोनुष्णिहादुष्णिहशब्दात्तद्धितेत्यादिवृद्धि इति पु० २ । २. '०क्षरैर्नवभिः' इति पु० १, पु० २ । ३. ऋ० १०।१३०.४।।

४. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।

५. '०लानां देवेभिरित्यदितेरदितिर्न इति च द्वे द्वे' इति गो० मूलमात्रे ।

६. 'नूनम्···दैव्येति' 'शम···त्येषा' 'इरिम्बिठि' 'स्वर्णर···रिति' 'यमा···इति' 'यूयं ···इति' इति नास्ति मै० ।

यथाक्रममुष्णिक्सतोबृहत्यौ सत्यावादित्येभ्य आदित्यानामर्थाय ॥८॥

[२०] आ गन्ता षड्विंशतिर्मारुतम् ॥९॥

मा । मरुद्देवत्यं । काकुभः प्रगाथाः । सोभरिः काण्वः[1] ॥९॥

॥ इत्येकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४१॥

---

[४२]

[२१] वयमु द्व्यूनान्त्ये द्वृचे चित्रस्य दानस्तुतिः ॥१॥

त्याम् । अष्टादश । अन्त्ये द्वृचे इन्द्रो वा घेदियदित्यादिके चित्रस्य राज्ञो दानं स्तूयते । काकुभः प्रगाथाः । आदितः षोडशस्विन्द्रः । अन्त्ययोश्चित्रस्य दानम् । सोभरिः काण्वः[1] ॥१॥

[२२] ओ त्यमाश्विनं त्रिप्रगाथादि बृहत्यनुष्टुबेकादश्याद्ये ककुम्मध्येज्योतिषी ॥२॥

द्व्यूना । अह्वः । त्रिप्रगाथादि सूक्तम् । आद्यातृतीयापञ्चम्यो बृहत्यः । द्वितीयाचतुर्थीषष्ठ्यः सतोबृहत्यः । इदं च काकुभप्रगाथत्वं मा भूदिति । अथ सप्तमी बृहती । अष्टम्यनुष्टुप् । अथ काकुभः प्रगाथ एकोऽधिकारात् । एकादश्याद्ये द्वे यथाक्रमं ककुम्मध्येज्योतिषी । अथाधिकारतः काकुभास्त्रयः प्रगाथाः । सोभरिः काण्वः । आश्विनम्[1] ॥२॥

[२३] ईळिष्व त्रिंशद् विश्वमना वयश्व आग्नेयमौष्णिहं ह ॥३॥

हि । विश्वमना वैयश्वः । व्यश्वपुत्रः । व्यश्वादृष्यणि वृद्धिप्रतिषेध ऐच्[2] । अग्निदेवत्यम् । औष्णिहं ह । इदं सूक्तमुष्णिहा व्याप्तमुत्तराणि च त्रीणि[1] ॥३॥

[२४] सखायस्तृचोऽन्त्यः सौषाम्णस्य वरोर्दानस्तुतिरन्त्यानुष्टुप् ॥४॥

त्रिंशत । आ[3] । अन्त्यस्तृचो यथा वरो सुषाम्ण इत्यादिः[3] सुषामाख्यराजपुत्रस्य वरुनाम्नो राज्ञो दानस्तृतिः । सुषामशब्दादपत्येऽणि न मपूर्वोऽपत्य[4] इति न प्रकृतिभावः । अनुष्टुबन्त्या त्रिंशी । शिष्टा उष्णिहः । वैयश्वो विश्वमनाः । इन्द्रः[3] ॥४॥

---

१. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।   २. द्र०—अष्टा० ७।३।३॥
३. 'त्रिंशत् । आ' 'यथा…इत्यादिः' 'अनुष्टुब…इन्द्रः' इति नास्ति मै० ।
४. अष्टा० ६।४।१७०॥

[२५] ता वां चतुर्विंशतिर्मैत्रावरुणं दशम्याद्यास्तिस्रो वैश्वदेव्य उपान्त्योष्णिग्गर्भा ।।५।।

विश्वस्य[1] । दशम्याद्यास्तिस्रो द्वादश्यन्ता वैश्वदेव्यः[2]। त्रयोविंश्युष्णिग्गर्भा षट्सप्तैकादशकवती[3]। आदौ नवान्त्या द्वादश मित्रावरुणदेवत्याः। उपान्त्यावर्जमुष्णिहः । विश्वमना वैयश्वः[1] ।।५।।

[२६] युवोः पञ्चाधिका व्यश्वो वाङ्गिरस आश्विनं विंश्याद्या वायव्यास्तत्पूर्वाश्चतस्रो गायत्र्योऽन्त्यैकविंश्यौ च विंश्यनुष्टुप् ।।६।।

उ षु । पञ्चविंशतिः । अङ्गिरस पुत्रो व्यश्वो वर्षिः, वैयश्वो विश्वमना वा । आङ्गिरस इति काण्वत्वं मा भूत् । अश्विदेवत्यम् । विंश्याद्या युक्ष्वा हि त्वमित्याद्याः षड् वायुदेवत्याः। तत्पूर्वा वायव्यषड्चः पूर्वभूता वाहिष्ठो वामित्याद्याश्चतस्रो गायत्र्यः । अन्त्या स त्वन्नो देवेत्येषा नव वायवृतस्पत इत्येकविंशी च द्वे गायत्र्यौ[1]। युक्ष्व हीति वायव्यानामादिभूता विंश्यनुष्टुप । यद्येवं पूर्वत्रैव विंश्यनुष्टुवाद्या वायव्या इत्युच्यताम् । न चाद्यानां तिसृणां वायव्यत्वप्रसङ्गस्तत्पूर्वा इत्यसङ्गतेः । सत्यमुक्तम् । पुनर्विंशीवचनार्थोऽत्र विचिन्त्यताम् । शिष्टा उष्णिहः[1] ।।६।।

[२७] अग्निरुक्थे द्व्यधिका मनुर्वैवस्वतो वैश्वदेवं ह प्रागाथम् ।।७।।

पुरोहितः । द्वाविंशतिः[1] । मनुर्नाम विवस्वतः सवर्णायां[4] सरण्यूछायायां जातः ।

यं सवर्णा मनुं नाम लेभे पुत्रं विवस्वतः ।[5]

इति बृहद्देवतायां[6] दर्शनात् । वैश्वदेवमिदमुत्तराणि च त्रीणि । प्रागाथम् । युजः सतोबृहत्योऽत्र बृहत्यस्त्वयुजो मताः[1] ।।७।।

[२८] ये त्रिंशति पञ्चोपान्त्या पुरउष्णिक् ।।८।।

त्रयः । उपान्त्या[1] चतुर्थी पुरउष्णिक् द्वादशाष्टकद्वयवती[1] । शिष्टाश्चतस्रो

---

१. 'विश्वस्य' 'त्रयो...वैयश्वः' 'उ षु...गायत्र्यौ' 'शिष्टा उष्णिहः' 'पुरो...शतिः' 'वैश्व...मताः' 'त्रयः । उपान्त्या' 'द्वा...वती' इति नास्ति मै० ।

२. 'वैश्वदेव्यं' इति नास्ति पु० १ । 'वैश्वदेव्यो वा' इति पु० २ । 'वैश्वदेव्यो वा' इति सूत्रे पु० १, पु० २ ।

३. तु०—का० सर्वा० परि० ४।३।।

४. 'सुवर्णायां' इति पु० १ । 'सुपर्णावि' इति पु० २ ।

५. 'यं सुवर्नाम सुवर्त्तेमा लेभे पुत्रं बृहस्पत' इति पु० १ । 'सुपर्णा नाम मनुर्वचनमालेभे बृहस्पत' इति पु० २ ।

६. द्र०—बृ० दे० ६।६८।।

गायत्र्यः । मनुः । विश्वे देवाः । श्रूयते च—ये त्रिंशति त्रयस्पर इति वैश्वदेवमिति[1] । तानि गायत्राणि गायत्रतृतीयसवन एष त्र्यह इति[1] च ॥८॥

[२९] बभ्रुर्दश कश्यपो वा मारीचो द्वैपदम् ॥९॥

एकः । कश्यपो नाम मरीचिपुत्र ऋषिः । प्रकृतो वा मनुर्वैवस्वतः[2] ।

मारीचत्वं कश्यपस्य किं नोक्तं जातवेदसि[3] ।
तत्रोक्तावत्र काण्वत्वं स्यादस्येत्यत्र कथ्यते ।
क्वचिदित्यादिनोक्तत्वान्नेति चेत् तर्हि पृच्छ तम् ॥

दशापि शंसने द्विपदा विंशत्यक्षरा विराजः । श्रूयते च—बभ्रुरेको विषुणः सूनरो युवेति द्विपदा शंसतीति[4] । अध्ययने चैता द्विर्द्विपदाः पञ्चर्चं समामनेयुः[5] । विश्वे देवाः[2] ॥९॥

[३०] नहि वश्चतुष्कं पुरउष्णिग्बृहत्यनुष्टुवन्तम् ॥१०॥

अस्ति । चतुर्ऋचमिदम् । पुरउष्णिग्बृहत्यनुष्टुवन्तम्[2] । आद्या गायत्री, द्वितीया पुरउष्णिक्, तृतीया बृहती, चतुर्थ्यनुष्टुवित्यर्थः[2] । द्वितीयाद्याः पुरउष्णिग्बृहत्यनुष्टुभ इत्यनुक्तिर्लाघवाय । अनुवर्तते मनुर्वैवस्वतो न कश्यपो मारीचो वाविशिष्टत्वात् । विश्वे देवाः[2] ॥१०॥

[३१] यो यजाति द्व्यूनात्रेज्यास्तवो यजमानप्रशंसा च येत्यादि-
पञ्च दम्पत्योः शिष्टास्तदाशिषोऽनुष्टुप् चतुष्पङ्क्त्यन्तं
नवम्यनुष्टुब्दशमी पादनिचृत् ॥११॥

यजाते । अष्टादश[2] । आदितश्चतुर्ऋचमिज्यास्तवो यज्ञस्तवोऽस्मिन् सूक्ते । व्रजयजोरिति[6] भावे क्यप्, सम्प्रसारणम् । ष्टुञो भाव ऋदोरप्[7] । यजमानप्रशंसा चास्ति यष्टारश्च स्तूयन्ते । येत्यादिपञ्चम्यारम्भादत्रेति तु[8] पूर्वचतुर्ऋचोक्तिः प्रतीयते । या दम्पतीत्यादयाः पञ्चर्चो दम्पत्योर्जायापत्योः प्रशंसा । जायाशब्दस्य दम्भावः । पतिशब्द औणादिकः[9] । शिष्टा अन्त्या नव तदाशिषः । दम्पत्योराशिषः ।

---

१. ऐत० ब्रा० ५।२१।१४-१५ ॥

२. 'एकः ···स्वतः' 'विश्वेदेवाः' 'अस्ति···वन्तम्' 'द्वितीया···त्यर्थः' 'विश्वेदेवाः' 'यजाते···दश' 'अस्मिन्···ऋदोरप्' इति नास्ति मै० ।

३. द्र०—का० सर्वा० ७।५॥ वेदार्थदीपिका । ४. ऐत० ब्रा० ५।२१।१३॥

५. द्र०—का० सर्वा० परि० १२।१०॥ ६. अष्टा० ३।३।९८॥

७. अष्टा० ३।३।५७॥ ८. '०रभा पूर्व०' इति पु० १ । '०रम्य पूर्ववत्' इति पु० २ ।

९. '०शब्देनोदितः' इति पु० १ । '०शब्दे अण् आदितः वृद्धिः' इति पु० २ । तु०—उणा० ४।५८॥

अनुष्टुप् चतुष्पङ्क्तचन्तम् । चतुर्दश्यनुष्टुप् । पञ्चदश्याद्याश्चतस्रः पङ्क्तयोऽन्ते यस्य तत् । नवम्यनुष्टुप् । दशमी पादनिचृत् । शिष्टा एकादश गायत्र्यः[1]। शिष्टा इति वान्त्या इति वा शक्यमकर्तुम् ॥११॥

॥ इति द्वाचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४२॥

———

[४३]

[३२] प्र कृतानि त्रिंशन्न मेधातिथिः ॥१॥

ऋजीषिणः । मेधातिथिर्नाम काण्वः । गायत्रम् । इन्द्रः[2] ॥१॥

[३३] वयं घैकोना मेध्यातिथिर्बार्हतं त्रिगायत्र्यनुष्टुबन्तम् ॥२॥

त्वा । एकान्नविंशतिः । मेध्यातिथिर्नाम काण्वः । बृहतीछन्दसा व्याप्तम् । त्रिगायत्र्यनुष्टुबन्तम् । षोडश्याद्यास्तिस्रो गायत्र्य एकोनविंश्यनुष्टुब् अन्ते यस्य तत् । आदौ पञ्चदश बृहत्यः । इन्द्रः[2] ॥२॥

[३४] एन्द्र याहि द्व्यूना नीपातिथिरानुष्टुभं तृचोऽन्त्यो गायत्रस्तं सहस्रं वसुरोचिषोऽङ्गिरसोऽपश्यन् ॥३॥

हरिभिः । अष्टादश । नीपातिथिर्नाम काण्वः । आनुष्टुभम् । अनुष्टुप्छन्दसा व्याप्तम् । अथायदिन्द्रश्चेति[1] षोडश्याद्यास्तिस्रो गायत्र्यः । तं गायत्रं तृचं वसुरोचिर्नामाङ्गिरोगोत्रा ऋषयः सहस्रं सम्भूयापश्यन् । अङ्गिरस इति बहुवचनेनाङ्गिरोवंश्या गृह्यन्ते । कथम् ? अङ्गिरःशब्दादृष्यण् । तस्यात्रिभृगुकुत्सवसिष्ठगोतमाङ्गिरोभ्यश्चेति[3] बहुवचने लुक् । तेनाङ्गिरसा इत्यर्थः[4] । अतो गायत्रेऽन्त्ये तृचे नीपातिथिरपोद्यते । इन्द्रः[1] ॥३॥

[३५] अग्निना चतुर्विंशतिः श्यावाश्व आश्विनमौपरिष्टाज्ज्योतिषं[5] पङ्क्तिमहाबृहतीपङ्क्त्यन्तम् ॥४॥

इन्द्रेण । श्यावाश्वो नामात्रेयः क्वचिन्न्यायेनानुक्तगोत्रे[6] काण्वत्वं न भवति । अश्विदेवत्यम्[1] । औपरिष्टाज्ज्योतिषम् । उपरिष्टाज्ज्योतिश्छन्दसा व्याप्तम् ।

---

१. 'शिष्टा...गायत्र्यः' 'हरि...चेति' 'इन्द्रः' 'इन्द्रेण...देवत्यम्' इति नास्ति मै० ।

२. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० । ३. अष्टा० २।४।६५॥

४. 'अङ्गिरस...इत्यर्थः' इति नास्ति पु० १, पु० २ । ५. '०नमुपरिष्टा०' इति गो० मूलमात्रे । ६. द्र०—का० सर्वा० परि० २।३॥ का० सर्वा० ३९।७॥

द्वादशिनस्त्रयोऽष्टकश्च ज्योतिष्मती, यतोऽष्टकस्ततो ज्योतिरित्युक्तम्[1]। उभयपदवृद्धिश्छान्दसी[1]। पङ्क्तिमहाबृहतीपङ्क्तयन्तम्। पङ्क्तिर्द्वाविंश्यर्वाग्प्रथमित्येषा। चत्वारोऽष्टका जागतश्च महाबृहतीत्युक्तम्[2]। नियतक्रमत्वादितो द्वादशका चतुरष्टका त्रयोविंशी महाबृहती। स्वाहाकृतस्येति चतुर्विंशी पङ्क्तिश्चान्ते यस्य तत्[3] ॥४॥

[३६] अविता सप्त शाक्वरं महापङ्क्त्यन्तम् ॥५॥

असि। शाक्वरम्। शक्वरीछन्दसा व्याप्तम्। महापङ्क्तयन्तम्। श्यावश्वस्य सुन्वत इति षडष्टका महापङ्क्तिः सप्तम्यन्ते यस्य तत्। श्यावाश्व आत्रेयः। इन्द्रः[4] ॥५॥

[३७] प्रेदं महापाङ्क्तमाद्यातिजगती ॥६॥

सप्त। ब्रह्म। आद्यातिजगती द्विपञ्चाशदक्षरा व्यूहेन। सेहान इति द्वितीयाद्याः षण् महापङ्क्तयः षडष्टकाः। श्यावाश्व आत्रेयः। इन्द्रः[4] ॥६॥

[३८] यज्ञस्य दशैन्द्राग्नम् ॥७॥

हि स्थ। इन्द्राग्निदेवत्यम्। अनुक्तेर्दशापि गायत्र्यः। श्यावाश्वः[4] ॥७॥

[३९] अग्निमस्तोषि नाभाक आग्नेयं महापाङ्क्तं हि ॥८॥

दश। ऋग्मियम्। नाभाको नाम काण्वः। महापङ्क्त्या षडष्टकया व्याप्तमिदं सूक्तमुत्तरे च द्वे[4] ॥८॥

[४०] इन्द्राग्नी द्वादशैन्द्राग्नं त्रिष्टुबन्तं द्वितीया शक्वरी ॥९॥

युवम्। इन्द्राग्निदेवत्यम्। द्वादशी त्रिष्टुप्। नहि वां वव्रयामह इति[3] द्वितीया शक्वरी षट्पञ्चाशदक्षरा। इयं च सप्तपदा। श्रूयते हि—द्वितीया सप्तपदा भवति तां गायत्रीं चानुष्टुभं च करोतीति[5]। शिष्टा महापङ्क्तयः। नात्र त्रिष्टुबन्तस्येति[6] शिष्टाजगतीत्वम्, पूर्वत्र हीत्युक्तेरस्यापि महापाङ्क्तत्वात्। नाभाकः काण्वः[3] ॥९॥

[४१] अस्मा ऊ षु दश वारुणं तु ॥१०॥

प्रभूतये। वरुणदेवत्यमिदमुत्तरं च। दशापि महापङ्क्तयः। नाभाकः काण्वः[4] ॥१०॥

---

१. का० सर्वा० परि० ६।७-८॥ 'द्वा…त्युक्तम्' इति नास्ति मै०।
२. का० सर्वा० परि० ६।६॥
३. 'पङ्क्ति…तत्' 'युवम्…इति' 'शिष्टा…काण्वः' इति नास्ति मै०।
४. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै०।
५. ऐत० ब्रा० ५।३।१।१०॥ ६. द्र०—का० सर्वा० परि० १२।१३॥

[४२] अस्तभ्नात् षळर्चनाना वा त्रैष्टुभमन्त्यं वा तृचमाश्विनमानुष्टुभमपश्यत् ।।११।।

द्याम् ।[1] आत्रेयोऽर्चनाना ऋषिरिदमपश्यदथवा प्रकृतः काण्वो नाभाकः । अथवास्य सूक्तस्यान्त्यं तृचमा वां ग्रावाण इत्यादिकमश्विदेवत्यमनुष्टुप्छन्दस्कमेवापश्यदर्चनाना न पूर्वं वारुणं त्रैष्टुभं[2] तृचमपि । प्रथमं वाग्रहणं पक्षे नाभाकप्राप्त्यर्थम् । द्वितीयं त्वर्चनानसः पूर्वतृचदृष्टत्वबाधनार्थं सदर्चनानसो मुक्तेर्नाभाकत्वप्रदर्शनार्थम्[3] । त्रिष्टुबनुष्टुब्वचनं गायत्रत्वापवादः[1] ।।११।।

[४३] इमे त्रयस्त्रिंशद् विरूप आङ्गिरस आग्नेयं तु ।।१२।।

विप्रस्य । विरूपो नामाङ्गिरस इति काण्वत्वापवादः । आग्नेयमिदमुत्तरं च । गायत्रम्[4] ।।१२।।

[४४] समिधाग्निं त्रिंशत् ।।१३।।

दुवस्यत । विरूपः[1] । गायत्रम् । अग्निः । सूत्रेऽपि च दृश्यतेऽस्य पूर्वस्य च गायत्राग्नेयत्वमिमे विप्रस्येति सूक्ते इति[5] ।।१३।।

[४५] आ घ द्विचत्वारिंशत् त्रिशोक आद्याग्नेन्द्री ।।१४।।

ये । द्विचत्वारिंशदिति विभाषा चत्वारिंशदित्येतद्[6] द्व्यष्टन आविकल्पः । त्रिशोको नाम काण्वः । आद्याग्नेन्द्री । अग्नीन्द्रदेवत्या । नेन्द्रस्य परस्येत्युत्तरपदवृद्ध्यभावः[7] । शिष्टा एकचत्वारिंशद् ऐन्द्र्यः । सर्वा गायत्र्यः[4] ।।१४।।

।। इति त्रयश्चत्वारिंशोऽध्यायः ।।४३।।

---

[४४]

[४६] त्वावतस्त्रयस्त्रिंशद् वशोऽश्व्य आ स आदि कानीतस्य पृथुश्रवसो दानस्तुतिराद्या पादनिचृत् पञ्चम्यादि ककुब्गायत्री

---

१. 'द्याम्' 'त्रि...वादः' 'दुव...रूपः' इति नास्ति मै० ।

२. 'न पूर्वः वा त्रैष्टुभं' इति पु०, १, पु० २ ।

३. '०नसमित्युक्तेर्नाभाकः' इति पु० १ । 'सदर्चनामस्यासमित्युक्तेर्नाभाकः' इति पु० २ । 'सप्तर्चनानस इत्युक्तेर्नाभाकः' इति गो० ।

४. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।

५. आश्व० श्रौ० ४।१३।७।।

६. अष्टा० ६।३।४९।।

७. अष्टा० ७।३।२२।।

बृहत्यनुष्टुप् सतोबृहती गायत्री विपरीतोत्तरः प्रगाथो द्विपदा चतुर्विंशिका बृहतीपिपीलिकमध्याककुम्न्यङ्कुशिराविराड्जगत्युपरिष्टाद्बृहतीबृहत्यो[1] विषमपदोत्तरे पङ्क्ती गायत्रीं पङ्क्तिः प्रगाथौ च वायव्यौ गायत्री द्विपदोष्णिक् पङ्क्तिर्वायव्या गायत्री ॥१॥

पुरूवसो[2]। वशो नामाश्वपुत्रः। अश्वादृष्यणर्थे गर्गादियञ्[3]। वृद्धचभावश्छान्दसः। अत्र चा स एतु य ईवदेत्यादिभिः[4] कनीतपुत्रस्य पृथुश्रवःसंज्ञकस्य राज्ञो दानस्तुतिः क्रियते। आ स आदीत्यत्र भिसो लुक् छान्दसः। आ स आदिभिरित्यर्थः। न हि स्तुतिरादीति संगच्छते। दृश्यते हि बृहद्देवतायाम्—

वशायाश्व्याय[5] यत् प्रादात् कानीतस्तु पृथुश्रवाः।
तदत्र संस्तुतं दानमा स एत्वेवमादिभिः[6]॥ इति॥

आदौ चतस्रो गायत्र्योऽनुक्तेः। अथ पञ्चम्यादिभिश्छन्द उच्यते। पञ्चमी दधानो गोमदश्ववदिति ककुब्। मध्यमश्चेत् ककुबित्युक्तम्[7]। अथ षष्ठी गायत्री। अथ सप्तमी बृहती। अष्टम्यनुष्टुप्। नवमी सतोबृहती। अयुजौ जागतौ सतोबृहतीत्युक्तम्[8]। दशमी गायत्री। अथ प्रगाथो विपरीतोत्तरो नाम। बृहतीविपरीते विपरीतोत्तर इति ह्युक्तम्[9]। नहि ते शूर इत्येकादशो बृहती। य ऋष्वः श्रावयदिति द्वादशी विपरीता। युजौ चेद् विपरीतेत्युक्तम्[10]। द्वादशाष्टकद्वादशकवती। अथ स नो वाजेष्विति[2] त्रयोदशी चतुर्विंशिका चतुर्विंशत्यक्षरा द्विपदा। अथाभि वो वीरमिति चतुर्दशी बृहत्यधिकारोक्तपिपीलिकमध्या। त्रयोदशिनोर्मध्येऽष्टकः पिपीलिकमध्येति बृहती विशेषणम्। एकादशिनोः परः षट्कस्तनुशिरा, मध्ये चेत् पिपीलिकमध्येत्युष्णिहः[11], मध्ये चेत् पिपीलिकमध्येत्यनुष्टुभश्च[12] पिपीलिकमध्याया ग्रहणं मा भूदिति। अथ ददी रेक्ण इति पञ्चदशी ककुम्न्यङ्कुशिरा। त्रैष्टुभजागतचतुष्काः ककुम्न्यङ्कुशिरा[13]। अथ विश्वेषामित्येषा षोडशी विराट्। अथ महः सुव इति सप्तदशी जगती। अथ ये पातयन्त इत्यष्टादश्युपरिष्टाद्बृहती। अष्टका चतुर्थद्वादशका[14]। प्रभङ्गमित्येकोनविंशी बृहती। बृहतीपिपीलिकमध्येत्यादिबृहत्यन्तम् इतरेतरयोगद्वन्द्वः।

---

१. '०हत्यौ' इत्यपपाठो मै०। २. 'पुरूवसो' 'आदौ…जेष्विति' इति नास्ति मै०।
३. 'अपत्यादृश्यणदिना वत्' इति पु० १। 'अपत्यादृष्यणादिना यत्' इति पु० २। 'अपत्यादृष्यणादि०' इति गो०। ४. ऋ० ८।४६।२१॥ ५. '०स्याय' इति कोशेषु।
६. बृ० दे० ६।७९॥ ७. का० सर्वा० परि० ५।३॥ ८. तत्रैव ८।४॥
९. तत्रैव ११।५॥ १०. तत्रैव ८।५॥ ११. तत्रैव ५।६॥
१२. तत्रैव ६।४॥ १३. तत्रैव ५।४॥ १४. द्र०—तत्रैव ७।१॥

सनितः सुसनितरिति विंशी विषमपदा । नवकाष्टचकादश्यष्टिनो विषमपदा[1] । अथोत्तरे[2] द्वे आ स एतु षष्टि सहस्रेत्येते एकविंशीद्वाविंश्यौ पङ्क्ती । अथ त्रयोविंशी गायत्री । चतुर्विंशी पङ्क्तिः । अथ प्रगाथौ बार्हतौ द्वौ च वायव्यौ । पञ्चविंशी बृहती, षड्विंशी सतोबृहती, सप्तविंशी बृहती, अष्टाविंशी सतोबृहत्यर्थः । अथैकोनत्रिंशी गायत्री । अथ त्रिंशी गावो न यूथमिति द्विपदा विंशत्यक्षरा विराट् । अथैकत्रिंश्युष्णिक् । अथ द्वात्रिंशी पङ्क्तिः सती वायव्या । अथ त्रयस्त्रिंशी गायत्री । [3]अनुक्तदेवतास्त्वैन्द्रचः[3] ।।१।।

[४७] महि वो द्व्यूना त्रित आप्त्य आदित्येभ्योऽन्त्याः[4] पञ्चोषसेऽपि महापाङ्क्तम् ।।२।।

महताम् । अष्टादश[2] । त्रितो नामाप्त्यः । अप्त्यपुत्रः । ननु चन्द्रमा एकोनाप्त्यस्त्रितो वेत्येव[5] त्रितस्याप्त्यत्वं सिद्धम् । असत्याप्त्यवचनेऽत्राधिकारात् काण्वत्वं स्यादिति चेन्न तत् क्वचित्कथंचिन्न्यायेनानुक्तगोत्रविषयत्वात् काण्वत्वस्य । एवं तर्ह्याप्त्य इति विस्पष्टार्थम् । आदित्येभ्यः । आदित्यानामर्थायेदं सूक्तम् । आदित्यमित्यनुक्तिरदितेः स्यादिति शङ्कानिवृत्त्यर्थम् । तर्ह्यादित्यानां तृचमादित्यम्[6] इत्यत्र ह्यनिर्देशेऽप्यादित्यप्रतीतिवदत्राप्यस्तु । न च तत्रादित्यानामित्यादित्यशब्दश्रवणात्[7] स्पष्टादित्यप्रतीतिरिति वक्तुं युक्तमत्राप्यादित्या अव हि ख्यतेति[8] श्रवणात् । तर्हि वैचित्र्यार्थं चतुर्थ्या निर्देशः । अत्र सूक्ते यच्च गोषु दुष्ष्वप्न्यमिति[2] चतुर्दश्याद्याः पञ्चोषसेऽपि । उषसोऽप्यर्थाय । महापाङ्क्तम् । षडष्टकया महापङ्क्तचा व्याप्तमिदं सूक्तम्[2] । उत्तरपदवृद्धिश्छान्दसी ।।२।।

[४८] स्वादोः पञ्चोना प्रगाथः सौम्यं[2] त्रैष्टुभं पञ्चमी जगती ।।३।।

अभक्षि । पञ्चदश । प्रगाथो नाम काण्वः । सोमदेवत्यम् । त्रिष्टुप्छन्दसा व्याप्तम् । त्रैष्टुभमिति गायत्रत्वापवादः । पञ्चमी जगती[9] ।।३।।

[४९] अभि[10] प्र दश प्रस्कण्वः प्रागाथं तत् ।।४।।

---

१. का० सर्वा० परि० ७।८ ।।

२. 'अथाभिः...अथ' 'अथ त्रयो ...ऐन्द्रचः' 'मह...दश' 'अत्र...मिति' 'षड...सूक्तम्' 'सौम्य' इति नास्ति मै० ।

३. '०तास्त्विन्द्रः' इति कोशेषु ।

४. 'दुःष्वप्नघ्न्यः' इति गो० मूलमात्रे ।

५. का० सर्वा० ७।१२।।

६. का० सर्वा० ३६।१६।।

७. 'तत्रादित्यानामादित्यास इति श्र०' इति पु० १, पु० २, गो० ।

८. ऋ० ८।४७।११।।

९. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।

१०. खिलसूक्तानां (४९-५९) सूत्रव्याख्यानानि पु० १ कोश उपलभ्यन्ते, न तु पु० २, गो० ।

वः । दशेत्येव । प्रस्कण्वो नाम काण्वः । बार्हतं प्रगाथमिदमुत्तराणि च षट् सूक्तानि । अनादेशादैन्द्रम्[१] ॥४॥

[५०] प्र सुश्रुतं पुष्टिगुः ॥५॥

सुराधसम् । दश । पुष्टिगुः काण्वः । इन्द्रः । प्रगाथः[१] ॥५॥

[५१] यथा मनौ श्रुष्टिगुः ॥६॥

सांवरणौ । दश । श्रुष्टिगुः काण्वः । इन्द्रः । प्रगाथः[१] ॥६॥

[५२] यथा मनावायुः ॥७॥

विवस्वति । दश । आयुः काण्वः । इन्द्रः । प्रगाथः[१] ॥७॥

[५३] उपमं त्वाष्टौ मेध्यः ॥८॥

मघोनाम् । अष्टावित्येव । मेध्यः काण्वः । इन्द्रः । प्रगाथः[१] ॥८॥

[५४[एतत् ते मातरिश्वा नो विश्व इति वैश्वदेवः प्रगाथः ॥९॥

इन्द्र । अष्टौ । मातरिश्वा काण्वः । इन्द्रः । प्रगाथः । आ नो विश्वे सजोषस इति वैश्वदेवः प्रगाथः[१] ॥९॥

[५५] भूरीत् पञ्च कृशः प्रस्कण्वस्य दानस्तुतिर्गायत्रं तृतीया-पञ्चम्यावनुष्टुभौ ॥१०॥

इन्द्रस्य । पञ्चेत्येव । काण्वपुत्रस्य राज्ञः प्रस्कण्वनाम्नो दानं स्तूयते । गायत्रत्वं हि वर्तते । तृतीयापञ्चम्यावनुष्टुभौ[१] ॥१०॥

[५६] प्रति ते पृषध्रोऽन्त्याग्निसौरी पङ्क्तिः ॥११॥

पञ्च । दस्यवे । पृषध्रो नाम काण्वः । अन्त्याचेत्यग्निरित्यग्निसूर्यदेवत्या[२] पङ्क्तिः । गायत्रम् । इन्द्रः[१] ॥११॥

[५७] युवं देवा चतुष्कं मेध्यं आश्विनं त्रैष्टुभम् ॥१२॥

ऋतुना । मेध्यः काण्वः । आश्विनम । चतस्रोऽपि त्रिष्टुभः । त्रिष्टुब्ग्रहणं गायत्र-निवृत्त्यर्थम्[१] ॥१२॥

[५८] यमृत्विजस्त्र्चं वैश्वदेवमाद्यर्त्विक्स्तुतिर्वा ॥१३॥[३]

---

१. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।
२. '०रिति सूर्योग्निः' इति पु० १ । अन्यत्र व्याख्या त्यक्ता ।
३. गो० मूलसूत्रकोशं विहाय कोशान्तरेषु सूत्रं सव्याख्यं त्यक्तम् ।

[५९] इमानि वां सप्त सुपर्ण ऐन्द्रावरुणं जागतम् ।।१४।।

भागधेयानि । सुपर्णः काण्वः । इन्द्रावरुणौ । जागतम्[1] ।।१४।।

[६०] अग्न आ विंशतिर्भर्गः प्रागाथ आग्नेयं प्रागाथं तु ।।१५।।

याहि । भर्गो नाम प्रगाथपुत्रः । अग्निदेवत्यम् । बृहतीसतोबृहत्यात्मकेन बार्हतेन व्याप्तम् इदं सूक्तमुत्तरं च । प्रागाथवचनं गायत्रत्वापवादः[1] ।।१५।।

[६१] उभयं द्व्यूना ।।१६।।

श्रृणवत् । अष्टादश । भर्गः प्रागाथः । बार्हतप्रगाथेनैव । इन्द्रः[1] ।।१६।।

[६२] प्रो अस्मै द्वादश प्रगाथः पाङ्क्तं सप्तम्याद्यास्तिस्रो बृहत्यः ।।१७।।

उपस्तुतिम् । प्रगाथो नाम काण्वः । सप्तम्यष्टमीनवम्यो बृहत्यः । शिष्टा नव पङ्क्तया व्याप्ताः । सर्वा ऐन्द्रयः[1] ।।१७।

[६३] स पूर्व्यो गायत्रमाद्या चतुर्थ्यादिद्वे सप्तमी चानुष्टुभो
गायत्रेऽन्त्या दैवी त्रिष्टुप् ।।१८।।

द्वादश । महानाम् । गायत्रमिदम् । तत्राद्या प्रथमा चतुर्थ्याद्ये द्वे सप्तमी चेति चतस्रोऽनुष्टुभः[2] । गायत्रे सूक्ते सत्यन्त्या अस्मे रुद्रा इत्येषा[2] देवदेवत्या सती त्रिष्टुप् । गायत्र इत्यनुवादः पूर्वं गायत्रमिति शक्यमकर्तुमनुवादेनैव सिद्धेः । प्रगाथः काण्वः । इन्द्रः[2] ।।१८।।

[६४] उत् त्वा ।।१९।।

द्वादश । मन्दन्तु । प्रगाथः । गायत्रम् । इन्द्रः[1] ।।१९।।

[६५] यदिन्द्र ।।२०।।

द्वादश । प्राक् । प्रगाथः । गायत्रम् । इन्द्रः[1] ।।२०।।

[६६] तरोभिः पञ्चोना कलिः प्रागाथः प्रागाथमन्त्यानुष्टुप् ।।२१।।

वः । पञ्चदश । कलिर्नाम प्रगाथपुत्रः । आदौ सप्त बार्हताः प्रगाथाः । पञ्चदश्यनुष्टुप् । इन्द्रः । काण्वस्य पूर्णोऽवधिः[1] ।।२१।।

[६७] त्यान्नु सैका मत्स्यः साम्मदो मैत्रावरुणिर्मान्यो वा बहवो
वा मत्स्या जालनद्धा आदित्यानस्तुवन् ।।२२।।

---

१. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।
२. 'द्वा...नुष्टुभः' 'अस्मे...त्येषा' 'प्र...इन्द्रः' इति नास्ति मै० ।

क्षत्रियान् । एकविंशतिः[१] । मत्स्यो नाम साम्मदः । सम्मदाख्यमहामीनराजपुत्रः । अथवा मित्रावरुणपुत्रो मान्यो नामर्षिः । अथवा वहवो जालनद्धा आनाये वद्धा मत्स्या ऋषय आदित्यान् स्वोपद्रवशान्तयेऽस्तुवन् स्तुतवन्तः । मत्स्यानां गोत्रं नास्त्यनुपदेशात् । ऋषीणामेव विकल्पो न देवतायाः । तेन साम्मदमान्ययोरादित्या एव स्तुत्याः[१] । गायत्रम्[१] ॥२२॥

॥ चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४४॥

---

[४५]

[६८] आ त्वैकोना प्रियमेध आदावनुष्टुम्मुखास्तृचाश्चत्वारोऽन्त्याः षड् ऋक्षाश्वमेधयोर्दानस्तुतिः ॥१॥

रथम् । एकोनविंशतिः । प्रियमेधोनामाङ्गिरसः । आङ्गिरसश्च प्रियमेध[३] इति ह्युक्तम्[१] । सूक्तस्यादितश्चत्वारस्तृचा अनुष्टुम्मुखाः । अनुष्टुब्गायत्र्यौ चानुष्टुभोऽनुष्टुम्मुखास्तृचा[४] इत्युक्तम् । आद्याचतुर्थीसप्तमीदशम्योऽनुष्टुभः । द्वितीयातृतीया पञ्चमीषष्ठचष्टमीनवम्येकादशीद्वादश्यो गायत्र्यः । त्रयोदश्याद्यास्तु सप्त परिभाषयैव गायत्र्यः[१] । उप मा षडित्याद्यन्त्याः षड् ऋचश्चतुर्दश्याद्या ऋक्षाश्वमेधयो राज्ञोर्दानस्तुतिः । आदाविति किम् ? तृचतुष्टयस्यान्त्यतृचद्वयस्य च दानस्तुतित्वं मा भूत् । एवमिष्टं चेदन्त्या ऋक्षाश्वमेधयोर्दानस्तुतिरित्येवावक्ष्यदिति चेत् तर्हि विस्पष्टार्थम् । ननु बृहद्देवतायाम्—

ऐन्द्राणि त्रीणि सूक्तानि[५] स्तौत्यृतूनुप[६] मेति षट् ।
ऋक्षाश्वमेधयोरत्र पञ्च दानस्तुतिः पराः ॥[७]

इत्युच्यते । तत्कथमत्र षण्णामपि दानस्तुतित्वमुक्तम् । सत्यम् । अयं त्वृक्षस्तुतिमपि[८] राजदानस्तुतिशेषां मन्यते देवतानुक्रमण्यां षट्कस्य दानस्तुतित्वस्यैवोक्तेः । तथा हि—

---

१. 'क्षत्रि…शतिः' 'गायत्रम्' 'रथम्…ह्युक्तम्' 'आद्या…गायत्र्यः' इति नास्ति मै० ।
२. 'दशम्येकादशीद्वादशीष्वदितिः' इति जगन्नाथ इति मैक्डानलः टिप्पणयति ।
३. का० सर्वा० ३।१।९॥
४. का० सर्वा० परि० ११।६॥
५. 'ऐन्द्रण्या त्वा रथं त्रीणि' इति बृ० दे० ।
६. 'स्तौतनूभूमु०' इति पु० १ । 'स्तुतवतो भूमु०' इति पु० २ । 'स्तौर्वंतमनु०' इति गो० ।
७. बृ० दे० ६।६१॥
८. 'स्तुतिमपि' इति पु० १, पु० २ । 'स्तुतिरपि' इति गो० ।

उप मेत्यासु चेन्द्रोऽतोऽश्वमेध ऋक्ष एव च[1]।
प्रीतौ यद् ददतुर्वित्तं प्रियमेधस्तदब्रवीत् ॥

इति पठ्यते ॥१॥

[६९] प्रप्र द्व्यूनानुष्टुभं द्विबृहत्यन्तं द्वितीयोष्णिक् चतुर्थ्याद्यास्तिस्रो गायत्र्यः षोळश्येकादश्यौ पङ्क्ती अपादैश्वदेवोऽर्धर्चस्त्रयो वारुणाः ॥२॥

वस्त्रिष्टुभम् । अष्टादश । आनुष्टुभमिति गायत्रत्वापवादः । द्विबृहत्यन्तम् । द्वे सप्तदश्यष्टादश्यौ बृहत्यावन्ते यस्य तत् । अस्य च द्वितीया नदं व इत्येषा चतुःसप्तकोष्णिक् । चतुर्थीपञ्चमीषष्ठ्य इति तिस्रो गायत्र्यः । षोडश्येकादश्यौ पङ्क्ती । आद्या तृतीया सप्तम्याद्याश्चतस्रो द्वादश्याद्याश्चतस्रश्चेति दशानुष्टुभः । अत्र च[2] अपादिन्द्रो अपादग्निरित्यर्धर्चो[3] वैश्वदेवः । अतः परे वरुण इदिहेत्याद्यास्त्रयोऽर्धर्चा वरुणदेवत्याः । शिष्टा ऐन्द्रचः । प्रियमेधः[2] ॥२॥

[७०] यो राजा पञ्चोना पुरुहन्मा बार्हतं त्रिप्रगाथाद्युष्णिगनुष्टुप्पुरउष्णिगन्तम् ॥३॥

चर्षणीनाम् । पञ्चदश । पुरुहन्मा नामाङ्गिरसोऽनुक्तेः । बृहतीछन्दसा व्याप्तम् । त्रिप्रगाथादि । त्रयो बार्हताः प्रगाथा आदौ यस्य तत् । उष्णिगनुष्टुप्पुरउष्णिगन्तम् । उष्णिक् त्रयोदशी । अनुष्टुप् चतुर्दशी । पुरउष्णिक् पञ्चदशी । आद्यद्वादशकद्व्यष्टका पञ्चदशी चान्ते यस्य तत् । सप्तम्याद्याः षड् बृहत्यः । इन्द्रः[4] ॥३॥

[७१] त्वं नः सुदीतिपुरुमीढौ तयोर्वान्यतर आग्नेयं तु त्रिप्रगाथान्तम् ॥४॥

पञ्चदश । अग्ने[2] । सुदीतिः पुरुमीढश्चेति द्वावाङ्गिरसौ सहापश्यताम् । अथवा तयोरन्यतरोऽपश्यत् । अग्निदेवत्यमिदमुत्तरं च । दशम्याद्यास्त्रयो द्वृचा बार्हतप्रगाथभूता अन्ते यस्य तत् । आदौ नव गायत्र्यः[2] ॥४॥

[७२] हविर्द्व्यूना हर्यतः प्रागाथो हविषां स्तुतिर्वा ॥५॥

कृणुध्वम् । अष्टादश । हर्यतो नाम प्रगाथपुत्रः । गायत्रम्[2] । अग्निः । अथवा हविषां स्तुतिः ॥५॥

---

१. 'एवेति च' इति पु० १, पु० २ ।

२. 'वस्त्रि ··च' 'शिष्टा···मेधः' 'पञ्च···अग्ने' 'अग्नि ··गायत्र्यः' 'कृणु···गायत्रम्' इति नास्ति मैं० । ३. ऋ० ८।६९।११॥ ४. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मैं० ।

[७३] उदीराथां गोपवन आत्रेयः सप्तवध्रिर्वाश्विनम् ॥६॥

द्वयूना । ऋतायते । गोपवनो नामात्रेयः । अथवा सप्तवध्रिर्नाम । सोऽप्यात्रेयः । कुतः ? पञ्चममाण्डलिकत्वात् । आश्विनम् । अष्टादशापि गायत्र्यः[1] ॥६॥

[७४] विशोविशो वः पञ्चोनाग्नेयं त्वनुष्टुम्मुखास्तृचाश्चत्वारोऽन्त्यास्तिस्रोऽनुष्टुभ आर्क्षस्य श्रुतर्वणो दानस्तुतिः ॥७॥

अतिथिम् । पञ्चदश । अग्निदेवत्यमिदमुत्तरं च । आदितश्चत्वारस्तृचा अनुष्टुम्मुखाः । अनुष्टुब्गायत्रीद्वयात्मकाः । अथाहं हुवान इति[2] त्रयोदश्याद्यास्तिस्रोऽन्त्या अनुष्टुभः सत्य ऋक्षनामराजपुत्रस्य[3] श्रुतर्वनाम्नो राज्ञो दानस्तुतिः । पारिशेष्यसिद्धेः स्तिस्र इति प्राप्तानुवादः । छन्दोवचनं गायत्रत्वापवादः । आत्रेयो गोपवनोऽनुवर्तते न तु सप्तवध्रिः । स हि वाविशिष्टः ॥७॥

[७५] युक्ष्वा हि षोळश विरूपः ॥८॥

देवहूतमान् । विरूपो नामाङ्गिरसः । गायत्रम् । अग्निः[1] ॥८॥

[७६] इमं नु द्वादश कुरुसुतिः काण्वः ॥९॥

मायिनम् । कुरुसुतिर्नाम कण्वपुत्रः । गायत्रम् । इन्द्रः[1] ॥९॥

[७७] जज्ञान एकादश प्रगाथान्तम् ॥१०॥

नु । आद्या नव गायत्र्यः । प्रगाथान्तम् । दशमी बृहती, एकादशी सतोबृहतीति बार्हतः प्रगाथोऽन्ते यस्य तत् । कुरुसुतिः काण्वः । इन्द्रः[1] ॥१०॥

[७८] पुरोळाशं दश बृहत्यन्तम् ॥११॥

नो अन्धसः । आदौ नव गायत्र्यः । बृहत्यन्तम् । दशमी बृहत्यन्ते यस्य तत् । कुरुसुतिः काण्वः । इन्द्रः[1] ॥११॥

[७९] अयं कृत्नुर्नव कृत्नुर्भार्गवः सौम्यमन्त्यानुष्टुप् ॥१२॥

अगृभीतः । कृत्नुर्नाम भार्गवः । सोमदेवत्यम् । आद्याष्टौ गायत्र्यः । अन्त्या नवम्यनुष्टुप्[1] ॥१२॥

[८०] न ह्यन्यं दशैकद्यूर्नौधसो गायत्रेऽन्त्या दैवी त्रिष्टुप् ॥१३॥

वला[2] । एकद्युर्नाम नोधसः पुत्रः । गायत्रेऽत्र सूक्ते सत्यन्त्या देवदेवत्या सती

---

१. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० । २. 'अतिथिम्···इति' 'बला' इति नास्ति मै० ।
३. 'आर्क्षना०' इति पु० १ । '०ष्टुभः ता, ऋक्ष०' इति गो० ।

त्रिष्टुप् । गायत्र इत्यनुवादः शिष्टाजगतीत्वापवादः ।।१३।।

[८१] आ तू नो नव कुसीदी काण्वः ।।१४।।

इन्द्र[1] । कुसीदी[2] नाम कण्वगोत्रः । गायत्रम् । इन्द्रः[1] ।।१४।।

।। पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ।।४५।।

---

[४६]

[८२] आ प्र द्रव ।।१।।

नव । परावतः । कुसीदी काण्वः । गायत्रम् । इन्द्रः[3] ।।१।।

[८३] देवानां वैश्वदेवम् ।।२।।

नव । इदवः । कुसीदी काण्वः । गायत्री । विश्वे देवाः[3] ।।२।।

[८४] प्रेष्ठमुशना काव्य आग्नेयम् ।।३।।

नव । वः[1] । उशना नाम कवेः पुत्रः । गर्गादित्वाद् यञ्[4] । गायत्री । अग्निः[1] ।।३।।

[८५] आ मे कृष्ण आश्विनं हि ।।४।।

नव । हवम् । कृष्णो नामाङ्गिरसः । अश्विदेवत्यमिदमुत्तरे च द्वे । गायत्री[3] ।।४।।

[८६] उभा हि पञ्च विश्वको वा कार्ष्णिर्जागतम् ।।५।।

दस्रा[1] । विश्वको नाम कृष्णपुत्रः । ऋष्यणपवादो[5] वाह्वादित्वादिञ् । वेत्युक्तेराङ्गिरसः कृष्ण एव वा । पञ्चापि जगत्यः । अश्विनौ[1] ।।५।।

[८७] द्युम्नी षड् वासिष्ठो वा द्युम्नीकः प्रियमेधो वा प्रागाथं ह ।।६।।

वाम्[1] । द्युम्नीको नाम वसिष्ठगोत्र ऋषिः । अथवाङ्गिरसः प्रियमेधः । द्विर्वेत्युक्तेः प्रकृत आङ्गिरसः कृष्ण एव वा । वाविशिष्टत्वान्न तु कार्ष्णिर्विश्वकः प्रकृतोऽपि । बृहतीसतोबृहत्यात्मक बार्हतप्रगाथव्याप्तमिदमुत्तराणि च त्रीणि । अश्विनौ[1] ।।६।।

---

१. 'इन्द्र' 'गा'''इन्द्रः' 'नव । वः' 'गायत्री । अग्निः' 'दस्रा' 'पञ्चा ''नौ' 'वाम्' 'बृहती '''अश्विनौ' इति नास्ति मै० ।

२. 'कुसीदिर्नाम' इति पु० १ । 'कुसीदी नामा इति पु० २ । अत्र मैक्डानलकृता निरुक्तस्य 'कुसीदि' शब्देन तुलना नोचिता मगन्दशब्दस्यार्थनिर्देशात्

३. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।

४. गर्गादिगणे 'कपि' शब्दः पठ्यते ।

५. 'अ'तत्पाद' इति पु० १ । 'अनंतया' इति पु० २ ।

[८८] तं वो दस्मं नोधाः ।।७।।

षट् । ऋतीषहम्[१] । नोधा गौतमः । नू चिन्नव नोधा गौतम[२] इति ह्य क्तम् । त्रयः प्रगाथाः । इन्द्रः[१] ।।७।।

[८९] बृहदिन्द्राय सप्त नृमेधपुरुमेधौ द्वयनुष्टुब्बृहत्यन्तम् ।।८।।

गायत[१] । नृमेधपुरुमेधौ सहापश्यताम् । तौ चाङ्गिरसौ । आद्यातृतीये बृहत्यौ। द्वितीयाचतुर्थ्यौ सतोबृहत्यौ । द्वयनुष्टुब्बृहत्यन्तम् । द्वे पञ्चमीषष्ठ्यावनुष्टुभौ सप्तमी बृहती चान्ते यस्य तत् । आदितो द्वौ बार्हतप्रगाथौ । इन्द्रः[१] ।।८।।

[९०] आ नो विश्वासु षट् ।।९।।

हव्यः । नृमेधपुरुमेधौ । त्रयः प्रगाथाः । इन्द्रः[३] ।।९।।

[९१] कन्या वाः सप्तात्रेय्यपालेतिहासं ऐन्द्र आनुष्टुभं द्विपङ्-क्त्यादि ।।१०।।

अवायती[१] । अपाला नामर्षिका कन्यात्रिपुत्रिका[४] । इन्द्रम्[५] अधिकृत्यापाला नाम तपश्चचार सामगाः[६] समामनन्ति । ऐन्द्र इतिहासः । अत्रोच्यत[७] इति शेषः । इतिहासश्चायम्[८]—

अपालात्रिसुता त्वासीत् कन्या त्वग्दोषिणी पुरा ।
अत एव दुर्भगेति भर्त्रा त्यक्ता सती पथि ।।१।।
सौम्याद् रसदिन्द्रतृप्तिरिति यज्ञस्य वाक्श्रुतेः[९] ।
अन्विच्छन्ती सोमलतां जलायावातरत् तदा ।।२।।
सोममप्यविदत् कन्याथाभ्यगात्[१०] पितुराश्रमम् ।
तामिन्द्रश्चकमे दृष्ट्वा विजने पितुराश्रमे ।।३।।
तपसा बुबुधे सा तु सर्वमिन्द्रचिकीर्षितम् ।

---

१. 'षट्...षहम्' 'त्रयः...इन्द्रः' 'गायत' 'आद्या...इन्द्रः' 'अवायती' 'सूक्तं ...इत्यर्थः' इति नास्ति मै० ।

२. का० सर्वा० ४।१३।। ३. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।

४. 'कन्या' इति नास्ति पु० १, पु० २ । ५. 'याम्' इति कोशेषु ।

६. 'सामनाम' इति पु० १, 'सोमनाम' इति पु० २, गो० ।

७. 'अत्रावगन्तव्य इति मै० । ८. बृहद्देवता सायणभाष्यं चात्र द्रष्टव्यम् ।

९. 'यज्ञस्तु...या...भूत्' इति पु० १ । 'यज्ञस्तुत्युपायो भूत्' इति पु० २ ।

१०. 'द्यागा' इति पु० १ । 'द्यागाद्यत्' इति पु० २ ।

सुषाव स्वमुखे[1] सोमं स्वैर्दन्तैर्ग्रावभिस्त्विति[2] ।।४।।
तस्या भक्तयतिरेकेण पपाविन्द्रश्च तन्मुखात् ।
निरगात् स क्वचित् पूर्वं भक्षयित्वा गृहान्मुनेः ।।५।।
उदकुम्भं समादाय तेन सार्धं तु[3] साप्यगात् ।
ऋग्भिः स्तुत्वा जगादेन्द्रं कुरु मां सुत्वचं त्विति ।।६।।
रथच्छिद्रे गतामिन्द्रः शकटस्य युगस्य च ।
प्रक्षिप्य निश्चकर्षं त्रिः सुत्वक् सा तु ततोऽभवत्[4] ।।७।।
तस्याः पूर्वंहता या त्वग्जातिः सा शल्यकोऽभवत् ।
उत्तरा त्वभवद् गोधा कृकलासस्तथोत्तमा[5] ।।८।।[6]

सूक्तं चानुष्टुभं । द्विपङ्क्तयादि च । आदितो द्वे पङ्क्ती इत्यर्थः ।।१०।।

[९२] पान्तं त्रयस्त्रिंशच्छ्रुतकक्षः सुकक्षो वाद्यानुष्टुप् ।।११।।

आ वः । श्रुतकक्षो नामाङ्गिरसः । अथवा सुकक्षः । सोऽप्याङ्गिरसः । आद्यानुष्टुप् । अथ द्वात्रिंशद् गायत्र्यः । इन्द्रः[7] ।।११।।

[९३] उद्ध चतुस्त्रिंशत् सुकक्षोऽन्त्यैन्द्रार्भवी ।।१२।।

इदभि । सुकक्ष आङ्गिरसः । न तु श्रुतकक्षो वाविशिष्टत्वात् । आदितस्त्रयस्त्रिंशदैन्द्रयः । अन्त्येन्द्रर्भु देवत्या । सर्वा गायत्र्यः[7] ।।१२।।

[९४] गौर्धयति द्वादश बिन्दुः पूतदक्षो वा मारुतम् ।।१३।।

मरुताम् । बिन्दुर्नामाङ्गिरसः । अथवा पूतदक्षो नामाङ्गिरसः । मरुद्देवत्यम् । गायत्र्यः[7] ।।१३।।

[९५] आ त्वा नव तिरश्चीराङ्गिरस आनुष्टुभम् ।।१४।।

गिरः । तिरश्चीर्नामाङ्गिरसः[8] । आङ्गिरसः इति शक्यमकर्तुम्[9] नवाप्यनुष्टुभः । इन्द्रः[8] ।।१४।।

---

१. 'सासुपातमुखे' इति पु० १ । 'साश्रुपातमुखे' इति पु० २ ।
२. '०स्त्विह' इति कोशेषु ।
३. 'अपामर्थे थ' इति पु० १ । 'पानार्थे प्ययमप्यगात्' इति पु० २ ।
४. 'सुत्वक्सतो भगवत्' इति पु० १ । 'सुत्वक् सद्यः स वै भवत्' इति पु० २ ।
५. 'कृकलस्याथोतमे' इति पु० १ । 'कृकलसंस्तथोक्षमे' इति पु० २ ।
६. तु०—बृ० दे० ६।९९-१०६।।
७. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।
८. 'गिरःर—सः' 'नवा···इन्द्रः' इति नास्ति मै० ।
९. 'शक्यमवक्तुम्' इति पु० १, पु० २ ।

[९६] अस्मै सैका द्युतानो वा मारुतिस्त्रैष्टुभं चतुर्थी विराळ् इष्यामीति मारुतः पादः परैन्द्राबार्हस्पत्या ॥१५॥

उषासः । एकविंशतिः[1] । तिरश्चीर्नामाङ्गिरसः । अथवा द्युतानो मरुतां[2] पुत्रः । त्रैष्टुभमिति गायत्रत्वापवादः । चतुर्थी मन्ये त्वा यज्ञियमिति विराट् । अत्रेष्यामि वो वृषणो युध्यताजाविति[3] मरुद्देवत्यः । अतः पराध द्रप्सो अंशुमत्या उपस्थ[4] इत्येषेन्द्राबृहस्पतिदेवत्या । शिष्टा ऐन्द्रचः[1] ॥१५॥

[९७] या इन्द्र पञ्चोना रेभः काश्यपो बार्हतमतिजगत्युपरिष्टाद्बृहत्यावतिजगतीत्रिष्टुब्जगतीत्यन्ततः ॥१६॥

भुजः । पञ्चदश । रेभो नाम काश्यपः[1] । बृहतीछन्दस्कम् । अत्र चान्ततः षण्णां छन्दोविशेषमाह—अतिजगतीत्यादि । दशम्यतिजगती द्वापञ्चाशदक्षरा । एकादशीद्वादश्यावुपरिष्टाद्बृहत्यौ त्र्यष्टकान्त्यद्वादशकवत्यौ । त्रयोदश्यतिजगती । चतुर्दशी त्रिष्टुप् । पञ्चदशी जगतीत्येवम्[1] । अन्ततः । अन्त आद्यादित्वात्तसिः[5] । छन्दोवचनं गायत्रत्वापवादः । इन्द्रः[1] ॥१६॥

॥ इति षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४६॥

---

[४७]

[९८] इन्द्राय द्वादश नृमेध औष्णिहं सप्तम्युपान्त्ये च ककुभोऽन्त्यानवम्यौ पुरउष्णिहौ ॥१॥

साम । नृमेधो नामाङ्गिरसः । उष्णिक्छन्दस्कम् । सप्तम्युपान्त्ये दशम्येकादश्यौ द्वे इति तिस्रः ककुभः । अन्त्या द्वादशी नवमीति द्वे पुरउष्णिहौ । मध्यमश्चेत् ककुप्[6] । आद्यश्चेत् पुरउष्णिगित्युक्तम्[7] । छन्दोवचनं गायत्रत्वापवादः । इन्द्रः[8] ॥१॥

[९९] त्वामिदाष्टौ प्रागाथम् ॥२॥

---

१. 'उषा…शतिः' 'त्रैष्टुभ…ऐन्द्रचः' 'भुजः…काश्यपः' 'अति…त्येवम्' 'छन्दो…इन्द्रः' इति नास्ति मै० । २. 'मारुतिः पुत्रः' इति पु० १ । 'मरुतस्य' इति गो० ।
३. ऋ० ८।९६।१४॥ ४. ऋ० ८।९६।१५॥
५. 'अन्ते आदि आदित्यदित्वात्' इति पु० १ । 'अन्ते आदित्यादित्वात्' इति पु० २, गो० । द्र०—महा० वा० ५।४।४४॥ ६. का० सर्वा० परि० ५।३॥
७. का० सर्वा० परि० ५।२॥ ८. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।

ह्यः । बार्हतप्रगाथेन व्याप्तमिदम् । नृमेधो नार्मेधः । इन्द्रः[1] ॥२॥

[१००] अयं ते द्वादश नेमो भार्गवस्त्रैष्टुभं षष्ठी जगती परास्तिस्रोऽनुष्टुभोऽयमिति द्व्यृचेनेन्द्र आत्मानमस्तौदुपान्त्ये वाच्यौ ॥३॥

एमि । नेमो नाम भृगुगोत्रः । त्रैष्टुभमिति गायत्रत्वापवादः । तत्र षष्ठी जगती । अतः पराः सप्तम्यष्टमीनवमीति तिस्रोऽनुष्टुभः । अयमस्मि जरितः पश्य मेहेति[2] द्व्यृचेनेन्द्रो नेमसमीपमेत्याहं ददर्शेत्यात्मानमस्तौत् । अयमिति द्व्यृचस्येन्द्र एवर्षिर्देवता चेत्यर्थः[3] । उपान्त्ये दशम्येकादश्यौ यद्वाग् वदन्ति देवीं वाचमित्येते[3] वाच्यौ वाग्देवत्ये । वाचो देवतानि ङीष्यौटि यण् । इन्द्रः[3] ॥३॥

[१०१] ऋधक् षोळश जमदग्निर्भार्गवो मैत्रावरुणं प्रागाथं त्रित्रिष्टुबन्तं तृतीयादि गायत्री सतोबृहती स्तोत्रं राजस्वक्सपादादित्याश्विन्यौ वायव्ये सौर्यौ बृहत्युषस्या सूर्यप्रभास्तुतिर्वा पावमानी गव्ये ॥४॥

इत्था । जमदग्निर्भार्गवो भृगुगोत्रः । मित्रावरुणदेवत्यम् । बार्हतप्रगाथव्याप्तम् । त्रित्रिष्टुबन्तम् । प्रजा ह तिस्र इति तिस्रस्त्रिष्टुभोऽन्ते यस्य तत्[3] । अत्र प्र यो वां मित्रावरुणेति तृतीया गायत्री । न यः संपृच्छ इति चतुर्थी सतोबृहती । तृतीयाद्युक्तिश्चतुर्थ्यर्था[4] । द्वितीयद्व्यृचस्य बृहतीस्थाने गायत्रीवचने[5] संनियोगशिष्टत्वात्[6] प्रगाथस्य चतुर्थ्याः सतोबृहतीत्वं दुर्लभमिति सतोबृहतीवचनम । स्तोत्रं राजस्वक्सपादादित्या[3] । स्तोत्रं राजसु गायतेति पूर्वगन्तपादेन सपादा पादसहिता ते हिन्विरे अरुणमित्यृगादित्यदेवतेत्यर्थः । इत्यनेनेत्यध्याहृत्यात्र[7] नेयम् । अथा मे वचांसीति[8] द्वे अश्विदेवत्ये । अथा नो यज्ञं दिविस्पृशमिति[9] द्वे वायुदेवत्ये । बण्महानिति[10] द्वे सूर्यदेवत्ये । अथेयं या नीचीर्त्ति बृहती सत्युषोदेवत्या । अत्र त्रिष्टबन्तमिति चतुर्दश्यास्त्रिष्टुब्वचनेन प्रगाथस्य निवृत्तत्वात् त्रयोदश्या बृहतीत्वं दुर्लभमिति बृहतीवचनम्[11] ।

---

१. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० । २. ऋ० ८।१००।४॥

३. 'एमि···चेत्यर्थ' 'यद्वाग्···त्येते' 'इन्द्रः' 'इत्था···तत' '·स्तो···दित्या' इति नास्ति मै० ।

४. 'चतुर्थीक्यनुक्यर्था' इति पु० १ । 'चतुर्थीक्यनुक्वर्थः' इति पु० २ ।

५. '०नेन' इति पु० १, पु० २ । ६. 'संयोग०' इति मै० ।

७. 'इत्यनेनेध्याहृत्य' इति पु० १ । 'इत्यने घ्याहृत्य' इति पु० २ ।

८. ऋ० ८।१०१।७॥ ९. ऋ० ८।१०१।९॥ १०. ऋ० ८।१०१।११॥

११. 'अत्र···वचनम्' इति नास्ति पु० १, पु० २ ।

अथवा सूर्यप्रशानया स्तूयते । अथ प्रजा ह तिस्र इति[१] पवमानदेवत्या । माता रुद्राणामिति[२] द्वे गोदेवत्ये ॥४॥

[१०२] त्वमग्ने द्व्यधिका भार्गवः प्रयोगो बार्हस्पत्यो वाग्निः पावकः सहसः सुतयोर्वाग्न्योर्गृहपतियविष्ठयोर्वान्यतर आग्नेयं तु ॥५॥

बृहत् । द्वाविंशतिः[३] । भृगुगोत्रः प्रयोगो नामर्षिः । अथवा बार्हस्पत्यः पावकविशेषणोऽग्निर्ऋषिः । अथवा सहोनाम्नः पुत्रौ गृहपतियविष्ठसंज्ञावग्नी[४] सहापश्यताम् । अथवा तयोरन्यतरः । अग्निदेवत्यमिदमुत्तरं च । गायत्रम्[३] ॥५॥

[१०३] अदर्शि षळूना सोभरिर्बार्हतं पञ्चमी विराड्रूपा सप्तम्याद्ययुजः सतोबृहत्योऽष्टम्यादि युजः ककुब्भ्रसीयसी ककुबनुष्टुबन्त्याग्निमारुती ॥६॥

गातुवित्तमः । चतुर्दश । सोभरिर्नाम । तं गूर्धयेति[५] पूर्वत्र सोभरिः काण्व ईरितः । बृहतीछन्दस्कम् । पञ्चमी विराड्रूपा । सप्तम्याद्ययुजः पञ्चमी सप्तमी नवम्येकादशी त्रयोदशी चेति चतस्रः सतोबृहत्यः[३] । अष्टम्यादि युजः । अष्टमी दशमी द्वादशी चतुर्दशी चेति चतस्रो यथाक्रमं ककुब् भ्रसीयसी[६] ककुबनुष्टुबिति स्युः । जसो लुगिति स्युरित्यध्याहृत्य नेयम् । आग्ने याहि मरुत्सखेत्यन्त्या चतुर्दश्यग्निमरुद्देवत्या । आग्निमारुतीतीद्वृद्धौ[७] । शिष्टा आग्नेय्यः[३] ॥६॥

॥ इत्यष्टमं मण्डलं समाप्तम् ॥

[अथ नवमं मण्डलम्]

अथ नवमं मण्डलमधिकृत्य परिभाषते—

नवमं मण्डलं पावमानं सौम्यम् ॥७॥

वक्ष्यमाणं नवमं मण्डलं सर्वं सोमदेवत्यम् । स च सोमः पवमानगुणः । पाव-

---

१. ऋ० ८।१०१।१४॥ २. ऋ० ८।१०१।१५॥

३. 'बृहत्...शतिः' 'अग्नि...गायत्रम्' 'गातु...सतोबृहत्यः' 'आग्ने...आग्नेय्यः' इति नास्ति मै० ।

४. '०यविष्ठयौ इति संज्ञौ' इति पु० १, पु० २ । '०यविष्ठय संज्ञा०' इति गो० ।

५. ऋ० ३।१६॥

६. 'गायत्री' इति पु० १, मै० । मूलसूत्रेऽपि 'गायत्री' इति पु० १ ।

७. अष्टा० ६।३।२८॥

माननिति विशेषणस्य पृथक्करणं क्वचित् सोमापवादभूताग्न्यादेरपि पवमानगुणत्वार्थम्। तथा च लिङ्गं सूक्ते[1] ऽग्नेः पवमानस्य—अग्न आयूंषि पवसे[2] ऽग्ने पवस्वेति[3] द्वे दृष्टे[4]। मण्डलमित्यसत्यपवादेऽत्र सौम्यत्वाय। नवममिति द्वितीयादिवद् विस्पष्टार्थमेव ॥७॥

[१] स्वादिष्ठया दश मधुच्छन्दाः ॥८॥

मदिष्ठया। मधुच्छन्दा नाम। अग्निं नव मधुच्छन्दा वैश्वामित्र[5] इतीरितम्। प्राग् वत्सप्रेरिति[6] प्रोक्तं गायत्रत्वं हि वर्तते। प्रदेवमच्छेति[7] सूक्ते वत्सप्रिः किल वक्ष्यते। पवमानः सोमः[8] ॥८॥

[२] पवस्व मेधातिथिः ॥९॥

दश। देववीः। मेधातिथिः। अग्निं द्वादश मेधातिथिः काण्व[9] इत्युक्तम्। गायत्री। सोमः पवमानः[8] ॥९॥

[३] एष शुनःशेपः ॥१०॥

दश। देवः। शुनःशेपो नामर्षिः। आजीगर्तिः शुनःशेप[10] इति ह्युक्तम्। गायत्री। पवमानः सोमः[8] ॥१०॥

[४] सन हिरण्यस्तूपः ॥११॥

दश। च सोम। हिरण्यस्तूपो नामाङ्गिरसः। गायत्री। पवमानः सोम[8] ॥११॥

[५] समिद्ध एकादश काश्यपोऽसितो देवलो वा विंशतिः सूक्तान्याद्यमाप्रियश्चतुरनुष्टुबन्तम् ॥१२॥

विश्वतः[11]। असितो नाम काश्यपो गोत्रतः[12]। अथवा देवलो नाम सोऽपि[13] काश्यपः। भवति हि प्रवरः काश्यपासितदैवलेति[14]। विंशतिः सूक्तानि। इदमादीन्य पश्यदिति वाक्यशेषः। अत्राद्यमिदमेकादशर्चं सूक्तमाप्रियम्। आप्रीदेवताः समिदादिस्वाहाकृत्यन्ता देवताः। अत्र तनूनपाद् द्वितीयो न तु नराशंस आप्रमित्यनुक्तेः।
नवमे मण्डलेऽनुक्तेरासां न पवमानता।

---

१. 'सूत्रे' इति कोशेषु। २. ऋ० ९।६६।१९॥ ३. ऋ० ९।६६।२१॥
४. '०ति दृष्टे' इति पु० १, पु० २, गो०। ५. का० सर्वा० १।१॥
६. का० सर्वा० ३।९।६॥ ७. ऋ० ९।६८॥
८. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै०। ९. का० सर्वा० १।१२॥
१०. का० सर्वा० २।५॥ ११. 'विश्वतः' इति नास्ति मै०।
१२. 'काश्यपगोत्रः' इति पु० १, पु० २। १३. 'देवलनामापि' इति पु० १, पु० २।
१४. आश्व० श्रौ० १२।१४।८॥

इहातिदिष्टा[1] अन्यत्र व्युत्पन्नाः सविशेषणाः ॥१॥
ननु विंशतिः सूक्तानीत्यवाच्यमनुवृत्तितः ।
न मधुच्छन्दसा[2] ह्यादौ दशसूक्तग्रहः कृतः ॥२॥
सत्यम् । असितस्यानुवृत्तिः स्याद् वान्वयाद्देवलस्य न ।
इत्यृषिद्वययोगार्थं विंशतिग्रहणं कृतम् ॥३॥
तर्हि विंशतिः सूक्तानीत्यनुक्त्वा प्राग्दृढच्युतात् ।
इति वाच्यं लाघवार्थमिति चेत् पृच्छ तं मुनिम् ॥४॥

अनुष्टुभश्चतस्रोऽन्त्याः । गायत्र्यः संप्रचोदिताः[3] ॥१२॥

[६] मन्द्रया नव ॥१३॥

सोम । असितो देवलो वर्षिः । तौ च कश्यपगोत्रकौ । गायत्रम् । सोमः पवमानः[4] ॥१३॥

[७] असृग्रम् ॥१४॥

नव । इन्दवः । असितो देवलो वर्षिः । तौ च कश्यपगोत्रकौ । गायत्रम् । सोमः । पवमानः[4] ॥१४॥

[८] एते सोमाः ॥१५॥

नव । अभि । असितो देवलो वर्षिः । तौ च कश्यपगोत्रकौ । गायत्रम् । सोमः पवमान[4] ॥१५॥

[९] परि प्रिया ॥१६॥

नव । दिवः । असितो देवलो वर्षिः । तौ च कश्यपगोत्रकौ । गायत्रम् । सोमः पवमानः[4] ॥१६॥

[१०] प्र स्वानासः ॥१७॥

नव । रथा इव । असितो देवलो वर्षिः । तौ च कश्यपगोत्रकौ । गायत्रम् । सोमः पवमानः[3] ॥१७॥

[११] उपास्मै ॥१८॥

नव । गायत । असितो देवलो वर्षिः । तौ च कश्यपगोत्रकौ । गायत्रम् । सोमः पवमानः[4] ॥१८॥

---

१. 'इह चिदिष्टा' इति पु० १ । 'इह चिद्दृष्टा' इति पु० २ ।
२. '०सो' इति पु० १ । '०दो' इति पु० २ । ३. 'अनु···संचोदिताः' इति नास्ति मै० ।
४. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।

[१२] सोमा असृग्रम् ॥१९॥

नव । इन्दवः । असितो देवलो वर्षिः । तौ च कश्यपगोत्रकौ । गायत्रम् । सोमः पवमानः[1] ॥१९॥

॥ इति सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४७॥

---

[४८]

[१३] सोमः ॥१॥

नव । पुनानः । असितो देवलो वर्षिः । काश्यपावृषी इति विद्यादनुक्तेऽपि लाघवाद् आदृढच्युतात् । गायत्रम् । देवता पवमानगुणः सोमो विज्ञेयः[1] ॥१॥

[१४] परि प्राष्टौ ॥२॥

असिष्यदत् । असितो देवलो वर्षिः । गायत्रम् । सोमः[1] ॥२॥

[१५] एष धिया ॥३॥

अष्टौ । याति । असितो देवलो वर्षिः । गायत्रम् । सोमः[1] ॥३॥

[१६] प्र ते ॥४॥

अष्टौ । सोतारः । असितो देवलो वर्षिः । गायत्रम् । सोमः[1] ॥४॥

[१७] प्र निम्नेनेव ॥५॥

अष्टौ । सिन्धवः । असितो देवलो वर्षिः । गायत्रम् । सोमः[1] ॥५॥

[१८] परि सुवानः सप्त ॥६॥

गिरिष्ठाः । असितो देवलो वर्षिः । गायत्रम् । सोमदेवत्यम्[1] ॥६॥

[१९] यत्सोम ॥७॥

सप्त । चित्रम् । असितो देवलो वर्षिः । गायत्रम् । सोमदेवत्यम्[1] ॥७॥

[२०] प्र कविः ॥८॥

सप्त । देववीतये । असितो देवलो वर्षिः । गायत्रम् । सोमदेवत्यम्[1] ॥८॥

[२१] एते धावन्ति ॥९॥

---

१. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।

सप्त । इन्दवः । असितो देवलो वर्षिः । गायत्रम् । सोमदेवत्यम्[1] ॥९॥

[२२] एते सोमासः ॥१०॥

सप्त । आशवः । असितो देवलो वर्षिः । गायत्रम् । सोमदेवत्यम्[1] ॥१०॥

[२३] सोमा असृग्रम् ॥११॥

सप्त । आशवः । असितो देवलो वर्षिः । गायत्रम् । सोमदेवत्यम्[1] ॥११॥

[२४] प्र सोमासः ॥१२॥

सप्त । अधन्विषुः । असितो देवलो वर्षिः । गायत्रम् । सोमदेवत्यम्[2] । असितदेवलयोः काश्यपयोः पूर्णोऽवधिः ॥१२॥

[२५] पवस्व षड् दृढच्युत आगस्त्यः ॥१३॥

दक्षसाधनः । दृढच्युतो नामागत्स्यपुत्रः । गायत्री । सोमः पवमानः[1] ॥१३॥

[२६] तममृक्षन्तेध्मवाहो दार्ढच्युतः ॥१४॥

षट् । वाजिनम् । इध्मवाहो नाम दृढच्युतपुत्रः । गायत्री । सोमः पवमानः[1] ॥१४॥

[२७] एष कविर्नृमेधः ॥१५॥

षट् । अभिष्टुतः । नृमेधो नामाङ्गिरसः । गायत्री । सोमः पवमानः[1] ॥१५॥

[२८] एष वाजी प्रियमेधः ॥१६॥

षट् । हितः । प्रियमेधो नामाङ्गिरसः । गायत्री । सोमः पवमानः[1] ॥१६॥

[२९] प्रास्य नृमेधः ॥१७॥

षट् । धाराः । नृमेधो नामाङ्गिरसः । गायत्री । सोमः पवमानः[1] ॥१७॥

[३०] प्र धारा बिन्दुः ॥१८॥

षट् । अस्य । बिन्दुर्नामाङ्गिरसः । गायत्री । सोमः पवमानः[1] ॥१८॥

[३१] प्र सोमासो गोतमः ॥१९॥

षट् । स्वाध्यः । गोतमो नाम राहूगण[3] इत्युक्तम् । गायत्री । सोमः पवमानः[1] ॥१९॥

[३२] प्र सोमासः श्यावाश्वः ॥२०॥

---

१. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० । २. 'सप्त ... देवत्यम्' इति नास्ति मै० ।
३. का० सर्वा० ५।१४॥

षट् । मदुच्यतः । श्यावाश्वो नामात्रेयः । गायत्री । सोमः पवमानः[1] ।।२०।।

[३३] प्र सोमासस्त्रितः ।।२१।।

षट् । विपश्चितः । त्रितो नामाप्त्यः । गायत्री । सोमः पवमानः[1] ।।२१।।

[३४] प्र सुवानः ।।२२।।

षट् । धारया । आप्त्यस्त्रितः । गायत्री । सोमः पवमानः[1] ।।२२।।

[३५] आ नः पवस्व प्रभूवसुः ।।२३।।

षट् । धारया । प्रभूवसुर्नामाङ्गिरसः । गायत्री । सोमः पवमानः[1] ।।२३।।

[३६] असर्जि ।।२४।।

षट् । रथ्यः । प्रभूवसुर्नामाङ्गिरसः । गायत्री । सोमः पवमानः[1] ।।२४।।

[३७] स सुतो रहूगणः ।।२५।।

षट् ; पीतये । रहूगणो नामाङ्गिरसः । गायत्री । सोमः पवमानः[1] ।।२५।।

[३८] एष उ स्यः ।।२६।।

षट् ।वृषा ।रहूगणो नामाङ्गिरसः । गायत्री । सोमः पवमानः[1] ।।२६।।

[३९] आशुरर्ष बृहन्मतिः ।।२७।।

षट् ।बृहन्मते । बृहन्मतिर्नामाङ्गिरसः । गायत्री । सोमः पवमानः[1] ।।२७।।

[४०] पुनानः ।।२८।।

षट् । अक्रमीत् । बृहन्मतिर्नामाङ्गिरसः । गायत्री । सोमः पवमानः[1] ।।२८।।

[४१] प्र ये गावो मेध्यातिथिः ।।२९।।

षट् । न । मेध्यातिथिर्नाम काण्वः । गायत्री । सोमः पवमानः[1] ।।२९।।

[४२] जनयन् ।।३०।।

षट् । रोचना । मेध्यातिथिर्नाम काण्वः । गायत्री । सोमः पवमानः[1] ।।३०।।

[४३] यो अत्य इव ।।३१।।

षट् । मृज्यते । मेध्यातिथिः काण्वः । गायत्री । सोमः पवमानः[1] ।।३१।।

।। इत्यष्टाचत्वारिंशोऽध्यायः ।।४८।।

---

१. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।

[४९]

[४४] प्र णोऽयास्यः ॥१॥

षट् । इन्दो । अयास्यो नामाङ्गिरसः । गायत्री । सोमः पवमानः[1] ॥१॥

[४५] स पवस्व ॥२॥

षट् । मदाय । आङ्गिरसोऽयास्यः । गायत्री । सोमः पवमानः[1] ॥२॥

[४६] असृग्रन् ॥३॥

षट् । देववीतये । आङ्गिरसोऽयास्यः । गायत्री । सोमः पवमानः[1] ॥३॥

[४७] अया सोमः पञ्च कविर्भार्गवः ॥४॥

सुकृत्यया । कविर्नाम भृगुगोत्रः । गायत्री । सोमः पवमानः[1] ॥४॥

[४८] तं त्वा ॥५॥

पञ्च । नृम्णानि । कविर्भार्गवः । गायत्री । सोमः पवमानः[1] ॥५॥

[४९] पवस्व ॥६॥

पञ्च । वृष्टिम् । कविर्भार्गवः । गायत्री । सोमः पवमानः[1] ॥६॥

[५०] उत्ते शुष्मास उचथ्यः ॥७॥

पञ्च । ईरते । उचथ्यो नामाङ्गिरसः । गायत्री । सोमः पवमानः[1] ॥७॥

[५१] अध्वर्यो ॥८॥

पञ्च । अद्रिभिः । आङ्गिरसः उचथ्यः । गायत्री । सोमः पवमानः[1] ॥८॥

[५२] परि द्युक्षः ॥९॥

पञ्च । सनद्रयिः । आङ्गिरस उचथ्यः । गायत्री । सोमः पवमानः[1] ॥९॥

[५३] उत्ते चतुष्कमवत्सारः ॥१०॥

शुष्मासः । चतुर्ऋचं सूक्तम् । अवत्सारो नाम काश्यपः । तं प्रत्नथा पञ्चोना काश्यपोऽवत्सार[2] इत्युक्तम् । गायत्री । सोमः पवमानः[1] ॥१०॥

[५४] अस्य प्रत्नाम् ॥११॥

चतुष्कम् । अनु । काश्यपोऽवत्सारः । गायत्री । सोमः पवमानः[1] ॥११॥

---

१. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० । २. का० सर्वा० २६।१३॥

[५५] यवंयवं ।।१२।।

चतुष्कम् । नः । काश्यपोऽवत्सारः । गायत्री । सोमः पवमानः[1] ।।१२।।

[५६] परि सोमः ।।१३।।

चतुष्कम् । ऋतम् । काश्यपोऽवत्सारः । गायत्री । सोमः पवमानः[1] ।।१३।।

[५७] प्र ते धाराः ।।१४।।

चतुष्कम् । असश्चतः । काश्यपोऽवत्सारः । गायत्री । सोमः[1] ।।१४।।

[५८] तरत् सः ।।१५।।

चतुष्कम् । मन्दी । काश्यपोऽवत्सारः । गायत्री । सोमः पवमानः[1] ।।१५।।

[५९] पवस्व ।।१६।।

चतुष्कम् । गोजित् । काश्यपोऽवत्सारः । गायत्री । सोमः पवमानः[1] ।।१६।।

[६०] प्र गायत्रेणोपान्त्या पुरउष्णिक् ।।१७।।

चतुष्कम् । गायत । उपान्त्या तृतीया पुरउष्णिक् । आद्यद्वादशद्वेचष्टका । आद्याद्वितीयाचतुर्थ्यस्तिस्रो गायत्र्यः[2] । तृतीयेति न तु प्रोक्तं लाघवाद् आद्गुणोक्तितः ।[3] काश्यपोऽवत्सारः । सोमः पवमानः[2] ।।१७।।

[६१] अया वीती त्रिंशदमहीयुः ।।१८।।

परि । अमहीयुर्नामाङ्गिरसः । गायत्री । सोमः पवमानः[1] ।।१८।।

[६२] एते असृग्रं जमदग्निः ।।१९।।

त्रिंशत् । इन्दवः । जमदग्निर्भार्गवः । ऋधक् षोडश जमदग्निर्भार्गव[4] इत्युक्तम् । गायत्री । सोमः पवमानः[1] ।।१९।।

[६३] आ पवस्व निध्रुविः काश्यपः ।।२०।।

त्रिंशत् । सहस्रिणम् । निध्रुविर्नाम काश्यपगोत्रजः । गायत्री । सोमः पवमानः[1] ।।२०।।

[६४] वृषा सोम कश्यपः ।।२१।।

---

१. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।

२. 'चतु···गायत्र्यः' 'काश्यपो···पवमानः' इति नास्ति मै० ।

३. तु०—अष्टा० ६।१।८७।।   ४. का० सर्वा० ४७।४।।

त्रिशत् । द्युमान् । कश्यपो नाम मारीचिपुत्रः । वभ्रुर्दश कश्यपो वा मारीच[1] इत्युक्तम् । गायत्री । सोमः पवमानः[2] ॥२१॥

॥ इत्येकोनपञ्चाशोऽध्यायः ॥४९॥

---

[५०]

[६५] हिन्वन्ति भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्वा ॥१॥

त्रिशत् । शूरम्[3] । भृगुर्नाम वारुणिर्वरुणपुत्रः । श्रूयते हि—तस्मात् स भृगुर्वारुणिरिति[4] । भृगुर्वै वारुणिरिति[5] श्रुत्यन्तरम् । तेन वरुणगोत्रो[6] भृगुर्वा जमदग्निर्वेति नैव शङ्का । अथवा भार्गवो जमदग्निः । गायत्री । सोमः पवमानः[3] ॥१॥

[६६] पवस्व शतं वैखानसा अष्टादश्यनुष्टुप् परास्तिस्र आग्नेय्यः ॥२॥

त्रिशत् । विश्वचर्षणे[3] । वैखानसा नामर्षयः शतं सम्भूयेदं सूक्तमपश्यन् ।

नैषामाङ्गिरसत्वं स्यादुपदेशेष्वदर्शनात् ।
यथा[7] हि पौरुषे सूक्ते[8] ऋषेर्नारायणस्य तु ॥
यथोपदेशमित्येतत् सर्वत्रैवानुवर्तते ।
पवस्वेत्यृषयः सूक्तं शतं वैखानसा विदुः ॥

इत्येतावदेव ह्यार्षानुक्रमण्याम् । तत्राष्टादशी[9] त्वं सोम सूर इतीयम्[3] अनुष्टुप् । प्राप्तगायत्रत्वापवादः । ततः परास्तिस्र एकोनविंशीविंश्येकविंश्योऽग्न आयूंषीत्याद्या[3] अग्निदेवत्याः । सोम एव बाध्यते न तु पवमानगुणः । तमग्निर्लभते । अष्टादशीवर्जं गायत्र्यः । अग्न आयूंषीति तृचवर्जं पवमानः सोमः[3] ॥२॥

[६७] त्वं सोमासि द्वात्रिंशद् भरद्वाजः कश्यपो गोतमोऽत्रिर्विश्वामित्रो जगदग्निर्वसिष्ठ इति ह[10] तृचाः सप्त ऋषयः शेषे पवित्रो

---

१. का० सर्वा० ४२।६॥
२. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै०।
३. 'त्रिशत् । शूरम्' 'अथ···पवमानः' 'त्रि···चर्षणे' 'त्वं···यम्' 'ऽग्न···त्याद्या' 'अष्टा···सोमः' इति नास्ति मै०।
४. ऐत० ब्रा० ३।३४।३॥
५. तु०—शत० ब्रा० ११।६।१।१॥
६. 'गोत्रे' इति पु० १, पु० २ ।
७. 'अथा' इति पु० १, पु० २ ।
८. ऋ० १०।९०॥
९. 'अत्र चा०' इति पु० १, पु० २ ।
१०. 'इतीह' इति गो० मूलमात्रे ।

वसिष्ठो वोभौ वा पवस्व सोम तिस्रो नित्यद्विपदा गायत्र्योऽविता नस्तिस्रः पौष्ण्यो वा यत्ते पवित्रं पञ्चाग्नेय्यः सावित्र्यग्निसावित्री वैश्वदेवी वासामन्त्यास्त्रिंशी पुरउष्णिक् सप्तविंश्यनुष्टुबन्त्ये च ते पावमान्यध्येतृस्तुती ।।३।।

धारयुः[1]। आदौ भरद्वाजाद्याः सप्तर्षयः। तृचाः। तिस्र ऋचो दृष्टा यैरिति। आदितः प्रत्येकं[2] क्रमेण तृचदर्शिन इत्यर्थः। तत्र बार्हस्पत्यो भरद्वाज आद्यतृचमपश्यत्, मारीचः कश्यपो द्वितीयम्, राहूगणो गोतमस्तृतीयम्, भौमोऽत्रिश्चतुर्थम्, गाथिनो विश्वामित्रः पञ्चमम्, भार्गवो जमदग्निः षष्ठम्, मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः सप्तममिति[1]। इति ह सप्त ऋषयः। इति क्रमतो नामभिः[3] परामृश्यन्ते। हेति प्रसिद्धौ। एवं नामक्रमका एते सप्तर्षय इह शास्त्रे ग्राह्या इत्यर्थः। एतच्च परीतः षड्विंशतेः सप्तर्षयः[4] प्रागाथम्[5] उत देवाः सप्तर्षय एकर्चा[6] इत्यत्र चैषामेवं नामक्रमकाणामेव ग्रहणार्थम्। असत्यस्मिन्नत एव तत्र पठितव्याः स्युः। केवलसप्तर्षितः[7] प्रसिद्धेस्तेषामेव ग्रहणेऽप्येष क्रमो दुर्लभः स्यात्। शास्त्रान्तरेषु क्रमन्यायेनान्यत्र पददर्शनात्[8]। अत्र तु नास्त्युपयोगः। उक्तिगणनयैव सिद्धेरेकविंशतिर्गताः[9]। अथ शेष एकादशर्चे पवित्रो नामर्षिराङ्गिरसो मैत्रावरुणिर्वसिष्ठो वा। अथवा पवित्रवसिष्ठौ सहापश्यताम्। शेष इति पूर्वैकविंशत्यृच एतयोरनन्वयार्थम्[10]। अत्र च पवस्व सोम मन्दयन्नित्याद्यास्तिस्रो गायत्र्यो नित्यद्विपदाः। नित्यमध्ययने द्विर्द्विपदत्वनिवृत्त्यर्थम्[11]। गायत्र्य इति विंशतिका विराजो[12] मा भूवन्निति। अविता नो अजाश्व इति तिस्रः पूषदेवत्याः पवमानसोमदेवत्या वा। यत्ते पवित्रमर्चिषीत्याद्याः पञ्चर्चोऽग्निदेवत्या। आसां पञ्चानामन्त्यास्तृतीयाद्यास्तिस्र एव सावित्र्यग्निसावित्री वैश्वदेवी वेति[13]। उभाभ्यां देव

---

१. 'धारयुः' 'तत्र—मिति' इति नास्ति मै०। २. 'प्रत्येकक्र०' इति पु० १।

३. 'नाकमनी परामृश्यते' इति पु० १। 'इति नामांनि' इति पु०२। 'नामानि' इति गो०।

४. 'इह···सप्तर्षयः' इति नास्ति पु० १, पु० २। ५. का० सर्वा० ५३।७।।

६. का० सर्वा० ६३।१८।। ७. 'सप्तयुक्तौ' इति पु० १, पु० २।

८. 'क्रमनानात्यत्यदर्श०' इति पु० १। 'क्रमन्याय्येनान्यत्वपददर्श०' इति पु०२। 'क्रमनानात्वदर्श०' इति गो०। ९. 'सिद्धेरित्ये०' इति पु० १, पु० २, गो०।

१०. '०त्यृचेन तयोर०' इति पु० १। '०तितृचेन तयोरन्वया०' इति पु० २। '०त्या च न तयोरन्वया०' इति गो०।

११. '०पदेति नि०' इति पु० १, पु० २। '०पदनि०' इति गो०। तु०—का० सर्वा० परि० १२।१०।। १२. का० सर्वा० परि० १२।८।।

१३. '०देवीति' इति पु० १, पु० २।

सवितरिति सवितृदेवत्या। त्रिभिष्ट्वमित्यग्निसवितृदेवत्या। पुनन्तु मामिति वैश्वदेवीत्यर्थः। अत्र त्रिंशी त्रिंशतः पूरण्यलाय्यस्येत्येषा पुरउष्णिक्। आद्यद्वादशकद्वयष्टकवती[1]। पुनन्तु मां देवजना इति सप्तविंश्यनुष्टुप्। यः पावमानीरध्येति पावमानीर्यो अध्येतीति द्वे एकत्रिंशी द्वात्रिंशी चानुष्टुभौ। ते चान्त्ये ऋचौ पावमानीनां नवममण्डलवर्तिनीनामृचामध्येतॄणां प्रस्तुतिं[2] कुरुतः। अनुक्तछन्दसां गायत्री। अनुक्तदेवतासु सोमः। सोमदेवताः पवमानगुणवत्यः। प्राग्वत्सप्रेर्गायित्रत्वस्य पूर्णोऽवधिः॥३॥

अथोत्तरार्थं परिभाषते—

जागतमूर्ध्वं प्रागुशनसः॥४॥

प्र तु नवोशनेति[3] वक्ष्यति। प्रागेतस्मादुशनःसंशब्दनादित ऊर्ध्वं यत् सूक्तजातं[4] तत् सर्वमसत्यपवादे जगतीछन्दस्कं वेदितव्यम्[5]। तेन हरिं मृजन्ति[6] स्रक्वे द्रप्सस्येत्यादौ[7] जगतीछन्दस्त्वमिति[8] सिद्धं भवति। प्र देवमित्यादिसूक्तचतुष्टये त्रिष्टुबन्ततया शिष्टाजगतीत्वसिद्धेर्लब्धोदाहृतम्। तर्हि तत्र वाच्यं स्यादिति चेद् अत्र तत्र वोक्तौ न लाघवम्। त्रिष्टुबन्तसूक्ताश्रयोऽपि हि स्तुतिः[9]। ऊर्ध्वं प्रागिति सिद्धे व्यर्थमुभयमिति चेत्[10] सत्यमेतत्।

आचार्यस्य तु शैलीयं यत् प्रागित्यवधिग्रहः।
प्राग्वत्सप्रेः प्राग्घैरण्यस्तूपादित्यश्रृणोन्न किम्।
विस्पष्टार्थमूर्ध्वमिति प्रोक्तं नान्यत् प्रयोजनम्॥४॥

[६८] प्र देव दश [11]वत्सप्रीर्भालन्दनस्त्रिष्टुबन्तं ह॥५॥

अच्छ[12]। वत्सप्रीर्नाम[11] भलन्दनस्यापत्यम्। त्रिष्टुबन्तमिदमुत्तराणि च त्रीणि। आदौ नव जगत्यः। पवमानः सोमः[12]॥५॥

[६९] इषुर्न हिरण्यस्तूपोऽन्त्ये त्रिष्टुभौ॥६॥

दश। धन्वन्। हिरण्यस्तूपो नामाङ्गिरसः। अन्त्ये नवमीदशम्यौ त्रिष्टुभौ।

---

१. 'आद्य''''वती' इति नास्ति मै०।
२. '०ध्येतारं प्रति स्तुतिं' इति पु० १, पु० २।
३. का० सर्वा० ५।१।१२॥
४. '०जागतं' इति पु० १, पु० २, गो०।
५. 'विद्यात्' इति मै०।
६. ऋ० ९।७२॥
७. ऋ० ९।७३॥
८. '०छन्द इति' इति पु० १, पु० २, गो०।
९. 'त्रिष्टुबंतं सुक्ताश्रयोपि द स्तुतिम्' इति पु० १। 'त्रिष्टुबंत्रं सुक्तादस्तुतिः' इति पु० २। '०श्रयोपि ह स्तुतिम्' इति गो०।
१०. 'ऊर्ध्वं प्रागिति चेत्' इति पु० १, पु० २, गो०।
११. 'वत्सप्रि०' इति कोशेषु।
१२. 'अच्छ''त्रि''सोमः' इति नास्ति मै०।

शिष्टा जगत्यः। पवमानः सोमः[1] ॥६॥

[७०] त्रिरस्मै रेणुः ॥७॥

दश। सप्त धेनवः। रेणुर्नाम वैश्वामित्रः। वैश्वामित्रत्वमस्यर्षेरुत्तरत्र[2] वक्ष्यति। आदितो नव जगत्यः। दशमी त्रिष्टुप्। पवमानः सोमः[1] ॥७॥

[७१] आ दक्षिणा नव ऋषभः ॥८॥

सृज्यते[1]। ऋषभो नाम वैश्वामित्रः। आदावष्टौ जगत्यः। नवमी त्रिष्टप। पवमानः सोमः[1] ॥८॥

अथ रेण्वृषभयोर्गोत्रमाह[1]—

तौ वैश्वामित्रौ ॥९॥

तावुक्तौ रेण्वृषभौ विश्वामित्रपुत्रौ। श्रूयते हि—अथ ह विश्वामित्रः पुत्रानामन्त्रयामास—

मधुच्छन्दाः श्रृणोणतन ऋषो रेणुरष्टकः[3]। इति ॥६॥

[७२] हरिं हरिमन्तः ॥१०॥

नव। मृजन्ति। हरिमन्तो नामाङ्गिरसः। नवापि जगत्यः। पवमानः सोमः[1] ॥१०॥

[७३] स्रक्वे पवित्रः ॥११॥

नव। द्रप्सस्य। पवित्रो नामाङ्गिरसः। जगती। पवमानः सोमः[1] ॥११॥

[७४] शिशुर्न कक्षीवांस्त्रिष्टुबष्टमी ॥१२॥

नव। जातः। कक्षीवान् नाम दैघतमसः। अष्टमी त्रिष्टुप्। अष्टौ शिष्टा जगत्यः। पवमानः सोमः[1] ॥१२॥

[७५] अभि प्रियाणि पञ्च कविः ॥१३॥

पवते। कविर्नाम भार्गवः। जगती। पवमानः सोमः[1] ॥१३॥

॥ इति पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५०॥

———

१. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै०। २. नवमे सूत्रे। ३. ऐत० ब्रा० ७।१७।७॥

[५१]

[७६] धर्ता ॥१॥

पञ्च । दिवः । भार्गवः कविः । जगती । पवमानः सोमः[1] ॥१॥

[७७] एषः ॥२॥

पञ्च । प्रकोशे । भार्गवः कविः । जगती । पवमानः सोमः[1] ॥२॥

[७८] प्र राजा ॥३॥

पञ्च । वाचम् । भार्गवः कविः । जगती । पवमानः सोमः[1] ॥३॥

[७९] अचोदसः ॥४॥

पञ्च । नः । भार्गवः कविः । जगती पवमानः सोमः[1] ॥४॥

[८०] सोमस्य वसुर्भारद्वाजः ॥५॥

पञ्च । धारा । वसुर्नाम भरद्वाजगोत्रः । जगती । पवमानः सोमः[1] ॥५॥

[८१] प्र सोमस्य ॥६॥

पञ्च । पवमानस्य । भारद्वाजो वसुः । अन्त्यावर्जं जागती । पवमानः सोमः[1] ॥६॥

[८२] असावीति त्रिष्टुबन्ते ॥७॥

पञ्च । सोमः । भारद्वाजो वसुः । एतदन्त्यावर्जं जागतम् । पवमानः सोमः[2] । इति त्रिष्टुबन्ते । इत्येते प्रकृते प्र सोमस्यासावीति द्वे सूक्ते त्रिष्टुबन्ते न तु केवलजागते ॥७॥

[८३] पवित्रं ते पवित्रः ॥८॥

पञ्च । विततम् । पवित्रो नामाङ्गिरसः । जगती । पवमानः सोमः[1] ॥८॥

[८४] पवस्व वाच्यः प्रजापतिः ॥९॥

पञ्च । देवमादनः । प्रजापतिर्नाम वाच्यः । नन्वभि तष्टेवेत्यत्र[3] प्रजापतेर्वाच्यत्वमुक्तमेव किमिति पुनरुच्यते । तत्र हि वैश्वामित्रत्वमप्युक्तम् । तन्मा भूदिति । जगती । पवमानः सोमः[2] ॥९॥

---

१. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।

२. 'पञ्च...सोमः' 'पञ्च...वाच्य' 'जगती...सोमः' इति नास्ति मै० ।

३. 'तदभितष्टीये सूक्ते' इति पु० १, पु० २ । का० सर्वा० १८।९॥

[८५] इन्द्राय द्वादश वेनो भार्गवो द्वित्रिष्टुबन्तम् ॥१०॥

सोम । वेनो नाम भृगुगोत्रः । एकादशीद्वादश्यौ त्रिष्टुभौ । शिष्टा जगत्यः । पवमानः सोमः[1] ॥१०॥

[८६] प्र तेऽष्टाचत्वारिंशद् ऋषिगणा दशर्चा अकृष्टा माषाः प्रथमे सिकता निवावरी द्वितीये पृश्नयोऽजा-स्तृतीयेऽत्रयश्चतुर्थेऽत्रिः पञ्चान्त्या गृत्समदः ॥११॥

आशवः[2] । दशर्चा ऋषिगणाश्चत्वारोऽपश्यन् । दशर्चो दृष्टा यैस्ते । प्रथमेऽत्र दशर्चे द्रष्टारोऽकृष्टा इति माषा इति च द्विनामानः । द्वितीयदशर्चे सिकता इति निवावरी इति च द्विनामानः । तृतीयदशर्चे पृश्नयोऽजा इति च द्विनामानः । एषां द्विनामत्वं चावश्यज्ञेयम्[3] अदृष्टार्थम् । चतुर्थे दशर्चेऽत्रय[4] इति नामानः । इति चत्वा-रिंशद् गताः । एषां गोत्रमुपदेशेष्वनुक्तैर्नोक्तं यथा[5] पूर्वत्र वैखानसशतस्य[6] । अथ पञ्चात्रिभौमो ददर्श । अथान्त्यास्तिस्रो गृत्समदोऽपश्यत् । स चाङ्गिरसः शौनहोत्रो भूत्वा भार्गवः शौनकोऽभवत्[7] । जगती पवमानः सोमः जगत्यधिकारस्य पूर्णो-ऽवधिः[2] ॥११॥

[८७] प्र तु नवोशना ॥१२॥

द्रव । उशना नाम काव्यः । त्रिष्टुप् । पवमानः सोमः[1] ॥१२॥

[८८] अयं सोमोऽष्टौ ॥१३॥

इन्द्र । उशना काव्यः । अष्टावपि त्रिष्टुभः । पवमानः सोमः[1] ॥१३॥

[८९] प्रो स्य सप्त ॥१४॥

वह्निः । उशना काव्यः । त्रिष्टुप् । पवमानः सोमः[1] ॥१४॥

[९०] प्र हिन्वानः षड् वसिष्ठः ॥१५॥

जनिता । वसिष्ठो नाम मैत्रावरुणिः । त्रिष्टुप् । पवमान. सोमः ॥१५॥

॥ इत्येकपञ्चाशोऽध्यायः ॥५१॥

———

१. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० । २. 'आशवः' 'जगती…वधि' इति नास्ति मै० ।
३. '०श्यं ज्ञे०' इति पु० १, पु० २, गो० ।
४. 'दशर्चेत्रयो प्यत ऋषिगणाः पश्यन्' इति पु० १ । 'दशर्चे अत्र' इति पु० २ ।
५. 'तथा' इति पु० १, पु० २ । ६. द्र०—का० सर्वा० ५०।२॥
७. द्र०—का० सर्वा० १२।६॥

[५२]

[९१] असर्जि कश्यपः ॥१॥

षट् । वक्वा । कश्यपो नाम मारीचः । त्रिष्टुप् । पवमानः सोमः[1] ॥१॥

[९२] परि सुवानः ॥२॥

षट् । हरिः । मारीचः कश्यपः । त्रिष्टुप् । पवमानः सोमः[1] ॥२॥

[९३] साकमुक्षः पञ्च नोधाः ॥३॥

मर्जयन्त । नोधा नाम गौतमः । त्रिष्टुप् । पवमानः सोमः[1] ॥३॥

[९४] अधि यत् कण्वः ॥४॥

पञ्च । अस्मिन् । कण्वो घौरः । त्रिष्टुप् । पवमानः सोमः[1] ॥४॥

[९५] कनिक्रन्ति प्रस्कण्वः ॥५॥

पञ्च । हरिः । प्रस्कण्वो नाम काण्वः । त्रिष्टुप् । पवमानः सोमः[1] ॥५॥

[९६] प्र सेनानीश्चतुर्विंशतिर्दैवोदासिः प्रतर्दनः ॥६॥

शूरः[2] । दिवोदासराजर्षेः पुत्रः प्रतर्दनो नाम राजर्षिः । त्रिष्टुप् । पवमानः सोमः[2] ॥६॥

[९७] अस्य प्रेषाष्टापञ्चाशदाद्य तृचं वसिष्ठोऽपश्यदुत्तरान्नव पृथग्वसिष्ठा इन्द्रप्रमतिर्वृषगणो मन्युरुपमन्युर्व्याघ्रपाच्छक्तिः कर्णश्रुन्मृळीको वसुक्र इति चतुर्दश पराशरोऽन्त्याः कुत्सः ॥७॥

हेमना[2] । आद्यं तृचं मैत्रावरुणिर्वसिष्ठो दृष्टवान् । अथ नव तृचान् वसिष्ठपुत्रा नव पृथगपश्यन् । ते चेन्द्रप्रमत्यादिनामानः । तत्र द्वितीयं तृचमिन्द्रप्रमतिर्नाम वासिष्ठोऽपश्यत् । वृषगणो नाम तृतीयम् । मन्युर्नाम चतुर्थम् । उपमन्युर्नाम पञ्चमम् । व्याघ्रपान्नाम षष्ठम् । शक्तिर्नाम सप्तमम् । कर्णश्रुन्नामाष्टमम् । मृडीको नाम नवमम् । वसुक्रो नाम दशममिति[2] । पृथगिति नवानामपि नवसु तृचेषु संभूयदर्शित्वं मा भूत् । वसिष्ठा इत्यृष्यणोऽत्रिभृग्विति[3] लुक् । एतच्चेन्द्रप्रमत्यादीनां गोत्रार्थम् ।

---

१. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।

२. 'शूरः' 'त्रिष्टुप्... सोमः' 'हेमना' 'तत्र...मिति' इति नास्ति मै० ।

३. तु०—अष्टा० २।४।६५॥

इति त्रिंशद् गताः । अथ चतुर्दशर्चः शाक्त्यः पराशरोऽपश्यत् । अथ चतुर्दशान्त्या आङ्गिरसः कुत्सोऽपश्यत् । त्रिष्टुप् । पवमानः सोमः[1] ।।७।।

[९८] अभि नो द्वादशाम्बरीष ऋजिश्वा चानुष्टुभं ह
बृहत्युपान्त्या ८।।

वाजसातमम्[1] । अम्बरीषो नाम वृषागीराजपुत्रः[2] । ऋजिश्वानाम भरद्वाजपुत्रः । बृहस्पतिपौत्रो वा भरतपौत्रो वेत्युक्तः[3] । चेति सहत्वाय[4] । तौ सहापश्यतामित्यर्थः । आनुष्टुभमिदमुत्तराणि च त्रीणि । उपान्त्यैकादशी बृहती । एकादशीत्यनुक्तिर्लाघवाय । पवमानः सोमः[1] ।.८।।

[९९] आ हर्यतायाष्टौ रेभसूनू काश्यपौ बृहत्याद्या ।।९।।

वृष्णवे[1] । रेभसूनुनामानौ[5] द्वावृषी काश्यपौ सहेदमपश्यताम् । आद्या बृहती । अथ सप्तानुष्टुभः । पवमानः सोमः[1] ।।९।।

[१००] अभी नवन्ते नव ।।१०।।

अद्रुहः । काश्यपौ रेभसूनू । अनुष्टुप् । पवमानः सोमः[1] ।।१०।।

।। इति द्विपञ्चाशोऽध्यायः ।।५२।।

---

[५३]

[१०१] पुरोजिती षोळशान्धीगुः श्यावाश्वियर्यातिर्नाहुषो
नहुषो मानवो मनुः सांवरण इति तृचाः शेषे प्रजापतिरुपाद्ये गायत्र्यौ ।।१।।

वः[1] । अन्धीगुर्नाम श्यावाश्वपुत्रः । अत इञोऽपवाद[6] ऋष्यण्यपवादबाह्वादीञ्[8] । ययातिर्नाम राजा नहुषपुत्रः । नहुषोऽपि राजा मनुपुत्रः । मनुरपि राजा संवरणपुत्रः । इत्येते चत्वारस्तृचास्तिस्र ऋचो दृष्टा यैरिति । इति द्वादश गताः । शेषे

---

१. 'इति···सोमः' 'वा···मम्' 'आनु·· सोमः' 'वृष्णवे' ·आद्या · सोमः' 'व' इति नास्ति मै० । २. 'वृषागीर्नामरा०' इति पु० १, पु० २ । ३. तु० – का० सर्वा० ३२।९।।
४. 'सहतत्वाय' इति पु० १, पु० २ । 'हासत्वाय' इति गो० ।
५. 'रेभ्सूना०' इति कोशेषु । ६. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।
७. अष्टा० ४।१।९५।। ८. तु० अष्टा० ४।१।९६।।

चतुर्ऋचे प्रजापतिर्ऋषिः । वैश्वामित्रो वाच्यो वेत्युक्तः । शेष इति शक्यमकर्तुं पारिशेष्यादेव सिद्धः । उपाद्ये द्वितीयातृतीये गायत्र्यौ । शिष्टाश्चतुर्दशानुष्टुभः । पवमानः सोमः[1] ॥१॥

[१०२] क्राणाष्टौ त्रित औष्णिहं वै ॥२॥

शिशुः । त्रितो नामाप्त्यः । औष्णिहमिदमुत्तराणि च चत्वारि । पवमानः सोमः[2] ॥२॥

[१०३] प्र पुनानाय षड द्वित आप्त्यः ॥३॥

वेधसे । द्वितो नामाप्त्यपुत्रः । उष्णिक् । पवमानः सोमः[2] ॥३॥

[१०४] सखायः पर्वतनारदौ काश्यप्यौ[3] द्वे शिखण्डिन्यौ वाप्सरसौ ॥४॥

षट् । आ नि[1] । पर्वतनारदौ सहापश्यताम् । तौ काण्वावित्युक्तौ[4] । अथवा काश्यपपुत्र्यौ शिखण्डिनीनाम्न्यावप्सरसौ[5] सहापश्यताम् । द्वे इत्यनुक्रमण्यन्तरानुकरणम्[6] । उष्णिक् । पवमानः सोमः[1] ॥४।

[१०५] तं वः ॥५॥

षट् । सखायः[1] । पर्वतनारदावित्यनुवर्तते । नाप्सरसौ शिखण्डिन्यौ । वाविशिष्टे हि ते । उष्णिक् । पवमानः[1] ॥५॥

[१०६] इन्द्रमच्छ षळ्नाग्निश्चाक्षुषश्चक्षुर्मानवो मनुराप्सव इति तृचाः पञ्चाग्निः ॥६॥

सुताः । चतुर्दश[1] । अग्निर्नाम चक्षुर्नाम्नः पुत्रश्चक्षुर्नाम मनुपुत्रो, मनुर्नामाप्सुनाम्नः पुत्र इति ते त्रयस्तृचाः । तिस्र ऋचो दृष्टा यैः । इति नवर्चो गताः । अथ पञ्चर्चोऽग्निर्नामापश्यत् । अयमपि चाक्षुष एव । इदानीमेव ह्युक्तमग्निश्चाक्षुष इति । पञ्चेति शक्यमकर्तुं पारिशेष्यादेव सिद्धेः । उष्णिक् । पवमानः सोमः[1] ॥६॥

---

१. 'उपाद्ये...सोमः' 'षट्...नि' 'उष्णिक...सोम' 'षट । सखायः' 'उष्णिक्...सोमः' 'सुताः...दश' 'उष्णिक्...सोमः' इति नास्ति मै० । २. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।

३. मै० संशोधितः पाठः । कोशेषु 'काश्यपौ' इत्युपलभ्यते ।

४. का० सर्वा० ४।१।१-२॥

५. '०न्यौ नाम चा०' इति पु० १, पु० २ । '०नावप्स०' इति गो० ।

६. '०मण्यनुकरणमेतत्' इति पु० १, पु० २ ।

[१०७] परं तः षड्विंशतिः सप्त ऋषयः प्रागाथं तृतीयाषोळश्यौ द्विपदे अष्टम्याद्ये बृहत्यौ ।।७।।

सिञ्चत ।[1] सप्तर्षयो भरद्वाज कश्यपो गोतमोऽत्रिर्विश्वामित्रो जमदग्निर्वसिष्ठ[2] इत्युक्ताः। तत्रैवैतेषां[3] गोत्राणि व्याख्यातानि। एते चेदं सूक्तं संभूयापश्यन् पृथग्दर्शनहेत्वभावात्। इदं च सूक्तं बार्हतप्रगाथव्याप्तम्। तत्र तृतीया परि सुवानश्चक्षस इत्येकविंशत्यक्षरत्वाद् भुरिग्विराड् द्विपदा। षोडशी च नृभिर्येमान इत्येषा विंशत्यक्षरा विराड् द्विपदा। अष्टमीनवम्यौ बृहत्यौ। आदावेकश्चतुर्थ्यादिद्वौ दशम्यादितिस्रः सप्तदश्यादिपञ्चेति प्रगाथैकादशान्वयः। पवमानः सोमः[1] ।।७।।

[१०८] पवस्व षोळश गौरिवीतिर्द्वृचं शक्तिरेकामूरुर्ऋजिश्वोर्ध्वसद्मा कृतयशा ऋणञ्चय इत्यृषयो द्वृचास्तिस्रः शक्तिः काकुभाः प्रगाथाः स सुन्वे गायत्री यवमध्या ।।८।।

मधुमत्तमः[1]। गौरिवीतिर्नाम शाक्त्यो द्वृचमपश्यदिति शेषः। शक्तिरेकाम्। तृतीयां वासिष्ठः शक्तिरपश्यत्। ऊरुर्नामाङ्गिरस ऋजिश्वा नाम भारद्वाज ऊर्ध्वसद्मा नामाङ्गिरसः कृतयशा नामाङ्गिरस ऋणञ्चयो नाम राजर्षिरित्येते पञ्चर्षयो द्वृचाः। द्वे ऋचौ दृष्टे यैः। इति त्रयोदश गताः। अथ तिस्रः शक्तिर्वासिष्ठोऽपश्यत्। तिस्र इति शक्यमकर्तुं पारिशेष्यादेव सिद्धेः। काकुभाः प्रगाथाः। ककुप्सतोबृहत्यात्मकाः। अष्टावत्र प्रगाथा इत्यर्थः। स सुन्वे यो वसूनामिति गायत्री यवमध्या। मध्यमो दशको द्व्यष्टकवती। गायत्रीति विशेषणं महावृहती यवमध्या मा भूदिति। सप्तमप्रगाथादित्वात् पूर्वायाः ककुप्त्वे प्राप्ते यवमध्येत्युच्यते। पवमानः सोमः[1] ।।८।।

[१०९] परि प्र द्व्यधिकाग्नयो धिष्ण्या ऐश्वरयो द्वैपदम् ।।९।।

धन्व। द्वाविंशतिः[1]। अग्नयो नामर्षयो धिष्ण्या यज्ञवेदौ सदसि[4] धिष्ण्यवन्तः। ऐश्वरयः[5]। ईश्वरपुत्राः। बाह्वादित्वादिञ्[6]। एते सहापश्यन्[7]। द्वैपदं सूक्तम्। विंशतिका द्विपदा विराजः। पवमानः सोमः[1] ।।९।।

---

१. 'सिञ्चत' 'आदा⋯सोमः' 'मधुमत्तमः' 'काकुभाः⋯सोमः' 'धन्व⋯शतिः' 'पव⋯सोमः' इति नास्ति मै० ।

२. का० सर्वा० ५०।३।। ३. 'तत्र तेषां' इति पु० १, पु० २।

४. 'ये यज्ञसद' इति पु० १। 'ये यज्ञसदसि' इति पु० २, गो०।

५. 'अथ आद्य⋯' इति पु० १, पु० २। ६. 'बाह्वादिसूत्र' इति पु० १।

७. अतोऽग्रे पु० १ पाठः—'एकादशर्चमेके धिष्ण्या नामाग्नयो पश्यन्' इति। ततः पु० १, पु० २ पाठः—'कावेरीप्रभृतिषु षोडसु नदीषु उत्पन्ना आहवनीयधिष्णिषु व्यभिचारेण। तथा च पुराणकारेणोक्तं ('पुराक्त' इति पु० १)। व्यभिचारात् स्मृता धिष्ण्यास्तासूत्पन्नास्तु धिष्णियः

[११०] पर्यू षु द्व दश त्र्यरुणत्रसदस्यू राजानौ तिस्रोऽनुष्टुभः पिपीलिकमध्याः षळू ऊर्ध्वबृहत्यस्तिस्रश्च विराजः ॥१०॥

प्र धन्व । त्र्यरुणत्रसदस्यू राजर्षी सहापश्यताम् । आद्यास्तिस्रोऽनुष्टुभः । पिपीलिकमध्या द्वादशकाष्टकद्वादशवत्यः । अनुष्टुभ इति विशेषणमुष्णिहो बृहत्याश्च पिपीलिकमध्या सा भूनामिति । अथ चतुर्थ्यादिषड्बृहत्यो द्वादशकत्रयवत्यः । अथ दशम्याद्यास्तिस्रो विराजः । चेत्यर्थेत्यर्थः । तिस्र इति शक्यमकर्तुं पारिशेष्यादेव सिद्धेः । पवमानः सोमः[1] ॥१०॥

[१११] अयं रुचा तृचमनानतः पारुच्छेपिरात्यष्टम् ॥११॥

हरिण्या । तिस्र ऋचो यस्य तत् तृचं सूक्तम् । अनानतो नाम परुच्छेपपुत्रः । बाह्वादीत्र् । चतुःषष्ठयक्षरात्यष्टिछन्दसा व्याप्तमिदम् । पवमानः सोमः[1] ॥११॥

[११२] नानानं चतुष्कं शिशुः पाङ्क्तं हि ॥१२॥

वा । चतुर्ऋचमिदम् । शिशुनामाङ्गिरसः । पञ्चपदया पङ्क्त्या व्याप्तमिदमुत्तरे च द्वे । पवमानः सोमः[1] ॥१२॥

[११३] शर्यणावत्येकादश कश्यपः ॥१३॥

सोमम् । कश्यपो नाम मारीचः । पङ्क्तिः । पवमानः । सोमः[1] ॥१३॥

[११४] य इन्दोश्चतुष्कम् ॥१४॥

पवमानस्य । मारीचः कश्यपः । पङ्क्तिः । पवमानः सोमः[1] ॥१४॥

नवमं मण्डलं चेदं पावमानं प्रवर्णितम्[2] ।
इदानीं दशमं सम्यग्वक्तुमेष विजृम्भते ॥

॥ इति नवमं मण्डलं समाप्तम् ॥

[अथ दशमं मण्डलम्]

अग्र इत्यादि दशमं मण्डलं तु प्रसिद्धितः ।
अनुवाकानुक्रमणीप्रोक्तसंख्यान्वयादपि ॥

(स्तास्तु⋯स्नासु' इति पु० १) धिष्णिषु जज्ञिरे यस्मात्ततस्ते धिष्णियः स्मृता इति ।' ततः पु० १ पाठः—'ईश्वर इति गुणत्ये विशेषणं' ।

१. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।

२. 'प्रवर्त्तितम्' इति पु० १, पु० २।

आचार्यस्तु स्वयं नेदं[1] प्रोक्तवान्निष्फलं ततः[2]।
मण्डलाद्याग्नेयतादिसिद्धयै ज्ञेयं तथापि तत् ॥

[१] अग्ने सप्त त्रितः ॥१५॥

बृहन्। त्रितो नामाप्त्यः। अनादेशात् त्रिष्टुप्। मण्डलादिष्वाग्नेयमैन्द्राद्[3] इत्यग्निः[4] ॥१५॥

[२] पिप्रीहि ॥१६॥

सप्त। देवान्। त्रितः। त्रिष्टुप्। अग्निः[4] ॥१६॥

[३] इनः ॥१७॥

सप्त। राजन्। त्रितः। त्रिष्टुप्। अग्निः[4] ॥१७॥

[४] प्र ते ॥१८॥

सप्त। यक्षि। त्रितः। त्रिष्टुप्। अग्निः[4] ॥१८॥

[५] एकः ॥१९॥

सप्त। समुद्रः। त्रितः। त्रिष्टुप्। अग्निः[4] ॥१९॥

॥ इति त्रिपञ्चाशोऽध्यायः ॥५३॥

---

[५४]

[६] अयम् ॥१॥

सप्त। स यस्य। त्रितः। त्रिष्टुप्। अग्निः[4] ॥१॥

[७] स्वस्ति ॥२॥

सप्त। नो दिवः। त्रितः। त्रिष्टुप्। अग्निः[4] ॥२॥

[८] प्र केतुना नव त्रिशिरास्त्वाष्ट्रस्तृचोऽन्त्य ऐन्द्रः ॥३॥

बृहता। त्रिशिरा नाम त्वष्टृपुत्रः। आदितः षडाग्नेय्यः। अस्य त्रितः क्रतुना वव्रे अन्तरिति सप्तम्यादितृचो[5]ऽन्त्य इन्द्रदेवत्यः। ऐन्द्रवचनं मण्डलादिष्वाग्नेयनिवृत्त्य-

---

१. 'चेदं' इति पु० १। नास्ति पु० २। २. '०लत्वतः' इति पु० १, पु० २।
३. का० सर्वा परि० १४।१२॥ ४. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मैं०।
५. 'बृहता…सप्तम्यादि' इति नास्ति मैं०।

र्थम् । अत एवाग्न इत्यादि दशमं मण्डलमनुमिमीमहे[१] । अन्यथा अग्न इत्याग्नेय्यः[२] पञ्चपञ्चाशद्[३] इत्यवक्ष्यत् । ऐन्द्रत्वमनादेशादेवासाधयिष्यत् । त्रिष्टुप्[४] ।।३।।

[९] आपो हि सिन्धुद्वीपो वाम्बरीष आपं गायत्रं द्व्यनुष्टुबन्तं पञ्चमी वर्धमाना सप्तमी प्रतिष्ठा ।।४।।

नव । ष्ठा मयोभुवः । सिन्धुद्वीपो नाम स चाम्बरीषः । अम्बरीषस्य राज्ञः पुत्रः[४] । वेत्युवतेः प्रकृतस्त्वाष्ट्रस्त्रिशिराः । अब्देवत्यम् । गायत्रीव्याप्तम् । इदमाप इत्यष्टमी, आपो अद्येति नवमी च द्वे अनुष्टुभावन्ते यस्य तत् । ईशाना वार्याणामिति पञ्चमी वर्धमाना । सप्तम्यापः पृणीतेति प्रतिष्ठा[४] ।।४।।

[१०] ओ चित् षळ्ना वैवस्वतयोर्यमयम्योः संवादः षष्ठ्ययुग्भिर्यमी मिथुनार्थं यमं प्रोवाच स तां नवमीयुग्भिरनिच्छन् प्रत्याचष्टे ।।५।।

सखायम् । चतुर्दश[४] । विवस्वत्सुतयोर्यमयम्यो. परस्परं संवादः । कथमित्याह—षष्ठीत्यादि । वैवस्वती यमी वैवस्वतं भ्रातरं मिथुनार्थं मैथुनार्थम् । अण्याद्यवृद्धिश्छान्दसी[५] । षष्ठ्यर्चान्याभिश्चायुग्भिः प्रोवाच । प्रणयेनोक्तवती । अवश्यं कुरु मास्मानवबाधिष्ठा[६] इति । ततः स यमस्तां यमीं स्वसारं नवम्यर्चान्याभिश्च युग्भिरनिच्छन् मनसैवाकार्यमिति रतिस्पृहारहितः सन् प्रत्याचष्टे । प्रतिकूलमेवोक्तवान् । मा स्म मां वाधिष्ठा अन्यं भजस्वेति । ततश्च षष्ठ्याद्ययुक्षु यमो देवता । यमी चान्यासु देवता । यमो युक्षु नवम्यां चर्षिः । अन्यासु सा यमीति । त्रिष्टुप्[४] ।।५।।

[११] वृषा नवाङ्गिर्हविर्धान आग्नेयं तु त्रित्रिष्टुबन्तम् ।।६।।

वृष्णे । अङ्गस्यापत्यम्[४] । वाह्वादित्वादिञ् । अग्निदेवत्यमिदमुत्तरं च । यस्ते अग्ने सुमतिमित्याद्यास्तिस्रस्त्रिष्टुभोऽन्ते यस्य तत् । शिष्टाः षड् जगत्यः[४] ।।६।।

[१२] द्यावा ।।७।।

नव । ह क्षामा । आङ्गिर्हविर्धानः । त्रिष्टुप् । अग्निः[७] ।।७।।

---

१. 'अनुमीमहे' इत्यपपाठो मै०, गो० ।

२. 'अस्य···नेय्यः' इति नास्ति पु० १,पु०२ । ३. 'यदि पञ्च०' इति पु० १, पु० २।

४. 'त्रिष्टुप्' 'नव ··पुत्रः' 'गायत्री···प्रतिष्ठा' ('ईशाना···प्रतिष्ठा' इति नास्ति पु०१ ।) 'सखा···दश' 'त्रिष्टुप्' 'वृष्णे ··पत्यम्' 'अग्नि···जगत्यः' इति नास्ति मै० ।

५. 'अण्यादिवृद्ध्यभावश्छान्दसः' इति मै० ।

६. '०स्मानवताः षिष्ठ्या' इति पु० १ । '०स्मानवता षष्ठा' इति पु० २ । '०स्मानवताः षष्ठ्या' इति गो० ।

७. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।

[१३] युजे पञ्च विवस्वान् वादित्यो हाविर्धानं जगत्यन्तम् ।।८।।

वाम्[1]। विवस्वान् नामादित्य अदितिपुत्रः। अदितेर्ण्यः[2]। अथवा प्रकृत एवाङ्गिर्हविर्धानः। जगत्यन्तम्। पञ्चमी जगती [अन्ते] यस्य तत्। आदौ चतस्रस्त्रिष्टुभः[1]। हविर्धानाख्ये ये द्वे शकटे तद्देवत्यमिदम् ।।८।।

[१४] परेयिवांसं षोळश यमो यामं षष्ठी लिङ्गोक्तदेवता
परास्च तिस्रः पित्र्या वा तृचः[3] श्वभ्यां परा अनुष्टुभो
बृहत्युपान्त्या ।।९।।

प्रवतः। यमो नाम वैवस्वत ऋषिः। यामम्। यमदेवत्यम्। अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा इति[1] षष्ठी लिङ्गोक्तदेवता। लिङ्गोक्ताश्चाङ्गिरःपित्रथर्वभृगवः। अतः पराश्च प्रेहि प्रेहीत्याद्यास्तिस्रो लिङ्गोक्तदेवताः। वेति लिङ्गोक्तदेवत्याः पितृदेवत्या वा। अथाद्रव सारमेयौ श्वानाविति तृचः। श्वानौ सरमापुत्रौ जनमार्गमभितः स्थितौ स्तौति[4]। श्वभ्यामिति तादर्थ्ये चतुर्थी। अतः परास्त्रयोदश्याद्या अनुष्टुभः। ताश्च यमाय सोमं, यमाय घृतवत्, यमाय मधुमत्तमं, त्रिकद्रुकेभिरित्येताः। यमाय मधुमत्तममित्येषोपान्त्या पञ्चदशी बृहती। इयमुक्तिरनुष्टुप्त्वापवादः। आदितो द्वादश त्रिष्टुभः[1] ।।९।।

वक्ष्यमाणर्षिपञ्चकस्य गोत्रमाह[5]—

यामायनाः परे पञ्च ।।१०।।

अथ परे पञ्च वक्ष्यमाणा ऋषयो गोत्रतो यामायना वेदितव्याः। यामस्य नडादित्वात्[6] फक्। यामायनशब्दस्य पञ्चकृत्व उक्तौ गुरुत्वं स्यादिति गुरुत्वाल्लघुत्वार्थमिदम्[7] ।।१०।।

[१५] उदीरतां षळूना शङ्खः पित्र्यं जगत्येकादशी ।।११।।

अवरे। चतुर्दश। शङ्खो नाम यामायनः। पितृदेवत्यमिदम्। एकादशी जगती। शिष्टास्त्रयोदश त्रिष्टुभः[8] ।।११।।

[१६] मैनं दमन आग्नेयं चतुरनुष्टुबन्तम् ।।१२।।

---

१. 'वाम्' 'जग···ष्टुभः' 'प्रवतः···इति' 'अतः···त्रिष्टुभः' इति नास्ति मै० ।

२. 'अदितेभ्यः' इति पु०१, पु०२, ।   ३. 'तिस्रः' इति गो० मूलमात्रे ।

४. 'तौत्रि' इति पु० १, पु० २, गो० ।

५. गो० मात्रपाठः ।   ६. 'याम' शब्दो नडादिषु (अष्टा० ४।१।९९)न संगृह्यते ।

७. 'शंखाद्याः पञ्च ऋषयो यमपुत्रा' इति सूत्रव्याख्या पु० १, पु० २ ।

८. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै०

षड्‌ना । अग्ने । दमनो नाम यामायनः । अग्निदेवत्यमिदम् । चतस्रोऽनुष्टुभोऽन्ते यस्य तत् । आदितो दश त्रिष्टुभः[1] ॥१२॥

[१७] त्वष्टा देवश्रवा द्वे सरण्यूदेवते पौष्ण्यश्चतस्रः सारस्वत्यस्तिस्रः पञ्चाप्यो द्रप्सस्तिस्रः सौम्यो वान्त्ये अनुष्टुभा उपान्त्या पुरस्ताद्बृहती वा ॥१३॥

षड्‌ना । दुहित्रे । देवश्रवा नाम यामायनः[2] । आदितो द्वे सरण्यूदेवते । सरण्यूनामनी[3] देवता ययोर्ऋचोस्ते । सारण्याविति[4] वाच्ये सरण्यूदेवते इति वचनमूकारान्तमिदं सूर्यपत्यभिधानमिति[5] वक्तुम् । तद्धित ओर्गुणे[6] कृते किमिदं ह्रस्वान्तमुत दीर्घान्तमिति संशेरते[7] । पूषा त्वेतश्च्यावयत्विति चतस्रः पूषदेवत्याः । अथ तिस्रः सरस्वतीं देवयन्त इत्याद्याः सरस्वतीदेवत्याः । सरस्वत्या अण्, न सरस्वतः[8] सरस्वतीलिङ्गात्[9] । अथापो अस्मानित्याद्या पञ्चाब्देवत्याः । आस्वेव पञ्चसु द्रप्सश्चस्कन्देति तिस्रः सोमदेवत्याः । अत्र चान्त्ये त्रयोदशीचतुर्दश्यावनुष्टुभौ । अथवोपान्त्या त्रयोदशी पुरस्ताद्बृहती वा । आदितो द्वादश त्रिष्टुभः[2] ॥१३॥

[१८] परं मृत्यो संकुसुकश्चतस्रो मृत्युदेवताः पराः धात्री परा त्वाष्ट्री पराः पितृमेधा एकादशी प्रस्तारपङ्क्तिर्जगत्युपान्त्यान्त्यानुष्टुप् प्राजापत्या वा सानिरुक्ता ॥१४॥

षड्‌ना । अनु । संकुसुको नाम यामायनः[2] । अत्रादौ चतस्रो मृत्युदेवत्याः । मृत्युदेवता यासां ताः । मात्यव[10] इत्यवचनं वैशिष्टचाय[11] । अतः परा पञ्चमी धातृदेवत्या । अतः परा षष्ठी त्वष्टृदेवत्या । अतः पराः[2] पितृमेधाः पितृयज्ञाभिधायिन्यः । अत्र चैकादशी प्रस्तारपङ्क्तिः । द्विर्द्वादशद्वयष्टकवती । उपान्त्या त्रयोदशी जगती[2] ।

---

१. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।

२. 'षड्‌ना…यामायनः' 'अथापो……त्रिष्टुभः' 'षड्‌ना……यामायनः' 'अतः…परा' 'अत्र…जगती' 'शिष्टा……त्रिष्टुभः' इति नास्ति मै० ।

३. 'सरण्यूर्नमिन' इति पु० १ । 'सरण्यूनमिना' इति पु० २ ।

४. 'सरण्याविति' इति कोशेषु ।

५. 'सुर्याभिधा०' इति पु० १, पु० २ ।

६. अष्टा० ६।४।१४६॥

७. पु० १ कोशे—'अत्रेतिहासं वृद्धाचार्य आचष्टे । अभवन्……मन्यते' (बृ० दे० ६।१६२–७।७) इति पाठोऽधिकः ।

८. 'सरस्वत्यं' इति पु० १, पु० २ ।

९. 'सरस्वतीमितिलिङ्गात्' इति पु० १, पु० २ ।

१०. 'मार्तव्या' इत्यपपाठो मै० ।

११. 'वैसष्टचाय' इति पु० १, पु० २ ।

अन्त्या। चतुर्दश्यनुष्टुप् सती प्राजापत्या प्रजापतिदेवत्या वा। सा चानिरुक्ता[1]। अप्रकाशदेवताभिधाना।[2] यद्यप्रकाशितदेवताभिधायित्वाद्[3] अनिरुक्ता त्र्यम्बकम्[4] इत्यस्याम् अश्रुतरुद्रपदायां[5] हंसः शुचिषद्[6] इत्यदृष्टसूर्यपदायां चानिरुक्तेति वक्तव्यम्। न वक्तव्यम्। अस्या एवानिरुक्तत्वं ज्ञेयं श्रुतिषु चोदितमिति मन्यते। अत एव शं नः करतीत्यस्याः[7] सानिरुक्ता रौद्री शान्तेति[8] ब्राह्मणकथितायाः अप्यनिरुक्तत्वमनेन नाभ्यधायि। न हि ब्राह्मणाभिदृष्टम्[9] इत्येव वा अवश्यं[10] ज्ञेयम्। किन्तु तयापदिष्टं तदेवेति। शिष्टा एकादश त्रिष्टुभः[11] ।।१४।।

।। इति चतुःपञ्चाशोऽध्यायः ।।५४।।

---

[५५]

[१९] नि वर्तध्वमष्टौ मथितो भृगुर्वा वारुणिर्भार्गवश्च्यवनो वापं गव्यं वानुष्टुभमग्नीषोमीयो द्वितीयोऽर्धर्चः षष्ठी गायत्री ।।१।।

मानु गात[11]। मथितो नाम यामायनः। अथवा भृगुर्नाम वरुणपुत्रः। यद्वा च्यवनो नाम भार्गवः। क्वचिन्न्यायेन भृगोर्वारुणित्वे सिद्धे वारुणिरित्यनुक्रमण्यनुकरणम्। यामायनत्वं हि निवृत्तम्। आपम्। अब्देवत्यम्। अथवा गव्यम्। गोदेवत्यम्। अत्र सूक्तेऽग्नीषोमा पुनर्वसू इति द्वितीयोऽर्धर्चोऽग्नीषोमदेवत्यः। अनुष्टुप्छन्दस्कमिदम्। षष्ठी गायत्री[11] ।।१।।

अथ वक्ष्यमाणसूक्तसप्तकस्य द्रष्टुर्विकल्पमाह[11]—

सप्तोत्तराण्यैन्द्रो विमदः प्राजापत्यो वा वासुक्रो वसुकृद्वा ।।२।।

ददर्शेति शेषः। अत उत्तराणि सप्त सूक्तानि वक्ष्यमाणानि विमदो ददर्श। स

---

१. इतोऽग्रे पु० १ पाठः—'तथा चोक्तं। मंत्रेषु ह्यनिरुक्तेषु देवतां कर्मतो वदेत्। मंत्रतः कर्मणा चैव प्रजापतिर[त्र]संभवेत्।' इति। २. 'अभिप्रकाशित०' इति कोशेषु।
३. 'य अत्र०' इति पु० १। 'अप्र०' इति पु० २। 'अत्र प्र०' इति गो०।
४. ऋ०. ८।५९।१२।। ५. 'अश्वमत०' इति पु० १, पु० २।
६. ऋ० ४।४०।५।। ७. ऋ० १।४३।६।। 'करदिति' इति कोशेषु।
८. ऐत० ब्रा० ३।३४।८।। ९. '०णादिदृ०' इति पु० १, पु० २।
१०. 'इत्यसा…ज्ञेयं' इति पु० १। 'इत्यादिना ज्ञेयं' इति पु० २।
११. 'शिष्टा…त्रिष्टुभः' 'मानुगात' 'आपम्… गायत्री' 'अथ…माह' इति नास्ति मै०।

चैन्द्रः प्राजापत्यो वा । वसुक्रन्नाम वसुक्रपुत्रो[1] वा ददर्श ॥२॥

[२०] भद्रं दशाग्नेयं तु गायत्रमाद्यैकपदा पाद एव वा शान्त्यर्थः परानुष्टुबन्त्ये विराट्त्रिष्टुभौ ॥३॥

नो अपि । अग्निदेवत्यमिदमुत्तरं च । गायत्रम्[2] । आद्यर्गेकपदा । तदर्धमेकपदेति[3] दशाक्षरा विराट् । अथवा नैकपदेयम् । किं[4] तर्हि ? पाद एव वा । अत्र च पक्षे लिङ्गम् । पादश्च पारणं संप्रकीर्तितं[5] सपादं मुनिभिः [6]पुरेत्याद्यनुक्रमणी व्यवहारः । उभयपक्षे[7] शान्त्यर्थः । पुंस्त्वमविवक्षितम् । सदा शान्तिरत्र प्रयोजनम् । न तु शान्त्याग्नेयत्वं बाध्यते[8] । न हि शं नः पञ्चोना शान्तिरित्यत्र[9] वैश्वदेवत्वं बाधितम् । परान्गिमीळे भुजामित्येषानुष्टुप् । अन्त्ये विराट्त्रिष्टुभौ । नवमी विराड् दशमी त्रिष्टुप् । मध्ये षड् गायत्र्यः । प्राजापत्य ऐन्द्रो वा विमदः । वासुक्रो वसुकृद् वा[2] ॥३॥

[२१] आग्निं नाष्टावास्तारपाङ्क्तम् ॥४॥

स्ववृक्तिभिः । द्व्यष्टकद्विर्द्वादशवत्यास्तारपङ्क्तया[2] व्याप्तमिदम् । उभयपदवृद्धिश्छान्दसी । प्राजापत्य ऐन्द्रो वा विमदः । वासुक्रो वसुकृद् वा । अग्निः[2] ॥४॥

[२२] कुह पञ्चोना पुरस्ताद्बार्हतं त्रिष्टुबन्तं त्वं त्या चिदा नस्त्वं नोऽनुष्टुभः ॥५॥

श्रुतः । पञ्चदश । आद्यद्वादशकत्र्यष्टकया[2] पुरस्ताद्बृहत्या व्याप्तमिदम् । उत्तरपदवृद्धिश्छान्दसी । शिष्टाजगतीत्वापवादार्थमिदं कृतम् । पञ्चदशी त्रिष्टुप् । अत्र च त्वं त्या चिद्वातस्य, आ न इन्द्र पृक्षसे, त्वं न इन्द्र शूर शूरैरिति तिस्रोऽनुष्टुभः । पञ्चमीसप्तमीनवम्य इत्यवचनमुक्तौ प्रतिपत्तौ च लाघवार्थम् । प्राजापत्य ऐन्द्रो वा विमदः । वासुक्रो वसुकृद् वा । अनुक्तेरिन्द्रः[2] ॥५॥

[२३] यजामहे सप्ताद्यान्त्ये त्रिष्टुभौ पञ्चम्यभिसारिणी ॥६॥

इन्द्रम् । प्रथमासप्तम्यौ त्रिष्टुभौ । पञ्चमी द्विदशकवत्यभिसारिणी । शिष्टा-

---

१. 'वासुक्रो' इति पु० १, पु० २ ।

२. 'नो...गायत्रम्' 'परा...वा' 'स्व...दशवत्या' 'प्राजा...अग्निः' 'श्रुतः...कया' 'शिष्टा...रिन्द्रः' इति नास्ति मै० ।

३. का० सर्वा० परि० १२।६॥

४. 'नेयम्...' इति पु० १ । 'नेयमृक्' इति पु० २ ।

५. अनुवाकानु० ४३ ।

६. अनुवाकानु० ४४ ॥

७. '०पक्षे हि' इति पु० १, पु० २ ।

८. 'मध्यतो' इति पु० १, पु० २ ।

९. का० सर्वा० ३५।१६॥

श्चतस्रो जगत्यः । ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा विमदः । वासुक्रो वसुकृद् वा[1] ।।६।।

[२४] इन्द्र सोमं षळास्तारपाङ्क्तं त्वाश्विन्योऽन्त्यास्तिस्रोऽनुष्टुभः।।७।।

इमम् ।[2] आस्तारपाङ्क्तमिदमुत्तरं च। पूर्ववत् प्रतिवक्तव्यम् । अन्त्याश्चतुर्थ्याद्यास्तिस्रोऽश्विदेवत्याः सत्योऽनुष्टुभः । ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा विमदः । वासुक्रो वसुकृद् वा । आदौ तिस्र ऐन्द्रचः[2] ।।७।।

[२५] भद्रमेकादश सौम्यम् ।।८।।

नः । आस्तारपाङ्क्तम् । ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा विमदः । वासुक्रो वसुकृद् वा । सोमदेवत्यम्[1] ।।८।।

[२६] प्र हि नव पौष्णमानुष्टुभमाद्याचतुर्थ्यां उष्णिहौ ।।९।।

अच्छ । पूषदेवत्यम् । अनुष्टुप्छन्दसा व्याप्तम् ।[2] तत्र प्रथमाचतुर्थ्यावुष्णिहौ । ऐन्द्रः प्राजापत्यो विमदः । वासुक्रो वसुकृद् वा । वैकल्पिकवसुकृद्विमदयोः [2]पूर्णोऽवधिः[3] ।।९।।

[२७] असत्सु चतुर्विंशतिरैन्द्रो वसुक्रः ।।१०।।

मे । वसुक्रो नामेन्द्रपुत्रः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः[1] ।।१०।।

[२८] विश्वो हि द्वादशेन्द्रवसुक्रयोः संवाद ऐन्द्रः सूक्तस्य प्रथमयेन्द्रस्य स्नुषा परोक्षवदिन्द्रमाहेन्द्रस्य युजः शिष्टा ऋषेश्चतुर्थी च ।।११।।

अन्यः[1] । इन्द्रवसुक्रयोः पितापुत्रयोः संवादः । ऐन्द्रः । इन्द्रवाक्यभूता वसुक्राभिधायिन्योऽप्यृच ऐन्द्रे कर्मणि विनियोक्तव्या इत्यर्थः । तथा चारण्यकब्राह्मणसूत्रयोः—ऐन्द्रे महाव्रते मरुत्वतीये शस्त्रे असत्सु मे जरितः साभिवेगः सत्यध्वृतमिति शंसति[4] । असत्सु मे जरितः साभिवेगः पिबा सोममभीति[5] च विनियोग उपपन्नो भवति[6] । अर्थार्षिज्ञानाय वक्तृविशेषमाह—सूक्तस्येत्यादि[2] । इन्द्रस्य स्नुषा वसुक्रपत्नी । सूक्तस्य

---

१ सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।

२. 'इमम्' 'ऐन्द्रः···ऐन्द्रचः' 'अच्छ · व्याप्तम्' 'ऐन्द्र···वधिः' 'अन्यः' 'सू···त्यादि' इति नास्ति मै० ।

३. अतोऽग्रे पु० १ पाठः—'सप्तग्रहणं विकल्पार्थम् । अन्यथा हि वाविशिष्टत्वादनुवृत्तिरुत्तरत्र वसुकृतो न स्यात्' । ४. ऐत० आ० १।२।६।१।।

५. ऐत० आ० ५।१ १।८।। ६. 'भवतीति' इति कोशेषु ।

प्रथमया विश्वो हीत्यनया संनिहितमेवेन्द्रं ज्ञात्वा[1] परोक्षवद् असंनिहितवदाह । अनयेति वाच्ये सूक्तस्य प्रथमयेति विस्पष्टार्थम् । द्वितीयादियुजश्चतुर्थीवर्जमिन्द्रस्य[2] वाक्यमिति शेषः । शिष्टास्तृतीयाद्ययुजश्चतुर्थी चर्षेवंसुक्रस्य वाक्यम् । तेनाद्यायां[3] वसुक्रपत्न्यृषिका । द्वितीयादीनां चतुर्थीवर्जितानां युजामिन्द्र ऋषिः । तृतीयादीनां चतुर्थीसहितानामयुजां वसुक्र ऋषिः । सर्वास्विन्द्रस्त्रिष्टुभः[4] । अत्रेतिहासमाहुः—इन्द्रपुत्रे वसुक्रनाम्नि यजमाने सति यज्ञमिन्द्रः प्रच्छन्न आजगाम । तदागमनमिन्द्रस्नुषा[5] वसुक्रपत्नी नामावबुध्य ततः सा श्वशुरेन्द्रागमनकाङ्क्षिणी परिदेवयांचक्रे[6] । अथेन्द्रः प्रकाशभूतस्तस्याः प्रीत्यै स्वपुत्रेण वसुक्रेण सह संवादमकरोदिति ॥११॥

[२९] वने नाष्टौ ॥१२॥

वायः । वसुक्रः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः[7] ॥१२॥

[३०] प्र देवत्रा पञ्चोना कवष ऐलूष आपमपोनप्त्रीयं वा ॥१३॥

ब्रह्मणे । पञ्चदश । कवषो नामेलूषपुत्रः । ऋष्यण् । आपम् । अब्देवत्यम् । अथवापोनप्त्रीयम् । वरुणवाचिनोऽपान्नपाच्छब्दस्य देवतार्थेऽपोनप्त्रपान्नप्तृभ्यां घः, छ चेति[8] छः । तस्येयः[9] । वरुणदेवत्यं वेत्यर्थः । त्रिष्टुप्[7] ॥१३॥

[३१] आ न एकादश वैश्वदेवम् ॥१४॥

देवानाम् । त्रिष्टुप् । कवष ऐलूषः । वैश्वदेवम्[7] ॥१४॥

[३२] प्र सु ग्मन्ता नव पञ्चाद्या जगत्यः ॥१५॥

धियसानस्य । आद्याः पञ्च जगत्यः । षष्ठ्यादिचतस्रस्त्रिष्टुभः । चतुस्त्रिष्टुवन्तमिति नोक्तम् । लाघवविशेषाभावात् । कवष ऐलूषः । इन्द्रः[7] ॥१५॥

॥ इति पञ्चपञ्चाशोऽध्यायः ॥५५॥

———

[५६]

[३३] प्र माद्या वैश्वदेव्यैन्द्रः प्रगाथः परा गायत्र्यो द्वे कुरु

---

१. 'श्रामेवेंदमज्ञा' इति पु० १ । २. 'पंचेंद्रवा०' इति कोशेषु ।
३. 'आद्यया' इति पु० १ । ४. 'सर्वास्त्रिष्टुभः' इति कोशेषु ।
५. '०द्रस्य' इति पु० १ । ६. '०देवतां०' इति पु० १ ।
७. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० । ८. अष्टा० ४।२।२७,२८ ॥
९. अतोऽग्रे पु० १, गो० पाठः—'नप्तृभावो नपाद्रूपेण हि निपात्यते' ।

श्रवणस्य त्रासदस्यवस्य दानस्तुतिः पराभिर्मृते मित्रातिथौ राज्ञि तत्स्नेहादृषिरुपमश्रवसं पुत्रमस्य व्यशोकयत् ॥१॥

युयुजे । नवेत्येव[1] । अत्र चाद्ययानादेशात् त्रिष्टुभा विश्वे देवा स्तूयन्ते । अथ द्वितीयादिरिन्द्रदेवत्य एकः प्रगाथो वार्हतः । अतः पराश्चतुर्थ्याद्याः षड् गायत्र्यः । तासु चादितो द्वाभ्यां त्रासदस्यवस्य त्रसदस्यवस्य पुत्रस्य कुरुश्रवणनाम्नो महाराजस्य दान स्तूयते । अथ पराभिश्चतसृभिः षष्ठ्याद्याभिर्ऋग्भिर्ऋषिरैलूषः कवषो मित्रातिथिनाम्नि राज्ञि मृते परलोकं गते शोकाभिभूतमस्य मित्रातिथेः पुत्रमुपमश्रवोनामानं मित्रातिथिस्नेहाद् उपमश्रवःस्नेहाद्वाभ्येत्य व्यशोकयत् । विगतशोकमकरोत् । तत् करोतीति[2] णिच् । टिलोपः । लङ् । संग्राम युद्ध[3] इति नियमाद्[4] वेः पुरोऽडागमः[5] । उक्तं च—

> यस्येति सूक्तशेषेण मृते मित्रातिथौ नृपे ।
> उपमश्रवसः स्नेहादृषिः शोकमपानुदत् ॥ इति ॥१॥

[३४] प्रावेपाः षळूना मौजवान् वाक्षोऽक्षकृषिप्रशंसा चाक्षकितवनिन्दा च सप्तमी जगती ॥२॥

मा । चतुर्दश[1] । ऐलूषः कवष ऋषिः । अथवाक्षो नाम मौजवान् मूजवतः पुत्रः[6] । अपत्याणि तस्य लोपेऽप्यादिवृद्धिर्गृह्य[7] सौविष्टकृदिति[8] यथा । अत्र चाक्षकृषिप्रशंसा च कियतेऽक्षकितवनिन्दा च क्रियते । तत्राक्षान् द्वादशी स्तौति । नवम्याद्या च सप्तमी त्रयोदशी कृषिं स्तौति । कितवं चानुशास्ति । शिष्टाभिर्नवभिस्त्वक्षाः कितवश्चैव निन्द्यन्ते । अत्र सप्तमी जगती । शिष्टास्त्रयोदश त्रिष्टुभः[1] ॥२॥

[३५] अबुध्रं लुशो धानाको वैश्वदेवं तु द्वित्रिष्टुबन्तं तु ॥३॥

षड्ना । उ त्ये । लुशो नाम धानाकस्य पुत्रः । वैश्वदेवमिदमुत्तरं च । द्वित्रिष्टुबन्तम् । द्वे त्रिष्टुभावन्ते यस्य तद्, इदमुत्तरं च । आदितो द्वादश जगत्यः । विश्वेदेवाः[9] ॥३॥

[३६] उषासानक्ता ॥४॥

---

१. 'यु...त्येव' 'मा...दश' 'अत्र...त्रिष्टुभः' इति नास्ति मै० ।
२. तु०—महा० वा० ३।१।२६॥
३. धा० १०।३७६॥
४. द्र०—महा० ३।१।१२॥
५. 'पुरोडाशमः' इति पु० १ ।
६. 'मूजवत्पुत्रः' इति मै० ।
७. आश्व० गृह्य० २।३।४॥
८. 'पृश्ने नात्र सौ०' इति पु० १ ।
९. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।

षड्ना । बृहती । धानाको लुशः । त्रयोदशीचतुर्दश्यौ त्रिष्टुभौ । आदितो द्वादश जगत्यः । विश्वेदेवाः[1] ॥४॥

[३७] नमो द्वादश सौर्योऽभितपाः सौर्यं जागतं वै त्रिष्टुब्दशमी ॥५॥

मित्रस्य । अभितपा नाम सूर्यपुत्रः । सूर्यदेवत्यम् । जागतमिदमुत्तराणि च चत्वारि । शं नो भवेति त्रिष्टुब् दशमी[1] ॥५॥

[३८] अस्मिन्नः पञ्च मुष्कवानिन्द्रः ॥६॥

इन्द्र[2] । मुष्कवद्गुण इन्द्र ऋषिः । मुष्कवान् सवृषण इत्यर्थः । ऋषेरिन्द्रस्य विशेषणं विज्ञेयमित्येवोक्तम् । अस्य च गोत्रं नास्त्यनुपदेशात् । न चाङ्गिरसत्वम-ब्रह्मर्षित्वात्[3] । देवताजातीयोऽसौ देवताकाण्डे पाठात् । तर्ह्ययं देवता भवतु सौर्यो-ऽभितपा ऋषिस्त्विति चेत्, न तद्धितचतुर्थ्यभावाद् आर्षानुक्रमण्यामिन्द्रोऽस्मिन् मुष्क-वानित्युक्तेर्देवतानुक्रमणीबृहद्देवतयोरभावाच्च । जागतम् । ऐन्द्रः[4] ॥६॥

[३९] यो वां षळूना काक्षीवती घोषाश्विन हि त्रिष्टुबन्तम् ॥७॥

परिज्मा । चतुर्दश[4] । घोषा नाम कक्षीवतो दुहिता । अश्विदेवत्यमिदमुत्तरे च द्वे । अन्त्या त्रिष्टुप् । आदितस्त्रयोदश जगत्यः । अनुवृत्तेः । न तु त्रिष्टुबन्तवचनात् । उत्तरत्रापि जागतमिति वर्तते[4] ॥७॥

[४०] रथं यान्तम् ॥८॥

षड्ना । कुह । घोषा काक्षीवती । जागतम् । आश्विनम्[1] ॥८॥

[४१] समानं तृचं सुहस्त्यो घौषेयः ॥९॥

उ त्यम् । सुहस्त्यो नाम घौषेयः । काक्षीवत्या घोषायाः सुतः । स्त्रीभ्यो ढक्[5] । तिस्रोऽपि जगत्यः । आश्विन्यश्च[1] ॥९॥

[४२] अस्तेवैकादश कृष्ण ॥१०॥

सु । कृष्णो नामाङ्गिरसः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः । अनादेशान्निवृत्ता हि जगत्य-श्विनौ च[1] ॥१०॥

---

१. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।

२. 'इन्द्र' इति नास्ति मै० । इतोऽग्रे पु० १ कोशे—'अत्रेतिहास छन्दोगे द्रष्टव्यः' इति पाठोऽधिकः ।

३. ०ङ्गिरसं ब्रह्म०' इति पु० १, पु० २ ।

४. 'जा…ऐन्द्रः' 'परि…दश' 'अश्वि…वर्तते' इति नास्ति मै० ।

५. अष्टा० ४।१।१२०॥

[४३] अच्छा मे द्वित्रिष्टुबन्तं तु ॥११॥

एकादश । इन्द्रम् । दशम्येकादश्यौ द्वे त्रिष्टुभावन्ते यस्य तत् । इदमुत्तरं च । आदितो नव जगत्यः । आङ्गिरसः कृष्णः । इन्द्रः[1] ॥११॥

[४४] आ यातु त्रित्रिष्टुबादि ॥१२॥

एकादश । इन्द्रः । तिस्रस्त्रिष्टुभ आदौ यस्य तत् । इदमधिकाराद् द्वित्रिष्टुबन्तं चेति । मध्ये षड् जगत्यः । आङ्गिरसः कृष्णः । इन्द्रः[1] ॥१२॥

[४५] दिवस्परि द्वादश वत्सप्रीराग्नेयं तु ॥१३॥

प्रथमम्[2] । वत्सप्रीर्नाम भालन्दन इत्युक्तम्[3] । आग्नेयमिदमुत्तरं च । त्रिष्टुप्[2] ॥१३॥

॥ इति षट्पञ्चाशोऽध्यायः ॥५६॥

---

[५७]

[४६] प्र होता दश ॥१॥

जातः । वत्सप्रीर्भालन्दनः । त्रिष्टुप् । अग्निः[1] ॥१॥

[४७] जगृभ्माष्टौ सप्तगुर्वैकुण्ठमिन्द्रं तुष्टाव ॥२॥

ते दक्षिणम् ।[2] सप्तगुर्नामाङ्गिरसो वैकुण्ठमिन्द्रं तुष्टावाभिस्त्रिष्टुब्भिः । विकुण्ठाया अपत्यमिति शिवादिभ्योऽण्[4] । इन्द्रमिति वैकुण्ठविशेषत्वाय[5] । अनादेशादेवैन्द्रत्व सिद्धम् । असत्यस्मिन् विकुण्ठादेवतात्वं स्यात् । ननूत्तरत्र सप्तगुस्तुतिसंहृष्ट इति दर्शनादस्यानैन्द्रत्वं नास्तीति चेत् तर्हि वैकुण्ठमिन्द्रं तुष्टावेति पदत्रयमप्यकर्तुं शक्यम् ॥२॥

अथेन्द्रस्य वैकुण्ठत्वमुपपिपादयिषुरितिहासयति—

विकुण्ठा नामासुरीन्द्रतुल्यं पुत्रमिच्छन्ती महत् तपस्तेपे तस्याः स्वयमेवेन्द्रः पुत्रो जज्ञे ॥३॥

---

१. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।
२. 'प्रथमम्' 'आग्नेय…त्रिष्टुप्' 'ते दक्षिणम्' इति नास्ति मै० ।
३. का० सर्वा० ५०।५।
४. अष्टा० ४।१।११२।।
५. '०विशेषित्वाय' इति पु० १, पु० २ ।

आसुरीत्यसुरजातिः । ङीष् । तपः कृच्छ्रचान्द्रायणादिकं तेपे कृतवती । तप संताप[1] इति तपस्तः । एश्[2] । अत एकहल्मध्य[3] इत्येत्वाभ्यासलोपौ[4] । अस्याश्च मत्समोऽन्यो मा स्म भूदिति स्वयमेव पुत्रो जज्ञे जातवान्[5] । जनी प्रादुर्भावे[6] । अनुदात्तोपदेशाद् गमहनेत्युपधालोपः[4] । इत्येवमिन्द्रस्य वैकुण्ठत्वं सिद्धम् ॥३॥

अथास्यैव वैकुण्ठस्य सप्तगुस्तुतस्येन्द्रस्योत्तरसूक्तत्रयदर्शित्वं स्तुत्यत्वं चाह—

स सप्तगुस्तुतिसंहृष्ट आत्मानमुत्तरैस्त्रिभिस्तुष्टाव ॥४॥

जगृम्मादिसूक्तदर्शिनः सप्तगुनाम्न ऋषेः स्तुत्या सुप्रीतः स वैकुण्ठ इन्द्रो विस्मितः स्वमाहात्म्यं बुद्ध्वर्षिमध्य आत्मानमहं भुवमित्यादिसूक्तत्रयेण तुष्टाव[7] । एवमहमित्यादिसूक्तत्रये देवतात्वमृषित्वं चेन्द्रस्येति सिद्धं भवति[8] ॥४॥

[४८] अहं भवुमेकादशान्त्ये त्रिष्टुभौ सप्तमी च ॥५॥

वसुनः । दशम्येकादश्यौ सप्तमी चेति तिस्रस्त्रिष्टुभः । अष्टौ शिष्टा जगत्यः । वैकुण्ठ इन्द्रो द्रष्टा स्तुत्यश्च[6] ॥५॥

[४९] अहं दामन्त्योपाद्ये त्रिष्टुभौ ॥६॥

एकादश । गृणते । वैकुण्ठ इन्द्र ऋषिर्देवता च । द्वितीयैकादशी च द्वे त्रिष्टुभौ । शिष्टा जगत्यः[9] ॥६॥

[५०] प्र वो महे सप्त द्विजगत्याद्यन्तं के तेऽभिसारिण्यौ ॥७॥

मन्दमानाय[4] । आदावन्ते च द्वे जगत्यौ यस्य तत् । कर्मधारयद्वन्द्वगर्भो बहुव्रीहिः । अत्र च के ते नर[10] इति द्वे अभिसारिण्यौ । दशाक्षरावादितो द्वौ ततो द्वादशकौ परावित्यर्थः[11] । शिष्टैका त्रिष्टुप् । इन्द्रो वैकुण्ठ ऋषिदेवते[4] ॥७॥

---

१. धा० १।१०३४॥

२. 'तपस्त अश्' इति पु० १, पु० २ । 'तपस्तेपे अभ्' इति गो० ।

३. अष्टा० ६।४।१२०॥

४. 'तपः···लोपौ' 'अनु—लोपः' (अष्टा० ६।४।९८) 'मन्दमानाय' 'अत्र···देवते' इति नास्ति मै० ।

५. 'सूतवान्' इति पु० १, पु० २ ।

६. धा० ४।४१॥

७. इतोऽग्रे पु० १ कोशेऽधिक पाठः—'भाष्यान्तरे बृद्धाचार्योऽप्याह—प्राजा···त्रिभिः' (बृ० दे० ६।४९-५७) ।

८. 'एव···भवति' इति नास्ति पु० १ ।

९. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।

१०. ऋ० १०।५०।३॥

११. तु०—का० सर्वा० परि० ६।४॥

अथ महत् तदुल्वमित्यारभ्य[1] सूक्तत्रयस्यर्षिदैवतज्ञानार्थं कथामाह—

वषट्कारेण वृक्णेषु भ्रातृषु सौचीकोऽग्निरपः प्रविश्य देवैः समवददुत्तरैस्त्रिभिः ॥८॥

स्वभ्रातृषु त्रिष्वग्निहोत्रिणा[2] वषट्कारेण वज्रभूतेन वृक्णेषु छिन्नेषु सत्सु। ओवश्चू छेदने[3]। ओदितश्चेति[4] निष्ठानत्वस्यासिद्धत्वाच्चोः कुः[5]। ग्रहिज्येति[6] सम्प्रसारणम्।[7] एषां कनिष्ठः सौचीकनामाग्निर्वषट्कारहविर्वहनाभ्यां[8] भीतोऽपः प्रविश्य नष्टः। तत्र वाचा प्रदर्शितः सन्नन्वेष्टुमागतैर्देवैः सह समवदत् संवादमुत्तर-सूक्तत्रयेण। वषट्कारहविर्वहनभीतिः कनिष्ठत्वं[9] च श्रुत्यन्तरात्। अग्नेस्त्रयो ज्यायांसो भ्रातर आसंस्ते देवेभ्यो हव्यं वहन्तः प्रामीयन्तेत्यादिभिः[10] समामन्ति[11] ॥८॥

अथ विविच्य दर्शयति[7]—

[५१] महत् तन्नवात्र युजोऽग्निवाक्यम् ॥९॥

[५२] विश्व इत्युत्तरं च षट्कमयुजो देवानाम् ॥१०॥

[५३] यमैच्छामेत्युत्तरं चैकादशकं तदद्येति तु द्वृचोऽग्ने-स्तन्तुमाद्या जगत्योऽष्टमीवर्जम् ॥११॥

उल्वम्[7]। अत्र नवर्चे द्वितीयादियुजश्चतस्र ऋचो विश्वेदेवाः शास्तनेत्युत्तर-सूक्तं च षड्चमित्यृचो दशाग्निवाक्यम्। तत्रैवायुजः प्रथमाद्याः पञ्चर्चो यमैच्छाम मनसा सोऽयमित्युत्तरसूक्तं चैकादशकमिति षोडश देवानां वाक्यम्। तत्र षोडशसु तदद्य वाचः प्रथमं मसीयेत्याद्यो द्वृचोऽग्नेर्वाक्यम्। अत्र च महत् तदुल्बमित्यादिसूक्त-त्रयवर्त्तिन्यस्त्रिष्टुभः। तत्र तृतीयसूक्त एकादशर्चे तन्तुं तन्वन्नित्याद्या जगत्यः। अत्रापि सूक्तस्याष्टमी त्रिष्टुप्। अग्न्युक्तिर्देवदेवत्या। देवोक्तिस्त्वग्निदैवत्या।

---

१. '०मित्यादिसूक्त०' इति पु० १, पु० २।
२. '०त्रित्वात्' इति पु० १, पु० २। ३. धा० ६।११।।
४. अष्टा० ८।२।४५।। ५ अष्टा० ८।२।३०।।
६. अष्टा० ६।१।१६।।
७. 'ओवश्चू…सारणम्' 'अथ…दर्शयति' 'उल्बम्' इति नास्ति मै०।
८. '०ग्निनं वषट्०' इति पु० १। '०ग्निवष०' इति पु० २।
९. 'नष्टत्व' इति पु० १, पु० २। १०. तै० सं० २।६।६।१।।
११. अतोऽग्रे पु० १ पाठोऽधिकः—'भाष्यान्तरेपि वृद्धाचार्योप्याह—वैश्वानर… स्तुतौ' (बृ० दे० ७।६१-८०)।

नात्र गुरुलाघवं चोदनीयं ब्राह्मणानुकरणत्वात् । इत्युत्तरमित्यादि व्यतिरिक्त-मस्ति ॥९-११॥

[५४] तां सु पड् बृहदुक्थो वामदेव्यः ॥१२॥

ते कीर्तिम्[1] । बृहदुक्थो नाम वामदेव्यः । गर्गादिभ्यो यञ्[2] । त्रिष्टुप् । इन्द्रः[1] ॥१२॥

[५५] दूरेऽष्टौ ॥१३॥

तन्नाम । वामदेव्यो बृहदुक्थः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः[3] ॥१३॥

[५६] इदं ते सप्त वैश्वदेवं तु चतुर्थ्याद्यास्तिस्रो जगत्यः ॥१४॥

एकम् । वैश्वदेवमिदमुत्तरं च । चतुर्थ्याद्यास्तिस्रो जगत्य इति लाघवायोक्तम । चतुर्थीपञ्चमीषष्ठ्य इति हि गुरुः । तिस्र इति च सप्तमी मा भूत् । आदौ तिस्रः सप्तमी च चतस्रस्त्रिष्टुभस्त्विह । बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः । इन्द्रोऽत्र देवता[3] ॥१४॥

अथ मा प्र गामेत्याद्युत्तरसूक्तचतुष्टयस्यर्षिमाह[1]—

परााणि चत्वारि सूक्तान्युक्ता ऋषयो द्वैपदे त्वत्रिमण्डले ॥१५॥

अत्रिदृष्टे पञ्चमे मण्डलेऽबोध्यग्निः समिधेत्यादौ[4] द्वैपदे द्विपदासूक्तेऽग्ने त्वं नो अन्तम इत्यत्रर्षयोऽग्ने त्वं गौपायना लौपायना वा बन्धुः सुबन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्र-बन्धुश्चेत्येवम्[5] अस्माभिरुक्तास्ते पराणि चत्वारि सूक्तान्यपश्यन्निति शेषः ॥१५॥

अथ कथां कथयन्नेव सूक्तचतुष्टयस्य ज्ञातव्यं सर्वमाह—

अथ हैक्ष्वाको राजासमातिर्गौपायनान् बन्ध्वादीन् पुरोहितां-स्त्यक्त्वान्यौ मायाविनौ श्रेष्ठतमौ मत्वा पुरोदधे । तमितरे क्रुद्धा अभिचेरुः । अथ तौ मायाविनौ सुबन्धोः प्राणानाचिक्षि-पतुरथ हास्य भ्रातरस्त्रयः ॥१६॥

[५७] मा प्र गामेति षट्कं गायत्रं स्वस्त्ययनं जप्त्वा ॥१७॥

[५८] यत्ते यममिति द्वादशर्चमानुष्टुभं मन आवर्तनं जेपुः ॥१८॥

[५९] प्र तारीति दशर्चं चतस्रो निर्ऋत्यपनोदार्थं जेपुश्चतुर्थ्या सोमं चास्तुवन् मृत्योरपगमायोत्तराभ्यां देवीमसुनीतिं

१. 'ते कीर्तिम्' 'त्रिष्टुप् । इन्द्रः' 'अथ ''माह' इति नास्ति मं० ।

२. अष्टा० ४।१।१०५॥

३. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मं० ।

४. ऋ० ५ १॥

५. का० सर्वा० २५।१६॥

सप्तम्यां लिङ्गोक्तदेवताः शिष्टाभिः पङ्क्तिमहापङ्क्तिपङ्क्त्युत्तराभि-र्द्यावापृथिव्यौ समिन्द्रेतीन्द्रं वार्धचेंन ॥१९॥

[६०] आ जनमिति द्वादशर्चं आनुष्टुभे चतसृभिरसमातिम-स्तुवन् पञ्चम्येन्द्रं षष्ठ्यागस्त्यस्य स्वसा मातषां राजा-नमस्तौत् पराभिः सुबन्धोर्जीवमाह्वयंस्तमन्त्यया लब्धसंज्ञमस्पृशन् पञ्चाद्या गायत्र्योऽष्टम्याद्ये पङ्क्ती ॥२०॥

अथ ह खलु पुरैक्ष्वाक इक्ष्वाकुपुत्रः। इक्ष्वाकोरण्यन्त्यलोपो दाण्डिनादौ[1] निपात्यते। राजाभिषिक्तोऽसमातिनामा। अत्रैषां[2] लौपायनत्वं न कर्तव्यम्[3]। अपि तु गौपायनत्वमेवेति ववतुमुक्तम्[4]। गौपायनानिति पूवम्[5] आत्मनैव वृत्तान् बन्ध्वादीन् बन्धुसुबन्धुश्रुतबन्धुविप्रबन्धूं स्त्यक्त्वान्यौ मायाविनौ[6] किरातौ कुली[7] इति बृहद्देवतो-क्तनामानौ मायाविनौ श्रेष्ठतमौ मत्वा[8] पुरोदधे पुरोहितत्वेनावृणीत। तमसमाति-मितरे बन्ध्वादयोऽभिचेरुरभिचरितवन्तः। झेर्जुसि, अत एकहल्मध्ये[9] एत्वमभ्यास-लोपश्च[10]। अथ मायावहितपुरोहितौ[11] कपोतौ[12] भूत्वेति बृहद्देवताविदः[13]। सुबन्धोः प्राणान् जीवितम्। पुंसि भूम्न्यसवः प्राणा[14] इति नैघण्टुकाः। आचिक्षिपुः। आच्या-वयताम्। अथानन्तरम्। हेति खेदे। अस्य मृतस्य सुबन्धोर्भ्रातरस्त्रयो बन्धुश्रुतबन्धु विप्रबन्धवो मा प्र गाम वयमिति षडृचं गायत्रं स्वस्त्ययनं नष्टप्राणानां पुनः प्राप्ति-हेतुं[15] वैश्वदेवं जप्त्वा जपित्वा छान्दसत्वादनिट्त्वम्।[16] ततो यत्ते यममिति द्वादश-र्चमानुष्टुभं मनआवर्तनं मनसो जीवितस्य देहान्निर्गतस्य पुनर्देहप्रवेशहेतुं मनोदेवत्यं जेपुः। किं च प्रतारीति दशर्चस्यादितश्चतस्र ऋचो निर्ऋत्यपनोदनार्थम्। देहात

---

१. तु०—अष्टा० ६।४।१७४॥

२. 'नात्रैकाषां' इति पु० १। 'नात्रैकार्चां' इति पु० २।

३. 'लौपायनिक स्मर्तव्यः' इति पु० १, पु० २, गो०।

४. 'उक्तम्' इति नास्ति पु० १, पु० २।

५. का० सर्वा० २५।१६॥

६. 'मायाद्विजौ' इति पु० १। 'द्विजौ' इति पु० २।

७. द्र०—बृ० दे० ७।८६॥

८. 'श्रुत्वा' इति पु० १, पु० २।

९. अष्टा० ६।४।१२०॥

१०. 'झे·· लोपश्च' इति नास्ति मै०।

११. 'तामपि नवपुरोहितौ' इति पु० १। 'तावपि नवपुरोहितौ' इति पु० २।

१२. 'कपोतौ' इति नास्ति पु० १, पु० २।

१३. द्र०—बृ० दे० ७।८७॥

१४. अमरकोष० १७०६॥

१५. 'अविनाशप्राप्तिहेतुं' इति कोशेषु।

१६. 'छन्दसादित्वादिह' इति पु० १। 'छन्दसादित्वाह' इति पु० २। '०त्वादनिष्टत्वं' इति गो०। '०त्वादनित्त्वम्' इति मै०।

प्राणानामाच्यावयित्री[1] देवता निर्ऋतिः । तन्निवृत्त्यर्थं जेपुः । तत्र चतुर्थ्यां निर्ऋति-निवृत्त्यर्थं[2] जपन्त एव सोममप्यस्तुवन् । मृत्यारपगमाय निवृत्तये । उत्तराभ्यां पञ्चमीषष्ठीभ्यामसुनीतिनाम्नीं देवीमस्तुवन् । सप्तम्यां लिङ्गोक्तदेवताः पृथिवी-द्व्यन्तरिक्षसोमपूषपथ्यास्वस्त्याख्या अस्तुवन् । इति गताः सप्त त्रिष्टुभः । अथाष्ट-म्यादिभिः शिष्टाभिस्तिसृभिः पङ्क्तिमहापङ्क्तिपङ्क्त्युत्तराभिर्द्यावापृथिव्याव-स्तुवन् । समिन्द्रेरय गामित्यनेनार्धर्चेनेन्द्रं वा द्यावापृथिव्यौ वास्तुवन्[3] । तत्र शं रोदसोत्यष्टमी । पञ्चाष्टका पङ्क्तिः । अव द्वके अवेति नवमी षडष्टका महा-पङ्क्तिः[4] । समिन्द्रेरयेति दशमी पङ्क्त्युत्तरा । आद्यौ दशकावष्टकास्त्रयः पङ्क्त्यु-त्तरेत्युक्तम्[5] । एकाधिका भुरिग्विशेषणेयं वेदितव्या । आ जनं त्वेष संदृशमिति द्वादशर्चं आनुष्टुभ । आदितश्चतसृभिरसमातिं राजानमस्तुवन् यदभिचारात् सुवन्धो-र्मृतिः । सर्वमूलभूते राज्ञि प्रसन्ने सर्वं प्रसन्नं भवेदिति । अथेन्द्रक्षत्रेति पञ्चम्येन्द्रम-स्तुवन् । अगस्त्यस्य नद्भ्य इति षष्ठ्यागस्त्यस्य स्वसैषां बन्ध्वादीनां माता राजान-मसमातिं स्वपुत्रानुग्रहार्थमस्तौत् । पराभिरयं मातायं पितेत्यादिभिः पञ्चभिः सुबन्धोर्मृतस्य शयानस्य जीवं जीवितं दूरस्थमाह्वयन्[6] आह्वयन्त । अथान्त्ययायं मे हस्त इत्येतया हस्तस्तुतिरूपया लब्धसंज्ञं लब्धप्राणं सुबन्धुमस्पृशन् स्पृष्टवन्तः । अत्रानुष्टुभे द्वादशर्चसूक्त आद्याः पञ्च गायत्र्यः । अष्टम्याद्ये यथा युगं वरत्रयेत्य-ष्टमी यथेयं पृथिवी महीति नवमी च द्वे पङ्क्ती[4] । अत्र गौरवं न चोदनीयम् । ब्राह्मणवाक्याभिप्रायेणात्र पठचन्त इति ॥१६-२०॥

[६१] इदमित्था सप्ताधिका नाभानेदिष्ठो मानवो वैश्वदेवं तत ॥२१॥

रौद्रम् । सप्तविंशतिः । नाभानेदिष्ठो मानवः । इदं वैश्वदेवमुत्तराणि च पञ्च । सर्वास्त्रिष्टुभः[7] ॥२१॥

॥ इति सप्तपञ्चाशोऽध्यायः ॥५७॥

---

१. 'प्राणानच्यावयतीति' इति पु० १, पु० २ ।
२. 'तत्र मो षु णः सोमेत्यस्मान्निर्ऋतिनिवृत्त्यं' इति पु० १, पु० २, गो० ।
३. 'वा द्वे' इति पु० १, पु० २, गो० ।
४. 'तत्र...पङ्क्तिः' 'अत्रा...पङ्क्ती' इति नास्ति मै० ।
५. 'आद्यौ...उक्तम्' इति नास्ति मै० । का० सर्वा० परि० ६।११॥
६. 'यमुष...स्वाह्वयं' इति पु० १ । 'यमुपाह्वयन्: इति पु० २ ।
७. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।

[५८]

[६२] ये यज्ञेनैकादशाद्याः षळङ्गिरसां स्तुतिर्वान्त्या त्रिष्टुप् पञ्चम्यनुष्टुप् प्रगाथोऽनुष्टुभौ गायत्री चतस्रोऽन्त्याः सावर्णेर्दानस्तुतिः ॥१॥

दक्षिणया[1]। आद्याः षडङ्गिरसां स्तुतिर्वा विश्वे देवा एव वा। श्रूयते हि—इदमित्था रौद्र गूर्तवचा ये यज्ञेन दक्षिणया समक्ता इति वैश्वदेवं, नाभानेदिष्ठ शंसतीति[2]। अत्र चान्त्या सहस्रदा ग्रामणीरित्येकादशी त्रिष्टुप्। विरूपास इति पञ्चम्यनुष्टुप्। अतः परं प्रगाथ एकः। षष्ठी बृहती, सप्तमी सतोबृहती। अथाष्टमीनवम्यावनुष्टुभौ। अथ दशमी गायत्री। प्र नूनं जायतामित्याद्याश्चतस्रः सावर्णेर्महाराजस्य दानस्तुतिः। आदौ चतस्रो जगत्यः। नाभानेदिष्ठः। सप्तम्या नित्यं विश्वे देवाः[1] ॥१॥

[६३] परावतस्त्र्यूना गयः प्लातो द्वित्रिष्टुबन्तं तु स्वस्ति नस्त्रिष्टुब्वा सह सोत्तरया पथ्यास्वस्तिदेवत्या ॥२॥

ये दिधिषन्ते। सप्तदश[1]। गयो नाम प्लतेः पुत्रो न तु प्लतस्य। एवा प्लतेः सूनुरवीवृधद्[3] इति लिङ्गात्। प्लातवचनं त्वामग्ने गय[4] इतिवदस्यात्रेयत्वं[5] मा भूत्। द्वित्रिष्टुवन्तं तु। द्वे त्रिष्टुभावन्ते यस्य तदिदमुत्तरं च[1]। स्वस्ति नस्त्रिष्टुब्वा त्रिष्टुवन्तन्यायेन जगती वा। स्वस्ति नः पथ्यास्वितीयं पञ्चदशी सहोत्तरया स्वस्तिरिद्धीत्यनया सह पथ्यास्वस्ति देवत्या। उभे अपि पथ्यास्वस्तिदेवत्ये इत्यर्थः। श्रूयते हि—स्वस्ति नः पथ्यासु धन्वसु स्वस्तिरिद्धि प्रपथे श्रेष्ठति पथ्यास्वस्तेस्त्रिष्टुभाविति[6]। शिष्टाश्चतुर्दश नित्यं जगत्यः। विश्वे देवाः[1] ॥२॥

[६४] कथा यां मे त्रिष्टुप् ॥३॥

त्र्यूना। देवानाम्। द्वित्रिष्टुवन्तम्। यां मे धियं मरुत इत्येषा त्रिष्टुप्। जगत्यपवादः। शिष्टाश्चतुर्दश जगत्यः। प्लातो गयः। विश्वे देवाः[7] ॥३॥

---

१. 'दक्षिणया' 'अत्र ···देवाः' 'ये···दश' 'द्वि ··मुत्तरं च' 'शिष्टा···देवाः' इति नास्ति मै०। २. ऐत० ब्रा० ५।१३।१२–५।१४।१॥

३ ऋ० १०।६३।१७ ॥ ४. का० सर्वा० २५।१॥

५. 'इति गयस्य प्लतत्वं' इति पु० १; पु० २।

६. ऐत० ब्रा० १।९।७॥ तत्र 'पथ्यायाः स्वस्तेः' इति पाठः।

७. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै०।

[६५] अग्निरिन्द्रः पञ्चोना वसुकर्णो वासुक्रस्त्रिष्टुबन्त तु ॥४॥

वरुणः। पञ्चदश। वसुकर्णो नाम वसुक्रपुत्रः। त्रिष्टुबन्ते यस्य तदिदमुत्तरं च। आदितश्चतुर्दश जगत्यः। विश्वे देवाः[1] ॥४॥

[६६] देवान् हुवे ॥५॥

पञ्चोना। बृहच्छ्रवसः। वासुक्रो वसुकर्णः। आदितश्चतुर्दश जगत्योऽन्त्या त्रिष्टुप्। विश्वे देवाः[1] ॥५॥

[६७] इमां धियं द्वादशायास्यो वार्हस्पत्यं तु ॥६॥

सप्तशीर्ष्णीम्। अयास्यो नामाङ्गिरसः। बृहस्पतिदेवत्यमिदमुत्तरं च। त्रिष्टुप्[1] ॥६॥

[६८] उदप्रुतः ॥७॥

द्वादश। न वयः। आङ्गिरसोऽयास्यः। त्रिष्टुप्। बृहस्पतिः[1] ॥७॥

[६९] भद्राः सुमित्रो वाध्र्यश्व आग्नेयं द्विजगत्यादि ॥८॥

द्वादश। अग्नेः। सुमित्रो नाम वध्र्यश्वपुत्रः। अग्निदेवत्यम्। द्वे जगत्यावादौ यस्य तत्। अथ दश त्रिष्टुभः[1] ॥८॥

[७०] इमां म एकादशाप्रम् ॥९॥

अग्ने[2]। आप्रमित्युक्तेराप्रीदेवताः। द्वितीयस्तनूनपाद् वर्ज्यते[3] तत्स्थाने नराशंसः। वाध्र्यश्वः सुमित्रः। त्रिष्टुप्[2] ॥९॥

[७१] बृहस्पते बृहस्पतिर्ज्ञानं तुष्टाव नवमी जगती ॥१०॥

एकादश। प्रथमम्[2]। बृहस्पतिर्नामाङ्गिरसः। नवमीमे ये नार्वागिति जगती। शिष्टा दश त्रिष्टुभः[2]। ज्ञानं स्तूयते। तुष्टावेत्यनुक्रमण्यनुकरणम्। उक्तं हि बृहद्देवतायाम्—

यज्ज्योतिरमृतं[4] ब्रह्म यद्योगात् समुपाश्नुते।
तज्ज्ञानमभितुष्टाव सूक्तेनाथ बृहस्पतिः ॥[5] इति ॥१०॥

॥ इत्यष्टापञ्चाशोऽध्यायः ॥५८॥

---

१. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै०।

२. 'अग्ने' 'वाध्र्यश्वः···त्रिष्टुप्' 'एका···प्रथमम्' 'नवमी···त्रिष्टुभः' इति नास्ति मै०।

३. 'वर्ज' इति पु० १; पु० २। ४. '०तिः परमं' इति पु० १, पु० २।

५. बृ० दे० ७।१०९॥

[५९]

[७२] देवानां नव लौक्यो वा बृहस्पतिर्दाक्षायण्यदितिर्वा दैवमानुष्टुभम् ॥१॥

नु वयम् । [1]बृहस्पतिर्लौक्यः । लोकनाम्नोऽपत्यमिति गर्गादियञ् । अथवाङ्गिरस एव बृहस्पतिः[1] । अथवा दाक्षायण्यदितिर्ऋषिका । दक्षादत इञ्[2] ततः फक् स्वार्थे । जातौ ङीष् । गोत्रं च चरणैः सहेति[3] जातित्वम् । देवदेवत्यम् । नवाप्यनुष्टुभः[1] ॥१॥

[७३] जनिष्ठा एकादश गौरिवीतिः ॥२॥

उग्रः[1] । गौरिवीतिर्नाम शाक्त्यः । त्र्ययंमा पञ्चोना गौरिवीतिः शाक्त्य[4] इति ह्युक्तम् । श्रूयते हि—गौरिवीतिर्ह वै शाक्त्यो नेदिष्ठमिति[5] । अनुष्टुप् । इन्द्रः[1] ॥२॥

[७४] वसूनां षट् ॥३॥

वा । शाक्त्यो गौरिवीतिः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः[6] ॥३॥

[७५] प्र सु नव सिन्धुक्षित् प्रैयमेधो नदीस्तुतिर्जागतं तु ॥४॥

व आपः । सिन्धुक्षिन्नाम प्रियमेधपुत्रः । प्रियमेधो राजर्षिः । नद्योऽत्र स्तूयन्ते । जागतमिदमुत्तरं च[6] ॥४॥

[७६] आ वोऽष्टौ सर्प ऐरावतो जरत्कर्णो ग्राव्णोऽस्तौत् ॥५॥

ऋञ्जसे[1] । सर्पो जातितः । जरत्कर्णो नामैरावतपुत्रः । ग्राव्णः प्रस्तरान्[7] अस्तौत् स्तुतवानित्यर्थः । तद्दैवत्यमिदं सूक्तम् । ग्राव्णः शस् । जगती[1] ॥५॥

[७७] अभ्रप्रुषः स्यूमरश्मिर्भार्गवो मारुतं तु पञ्चमी जगती ॥६॥

अष्टौ । न वाधा । स्यूमरश्मिर्नाम भार्गवः । मरुद्दैवत्यमिदमुत्तरं च । अत्र पञ्चमी जगती । शिष्टाः सप्त त्रिष्टुभः[6] ॥६॥

[७८] विप्रासो द्वितीया पञ्चम्याद्याश्च तिस्रो जगत्यः ॥७॥

---

१ 'नु बृहस्पतिः' 'अथवा—पतिः' 'देव…नुष्टुभः' 'उग्रः' 'अनुष्टुप् । इन्द्रः' 'ऋञ्जसे' 'ग्रा० जगती०' इति नास्ति मै० । २. अष्टा० ४।१।९५॥ ३. महा० ४।१।६३॥ ४. का० सर्वा० २५।२१॥ ५. ऐत० ब्रा० ३।१९।४॥ ६. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० । ७. 'पाषाणान्' इति पु० १, पु० २ ।

अष्टौ । न मन्मभिः । अत्र पञ्चम्याद्याश्च तिस्रो द्वितीया चेति चतस्रो जगत्यः । आद्यातृतीयाचतुर्थ्यष्टम्यस्त्रिष्टुभः । स्यूरश्मिर्भार्गवः । मारुतम्[1] ॥७॥

[७९] अपश्यं सप्त सौचीकोऽग्निर्वैश्वानरो वा सप्तिर्वा वाजम्भर आग्नेयं तु ॥८॥

अस्य । अग्निर्नाम सौचीकगुणो वैश्वानरगुणो वा । अथवा सप्तिर्नाम वाजम्भरपुत्रः । आग्नेयमिदमुत्तरं च । त्रिष्टुप्[1] ॥८॥

[८०] अग्निः सप्तिम् ॥९॥

सप्त । वाजम्भर । सौचीको वैश्वानरो वाग्निर्ऋषिः । वाविशिष्टत्वान्न सप्तिः । त्रिष्टुप् । अग्निः[1] ॥९॥

[८१] य इमा विश्वकर्मा भौवनो वैश्वकर्मणं तु[2] ॥१०॥

सप्त । विश्वा । विश्वकर्मा नाम भौवनः । भुवननाम्नः पुत्रः[3] । वैश्वकर्मणम् । विश्वकर्मदेवत्यमिदमुत्तरं च । अण्यन्निति[4] प्रकृतिभावः ॥१०॥

[८२] चक्षुषः ॥११॥

सप्त । पिता । भौवनो विश्वकर्मा । त्रिष्टुप् । विश्वकर्मदेवत्यम्[1] ॥११॥

[८३] यस्ते मन्यो मन्युस्तापसो मान्यवं तु जगत्यादि ॥१२॥

सप्त । अविधत् । मन्युर्नाम तपसःपुत्रः । मन्युदेवत्यमिदमुत्तरं च । आद्या जगती । द्वितीयादिषट् त्रिष्टुभः[1] ॥१२॥

[८४] त्वया मन्यो चतुर्जगत्यन्तम् ॥१३॥

सप्त । सरथम् । आदौ तिस्रस्त्रिष्टुभः । अथ चतस्रो जगत्यः । मन्युस्तापसः । मन्युदेवत्यम्[1] ॥१३॥

[८५] सत्येन सप्तचत्वारिंशत् सावित्री सूर्यात्मदैवतमानुष्टुभं पञ्चभिः सोममस्तौत् पराभिः स्वविवाहं सप्तदश्या देवान् परया सोमार्कौ परया चन्द्रमसं परां नृणां विवाहमन्त्रा-

---

१. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।

२. 'द्वितीया विराड्रूपा' इत्यधिकः पाठः गो० ।

३. 'सप्त…पुत्रः' इति नास्ति मै० ।

४. 'अनचिति' इति पु० १ । 'अन्निति' इति पु० २, गो० । तु०—अष्टा० ६।४।१६७॥

शीःप्रायाः[1] परा देहि[2] द्वे वधूवासःसंस्पर्शमोचन्यौ परा यक्ष्मनाशिनी दम्पत्योर्नवोनवस्तिस्रोऽनृक्षरा गृभ्णामीति द्वे द्वे यदश्विना पूषाघोरचक्षुरिति त्रिष्टुभस्तिष्टुमुरोबृहती[3] पूर्वापरमिह प्रियमा नः प्रजां जगत्यः ॥१४॥

उत्तभिता[4]। सूर्या नामर्षिका सवितृसुता। आत्मदैवतं स्वदेवत्यं सोमाद्यपवादाभावे। आनुष्टुभं सूक्तमपश्यदिति शेषः[5]। अत्र चादितः पञ्चभिः सोमं स्तुतवती। अतः पराभिः[4] षष्ठयाद्याभिरेकादशभिः स्वविवाहमस्तौत्। अथ सप्तदश्या देवानस्तौत्। परयाष्टदश्या सोमार्कावस्तौत्। परयैकोनविंश्या नवोनव इत्यनया चन्द्रमसमस्तौत्। पराः [4]सुकिंशुकमित्यादिर्विंश्याद्या नव नृणां मनुष्याणां प्रायेण विवाहमन्त्रा विवाहविषयामन्त्रा आशिषश्च भवन्ति। ततः परा देहि शामुल्यम् अश्रीरा तनूर्भवतीति द्वे वध्वा विवाहकालपरिहितवाससो यः स्पर्शस्तस्य मोचन्यौ[6] त्याजयित्र्यौ। विवाहकालपरिहित वासो न स्प्रष्टव्यम्[7] इत्याहुरित्यर्थः। अथ ये वध्वश्चन्द्रं वहतुमित्यादि दम्पत्योर्यक्ष्मणः क्षयरोगस्य नाशिनी। अत्र नवोनव इत्याद्यास्तिस्रोऽनृक्षरा ऋजव इति द्वे, गृभ्णामि ते सौभगत्वायेति द्वे, यदश्विना पृच्छमानावयातं, पूषा त्वेतो नयत्वघोरचक्षुरपतिघ्नीति दश त्रिष्टुभः। तृष्टमेतदित्युरोबृहती। अष्टकद्वादशकाष्टकद्वयवती। पूर्वापरं चरतः, इह प्रियं प्रजया, आ नः प्रजां जनयत्विति तिस्रो जगत्यः। शिष्टास्त्रयस्त्रिंशदनुष्टुभः। अन्ततः षोडश सूर्यदेवत्याः[4] ॥१४॥

॥ एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥५९॥

---

[६०]

[८६] वि हि त्र्यधिकैन्द्रो वृषाकपिरिन्द्राणीन्द्रश्च समूदिरे पाङ्क्तम् ॥१॥

सोतोः। त्रयोविंशतिः[4]। वृषाकपिर्नामेन्द्रस्य पुत्रः शचीसपत्न्यां जातः। इन्द्राणीन्द्रपत्नी। पुंयोग इन्द्रवरुणेति[8] ङीष्यानुक्[4]। इन्द्रश्च स्वयमिति त्रयः समूदिरे संहत्योदिरे विवादं कृतवन्तः। विमतौ हि वदतेस्तङ् भासनोपसंभाषेति[9] भेरिरेचि यजा-

---

१. '० मन्त्रा आशी०' इति गो० मूलमात्रे। २. 'देहीति द्वे' इति गो० मूलमात्रे।
३ '०भस्त्रिटमु०' इत्यपपाठो मै०।
४. 'उत्तभिता' 'अत्र…पराभिः' 'अथ… किंशुकमित्यादि' 'अत्र देवत्याः' 'सोतोः… शतिः' 'पुंयोगे…ष्यानुक्' इति नास्ति मै०।
५. 'सूक्तशेषः' इति पु० १, पु० २। ६. 'मोचिन्यौ' इति मै०।
७. 'न पुनर्द्रष्टव्यम्' इति पु० १, पु० २।
८. अष्टा० ४।१।४९॥ ९. अष्टा० १।३।४७॥

दित्वात्[1] सम्प्रसारणम्[2]। पञ्चपदया पङ्क्तचा व्याप्तम्।

उपदेशेष्वनुक्तेश्च वक्तृभेदो न दर्शितः।
अथाप्यृष्यादिज्ञानार्थमर्थतस्त्वत्र[3] वर्ण्यते ॥

वि हि सोतोरित्याद्येन्द्रस्य वाक्यम्। परा हीन्द्र किमयं त्वां यमिमं त्वं प्रिया तष्टानि न मत्स्त्रीति[4] पञ्चेन्द्राण्याः। उवे अम्बेति[5] वृषाकपेः। किं सुबाहो[6] इतीन्द्रस्य। अवीरामिव संहोत्रमिति[7] द्वे इन्द्राण्याः। इन्द्राणीमासु नाहमिन्द्राणीति[8] द्वे इन्द्रस्य। वृषाकपायीति[9] वृषाकपेः। उक्ष्णो[10] हीतीन्द्रस्य। वृषभो न न सेशे यस्य रवते न सेशे यस्य रोमशम् अयमिन्द्रेति[11] चतस्र इन्द्राण्याः। अयमेति धन्व च यत् पुनरेहि यदुदञ्च[12] इति चतस्र इन्द्रस्य। अर्शु ह नामेत्यन्त्या त्रयोविंशी वृषाकपेरिति। सर्वं सूक्तमैन्द्रम्। श्रुतौ तु वार्षाकपे हि वृषाकपिं शंसतीत्यादेरेकदेश[13] ऋषिणास्य सूक्तस्य व्यवहारः ॥१॥

[८७] रक्षोहणं पञ्चाधिका पायुराग्नेयं राक्षोघ्नं चतुरनुष्टुबन्तम् ॥२॥

वाजिनम्। पञ्चविंशतिः। पायुर्नाम भारद्वाज[14] इत्युक्तम्। रक्षोहेत्यग्नेर्गुणः। रक्षसां हन्ताग्निरत्र स्तूयत इत्यर्थः। आदावेकविंशतिस्त्रिष्टुभः। परि त्वाग्न इत्याद्याश्चतस्रोऽनुष्टुभः[15] ॥२॥

[८८] हविरेकोनाङ्गिरसो मूर्धन्वान् वामदेव्यो वा सौर्यवैश्वानरीयम् ॥३॥

पान्तम्। एकोनविंशतिः। मूर्धन्वान् नाम। अस्य गोत्रं विकल्पयति—आङ्गिरसो वामदेव्यो वेति। आङ्गिरसत्वेऽनुक्तसिद्धेऽपि वचनं पायुनाम्नोऽनुवृत्तिर्मा भूदिति। असत्यस्मिन् मूर्धन्वान् वामदेव्यो वेत्युक्तेः पायुर्भारद्वाजो वेति प्रसज्येत। सौर्यवैश्वानरीयम्। सूर्यदेवत्यं वैश्वानरगुणाग्निदेवत्यं चेति वक्तुं समासनिर्देशः ॥३॥

[८९] इन्द्रं स्तव द्व्यूना रेणुः पञ्चम्यैन्द्रासौमी ॥४॥

नृतमम्। अष्टादश। रेणुर्नाम वैश्वामित्रः। तौ वैश्वामित्राविति[16] ह्युक्तम्। त्रिष्टुप्। इन्द्रः[5] ॥४॥

---

१. तु०—अष्टा० ६।१।१५॥
२. 'विमतो…सारणम्' इति नास्ति मै०।
३. 'त्वथ' इति कोशेषु।
४. ऋ० १०।८६।२-६॥
५. ऋ० १०।८६।७॥
६. ऋ० १०।८६।८॥
७. ऋ० १०।८६।९-१०॥
८. ऋ० १०।८६।११-१२॥
९. ऋ० १०।६०।१३॥
१०. ऋ० १०।८६।१४॥
११. ऋ० १०।८६।१५-१८॥
१२. ऋ० १०।८६।१९-२२॥
१३. तु०—ऐत० ब्रा० ५।१५; ६।३२॥
१४. तु०—का० सर्वा० ३३।१४॥
१५. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै०।
१६. का० सर्वा० ५०।६॥

[९०] सहस्रशीर्षा षोळश नारायणः पौरुषमानुष्टुभं त्रिष्टुबन्तं तु ।।५।।

पुरुषः[1] । नारायणो नाम । नास्य गोत्रमुपदेशेष्वनुक्तेः । यथोपदेशमिति[2] ह्य ुक्तम् । पौरुषम् पुरुषदेवत्यम् । इतिहासादिसिद्धोऽयं पुरुषः पञ्चविंशकः । उक्तं हि—

इतिहासादिसिद्धो यः[3] पञ्चविंशः पुमान् स तु ।
इह योग्यतया स्तुत्यो न जातिपुरुषोऽश्ववत् ।। इति ।

आनुष्टुभमिति शिष्टा जगत्यपवादः । त्रिष्टुबन्तमिदमुत्तरं च[1] ।।५।।

[९१] सं जागृवद्भिः पञ्चोनारुणो वैतहव्य आग्नेयम् ।।६।।

जरमाणः । पञ्चदश । अरुणो नाम वीतहव्यपुत्रः । अग्निदेवत्यम् । आदितश्चतुर्दश जगत्यः । अन्त्या त्रिष्टुप्[4] ।।६।।

[९२] यज्ञस्य शार्यातो मानवो वैश्वदेवं तु जागतम् ।।७।।

पञ्चदश । वो रथ्यम्[1] । शार्यातो नाम मनुपुत्रः । वैश्वदेवमिदमुत्तरं च । जगतीछन्दस्कमिदम् । श्रूयते हि—यज्ञस्य वो रथ्यं विश्पतिमित्यारभ्य तदु शार्यातमित्यन्तम्[5] ।।७।।

[९३] महि तान्वः पार्थः प्रस्तारपाङ्क्तं पुरस्ताद्बृहत्यन्त त्रयोदश्युपाद्ये चानुष्टुभो नवम्यक्षरैः पङ्क्तिरेकादशी न्यङ्कुसारिणी ।।८।।

पञ्चोना । द्यावापृथिवी[1] । तान्वो नाम पार्थः पृथुपुत्रः । पृथोरणपत्यार्थे । प्रस्तारपाङ्क्तम् । द्विर्द्वादशकया द्व्यष्टकया व्याप्तम्[1] । उत्तरपदवृद्धिश्छान्दसी । पञ्चदशी पुरस्ताद्बृहती । आद्यो द्वादशकस्त्र्यष्टका अन्त्या यस्याः सा । त्रयोदश्येकोपाद्ये द्वितीयातृतीये द्वे चेति तिस्रोऽनुष्टुभः । कृधी नो अह्रय इति नवम्यक्षरैः पङ्क्तिः । न तु पादैः । तथा हि—नेयं पञ्चाष्टका । एकादशी न्यङ्कुसारिणी । अष्टकद्वादशकद्व्यष्टकवती । विश्वे देवाः[1] ।।८।।

[९४] प्रैते षळूना सर्पोऽर्बुदः काद्रवेयो ग्राव्णोऽस्तौत्
पञ्चम्यन्त्ये त्रिष्टुभौ सप्तमी च ।।९।।

वदन्तु । चतुर्दश[1] । सर्पो जातितः । अर्बुदो नामतः । काद्रवेयः कद्रवाः स्त्रिभ्यो

---

१. 'पुरुष,' 'आनु...च' 'पञ्च...रथ्यम्' 'पञ्चोना पृथिवी' 'द्वि · व्याप्तम्' 'पञ्च .. देवाः' 'वदन्तु । चतुर्दश' इति नास्ति मै० । २. का० सर्वा० परि० १।१।। ३. 'यं' इति पू० १, पु० २। ४. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० । ५. ऐत० ब्रा० ४।३२।६-७।।

ढकि[1] ढे लोपोऽकद्र्वा[2] इति निषेधः। ग्राग्णः शस्यल्लोपोऽनः[3]। पञ्चमी सप्तमी चतुर्दशी चेति तिस्रस्त्रिष्टुभः। अन्त्यापञ्चमीसप्तम्यस्त्रिष्टुभ इति नोक्तं विशेषाभावात्। तथानुक्त्वैवं[4] किमिति चेच्छिशुभावोऽयम्[5]। शिष्टा एकादश जगत्यः[6] ॥६॥

॥ इति षष्टितमोऽध्यायः ॥६०॥

---

[६१]

[९५] हये द्व्यूनोर्वशीमैळः पुरूरवाः पूर्वोषितां कामात् पुनरासाद्यावरोद्धुमैच्छत् सा तमनिच्छन्ती प्रत्याचष्टे हय इषुर्या कदा सुदेवोऽन्तरिक्षप्रां सचेति तिस्रश्चैळवाक्यं शिष्टा उर्वश्याः ॥१॥

जाये। अष्टादश[6]। उर्वशीं नामाप्सरसम्। ऐलः। मनोः पुत्रस्येलस्य[7] वरुणशापात्[8] प्रतिवर्षं प्राप्तषण्मासिकस्त्रीत्वकाले[9] बुधेन जनितः पुत्रः पुरूरवा नाम महाराजः। पूर्वोषितां स्वनगरे प्रतिष्ठानाख्ये चत्वारि वर्षाणि कृतवासां[10] स्वसमयभङ्गाद्[11] आत्मानं त्यक्त्वा गतामितश्चेतश्च। कामादत्यन्ताभिलाषादन्वेषणं कुर्वन् कदाचिन मानसरस्तीरे दृष्ट्वा तामासाद्य पुनरपि स्वप्रासादेऽवरोद्धुं वासयितुमिच्छन् दुराशां कृतवान्। सा चोर्वशी तेन प्रार्थ्यमानानिच्छन्ती निःस्पृहा प्रत्याचष्टे प्रत्याख्यानं[12] कृतवती। न त्वयोक्तं मया करिष्यत इति। हये जाये[13], इषुर्न श्रिय इषुधेः[14], या सुजूर्णिः[15], कदा सूनुः[16], सुदेवो अद्य[17], अन्तरिक्षप्रां रजसः[18], सचा यदासुवित्य द्यास्तिस्रश्चेति[19], नवैलस्य पुरूरवसो वाक्यम्। शिष्टा नवोर्वश्या वाक्यम्। ऐलवाक्यमित्युप-

---

१. तु०—अष्टा० ४।१।१२०॥
२. अष्टा० ६।४।१४७॥
३. अष्टा० ६।४।१३४॥
४. 'तथा सुक्त्वैवं' इति पु० १। 'तथा उक्तैवं' इति पु० २।
५. 'शिशुपाचोद्ययसि' इति पु० १। 'शिशुपाचौद्ययं' इति पु० २।
६. 'शिष्टा…जगत्यः' 'जा…दश' इति नास्ति मै०।
७. '०स्यैल०' इति पु० १, पु० २, गो०।
८. 'रुद्राणी०' इति पु० १, पु० २।
९. 'उमासस्त्रीत्वस्य स्त्रीत्वकाले तु' इति पु० १, पु० २।
१०. '०वासीं' इति पु० १। '०वासं' इति पु० २।
११. '०गर्भाद्' इति कोशेषु।
१२. 'प्रत्या—षा' इति पु० १। 'प्रत्याभाषणं' इति पु० २।
१३. ऋक् १।
१४. ऋक् ३।
१५. ऋक् ६।
१६. ऋक् १२।
१७. ऋक् १४।
१८. ऋक् १७।
१९. ऋक् ८-१०।

समस्तमप्यपेक्षया[१] सम्बध्यते। अष्टादशापि त्रिष्टुभः[२]। यस्य वाक्यं स ऋषिः। या तेनोच्यते सा देवता।

ऐलोर्वशीतिहासोऽत्र वैस्पष्टचाय प्रवर्ण्यते[३]।
मित्रश्च वरुणश्चोभौ दीक्षितौ प्रक्ष्य चोर्वशीम् ।।१।।
चलचित्तौ ततश्चैतौ[४] कुम्भे निहित शुक्रकौ[५]।
तां शप्तवन्तौ मनुष्यभोग्या[६] भूम्यां वसेति ह ।।२।।
अत्रान्तर इलो राजा मनुपुत्रैश्च[७] संयुतः।
मृगयां संचरन् साश्वो देव्याः[८] क्रीडं विवेश ह ।।३।।
यत्र देवं गिरिसुता[९] सर्वैर्भावैरतोषयत्।
अत्राविशन्[१०] पुमान् स्त्री स्यादित्युक्त्वा तत्र चाविशत् ।।४।।
स्त्री भूत्वा व्रीडितः सोऽगाच्छरणं शिवमञ्जसा।
इयं प्रसाद्यतां राजन्नित्युक्तः[११] शम्भुना नृपः ।।५।।
जगाम शरणं देवीमात्मनः पुंस्त्वसिद्धये।
अकरोत् सा नृपं देवी षण्मासात् प्राप्तपुंस्त्वकम्[१२] ।।६।।
ततः कदाचित् स्त्रीकाले बुधः सौन्दर्यमोहितः।
अप्सरोभ्यो विशिष्टां तां चकमे नृपयोषितम्[१३] ।।७।।
तत्रेलायां सोमपुत्राज्जातो राजा पुरूरवाः।
तमुर्वशी तु चकमे प्रतिष्ठानपुरे[१४] स्थितम् ।।८।।
तल्पादन्यत्र[१५] नग्नं त्वां दृष्ट्वा यामि यथागतम्।
सुतावुरणकौ तत्र[१६] समीपे[१७] कुरु मे दृढम्[१८] ।।९।।

---

१. '०मस्तमित्यपे०' इति पु०१, पु० २। २. 'अष्टा ··त्रिष्टुभः' इति नास्ति मै०।
३. 'प्रदर्श्यंते' इति गो०। ४. 'चलितौ तदुक्तेश्च' इति पु० १, पु० २।
५. 'निहित···कौ' इति पु० १। 'निहितरेतसौ' इति पु० २।
६. 'मानुष्यभोग्य०' इति पु० २।
७. '०पुत्रोश्च' इति पु०१। 'पुत्रश्च' इति पु० २।
८. 'देवी०' इति पु० १, पु० २। ९. 'देवीं गिरिसुतां' इति पु० २।
१०. '०विशत्' इति गो०। ११. 'नेत्युक्तः' इति पु० १, पु० २।
१२. 'स्त्रीत्व पुं०' इति पु० १, पु० २, गो०।
१३. 'तां ~म नृपयाषियां तं' इति पु० १। 'तामिलां तां नृपयोषितां' इति पु० २।
१४. 'प्रतिष्ठानगरी०' इति पु० १। 'प्रतिष्ठाननगरी०' इति पु० २।
१५. 'तदन्यत्र' इति पु० १। 'तदन्यां च तथा' इति पु० २।
१६. 'तस्य' इति पु० १, पु० २। १७. 'समीपं' इति पु० १, पु० २।
१८. 'दृशं' इति पु० १। 'द्रुतं' इति पु० २।

इति सा समयं कृत्वा रमयामास तं नृपम् ।
चतुरब्दे गते रात्रौ देवैरुरणकद्वयम् ॥१०॥
हृतं तस्य ध्वनिं श्रुत्वा नग्न एव स भूपतिः ।
उत्थाय जित्वागच्छेयमित्येवं तल्पतोऽन्यतः[1] ॥११॥
विद्युता दर्शितोऽथास्यै नग्न एव पुरूरवाः ।
अथ सा नष्टसमया[2] ह्युर्वशी तु दिवं ययौ ॥१२॥
तत उन्मत्तवद् राजा दिदृक्षुस्तामितस्ततः ।
कुर्वन्नन्वेषणं तीरे सरसो मानसस्य ताम् ॥१३॥
विचरन्तीमप्सरोभिः[3] सहापश्यत् पुरूरवाः ।
पुनः स चकमे भोक्तुमुर्वशीं पूर्ववन्नृपः[4] ॥१४॥
सा स्वशापस्य मुक्तत्वात्[5] प्रत्याचष्टे व्रजेति तम्[6] ।
इत्युर्वश्यैलसंवादमिममेषोऽप्यसूचयत्[7] ॥१५॥१॥

[९६] प्र ते सप्तोना वरु. सर्वहरिर्वैन्द्रो हरिस्तुतिर्द्वित्रिष्टुबन्तम्[8] ॥२॥

महे । त्रयोदश[9] । वरुर्नामाङ्गिरसः । अथवा सर्वहरिर्नाम स चैन्द्रः । इन्द्रस्य पुत्रः । हरिस्तुतिः । हरिरितीन्द्राश्वनाम[10] । द्व त्रिष्टुभावन्ते यस्य तत्[11] । एकादश[12] जगत्यः । वरौ रोहेत्तन्महासूक्तं च जागतम्[13] इति[14] तु ब्राह्मणं जगतीनां भूयस्त्वात् ॥२॥

---

१. 'जित्वा भावागच्छ···ल्पतो न्य···तः' इति पु० १ । 'जित्वा वा गच्छेत्येवं जल्पति कोन्यतः' इति पु० २ । २. 'दृष्ट०' इति पु० १, पु० २ ।

३. 'विहरन्ती०' इति पु० १, पु० २ । ४. 'च पुरूरवाः' इति पु० १, पु० २ ।

५. 'साश्वः सापश्यमुक्त्वा च' इति पु० १ । 'साश्व सापश्यदुक्ता च' इति पु० २ ।

६. 'तां' इति पु० २ ।

७. द्र०—बृ० दे० ७।१४७-१५३ । तत्रान्ते—'संवादं मन्यते यास्क इतिहासं तु शौनकः' इत्याह शौनकः ।

८. '०त्रित्रिष्टु०' इति पु० १, पु० २ । '०द्वित्रिष्टु०' इति संशोधितः पु० १ ।

९. 'महे···दश' इति नास्ति मै० ।

१०. अतोऽग्रे—'आयुधं वाहनं वापि स्तुतौ यस्येह दृश्यते । तमेव च स्तुतं विद्यात् तस्या बहुधा हि सः' इति पाठोऽधिक० पु० २ ।

११. 'आ रोदसीति तिस्रस्त्रिष्टुभोऽन्ते तेनेदं त्रित्रिष्टुबन्तम्' पु० १ । 'एकादशी द्वादशी त्रयोदशी त्रिष्टुभः अन्ते यस्य तत्' इति पु० २ ।

१२. गो० पाठः । 'आदौ दश' इति पु०१ । 'आद्या दश' इति पु०२ । 'शिष्टा' इति मै० ।

१३. ऐत० ब्रा० ६।२५।२॥ १४. 'चेति' इति कोशेषु ।

[९७] या ओषधीस्त्र्यधिकाथर्वणो भिषगोषधिस्तुतिरानुष्टुभम् ।।३।।

पूर्वाः । त्रयोविंशतिः[1] । भिषङ् नामाथर्वणः पुत्रः । अन्नणीति[2] प्रकृतिभावः । ओषधयोऽत्र स्तूयन्ते । अनुष्टुभः सर्वाः[1] ।।३।।

[९८] बृहस्पते द्वादशार्ष्टिषेणो देवापिर्वृष्टिकामो देवांस्तुष्टाव ।।४।।

प्रति[1] : देवापिर्नाम ऋष्टिषेणपुत्रः । देवान् बृहस्पतिमित्रादीन् वृष्टिकामः सन् सस्यवृद्धये स्तुतवान् । वैश्वदेवं सूक्तमित्यर्थः । अनादेशात् त्रैष्टुभम्[1] ।।४।।

[९९] कं नो वम्रो वखानसः ।।५।।

द्वादश । चित्रम् । वम्रो नाम विखानसपुत्रः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः[3] ।।५।।

[१००] इन्द्र दुवस्युर्वान्दनो वैश्वदेवं तु त्रिष्टुबन्तम् ।।६।।

द्वादश । दृह्य । दुवस्युर्नाम वन्दनपुत्रः । वैश्वदेवमिदमुत्तरं च । आदावेकादश जगत्यः । अन्त्या द्वादशी त्रिष्टुप्[3] ।।६।।

[१०१] उद्बुध्यध्वं बुधः सौम्य ऋत्विक्स्तुतिर्वा नवम्यन्त्ये
जगत्यौ गायत्र्योर्मध्ये पञ्चमी बृहती ।।७।।

समनसः[1] । बुधो नाम सोमपुत्रः । पितरि देवतावदुपचारात सोमाट् टयण् ।[4] ऋत्विक्स्तुतिर्वा वैश्वदेवं वा[5] । ऋत्विक्स्तुतिरिति बृहद्देवतायाम्[6] उक्तेर्देवतानुक्रमण्यां वैश्वदेवत्वोक्तेश्च विकल्पः[7] । आ वो धियं यज्ञियामिति नवमी कपृन्नर इत्यन्त्या च द्वे जगत्यौ । निराहावानिति पञ्चमी बृहती सती गायत्र्योः सोरा युञ्जन्तीति चतुर्थ्या इष्कृताहावमिति षष्ठ्याश्च मध्ये तिष्ठतीति । अहो कौशलमिदमाचार्यस्य यदु चतुर्थीषष्ठ्यौ गायत्र्यौ पञ्चमी बृहतीति वाच्य एवं ब्रवीतीति । शिष्टाः सप्त त्रिष्टुभः[1] ।।७।।

[१०२] प्र ते मुद्गलो भार्म्यश्वो द्रुघणेन ऋषभेण चाजिं
जिगायेति द्रौघणं वाद्या तृतीयान्त्या च बृहत्यः ।।८।।

---

१. 'पूर्वाः ···शतिः' 'अनु सर्वाः' 'प्रति' 'वैश्व···त्रैष्टुभम्' ('स्तुतवान् त्रिष्टुप्' इति पु० २, गो० । पु० १, कोशेऽन्तोऽग्रे—'अत्रेतिहासः । आर्ष्टिषेण···शुभां' इति पाठो बृहद्देवतातः (७।१५५-८।९) उद्ध्रियते) 'समनसः' 'आ वो···त्रिष्टुभः' इति नास्ति मै० ।

२. अष्टा० ६।४।१६७।। ३. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।

४. द्र०—अष्टा० ४।२।३०।।

५. 'तु शब्दाद्वैश्वदेवं ऋत्विक्स्तुतिर्वा' इति पु० १ । ६. बृ० दे० ८।१०।।

७. 'उक्तः' इत्यधिकः पु० २ । 'ऋत्विकः विकल्पः' इति नास्ति पु० १ ।

द्वादश । रथम्[१] । मुद्गलो नाम भार्म्यश्वः । भृम्यश्वनाम्नः पुत्रः[२] । द्रुघणेन मुद्गरेण[३] । ऋषभेण वलीवर्देन च । आजिं युद्धम् । जिगाय जितवान् । सन्लिटो-र्जेरिति[४] कुत्वम्[१] । इति हेतौ । अतो हेतोर्द्रुघणदेवत्यम् । वेत्युक्तेरैन्द्रं वा । सूक्तस्या-द्यान्त्यर्यच्छेति तृतीया त्वं विश्वस्येत्यन्त्या द्वादशी चेति तिस्रो बृहत्यः । शिष्टा नव त्रिष्टुभः[१] ।

मुद्गलस्य हृता गावश्चोरैस्त्यक्त्वा जरद्गवम् ।
स शिष्टं शकटे कृत्वा युक्त्वैकत्र जरद्गवम्[५] ॥१॥
द्रुघणं युयुजेऽन्यत्र चोरमार्गानुसारतः[६] ।
द्रुघणं चाग्रतः कृत्वा[७] चोरेभ्यो जगृहे स्वगाः ॥२॥

इति कथात्र सूचिता ॥८॥

[१०३] आशुः सप्तोनैन्द्रोऽप्रतिरथश्चतुर्थी बार्हस्पत्योपान्त्या-प्वादेव्यन्त्यानुष्टुम्मारुती वा ॥९॥

शिशानः । त्रयोदश[१] । अप्रतिरथो नामेन्द्रपुत्रः । बृहस्पते परि दीयेति चतुर्थी बृहस्पतिदेवत्या । अमीषां [१]चित्तमित्युपान्त्या द्वादश्यप्वादेवी । अप्वाख्या देव्यत्र स्तूयते । नद्यृतश्चेति[८] कब्भावश्छान्दसः । प्रेता जयता नर इत्यनुष्टुप् सती मारुती । ऐन्द्री वा । आदितो द्वादश त्रिष्टुभः । चतुर्थीद्वादशीत्रयोदशीवर्जं नित्यं दशैन्द्र्यः[१] ॥९॥

[१०४] असाव्येकादशाष्टको वैश्वामित्रः ॥१०॥

सोमः[१] । अष्टको नाम विश्वामित्रपुत्रः । श्रूयते हि—विश्वामित्रः पुत्राना-मन्त्रयामास—

मधुच्छन्दाः शृणोतन ऋषभो रेणुरष्टकः ।[९] इति ।

त्रिष्टुप् । इन्द्रः[१] ॥१०॥

[१०५] कदा कौत्सो दुर्मित्रो नाम्ना सुमित्रो गुणतः सुमित्रो वा नाम्ना दुर्मित्रो गुणत औष्णिहं हरी वज्रं पिपीलिकमध्ये

---

१. 'द्वा ··· रथम्' 'सन् ··· कुत्वम्' 'सुक्त ··· त्रिष्टुभः' 'शि ··· दश' 'बृहस्पते ·· चित्तमिति' 'प्रेता ··· दशैन्द्र्यः' 'सोमः' 'त्रिष्टुप् । इन्द्रः' इति नास्ति मै० । २. तु०—निरु० ९।२४॥
३. 'मुद्गलेन' इति पु० १, पु० २। ४. अष्टा० ७।३।५७॥
५. 'युक्तैक ऋजराहव' इति पु० १, पु० २ ।
६. '०रकः' इति पु० १, पु० २ । ७. 'क्षिप्त्वा' इति पु० १, पु० २ ।
८. अष्टा० ५।४।१५३॥ ९. ऐत० ब्रा० ७।१७।७॥

त्रिष्टुबन्त्याद्या गायत्री वा ॥११॥

वसो । एकादश[1] । कौत्सः कुत्सपुत्रो नाम्ना दुर्मित्रः । दुर्मित्र इत्यस्य नामेत्यर्थः । गुणतः सुमित्रः । एष्वयमेव सुमित्र इत्युच्यते शुभमित्रयोगात्[2] । एतद्वा विपरीतम् । नाम्ना सुमित्रो गुणतो दुर्मित्र इति दुर्ज्ञानगुणानि यस्य[3] बहुगुणत्वादिति । विकल्पितस्य च लिङ्गम्[4] । शतं वा यदसुर्य प्रति त्वा सुमित्र इत्थास्तौद् दुर्मित्र इत्थास्तौद्[5] इत्यर्थानवधारणम्[6] । आर्षानुक्रमण्यां चात एव नामविकल्पः ।

दुर्मित्रो वा सुमित्रो वा कौत्सः सूक्तं कदा वसो । इति ।

तर्ह्यत्रापि सुमित्रो दुर्मित्रो वेत्येषोऽर्थोऽस्त्विति चेद्[7], न[8], दुर्मित्रनाम्नः स्तोतृत्वे सुमित्रनाम्नः स्तोतृत्वायोगात् ।[9] ऋगर्थस्यासंबन्धता मा प्रसाङ्क्षीद्[10] इत्यन्यतरस्यां गुणतयैव योगो वाच्य एवेति हि मन्यते । इदं चौष्णिहम् । तत्र हरी यस्य सुयुजा[11] वज्रं यश्चक्र[12] इति द्वे पिपीलिकमध्ये । एकादशषट्कैकादशवत्युष्णिगधिकारे[13] न त्वनुष्टुब्बृहत्यधिकारे[14] । कुत एतत् ? औष्णिहमिति बुद्ध्यनुसन्धानात् साहचर्याच्च । साहचर्यादपि ह्यर्थनियम इति[15] । रामशब्दो हि कृष्णलक्ष्मणकृतवीर्यसाहचर्याद्[16] रेवतीरमणं जानकीकान्तं जामदग्न्यं च बोधयति । अन्त्यैकादशी शतं वा यदसुर्येति त्रिष्टुप् । आद्या गायत्री । उष्णिग् वा व्यूहेन । औष्णिहमित्यादि शिष्टा जगत्यपवादः[1] ॥११॥

॥ इत्येकषष्टितमोऽध्यायः ॥६१॥

---

१. 'वसो...दश' 'अन्त्यै...पवादः' इति नास्ति मै० ।

२. सुमित्रगुणयोगोत्र' इति पु० १, पु० २ ।

३. '०गणान्यस्यमित्राणि बहु०' इति पु० १, पु० २ ।

४. 'विकल्पस्य च लिंग' इति पु० १ । 'विकल्पश्च लिंगात्' इति पु० २ ।

५. ऋ० १०।१०५।११॥

६. 'इत्यस्यानव०' इति पु० १, पु० २ ।

७. 'एषोपि स्थिति चेन्ना' इति पु० १ । 'एषोपस्थिते चेन्नाम्न' इति पु० २ ।

८. 'न' इति गो० । नास्ति मै० ।

९. '०त्वयोगात्' इति पु०, पु० २ । '०त्वावधारणयोगोत्' इति गो० ।

१०. 'प्रजीद्' इति पु० १ । 'प्रजाद्' इति पु० २ ।

११. ऋ० १०।१०५।२॥

१२. ऋ० १०।१०५।७॥

१३. '०कारजे' इति पु० १, पु० २ । 'उष्णिगधिकारे' इति मै० ।

१४. 'कारजे' इति पु० १, पु० २ ।

१५. 'साहचर्यमप्यर्थं नियमय वि' इति पु०१ । साहचर्यमप्यर्थं नियमाय वि' इति पु० २ ।

१६. '०कृतव्रत०' इति पु० १ । '०कृतव्रण०' इति पु० २ ।

[६२]

[१०६] उभौ भूतांशः काश्यप आश्विनम् ॥१॥

उ नूनम् । एकादशसंख्यानुवर्तते । भूतांशा नाम कश्यपपुत्रः । अश्विदेवत्यमिदम् । त्रिष्टुप्[1] । १॥

[१०७] आविर्दिव्यो दक्षिणा वा प्राजापत्या दक्षिणां तद्दातॄन् वास्तौच्चतुर्थी जगती ॥२॥

एकादश । अभूत्[2] । दिव्यो नामाङ्गिरस ऋषिः । दक्षिणा नाम प्रजापतेः सुता र्षिका । दक्षिणां यजमानैर्ऋत्विग्भ्यो दीयमानां तद्दातॄन् दक्षिणाया दातॄन् यजमानान् वास्तौत् । याजकादित्वात्[3] तृजकाभ्यां कर्तरीति[4] न षष्ठीसमासप्रतिषेधः । शतधारं वायुमर्कमिति चतुर्थी जगती । शिष्टा दश त्रिष्टुभः[2] ॥२॥

[१०८] किमिच्छन्ती पणिभिरसुरैर्निरूढा गा अन्वेष्टुं सरमां देवशुनीमिन्द्रेण प्रहितामयुग्भिः पणयो मित्रीयन्तः प्रोचुः सा तान् युग्मान्त्याभिरनिच्छन्ती प्रत्याचष्टे ॥३॥

सरमा । एकादश[2] । अर्थर्षिदेवताज्ञानाय कथां कथयति । कथा चैवम् । पुरा खलु बृहस्पतेरिन्द्रपुरोहितस्य गावो वलासुरभ्रूकुटीतटैः[5] पणिनामकासुरैर्हृता वलपुरं प्राप्य सुगुप्तस्थाने स्थापिता आसन् । अथ बृहस्पतिप्रेरितनैन्द्रेण नष्टान्वेषणं कृत्वा[6] सरमा नाम देवशुनी प्रहिता बभूव । सा च[7] बलपुरसमीपे[8] रसाख्यां महानदीमुत्तीर्य वलपुरं प्राप्य सर्वं विचिन्त्य[9] गुप्ते स्थाने ता गा ददर्शेति । तत्र पणिनामभिरसुरैर्बृहस्पतिगृहादाहृत्य[10] निरूढा[11] वलपुरे गुप्ताः स्थापिता गा अन्वेष्टुम् अन्वेषितुम् । तीषु-

---

१. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० । पु० १ कोशेऽतोऽग्रे—'अत्रेतिहासः । भूतांश ··सूक्तेनेति' इति पाठो बृहद्देवतातः (८।१८-२०) उद्धृतः ।

२. एका ' अभूत्' 'शत···त्रिष्टुभः' 'सरमा ·· दश' इति नास्ति मै० ।

३. द्र०—अष्टा० २।२।६॥ ४. अष्टा० २।२।१५॥

५. '०भृ०' इति पु० १, गो० । 'भ्रु' इति पु० २ ।

६. 'दत्वा' इति पु० १, गो० । 'ज्ञात्वा' इति पु० २ ।

७. '···त्या' इति पु० १ । 'आगत्य' इति पु० २ । 'गत्वा' इति गो० ।

८. 'पुरसमीपे' इति पु० १, पु० २ । ९. 'सर्वत्र विदित्य' इति पु० १, पु० २ ।

१०. 'दागत्य' इति कोशेषु । ११. 'निगूढा' इति पु० २, गो० ।

सहेति[1] विकल्पितः। इन्द्रेण प्रहितां सरमां देवशुनीं स्वजातीयां[2] देवतां[3] मृगयादिष्विन्द्रस्य[4] साधनभूतामस्य सूक्तस्यायुग्भिर्ऋग्भिः पञ्चभिराद्यातृतीयादिभिः[5] पणयो मित्रीयन्तो देवशुन्या सह मित्रत्वमात्मन इच्छन्तः। मित्रात् क्यचि ईत्वं[6] शतरि जसि च रूपम्। प्रणयपूर्वकमूचुरुक्तवन्तः। सा च देवशुनी तान् युग्मान्त्याभिर्युग्माभिर्द्वितीयाचतुर्थ्यादिभिरेकादश्या चेति षड्भिः प्रत्याचष्टे। त्रिष्टुप्[7]।

पण्युक्तौ सरमा देवी[8] तदुक्तौ पणयस्तथा ॥३॥

[१०९] नेऽवदन्त्सप्त जुहूर्ब्रह्मजाया ब्राह्मो वोर्ध्वनाभा
वैश्वदेवं द्व्यनुष्टुबन्तम् ॥४॥

प्रथमाः[7]। ब्रह्मणो जाया जुहूर्नामर्षिका। अथवा ब्रह्मपुत्र ऊर्ध्वनाभा नामर्षिः। विश्वेदेवदेवत्यम्। द्व्यनुष्टुबन्तम्। द्वे अनुष्टुभावन्ते यस्य तत्। आद्याः पञ्च त्रिष्टुभः[7] ॥४॥

[११०] समिद्ध एकादश जमदग्निस्तत्सुतो वा राम आप्रियः ॥५॥

अद्य[7]। जमदग्निर्नाम भार्गवः। अथवा तत्सुतस्तस्य जमदग्नेः पुत्रो रामो नाम परशुराम इत्याख्यातः। आप्रीसूक्तमिदम्। आप्रोत्युक्तेस्तनूनपाद्[9] द्वितीयम्। एकादशापि त्रिष्टुभः[7] ॥५॥

अथोत्तरसूक्तदर्शिनामृषीणां चतुर्णां गोत्रमाह—

परे चत्वारो वैरूपाः ॥६॥

अत ऋषेः परे चत्वार ऋषयो गोत्रतो वैरूपा वेदितव्याः। लाघवार्थमिदम्। प्रत्यृषिवैरूपोक्तेरिदं हि लघु। तर्हि प्राग्घर्माद् वैरूपा इत्येवास्तु प्राङ् मत्स्यात् काण्व[10] इतिवत् किं परे चत्वार इति ? तर्ह्यनुक्रमण्यन्तरानुकरणम् ॥६॥

[१११] मर्नाषिणो दशाष्टादंष्ट्रः ॥७॥

---

१. अष्टा० ७।२।४८॥
२. 'अजातीयां' इति पु० १, गो०। 'जातीयावद्' इति पु० २।
३. '०ता' इति कोशेषु।
४. 'मृगादि०' इति पु० १। 'मृगादेवतादि०' इति पु० २। 'मृगयामिन्द्र०' इति गो०।
५. 'आद्यातृतीयादिभिः' इति नास्ति कोशेषु। ६. द्र०—अष्टा० ७।४।३३॥
७ 'त्रिष्टुप्' 'प्रथमाः' 'विश्वे…त्रिष्टुभः' 'अद्य' 'एका…त्रिष्टुभः' इति नास्ति मै०।
८. 'देवतं' इति पु० १, पु २।
९. 'आप्रामत्यनुक्ते०' इति पु० १, पु० २। १०. का० सर्वा० ३९।७॥

प्र भरध्वम् । दश । अष्टादंष्ट्रो नाम वैरूपः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः[1] ॥७॥

[११२] इन्द्र पिब नभःप्रभेदनः ॥८॥

दश । प्रतिकामम् । नभःप्रभेदनो नाम वैरूपः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः[1] ॥८॥

[११३] तमस्य शतप्रभेदनोऽन्त्या त्रिष्टुप् ॥९॥

दश । द्यावापृथिवी । शतप्रभेदनो नाम वैरूपः । अन्त्या दशमी त्रिष्टुप् । तत्रादितो नव जगत्यः । इन्द्रः[1] ॥९॥

[११४] घर्मा सध्रिस्तापसो वा घर्मो वैश्वदेवं चतुर्थी जगती ॥१०॥

दश । समन्ता[2] । सध्रिर्नाम वैरूपः । अथवा घर्मो नाम तपसः पुत्रः । वैश्वदेवम् । चतुर्थी जगती । शिष्टा नव त्रिष्टुभः[2] ॥१०॥

[११५] चित्र इच्छिशोर्वार्ष्टिहव्य उपस्तुत आग्नेयं जागतं त्रिष्टुप्-शक्वर्यन्तम् ॥११॥

शिशोः[2] । उपस्तुतो नाम वृष्टिहव्यपुत्रः । इति त्वाग्ने वृष्टिहव्यस्य पुत्रा उपस्तुतास ऋषयोऽवोचन्निति[3] किं[4] बहुवचनम् ? पूजार्थमित्यनुमन्यते[5] । उपपन्नं चेदम्[6] आर्षानुक्रमण्यामपि तथैव दर्शनात् ।

उपस्तुतो वार्ष्टिहव्यो नवकं[7] चित्र इच्छिशोः ॥ इति ।

आग्नेयमिदम् । ऊर्जो नपादित्यष्टमी त्रिष्टुप्, इति त्वाग्न इत्यन्त्या नवमी शक्वरी चान्ते यस्य तत् । आदितः सप्त जगत्यः[2] ॥११॥

[११६] पिब स्थौरोऽग्नियुतोऽग्नियूपो वा ॥१२॥

नव । सोमम्[2] । स्थौरः स्थूरनाम्नः[8] पुत्रः । अग्नियुतो नाम । अथवा स्थौर एवाग्नियूपो नाम । त्रिष्टुप् । इन्द्रः[2] ॥१२॥

[११७] न वा उ भिक्षुर्धनान्नदानप्रशंसाद्ये जगत्यौ ॥१३॥

---

१. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।

२. 'दश । समन्ता' 'वैश्व...त्रिष्टुभः' 'शिशोः' 'आग्नेय ..जगत्यः' 'नव । सोमम्' 'त्रिष्टुप् । इन्द्रः' इति नास्ति मै० ।

३. ऋ० १०।११५।६॥

४. 'किं' इति नास्ति पु० १, पु० २ ।

५. 'इति नमनावे' इति पु० १, पु० २ ।

६. 'उपयंनं चैतत्' इति पु० १ । 'उपयमनं चैतत्' इति पु० २ ।

७. 'नवकश्चित्र' इति कोशेषु ।

८. 'स्थुर०' इति पु० १ ।

नव । देवाः[1] । भिक्षुर्नामाङ्गिरसो धनस्यान्नस्य च दानं प्रकर्षेणादातृनिन्दापूर्वकं[2] प्रशशंस स्तुतवान् । अत्र चाद्ये प्रथमाद्वितीये जगत्यौ । अथ शिष्टाः सप्त त्रिष्टुभः[1] ॥१३॥

[११८] अग्ने हंस्युरुक्षय आमहीयव आग्ने राक्षोघ्नं गायत्रं तु ॥१४॥

नव । न्यत्रिणम्[1] । उरुक्षयो नामामहीयवः । अमहीयुगोत्रजः[3] । रक्षोहेत्यग्नेर्गुणः । गायत्रमिदमुत्तरं च । श्रूयते हि—स यदि न जायेत यदि चिरं जायेत रक्षोघ्न्यो गायत्र्योऽनूच्या अग्ने हंसि न्यत्रिणमित्येता[4] इति[5] ॥१४॥

[११९] इति वै सप्तोनैन्द्रो लब आत्मानं तुष्टाव ॥१५॥

इति मे । त्रयोदश[1] । [6]इन्द्रस्यायमित्यैन्द्रः । तत्स्वीकृतत्वात् । लवो लवरूपमात्मानं स्वयमेव स्तुतवान् । इन्द्रो हि लवरूपमास्थाय सोमऋजीषं पिबन्नृषिभिर्दृष्टः[7] सोमस्यातिप्रियत्वं स्ववैभवं च वै वर्णयन्नात्मानमनेन सूक्तेन स्तुतवानितीतिहासविदः प्राहुः[8] । एवं च[9] लावमैन्द्रं ततः कायमिति देवतानुक्रमणीयं[10] संगच्छते । इति वै लावमैन्द्रमिति[11] बृहद्देवता[12] च । तथा—

उरुक्षयो[13] लवस्त्वैन्द्र इति वा इति मे मनः ।

इत्यार्षानुक्रमणी[14] ॥१५॥

॥ इति द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥६२॥

---

१. 'नव । देवाः' 'अत्र…त्रिष्टुभः' 'नव । न्यत्रिणम्' 'इति…दश' इति नास्ति मै० ।

२. '०निदानपूर्वकः' इति पु० १ । '०दातृनिदानपूर्वकः' इति पु० २ ।

३. '०हीय०' इति पु० १ । '०हीयुव०' इति पु० २ ।

४. ऐत० ब्रा० १।१६।९-१० ॥

५. 'एता इति' इति नास्ति पु०१, पु० २ ।

६. इतः पूर्वं पु० १ कोशे 'लवो पश्यदिन्द्रपुत्रः' इत्यधिकः पाठः ।

७. '०जीषतृसं पिबनदृष्टः ऋषिभिर्दृष्ट सन्' इति पु० १ । '०जिषहृसं पिबनदृष्टः । ऋषिभिर्दृष्ट सन्' इति पु० २ ।

८. 'आहुः' इति कोशेषु ।

९. 'इति च' इति पु० १, पु० २ ।

१०. '०मणी' इति पु० १, पु० २ ।

११. 'लाबमैन्द्रं तदिति' इति पु० १ । 'लवमैन्द्रं । तदिति' इति पु० २ ।

१२. बृ० दे० ८।४०।

१३. 'तयोरुयोर्' इति पु० १ । 'तयोरुभयोर्' इति पु० २ ।

१४. '०णीति' इति मो० ।

[६३]

[१२०] तदिन्नवाथर्वणो बृहद्दिवः ॥१॥

नव । आस । बृहद्दिवो नामाथर्वणः पुत्रः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः[1] ॥१॥

[१२१] हिरण्यगर्भो दश हिरण्यगर्भः प्राजापत्यः कायम् ॥२॥

समवर्तत[2] । हिरण्यगर्भो नाम प्रजापतिपुत्रः । कायं कदेवत्यम् । को देवता यस्य तत् । कस्येद्[3] इत्यनेनाण्, इदन्त्यादेशः वृद्धयायादेशौ ।[2] हिरण्यगर्भः समवर्तताग्र इति षट् प्राजापत्या[4] इति सूत्रं प्राजापत्या इडादधः प्रजापते न त्वदेतान्यन्य[5] इतिवत् कायत्वापवादः । अत एव कया नश्चित्र आ भुवद्[6] धिरण्यगर्भः समवर्तताग्र इति[7] कदेवत्ये विनियुङ्क्ते । प्राजापत्यया चर्चेति[8] ब्राह्मणं तु सुकीर्तिवृषाकपिवरुनाभानेदिष्ठवदृषिणा निर्देशः । दशापि त्रिष्टुभः[2] ॥२॥

[१२२] वसुं नाष्टौ चित्रमहा वासिष्ठ आग्नेयं जागतमाद्यां पञ्चमीं चर्तं ॥३॥

चित्रमहसम् । चित्रमहा नाम वसिष्ठपुत्रः । अग्निदेवत्यम् । आद्यां पञ्चमीं चेति द्वे त्रिष्टुभौ वर्जयित्वेदं सूक्तं जागतम् । आद्यापञ्चम्योस्त्रिष्टुप्त्वमनादेशात्[9] ॥३॥

[१२३] अयं वेनो वैन्यम् ॥४॥

अष्टौ । चोदयत् । वेनो नाम भार्गवः । वेनो भार्गव[6] इत्युक्तम् । वैन्यम् । वेनदेवत्यम् । अणर्थे ण्यः । त्रिष्टुप्[1] ॥४॥

[१२४] इमं नो नवैन्द्र्युत्तमा निह्ववोऽग्निवरुणसोमानामाग्नेय्याद्या[10] तिस्रश्चाग्नेरात्मस्तवः शिष्टा यथानिपातं सप्तमी जगती ॥५॥

अग्ने[2] । उत्तमा नवमीन्द्रदेवत्या । अन्त्येत्यनुक्तिश्चत्रार्था । अग्निवरुणसोमानां निह्नव स्तुत्युक्तिः । कर्त्तारं षष्ठी । ह्वेञ् स्पर्धायां शब्दे च[11] । ह्वः सम्प्रसारणं च

---

१. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।
२. 'समवर्तत' 'को देशौ' 'दशापि त्रिष्टुभः' 'अग्ने' इति नास्ति मै० ।
३. अष्टा० ४।२।२५ ॥ ४. आश्व० श्रौ० ३।८।१॥
५. आश्व० श्रौ० २।१४।११-१२ ॥ ६. ऋ० ४।३१॥
७. आश्व० श्रौ० २।१७।१५॥ ८. ऐत० ब्रा० ७।५१॥
९. का० सर्वा० ५१।१०॥ १०. '०नामद्याग्नानेयी तिस्र०' इति गो० मूलमात्रे ।
११. धा० १।१०५।७॥

न्यभ्युपविष्वित्यप्[1] । तत्राद्याग्निदेवत्या । अथ तिस्रोऽग्नेरात्मस्तवः । आसामग्निऋंषिर्देवता चेत्यर्थः । शिष्टा ऋचो यथानिपातम् । यो यत्र स्तुत्यत्वे[2] निपतति स तत्र स्तुत्य इत्यर्थः । आद्यां पञ्चम्यादिपञ्चेति षट् संभूयापश्यन्[3] अग्निवरुणसोमाः । सप्तमी जगती । शिष्टा अष्ट त्रिष्टुभः[4] ॥५॥

[१२५] अहमष्टौ वागाम्भृणी तुष्टावात्मानं[5] द्वितीया जगती ॥६॥

रुद्रेभिः[4] । वाङ् नामाम्भृणो । अम्भृणस्य महर्षेः पुत्री[6] । आत्मानं तुष्टाव । स्वयमेवर्षिका[7] देवता चेत्यर्थः[8] । द्वितीया जगती । आद्या तृतीयाद्याश्चेति सप्त त्रिष्टुभः[4] ॥६॥

[१२६] न तं शैलूषिः कुल्मुलबर्हिषो वामदेव्यो वांहोमुग् वैश्वदेवमुपरिष्टाद्बार्हतमन्त्या त्रिष्टुप् ॥७॥

अष्टौ । अंहो न[4] । कुल्मुलबर्हिषो नाम शिलूषपुत्रः । बाह्वादित्वादिञ् । अथ-वांहोमुङ् नाम वामदेवपुत्रः । इदं सूक्तं वैश्वदेवम् । उपरिष्टाद्बृहत्या त्र्यष्टकद्वादशकवत्या व्याप्तमिदम्[4] । उत्तरपदवृद्धिश्छान्दसी । अष्टमी त्रिष्टुप्[4] ॥७॥

[१२७] रात्री कुशिकः सौभरो रात्रिर्वा भारद्वाजी रात्रिस्तवं गायत्रम् ॥८॥

अष्टौ । व्यख्यत्[4] । कुशिको नाम सोभरिपुत्रः । अथवा रात्रिर्नाम भरद्वाजस्य पुत्र्यृषिका । रात्रिस्तवम् । रात्रिदेवतायाः स्तवं स्तुतिर्यत्र सूक्ते तत् । अष्टापि गायत्र्यः[4] ॥८॥

[१२८] ममाग्ने नव विहव्यो वैश्वदेवं जगत्यन्तम् ॥९॥

वर्चः । विहव्यो नामाङ्गिरसः । अन्त्या जगती । आदितोऽष्ट त्रिष्टुभः । विश्वे देवाः[9] ॥९॥

[१२९] नासत् सप्त प्रजापतिः परमेष्ठी भाववृत्तं तु ॥१०॥

---

१. अष्टा० ३।३।७२॥ २. 'स्तुत्यत्वेन' इति पु०१, पु० २, गो० ।

३. 'संख्या०' इति पु० १, पु० २ ।

४. 'सप्तमी…त्रिष्टुभ' 'रुद्रेभिः' 'द्वितीया…त्रिष्टुभः' 'अष्टौ…न' 'अथ…मिदम्' 'अष्टमी त्रिष्टुप्' 'अष्टौ' व्यख्यत्' 'अष्टापि गायत्र्यः' इति नास्ति मै० ।

५. '०भृण्यात्मानं तुष्टाव द्वि' इति गो० मूलमात्रे ।

६. '०पुत्रा' इति पु० १ । ७. 'स्वयमस्य०' इति पु० १, पु० २, गो० ।

८. अतोऽग्रे पु० १ कोशे 'रुद्रैव' इत्यधिकः पाठः ।

९. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।

आसीन्नो[1]। प्रजापतिर्नाम परमेष्ठी[2] गुणविशिष्टः। विशेषणं च वाच्यत्वं वैश्वामित्रत्वं चास्य प्रजापतेर्मा भूदिति। अन्यथा क्वचित् कथंचिन्न्यायेन[3] प्रसज्येत[4]। प्रजापतिरगोत्रोऽयमुपदेशेष्वनुक्तितः। भाववृत्तम्। भावानां पदार्थानां[5] वृत्तिः सृष्ट्यादिप्रवृत्तिर्यस्य देवता तद् भाववृत्तीयमिति[6] प्राप्ते छार्थेऽण्। त्विदमेवमुत्तरं च। त्रिष्टुप्[1] ॥१०॥

[१३०] यो यज्ञो यज्ञः प्राजापत्यो जगत्याद्या ॥११॥

सप्त। विश्वतः। यज्ञो नाम प्रजापतिसुतः। आद्या जगती। अथ षट् त्रिष्टुभः। भाववृत्तदेवता[7] ॥११॥

[१३१] अप प्राचः सुकीर्तिः काक्षीवतो मध्येऽनुष्टुप् सोत्तरा चाश्विन्यौ ॥१२॥

सप्त। इन्द्र।[1] सुकीर्तिर्नाम कक्षीवतः पुत्रः। सूक्तस्य मध्ये या चतुर्थी सानुष्टुप्। सा चतुर्थ्युत्तरा पञ्चमीति द्वे अश्विदेवत्ये। आदितस्तिस्रस्ततस्तिस्रश्चेति षट् त्रिष्टुभः। चतुर्थीपञ्चमीवर्जमिन्द्रः[1] ॥१२॥

[१३२] ईजानं शकपूतो नार्मेधो मैत्रावरुणमाद्या लिङ्गोक्तदेवता न्यङ्कुसारिण्यन्त्या महासतोबृहत्युपाद्योपान्त्ये प्रस्तारपङ्क्ती शेषा विराड्रूपाः ॥१३॥

सप्त। इद् द्यौः। शकपूतो नाम नृमेधपुत्रः। मित्रावरुणदेवत्यम्। आद्या लिङ्गोक्तदेवता। द्युभूम्यश्विदेवत्येत्यर्थः सा च न्यङ्कुसारिणी। द्वितीयश्चेन्न्यङ्कुसारिणीत्युक्तम्[8]। अन्त्या सप्तमी महासतोबृहती द्विद्वादशत्र्यष्टकवती। उपाद्योपान्त्ये पञ्चमीषष्ठ्यौ प्रस्तारपङ्क्ती द्विद्वादशद्व्यष्टकवत्यौ। तृतीयाचतुर्थीपञ्चमीति तिस्रो विराड्रूपाः। एकादशिनस्त्रयोऽष्टकश्च विराड्रूपा[9] ॥१३॥[7]

[१३३] मो षु सुदाः पैजवनः शाक्वरमहापाङ्क्तावाद्यौ तृचौ त्रिष्टुबन्त्या ॥१४॥

---

१. 'आसीन्नो' 'त्विद ⋯ त्रिष्टुप्' 'सप्त। इन्द्र' 'आदि⋯मिन्द्रः' इति नास्ति मै०।
२. यथाकोशं पाठः। ३. द्र०—का० सर्वा० परि० २।३॥
४. 'प्रसज्येत्' इति पु० १, पु० २। ५. 'पदानां' इति पु० १, गो०।
६. अतोऽग्रे पु० १ कोशे 'महाप्रलयाद्युपपर्णमेव भाववृत्तं वदंति तत्' इत्यधिकः पाठः।
७ सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै०। ८. का० सर्वा० परि० ७।२॥
९. का० सर्वा० परि० ६।६॥

सप्त । ग्रस्मै । सुदा नाम पिजवनाख्यराजपुत्रः । ग्राद्यस्तृचः षट्पञ्चाशदक्षरया शक्वर्या व्याप्तः । द्वितीयस्तृचः षडष्टकया महापङ्क्तचा व्याप्तः । सप्तमी त्रिष्टुप् । ग्रन्त्योक्तिश्चिन्त्यप्रयोजना । इन्द्रः[1] ॥१४॥

[१३४] उभे यत्र मान्धाता यौवनाश्वो महापाङ्क्तं पङ्क्तिरन्त्या तामध्यर्धां गोधापश्यत् ॥१५॥

सप्त । इन्द्र । मान्धाता नाम राजयुवनाश्वपुत्रः । षडष्टकया महापङ्क्तचा व्याप्तमिदम् । नकिर्देवा इत्यन्त्या पङ्क्तिः । तामध्यर्धां षष्ठचादिद्वितीयार्धर्चयुक्तां पूर्वेण मघवन्नित्यन्त्यां गोधा ब्रह्मवादिन्यपश्यत् । इन्द्रः[1] ॥१५॥

[१३५] यस्मिन् कुमारो यामायनो याममानुष्टुभं हि ॥१६॥

सप्त । वृक्षे[2] । कुमारो नाम यमगोत्रः[3] । नडादित्वात् फक् । यामं यमदेवत्यम् । ग्रनुष्टुप्छन्दस्कमिदमुत्तरे च द्वे[2] ॥१६॥

[१३६] केशी मुनयो वातरशना जूतिर्वातजूतिर्विप्रजूतिर्वृषाणकः करिक्रत एतश ऋष्यशृङ्गश्चैकर्चाः केशिनम् ॥१७॥

सप्त । ग्रग्निम् । मुनयो वातरशनाः । वातरशनपुत्राः । वातरशनादृष्यण् । एते चैकर्चाः क्रमेणैकैकस्या ऋचो द्रष्टारः । के चैत इत्याह—जूतिर्वातजूतिर्विप्रजूतिर्वृषाणकः करिक्रत एतश ऋष्यशृङ्गश्चेति । केशिनम्[1] ग्रग्निसूर्यवायुदेवत्यमिदम् । ग्रग्निर्वायुः सूर्यश्च केशिन इति ह्युक्तम्[4] । ग्रनुष्टुप्[1] ॥१७॥

[१३७] उत देवाः सप्त ऋषय एकर्चा वैश्वदेवम् ॥१८॥

सप्त । ग्रवहितम् । सप्त ऋषयः । भरद्वाजः कश्यपो गोतमोऽत्रिर्विश्वामित्रो जमदग्निर्वसिष्ठ इत्युक्ताः[5] । एते च गोत्रतो बार्हस्पत्यमारीचराहूगणभौमगाथिनभार्गवमैत्रावरुणाः । एतेऽप्येकर्चाः । ग्रनुष्टुप् । विश्वे देवाः[1] ॥१८॥

[१३८] तव त्ये षळङ्ग ग्रौरवो जागतम् ॥१९॥

इन्द्र । ग्रङ्गो नाम उरुपुत्रः । षडपि जगत्यः । ग्रनादेशादिन्द्रः[1] ॥१९॥

[१३९] सूर्यरश्मिर्देवगन्धर्वो विश्वावसुरात्मानमस्तौत् पूर्वार्धं सवितारम् ॥२०॥

---

१. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।
२. 'सप्त । वृक्षे' 'यामं...द्वे' इति नास्ति मै० । ३. '०पुत्रः' इति पु० १ ।
४. का० सर्वा० ११।७ वेदार्थदीपिका । ५. का० सर्वा० ५०।३॥

षट्। हरिकेशः[1]। विश्वावसुर्नाम। एष च देवानां गन्धर्वो गायकत्वेन देवानां सम्बन्धी जातितश्च गन्धर्व इत्यर्थः। पूर्वार्धं तृतीयार्थे। अस्य सूक्तस्य पूर्वार्धेन। आद्यतृचेनेति यावत् स्तुतवान् सवितारम्। उत्तरेण तृचेनात्मानमस्तौत्। त्रैष्टुभं सूक्तम्[1] ॥२०॥

[१४०] अग्ने तवाग्निः पावक आग्नेयं विष्टारपङ्क्तिस्तिस्रः सतोबृहत्य उपरिष्टाज्ज्योतिः ॥२१॥

षट्। श्रवः। अग्निः पावक ऋषिः। शुद्धाग्निदेवत्यम्[1]। सूक्तस्यादौ द्वे विष्टारपङ्क्ती[2]। ऊर्जोनपादिति[3] तिस्रः सतोबृहत्यः। ऋतावानमित्युपरिष्टाज्ज्योतिः[4] ॥२१॥

[१४१] अग्ने अच्छाग्निस्तापसो वैश्वदेवमानुष्टुभं हि ॥२२॥

षट्। वद। अग्निस्तापसगुण ऋषिः। इदं सूक्तं वैश्वदेवम्। आनुष्टुभमिदमुत्तरे च द्वे[5] ॥२२॥

[१४२] अयमष्टौ द्व्यृचाः शार्ङ्गा जरिता द्रोणः सारिसृक्तः[6] स्तम्बमित्रश्चाग्नेयमाद्ये जगत्यौ चतस्रश्च त्रिष्टुभः ॥२३॥

अग्ने[1]। शार्ङ्गा जातितः। शार्ङ्गा इति पक्षिविशेषस्याख्या। ते चत्वारो द्व्यृचाश्च प्रत्येकं क्रमेण द्व्यृचदर्शिनः। तेषामाद्यो जरिता नाम। द्वितीयो द्रोणः। तृतीयः सारिसृक्तः[6]। चतुर्थः स्तम्बमित्रः। सूक्तस्याद्ये द्वे जगत्यौ। अथ चतस्रस्त्रिष्टुभः। अधिकारादनुष्टुप्त्व स्तम्बमित्रद्व्यृचेऽन्ततः। अपादमिति द्वे अनुष्टुभौ हि शब्दात्। अग्निदेवत्यम्[1] ॥२३॥

॥ इति त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥६३॥

———

१. 'षट्...केशः' 'त्रैष्टुभं सूक्तम्' 'षट्...देवत्यम्' 'अग्ने' 'सूक्त...देवत्यम्' इति नास्ति मै०। २. 'आद्या विष्टापङ्क्तिः' इति पु० २, गो०।

३. 'अथ' इति पु० २, गो० मै०।

४. 'षष्ठी उपरि०' इति पु०२। 'पञ्चम्युपरि०' इति गो०। 'षष्ठ्युपरि०' इति मै०। '०ज्योतिः' इत्यतोऽग्रे 'त्रिष्टुप्' इति पु० १। 'अन्त्यानुक्तेस्त्रिष्टुप्' इति पु० २, गो०।

५. सूत्रव्याख्यां त्यक्ता मै०।

६. 'सारिसृक्वः' इति गो०, सायणश्च।

[६४]

[१४३] त्यं षट् साङ्ख्योऽत्रिराश्विनम् ।।१।।

चिदत्रिम्[1] । अत्रिर्नाम सङ्ख्यस्यापत्यम् । भौमत्वापवादः । अत्रिरन्यो ह्ययं भौमादुपदेशेषु[2] दर्शनात् । अधिकारादनुष्टुप्त्वम् । अश्विनौ चात्र देवता[1] ।।१।।

[१४४] अयं हि तार्क्ष्यपुत्रः सुपर्णो यामायनो वोर्ध्वकृशनो गायत्री बृहती गायत्र्यौ सतोबृहती विष्टारपङ्क्तिः ।।२।।

षट् । ते[1] । सुपर्णो नाम तार्क्ष्यपुत्रः । अथवोर्ध्वकृशनो नाम यामायनः । अत्र चाद्या गायत्री । द्वितीया बृहती । तृतीयाचतुर्थ्यौ गायत्र्यौ । पञ्चमी सतोबृहती । षष्ठी विष्टारपङ्क्तिः । अष्टकद्विद्वादशाष्टकवती । इन्द्रः[1] ।।२।।

[१४५] इमामिन्द्राण्युपनिषत् सपत्नीबाधनमानुष्टुभं तु पङ्क्त्यन्तम् ।।३।।

षट् । खनामि[1] । इन्द्राण्यृषिका । उपनिषत्संज्ञं सत्[3] सपत्नीबाधनं च । सपत्नी बाध्यतेऽनेन सूक्तेनेह जपादिना । तेनास्य तदेव देवता । आनुष्टुभमिदमुत्तरं च । उप तेऽधामिति षष्ठी पङ्क्तिः पञ्चाष्टका[1] ।।३।।

[१४६] अरण्यान्यरम्मदो देवमुनिररण्यानीं तुष्टाव ।।४।।

षट् । अरण्यानी[1] । देवमुनिर्नाम । इरम्मदपुत्रः । अरण्यानीं महारण्याभिमानिनीं[4] देवतां तुष्टाव । हिमारण्ययोर्महत्त्व[5] इति ङीष् आनुक् च । आनुष्टुभम्[1] ।।४।।

[१४७] अत्ते पञ्च सुवेदाः शैरीषिस्त्रिष्टुबन्तम् ।।५।।

दधामि[1] । सुवेदा नाम शिरीषपुत्रः । बाह्वादित्वादिञ् । पञ्चमी त्रिष्टुप् । आदौ चतस्रो जगत्यः । इन्द्रः[1] ।।५।।

[१४८] सुष्वाणासः पृथुर्वैन्यः ।।६।।

पञ्च । इन्द्र[1] । पृथुर्नाम वेनपुत्रः । अणो यञ् । त्रिष्टुप् । इन्द्रः[1] ।।६।।

---

१. 'चिदत्रिम्' 'अधिकारा···देवता' 'षट् । ते' 'अत्र···इन्द्र' 'षट् । खनामि' 'आनु··· पञ्चाष्टका' ('पञ्चाष्टका' इति नास्ति गो०) । 'षट् । अरण्यानी' 'आनुष्टुभम्' 'दधामि' 'पञ्चमी··· इन्द्रः' 'पञ्च । इन्द्र' 'त्रिष्टुप् । इन्द्रः' इति नास्ति मै० ।

२. द्र०—का० सर्वा० २८।१४ वेदार्थदीपिका ।

३. 'उपनिषत् रहस्यविद्यासंज्ञमिदं' इति पु० १ । 'उपनिषत्संज्ञकमिदं' इति पु० २ ।

४. 'महारण्यामति०' इति पु० १, पु० २ । ५. महा० ४।१।४९।

[१४९] सवितार्चन्[1] हैरण्यस्तूपः सावित्रम् ॥७॥

पञ्च। मन्त्रैः। अर्चन्[1] नाम हिरण्यस्तूपपुत्रः[2]। सवितृदेवत्यम्। त्रिष्टुप्[3] ॥७॥

[१५०] समिद्धो वासिष्ठो मृळीक आग्नेयं बार्हतमन्त्ये उपरिष्टा-ज्ज्योतिषी जगत्युपान्त्या वा ॥८॥

पञ्च। चित्। मृळीको नाम वसिष्ठपुत्रः। आग्नेयम्। छन्दसा बार्हतम्। अन्त्ये चतुर्थीपञ्चम्यावुपरिष्टाज्ज्योतिषी द्विद्वादशकाष्टकवत्यौ। उपान्त्या चतुर्थी जगती वा[3] ॥८॥

[१५१] श्रद्धया श्रद्धा कामायनी श्राद्धमानुष्टुभ तु ॥९॥

पञ्च। अग्निः[4]। श्रद्धा नामर्षिका। सा च कामायनी। कामान्नडादिभ्यः[5] फकि जातिङीष्। गोत्रं च चरणै सहेति[6] जातित्वम्। श्राद्धम्। श्रद्धादेवत्यम्। आनुष्टुभमिदमुत्तरं च[4] ॥९॥

[१५२] शासः शासो भारद्वाजः ॥१०॥

पञ्च। इत्था। शासो नाम भरद्वाजपुत्रः। अनुष्टुप्। इन्द्रः[3] ॥१०॥

[१५३] इङ्खयन्तीर्देवजामय इन्द्रमातरो गायत्रम् ॥११॥

पञ्च। अपस्युवः[4]। देवजामयः। देवानां स्वसृभूता इन्द्रमातरो नामर्षिकाः। पञ्चापि गायत्र्यः। इन्द्रः[4] ॥११॥

[१५४] सोमो यमी भाववृत्तमानुष्टुभं तु ॥१२॥

पञ्च। एकेभ्यः। यमी नामर्षिका। भाववृत्तदेवत्यम्। आनुष्टुभमिदमुत्तरं च[3] ॥१२॥

[१५५] अरायि शिरिम्बिठो भारद्वाजोऽलक्ष्मीघ्नं द्वितीयातृतीये ब्राह्मणस्पत्ये अन्त्या वैश्वदेवी ॥१३॥

---

१. 'अर्चिनो' इति पुं० १, पु० २। 'अर्चन्तो' इति गो०।

२. तु०—'अर्चन् हिरण्यस्तूप ऋषिरिदं सूक्तं प्रोवाच'। निरु० १०।३२॥

३. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै०।

४. 'पञ्च। अग्निः' 'श्राद्धम्...च' 'पञ्च। अपस्युवः' 'पञ्चा...इन्द्रः' इति नास्ति मै०।

५. कामशब्दो नडादिगणे (अष्टा० ४।१।९९) न संगृह्यते।

६. महा० ४।१।६३॥

पञ्च । काणे । शिरिम्बिठो नाम भरद्वाजपुत्रः[1] । अलक्ष्मीघ्नम् ।

अलक्ष्मीनाशकं[2] सूक्तं जपहोमादिभिस्त्विदम् ।
तत्राद्योपान्त्ययोरश्रीनाश एव प्रकीर्तितः ।।१।।
द्वितीया च तृतीया च ब्रह्मणस्पतिदेवते ।
उपाद्ये इति किं नोक्तमिति चेत् पृच्छ तं मुनिम् ।।२।।

पञ्चमी वैश्वदेवी । पञ्चाप्येता अनुष्टुभः[1] ।।१३।।

[१५६] अग्निं केतुराग्नेय आग्नेयं गायत्रम् ।।१४।।

पञ्च । हिन्वन्तु । केतुर्नामाग्निपुत्रः । सर्वत्राग्निकलिभ्यामिति[3] ढक् । आग्नेयं सूक्तम् । गायत्रम्[4] ।।१४।।

[१५७] इमा नु कं भुवन आप्त्यः साधनो वा भौवनो वैश्वदेवं द्वैपदं त्रैष्टुभम्[5] ।।१५।।

पञ्च । भुवना[1] । भुवनो नामाप्त्यपुत्रः । अथवा भुवनस्य पुत्रः साधनसंज्ञः । द्विपदया व्याप्तं द्वैपदम् । विंशत्यक्षरा विराजो मा भूवन्निति त्रैष्टुभमित्युक्तम् । श्रूयते हि—इमा नु कं भुवना सीषधामेति द्विपदाः शंसतीति[6] ।।१५।।

[१५८] सूर्यो नश्चक्षुः सौर्यः सौर्यं गायत्रम् ।।१६।।

पञ्च । दिवः[1] । चक्षुर्नाम सूर्यपुत्रः । सौर्यं इति मानवनिवृत्त्यर्थम् । चक्षुर्मानव[7] इति ह्युक्तम् । सूर्यदेवत्यं सूक्तम् । पञ्चापि गायत्र्यः[1] ।।१६।।

[१५९] उदसौ षट् पौलोमी शच्यात्मानं तुष्टावानुष्टुभम् ।।१७।।

सूर्यः ।[1] पुलोमतनया शची नामेन्द्रस्य महिष्यृषिका भूत्वा स्वयमात्मानमेव तुष्टाव स्तुतवती । षडप्यनुष्टुभः[1] ।।१७।।

[१६०] तीव्रस्य पञ्च पूरणो वैश्वामित्रः ।।१८।।

पञ्च । अभिवयसः । पूरणो नाम वैश्वामित्रः । त्रिष्टुप् । इन्द्रः[4] ।।१८।।

[१६१] मुञ्चामि प्राजापत्यो यक्ष्मनाशनो राजयक्ष्मघ्नमन्त्यानुष्टुप् ।।१९।।

---

१. 'पञ्च ··पुत्रः' 'पञ्चमी···अनुष्टुभः' 'पञ्च भुवना' 'पञ्च । दिवः' 'सूर्यदेवत्यं··· गायत्र्यः' 'सूर्यः' 'षडप्यनुष्टुभः' इति नास्ति मै० ।

२. 'अश्रीनाशकरं' इति पु० १, पु० २ । ३. महा० वा० ४।२।७ ।।

४. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० । ५. 'विराडादि' इत्यधिकः पाठः पु० १, पु० २ ।

६. ऐत० ब्रा० ५।१९।१२।। ७. का० सर्वा० ५३।६।।

पञ्च । त्वा ।[1] यक्ष्मनाशनो नाम प्रजापतिपुत्रः । राजयक्ष्मघ्नमिदम् । राजयक्ष्मा क्षयव्याधिः । राजयक्ष्मेति च सर्वव्याधिप्रशमनम् । गृह्येऽपि सूत्र्यते[2]—अथ व्याधितस्यातुरस्य यक्ष्मगृहीतस्य वा षडाहुतिश्चरुर्मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमित्येतेनेति[3] । अनादेशादिन्द्रो देवता । अत्र बृहद्देवतायां विकल्प उक्तः—

ऐन्द्राग्नं मन्यते यास्क एके लिङ्गोक्तदैवतम् ॥[4] इति ।

नैतदस्ति । अत्रान्येषां मतमुक्तम् । स्वयं शौनकस्येन्द्रः । एक इत्यादेशादैन्द्रत्वमेवानेनाङ्गीकृतम्[5] । चतस्रस्त्रिष्टुभस्त्वादावनुष्टुप् पञ्चमी मता[1] ॥१९॥

[१६२] ब्रह्मणा षड् ब्राह्मो रक्षोहा गर्भसंस्रावे प्रायश्चित्तमानुष्टुभं हि ॥२०॥

अग्निः[1] । रक्षोहा नाम ब्रह्मपुत्रः । गर्भसंस्रावे गर्भस्य निहितस्य स्रावे पातविषयभूते तस्य प्रायश्चित्तं समाधायकम् । गर्भसमाधानमत्र[6] देवता[7] । आनुष्टुभमिदमुत्तरे च द्वे[1] ॥२०॥

[१६३] अक्षीभ्यां विवृहा काश्यपो यक्ष्मघ्नम् ॥२१॥

षट् । ते[1] । विवृहा नाम कश्यपगोत्रः । यक्ष्मघ्नम् । यक्ष्मा क्षयरोगः । तस्य नाशनमस्य वाच्यम् । देवतोक्तिरियम् । अनुष्टुप्[1] ॥२१॥

[१६४] अपेहि पञ्च प्रचेता दुःस्वप्नघ्नं पङ्क्त्यन्तं त्रिष्टुम्मध्यम् ॥२२॥

मनसः[1] । प्रचेता नामाङ्गिरसः । आदितो द्वे चतुर्थी चानुष्टुभः । तृतीया त्रिष्टुप् । पञ्चमी पङ्क्तिः । दुःस्वप्नघ्नमिति तत्फलमुपचारेणोक्तम् । दुःस्वप्ननाशनम् ॥२२॥

[१६५] देवा नैर्ऋतः कपोतः कपोतोपहतौ प्रायश्चित्तं वैश्वदेवम् ॥२३॥

पञ्च । कपोतः[1] । कपोतो नाम निर्ऋतिपुत्रः । कपोतेन गृहादेरुपहतावभि-

---

१. 'पञ्च त्वा' 'चतस्र...मता' 'अग्निः' 'आनु...द्वे' 'षट् ते' 'देवतो...अनुष्टुप्' 'मनसः' 'पञ्च । कपोतः' इति नास्ति मै० ।

२. 'गृहे हि सूच्यते' इति पु० १ । 'गृह्ये सूत्र्यते' इति पु० २ ।

३. आश्व० गृह्य० ३।६।३-४॥ ४. बृ० दे० ८।६५॥

५. 'एतेष्ट इत्ययमादेशादैन्द्रत्वमेवानेनाशीहृतं' ('हृतः' पु० २ ।) इति पु० १, पु० २ ।

६. '०मन्त्र' इति पु० १ ।

७. अतोऽग्रे पु० १ कोशेऽधिकः पाठः—'विनियोगकथनेन देवतामेवाचष्टे । तथा चोक्तम्— मन्त्रेष्वनिरुक्तेषु...प्रजापतिरसंभवे (बृ० दे० ७।१६)' ।

भवे[1] सति जपहोमाभ्यां प्रायश्चित्तमिदम् । तादर्थ्यात् ताच्छब्द्यमायुर्घृतमिति यथा[2]। गृह्येऽपि[3] सूत्र्यते—कपोतश्चेदगारमुपहन्यादनुपतेद्वा देवाः कपोत इति प्रत्यृचं जुहुयाज्जपेद्वा[4]। देवता नु विश्वे देवाः। त्रिष्टुप्[5] ॥२३॥

[१६६] ऋषभमृषभो वैराजः शाक्वरो वा सपत्नघ्नमानुष्टुभं महापङ्क्त्यन्तम् ॥२४॥

पञ्च । मा[5]। ऋषभो नाम वैराजोऽयं गोत्रतः । शाक्वरो वा । अत्र चाण प्रकृतिस्तु विराट् । वैराजो वा शाक्वरो वा[6]। नात्र कैश्चिदपि निरणायि[7]। सपत्नघ्नम् । शत्रुनाशनमनेनोच्यते । आदौ चतस्रोऽनुष्टुभः । योगक्षेममिति षडष्टका महा पङ्क्तिः[5] ॥२४॥

[१६७] तुभ्येदं चतुष्कं विश्वामित्रजमदग्नी जागतं तृतीया लिङ्गोक्तदेवता ॥२५॥

इन्द्र । चतुरृचमिदम् । विश्वामित्रजमदग्नी ऋषी सहापश्यताम् । तौ च गाथिनभार्गवावित्युक्तम् । जागतम् । ऐन्द्रम्[5]। तृतीया सोमस्य राज्ञ इत्येषा वरुणधातृविधातृसोमबृहस्पतिलिङ्गोक्तदेवता[8] ॥२५॥

[१६८] वातस्यानिलो वातायनो वायव्यम् ॥२६॥

चतुष्कम् । नु[5]। अनिलो नाम वातगोत्रः । वातान्नडादिफक्[9]। वायव्यमिदम् । त्रिष्टुप्[5] ॥२६॥

[१६९] मयोभूः शबरः काक्षीवतो गव्यम् ॥२७॥

चतुष्कम् । वातः[5]। शबरो नाम कक्षीवद्गोत्रः। गव्यम् । गोदेवत्यमिदम् । त्रिष्टुप् ॥२७॥

---

१. '०पहृतेभि०' इति पु० १, पु० २ ।

२. 'ताद···यथा' इति नास्ति मै० । भ्रष्टः पाठः पु० १, पु० २ ।

३. 'हि' इति पु० १, इति पु० २ ।

४. आश्व० गृह्य० ३।७।७॥

५. 'देवता···त्रिष्टुप्' 'पञ्च । मा' 'आदौ···पङ्क्तिः' 'इन्द्र···ऐन्द्रम्' 'चतुष्कम् । नु' 'वाय · त्रिष्टुप्' 'चतुष्कम् । वातः' इति नास्ति मै० ।

६. 'वैराजं वा शाक्वरं वा' इति कोशेषु ।

७. 'न कैश्चिदपि किरणायि' इति पु० १ । 'नात्र कैश्चिदण्यापि किरणापि' इति पु० २ । 'नात्र कैश्चिन्निरणायि' इति गो० ।

८. 'ऐन्द्री वा' इत्यधिकः पाठः पु० १, पु० २ ।

९. वातशब्दो नडादिषु (अष्टा० ४।१।९९) न दृश्यते ।

[१७०] विभ्राड् विभ्राट् सौर्यः सौर्यं जागतमास्तारपङ्क्त्यन्तम् ॥२८॥

चतुष्कम् । बृहत् । विभ्राण् नाम सूर्यपुत्रः । सूर्यदेवत्यम् । आदौ तिस्रो जगत्यः । चतुर्थ्यास्तारपङ्क्तिद्वर्चष्टकद्विद्वादशकवत्यन्ते यस्य तत्[१] ॥२८॥

[१७१] त्वं त्यमिटो भार्गवो गायत्रम् ॥२९॥

चतुष्कम् । इटतः । इटो नाम भृगुपुत्रः । गायत्रम् । इन्द्रः[१] ॥२९॥

[१७२] आ याहि संवर्त उषस्यं द्वैपदम् ॥३०॥

चतुष्कम् । वनसा[२] । संवर्तो नामाङ्गिरसोऽन्नादेशात् । श्रूयते हि—ऐन्द्रेण महाभिषेकेण संवर्त आङ्गिरसो मरुत्तमाविक्षितमभिषिषेचेति[३] । उषो देवत्यम् । द्वैपदम् । विंशतिका द्विपदा विराजः । श्रूयते हि—आयाहि वनसा सहेति द्विपदाः शंसतीति[४] । सूत्र्यते च—आ याहि वनसेमानुकं बभ्रुरेक इति द्विपदा सूक्तानीति[५] ॥३०॥

[१७३] आ त्वा षड् ध्रुवो राज्ञः स्तुतिस्त्वानुष्टुभं तु ॥३१॥

आहार्षम्[२] । ध्रुवो नामाङ्गिरसः । राजस्तुतिरिदमुत्तरं च । उक्तं हि बृहद्देवतायाम् —

आ त्वा राज्ञेऽभिषिक्ताय द्वे सूक्ते अभिमन्त्रणे[६] ॥ इति ।[७]

आनुष्टुभमिदमुत्तरं च[२] ॥३१॥

[१७४] अभीवर्तेन पञ्चाभीवर्तः ॥३२॥

हविषा । अभीवर्तो नामाङ्गिरसः । अनुष्टुप् । राजस्तुतिः[१] ॥३२॥

[१७५] प्र वश्चतुष्कमूर्ध्वग्रावार्बुदिर्ग्राव्णोऽस्तौद्[८] गायत्रम् ॥३३॥

ग्रावाणः[२] । ऊर्ध्वग्रावा नामार्बुदसर्पपुत्र ऋषिः । अत इञोऽपवाद ऋष्यणोऽपवादो बाह्वादित्वादिञ् । ग्राव्णोऽस्तौत् स्तुतवान्[९] । गायत्रम्[२] ॥३३॥

[१७६] प्र सूनवः सूनुरार्भव आग्नेयमानुष्टुभं द्वितीया गायत्र्याद्यार्भवी ॥३४॥

---

१. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० ।

२. 'चतुष्कम् । वनसा' 'उषो···सूक्तानीति' 'आहार्षम्' 'आनु···च' 'ग्रावाणः' 'गायत्रम्' इति नास्ति मै० ।

३. ऐत० ब्रा० ८।२१।१२॥

४. ऐत० ब्रा० ५।१७।१०॥

५. आश्व० श्रौ० ८।७।२४।

६. 'चामन्त्रणे' इति मुद्रिते ।

७. बृ० दे० ८।७३।

८. '०ग्रावा सर्पोऽर्बुदिग्रा०' इति गो० मूलमात्रे ।

९. 'राज्ञशास स्तुतवान्' इति पु० १ । 'राज्ञा शासः ग्रावाणं स्तुतवान्' इति पु० २ ।

चतुष्कम् । ऋभूणाम्[1] । सूनुर्नाम । ऋभुपुत्रः । अग्निदेवत्यम् । तत्राद्यर्भु-देवत्या । द्वितीया गायत्री । शिष्टास्तिस्रोऽनुष्टुभः[1] ।।३४।।

[१७७] पतङ्गं तृचं पतङ्गः प्राजापत्यो मायाभेदं जगत्यादि ।।३५।।

अक्तम् । तिस्र ऋचा यस्य तत् तृचम्[1] । पतङ्गो नाम प्रजापतिपुत्रः । आदौ जगती यस्य तत् । द्वितीयातृतीये द्वे त्रिष्टुभौ[2] । मायानां भेदो यत्रेति कण्ठेकालवद् व्यधिकरणबहुव्रीहिः[1] ।।३५।।

[१७८] त्यमू ष्वरिष्टनेमिस्तार्क्ष्यस्तार्क्ष्यम् ।।३६।।

तृचम् । वाजिनम्[1] । अरिष्टनेमिर्नाम तार्क्ष्यपुत्रः । तार्क्ष्याद् ऋष्यण् । तार्क्ष्य-देवत्यम । तार्क्ष्याद् देवताण् ।[3] श्रूयते हि—त्यमू षु वाजिनं देवजूतमिति तार्क्ष्योऽच्युत[4] इति । तिस्रोऽपि त्रिष्टुभः[1] ।।३६।।

[१७९] उत्तिष्ठतैकर्चाः शिबिरौशीनरः काशिराजः प्रतर्दनो रौशदश्वो वसुमना आद्यानुष्टुप् ।।३७।।

तृचम् । अवपश्यत[1] । उशीनरपुत्रः शिबिर्नाम । काशिराजः काशीनां राजा प्रतर्दनो नाम । दैवोदासिः प्रतर्दनः[5] । रुशदश्वपुत्रो[6] वसुमनाः । इतीमे त्रयो राजानः । एकर्चाः एकैकस्या ऋचः क्रमेण द्रष्टारः । आद्यानुष्टुप् । अथ द्वे त्रिष्टुभौ । इन्द्रः[1] ।।३७।।

[१८०] प्र ससाहिषे जय ऐन्द्रिः[7] ।।३८।।

तृचम् । पुरुहूत[1] । जयो नामेन्द्रपुत्रः । अत इञ्[8] नहीन्द्र ऋषिः । ननु संवाद इन्द्रादितिवामदेवानाम्[9] इन्द्रागस्त्ययोः संवाद[10] इन्द्राणीन्द्रश्च समूदिर[11] इति दर्शना-दृषिरेवेन्द्र इति चेत्, तर्हि[12] बाह्वादित्वादिञ् । त्रिष्टुप् । इन्द्रः[1] ।।३८।।

---

१. 'चतु···भूणाम्' 'द्वितीया···नुष्टुभः' 'अक्तम्···तृचम्' 'आदौ···व्रीहिः' 'तृचम् । वाजिनम्' 'तिस्रो त्रिष्टुभः' 'तृचम् । अवपश्यत' 'आद्या···इन्द्रः' 'तृचम् । पुरुहूत' 'त्रिष्टुप् । इन्द्रः' इति नास्ति मै० ।

२. अतोऽग्रे पु० १ कोशे—'माया भिनत्तीति भेदं । सौर्यंभेके मन्यते' इत्यधिकः पाठः ।

३. 'तार्क्ष्यादित्यं' इति पु० १, पु० २, गो० ।

४. ऐत० ब्रा० ४।३१।१४।।

५. 'दैवो···र्दनः' इति नास्ति पु० १, पु० २ ।

६. 'रुशदश्व०' इति पु० १, पु० २ । सूत्रे 'रौशाश्व०' इति पु० १, 'रौशदश्व०' इति पु० २ । 'रोहिदश्व०' इति गो० ।

७. 'ऐन्द्रः' इति कोशेषु ।

८. अष्टा ४।१।९५। पु० १, पु० २ गो० नास्ति ।

९. का० सर्वा० २१।१४।

१०. का० सर्वा० १२।५।।

११. का० सर्वा० ६०।१।

१२. 'तर्हि' इति नास्ति कोशेषु ।

[१८१] प्रथश्चैकर्चाः प्रथो वासिष्ठः सप्रथो भारद्वाजो घर्मः सौर्यो वैश्वदेवम् ॥३९॥

तृचम् । यस्य[1] । अस्याप्यृषयश्चैकर्चाः प्रथसप्रथघर्माः । एते च वसिष्ठभरद्वाज-सूर्यपुत्राः क्रमात् । विश्वेदेवाः । तिस्रोऽपि त्रिष्टुभः[1] ॥३९॥

[१८२] बृहस्पतिस्तपुर्मूर्धा बार्हस्पत्यो बार्हस्पत्यम् ॥४०॥

तृचम् । नयतु । तपुर्मूर्धा नाम बृहस्पतिपुत्रः । सूक्तं बृहस्पतिदेवत्यम् । त्रिष्टुप्[2] ॥४०॥

[१८३] अपश्यं प्रजावान् प्राजापत्योऽन्वृचं यजमानपत्नी-होत्राशिषः ॥४१॥

तृचम् । त्वा[1] । प्रजावान् नाम प्रजापतिपुत्रः । अन्वृचम् । ऋचमृचमनुक्रमेण प्रत्यृचमित्यर्थः । ऋक्पूरित्यकारः[3] । यजमानस्य पत्न्या होतुश्चाशिषः । तथा च सूत्रम्—अपश्यं त्वेत्येतस्याद्यया यजमानमीक्षते द्वितीयया पत्नीं तृतीययात्मानमिति[4] । होतुरिद विधानम् । त्रिष्टुप्[1] ॥४१॥

[१८४] विष्णुस्त्वष्टा गर्भकर्ता विष्णुर्वा प्राजापत्यो गर्भार्थाशीर्लिङ्गोक्तदैवतमानुष्टुभम् ॥४२॥

तृचम् । योनिम्[1] । गर्भाणां कर्तृभूतस्त्वष्टा नामर्षिः । नास्य गोत्रमनुपदेशात् । अथवा प्रजापतिपुत्रो विष्णुर्नामर्षिः । गर्भाशीरत्र प्रार्थ्यते । विष्णुस्त्वष्टा प्रजापतिः सिनीवाली सरस्वत्यश्विनाविति लिङ्गोक्तदैवतमिदम् । तिस्रोऽनुष्टुभः[1] ॥४२॥

[१८५] महि सत्यधृतिर्वारुणिरादित्यं स्वस्त्ययनं गायत्रं वै ॥४३॥

तृचम् । त्रीणाम्[1] । सत्यधृतिर्नाम वरुणपुत्रः । वरुणाद् बाह्वादित्वादिञ् । न त्वृषित्वादत इञ्[5] । निहवोऽग्निवरुणसोमानामिति[6] वरुणस्यर्षित्वस्य दृष्टत्वात् । आदित्यम् । अदितिदेवत्यम्[7] । यस्मै पुत्रासो अदितेरिति[8] लिङ्गात् । स्वस्त्ययनम् । अविनाशगमनसाधनम् । सूत्र्यते गृह्ये—महि त्रीणामित्यनुमन्त्र्यैवमतिसृष्टस्य न कुतश्चिद् भयं भवतीति विज्ञायत[9] इति । गायत्रमिदमुत्तराणि च चत्वारि[1] ॥४३॥

---

१. 'तृचम् । यस्य' 'क्रमात्'''त्रिष्टुभः' 'तृचम् त्वा' 'त्रिष्टुप्' 'तृचम् । योनिम्' 'तिस्रोऽनुष्टुभः' 'तृचम् । त्रीणाम्' 'गायत्र'''चत्वारि' इति नास्ति मै० ।

२. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० । ३. अष्टा० ५।४।७४॥

४. आश्व० श्रौ० ४।६।३॥ ५. अष्टा० ४।१।९५।

६. का० सर्वा० ६३।५॥ ७. 'आदित्यदे०' इति पु० १; पु० २ । सायणादयश्च ।

८. ऋ० १०।१८५।३॥ ९. आश्व० गृह्य० ३।१०।७-८॥

[१८६] वातो वातायन उलो वायव्यम् ।।४४।।

तृचम् । आ वातु । उलो नाम वातपुत्रः । वायुदेवत्यम् । गायत्रं वै-शब्दात्[1] ।।४४।।

[१८७] प्राग्नये पञ्चाग्नेयो वत्स आग्नेयं तु ।।४५।।

वाचम् । वत्सो नामाग्निपुत्रः ।[2] अग्निदेवत्यमिदमुत्तरं च । गायत्री[1] ।।४५।।

[१८८] प्र नूनं तृचमाग्नेयः श्येनो जातवेदस्यम् ।।४६।।

जातवेदसम्[3] । श्येनो नामग्निपुत्रः । जातवेदा इत्यग्नेरधिकृतस्य गुणः । गायत्रम्[3] ।।४६।।

[१८९] आयं गौः सार्पराज्ञ्यात्मदैवतं सौर्यं वा ।।४७।।

तृचम् । पृश्निः[3] । सार्पराज्ञी नामर्षिका[4] । [5]आत्मदेवत्यम् । स्वदेवत्यं यथा तथापश्यत्[6] । सूर्यदेवत्य वा यथा तथापश्यत्[6] । गायत्रं वैशब्दात्[3] ।।४७।।

[१९०] ऋतं माधुच्छन्दसोऽघमर्षणो भाववृत्तमानुष्टुभं तु ।।४८।।

तृचम् । च सत्यम्[3] । अघमर्षणो नाम मधुच्छन्दसः पुत्रः । भाववृत्तदेवत्यम् । भाववृत्तार्थ उक्तः[7] । तुशब्दादानुष्टुभमिदमुत्तरं च[3] ।।४८।।

[१९१] सं सं चतुष्कं संवननः संज्ञानमाद्याग्नेयी तृतीया त्रिष्टुप्
तृतीया त्रिष्टुप् ।।४९।।

।। इति कात्यायनमुनिकृता सर्वानुक्रमणी समाप्ता ।।

इद्युवसे[3] । संवननो नामाङ्गिरसः । संज्ञानं सम्यग् ज्ञानम्[8] । ततोऽण्[9] । आद्याग्निदेवत्या अग्ने विश्वानीति लिङ्गात् । आनुष्टुभं त्वित्यनुष्टुप्त्वे प्राप्ते विशेषमाह—

---

१. सूत्रव्याख्या त्यक्ता मै० । २. '०माग्नेय०' इति पु० १, गो० ।

३. 'जातवेदसम्' 'गायत्रम्' 'तृचम् । पृश्निः' 'गायत्र' 'वंशब्दात्' 'तृचम् । च, सत्यम्' 'तु…च' 'इद्युवसे' इति नास्ति मै० ।

४. 'नामब्रह्मवादिनि ऋषिका' इति पु० १ ।

५. अतः पूर्वं पु० १ कोशे 'आत्मस्तवमित्यर्थः' इत्यधिकः पाठः ।

६. 'यथा यथा' इति पु० १ । 'यथा' इति पु० २ ।

७. द्र०—का० सर्वा० ६३,१०।। तत्रत्यं व्याख्यानमेवात्रावर्त्तयति पु० १ ।

८. 'सम्यग्ज्ञानम्' इति नास्ति पु० १, पु० २ ।

९. 'सांज्ञानम्' इति पाठः स्यात् सूत्रे ?

तृतीयेति । समानो मन्त्रः समितिरिति तृतीयर्क् त्रिष्टुप्छन्दस्केत्यर्थः । शिष्टास्तिस्रोऽनुष्टुभः[१] । तृतीया त्रिष्टुप् तृतीया त्रिष्टुबिति द्विरुक्तिः शास्त्रसमाप्तिसूचनार्था[२] । यथा पाणिनीयान्ते अ अ[३] इति । यथा परे पूर्णं परे पूर्णमिति[४] च्छन्दोविचित्यन्ते । तथा च सूत्रान्ते—प्रकृतिभावे प्रकृतिभावे । नमो ब्रह्मणे नमो ब्रह्मणे । नम आचार्येभ्यो नम आचार्येभ्य[५] इति । तथा च गृह्यान्ते—मध्यमियान् मध्यभियात् । नमः शौनकाय नमः शौनकायेति[६] । तथा चतुर्थारण्यकान्ते—ब्रह्म भवति ब्रह्म भवतीति[७] । एते च ब्राह्मणाभिदृष्टमेवानुकुर्वन्तीति[८] । तथा हि—क्षिप्रं हैवैनं स्तृणुते स्तृणुत[९] इति दृश्यते । ब्राह्मणारण्यकसूत्रगृह्यचतुर्थारण्यकेषु तु प्रत्यध्यायसमाप्तावपि द्विर्वचनं दृष्टम् । वागुदिता भवति भवतीत्यादि[१०] ।

अथ ऋग्वेद इत्यादि तृतीयात्रिष्टुबन्तकम् ।
इदं शास्त्रमधीयानः प्रणवाद्यर्थतामियात् ॥१॥

ऋषिच्छन्दोदैवतादिविज्ञानं फलमुच्यते ।
ऋषिनामार्षगोत्रज्ञ ऋषेः संस्थानतामियात्[११] ॥२॥

एकैकस्य ऋषेर्ज्ञानात्[१२] सहस्राब्दा स्थितिर्भवेत्[१३] ।
छन्दसां चैव[१४] सालोक्यं छन्दोज्ञानादवाप्नुयात् ॥३॥

तस्यास्तस्या देवतायास्तद्भावं प्रतिपद्यते[१५] ।
यां यां विजानाति नरो देवतामिति[१६] निर्णयः ॥४॥

किं च । ऋष्यादिविज्ञानफलमनुभूय सुपूजितः ।
स्वाध्यायस्य फलं पश्चाच्छ्रुत्या दत्त प्रपद्यते ॥५॥
ज्ञानस्मरणसंयुक्तो[१७] जायते यदि जायते ।

---

१. 'आद्या ··नुष्टुभः' इति नास्ति मै० । २. '०नार्थं' इति पु० १, पु० २ ।

३. अष्टा० ८।४।६८॥ वस्तुतस्तु नात्र द्विरुक्तिः, किन्तु स्थान्यादेशौ । महाभाष्यमत्रानुलन्धेयम् । ४. पिङ्गल-छन्दः सूत्र ८।३३॥ ५. आश्व० श्रौ० १२।१५।१२-१३॥

६. आश्व० गृह्य० ४।६।४४-४५॥ ७. ऐत० आ० ५।३।३।१६॥

८. '०णामृष्ट एवा०' इति पु० १, पु० २ । ९. ऐत० ब्रा० ८।२८।२०॥

१०. ऐत० ब्रा० १।६।१२॥

११. 'सस्थान' इति पु० १ । 'ऋषिसंस्थितिमित्ययत्' इति पु० २ ।

१२. '०नाम्ना' इति पु० २ । १३. '०ब्दातिथिर्भ०' इति पु० १, पु० २ ।

१४. 'तु' इति पु० १ ।

१५. 'स्वभाव्यत्वं प्रपद्यते' इति पु० १ । 'तादृभाव्यत्वं प्रतीयते' इति पु० २ ।

१६. 'देवाछिति' इति पु० १ । 'देवमिछवि' इति पु० २ ।

१७. 'जातिस्म०' इति पु० १ ।

नह्येतज्ज्ञानसूत्रेण[1] चादावेव[2] महात्मना ।।६।।
उक्तमन्यस्य[3] नैष्फल्यं सर्वकर्मसु सर्वदः ।
किं च[4] स्वयं शौनकोऽपि ब्रवीत्यत्र फलं महत्[5] ।।७।।
ऋषिनामार्षगोत्रज्ञऋषिभ्योऽस्तु सदा नमः ।
ऋषीणां विषयज्ञस्तु यः शरीरात् प्रमुच्यते ।।८।।
सोऽतीत्य तमसः पारं स्वर्गलोके महीयते ।
सहस्रयुगपर्यन्तम् अहर्यद् ब्राह्मम्[6] उच्यते ।।९।।
नाकस्य पृष्ठे तं[7] कालं दिवि सूर्यंव[8] रोचते ।
स्वाध्यायं मुनिर्योऽधीते[9] मन्त्रदैवतविच्छ्रुतेः[10] ।।१०।।
सह सद्भिर्वसेत्[11] स्वर्गे तत्र[12] सद्भिरपीड्यते[13] ।
सर्वानुक्रमणी सैषा कात्यायनमुनेः कृतिः[14] ।।११।।
तस्या वृत्तिरियं चापि समाप्ता षड्गुरोः कृतिः ।
वेदार्थदीपिका नाम षड्गुरूणां प्रसादतः ।।१२।।
खगोत्यान्मेषुमायेति[15] कल्यहर्गणने[16] सति ।
सर्वानुक्रमणीवृत्तिर्जाता वेदार्थदीपिका ।।१३।।

---

१. 'नह्येतदनुज्ञान०' इति पु० १ ।

२. '०रेवं' इति पु० १ । 'समन्नैव' इति पु० २ ।

३. 'महास्य' इति पु० १, पु० २ । 'उक्तमयज्ञस्य' इति गो० ।

४. 'किं च' इति नास्ति पु० १, पु० २ ।

५. 'भवतीत्यत्र फलमाह' इति पु० १, पु० २ । 'महत् फलमब्रवीत्' इति गो० ।

६. 'ब्राह्मचं यदु०' इति पु० १ । 'ब्राह्मणं' इति पु० २ ।

७. 'नाकपृष्ठे वसेत्' इति पु० २ ।

८. 'सूर्यं इव' इति पु० १ । 'सूर्यैर्विराजते' इति पु०२ । 'सूर्येत्र चोच्यते' इति गो० ।

९. 'मनुयोधीते' इति पु० १ । 'मुनयोधीते' इति पु० २, गो० ।

१०. '०वच्छ्रुतिः' इति पु० १ । '०निछ्रुतिः' इति पु० २ । '०विद्विषो' इति गो० ।

११. 'सतस्य सदिग्व' इति पु० १ । 'सतं सत्ति दिग्वसेत्' इति पु० २ । 'स तत्र दिवसः' इति गो० ।

१२. 'स त' इति पु० १ । 'स तं' इति पु० २ । 'स च' इति गो० ।

१३. 'अब्विरपी०' इति पु० १, पु० २ ।

१४. इतोऽग्रेऽधिकः पाठः—'समाप्तैकाध्यायवती षट्सप्तत्रिकद्व्यष्टिका' इति पु० १ । 'समाप्त्यैकाध्ययनकैः षट्सप्तत्रिकद्व्यष्टिका' इति पु० २ । 'समाप्तैकाध्यायवती' इति गो० ।

१५. 'गां त्यांमेषमासेति' इति पु० १ । 'गणांत्यामेषुमासेति' इति पु० २ ।

१६. 'कलिशुद्धदिनहोत्रगणने' इति पु० १ । 'क्लिशुद्धदिनहोत्रगणने' इति पु० २ । 'कल्यहोगणने' इति गो० ।

लक्षाणि पञ्चदश वै[1] पञ्चषष्टिसहस्रकम् ।
सद्वात्रिंशच्छतं चेति दिनवाक्यार्थं ईरितः[2] ॥१४॥
विनायकः शूलपाणिर्मुकुन्दः सूर्यो व्यासः शिवयोगीति षड् वै[3] ।
नमामि तान् सर्वदा पान्तु मां ते यैर्वै षड्भिः सप्त विद्यास्तु दत्ताः[4] ॥१५॥
आद्या सर्वानुक्रमणी[5] द्वितीया महाव्रतं चोपनिषद्द्वयं च।
महाव्रतं[6] सूत्रमासां तृतीया चत्वारिंशद्ब्राह्मणं[7] वै चतुर्थी ॥१६॥
सूत्रं पञ्चम्यत्र[8] षष्ठी तु गृह्यं शाकल्यस्य संहिता सप्तमीति ।
इमा दत्ता विद्यास्तु सद्भिर्यैर्वै षड्भ्यो गुरुभ्यो हि नमोऽस्तु तेभ्यः ॥१७॥
इति षड्गुरुशिष्येण कृता वेदार्थदीपिका ।
सर्वानुक्रमणीवृत्तिः समाप्तेष्टार्थं पुष्टये[9] ॥१८॥ ॥४६॥

॥ इति चतुष्षष्टितमोऽध्यायः ॥६४॥

॥ इति षड्गुरुशिष्यविरचितायां सर्वानुक्रमणीवृत्तौ वेदार्थदीपिकायां प्रथमोऽध्यायः[10] समाप्तः ॥

———

१. 'ल—पंचदश वै०' इति पु० १। 'लक्षपचदशपदैः' इति पु० २।
२. '०र्थं हीरितः' इति पु० १, पु० २।
३. 'षड्भ्यो' इति पु० १, पु० २। 'षड्भ्यः' इति गो० ।
४. 'विद्याः प्रदत्ता' इति पु० २।
५. 'आद्यानुक्रमणी' इति गो० ।
६. ऐतरेयारण्यकस्य सूत्रभागो महाव्रतसूत्रपदेनोच्यत इति मैक्डानलः (द्र० टिप्पणी पृ० १८५)।
७. '०रिशं ब्रा०' इति पु० १।
८. 'सूत्रं पञ्चम्यु...' इति पु० १। 'तद्वत् सूत्रं पञ्चमी वै निरुक्तं' इति पु० १।
९. '०प्ता चार्थं०' इति पु० १। '०प्ता चात्मतुष्टये' इति पु० २।
१०. मतोऽग्रे पु० १ कोशे—'समाप्तमिदं शास्त्रं समाप्ता चेयं वृत्तिः' इति पाठः।

अथ शौनकाचार्यकृतानुवाकानुक्रमणी षड्गुरुशिष्यविरचितानुवाकानुक्रमणीवृत्तिसमुपेता

सर्वं कर्म सफलं[1] यत्र तुष्टेऽतुष्टे न किञ्चित् तमहं नमामि ।
विनायकं गिरिराजेन्द्रपुत्रीमहेश्वरप्रियसूनुं घृणाब्धिम् ॥१॥
बह्वृचानां जनानां तु शौनकस्य प्रसादतः ।
अनुवाकानुक्रमणीरूपं किञ्चित् प्रवर्ण्यते ॥२॥
पितृदेवर्षिश्राद्धेभ्यो[2] ब्राह्मणेभ्यश्च सर्वशः ।
आचार्येभ्यो गुरुभ्यश्च प्रणम्य प्रयतः शुचिः ॥३॥

तादर्थ्ये प्रणम्य । प्रयतो जितेन्द्रियः । द्विविधं शौचम्—मृज्जलाभ्यां बाह्यम्; आन्तरमर्थशुद्धिः । प्रणम्य ॥३॥

ततः किम् ?—

मधुच्छन्दःप्रभृतिभिर्ऋषिभिर्हि[3] तपोबलात् ।
दृष्टानामनुवाकानामृजु[4] वक्ष्याम्यतन्द्रितः ॥४॥

ऋजु । [5]वर्तमानानां च ऋजु[6] । अतन्द्रितः । तारकादिभ्य इतच्[7] ॥४॥

सूक्तादिपरिमाणं तु संख्यां[8] च क्रममेव च[9] ।
मण्डले मण्डले चैव यावन्तो हि समीरिताः ॥५॥

आदि सूक्तपरिमाणम् । परी[10] दीर्घश्छान्दसः[11] । संख्यां[12] सर्वविषयक्रममेव च । इदमस्यापरमिति[13] । यावन्तः । अनुवाकाः ॥५॥

सूक्तसंख्यानुवाकानां सूक्तानामृक्समाहिता ।[14]
पदाक्षरसमाम्नायं छन्दस्येव प्रतिष्ठितम् ॥६॥

तत् सर्वं वक्ष्यामीत्यन्वयः ॥६॥

---

१. 'कर्मफलं' इति पाठान्तरम् । २. ०देवऋषि० । ०साध्येभ्यो । ०सिद्धेभ्यो ।
३. मधुछन्दप्र० । ४. ०मृक्षु । ५. ऋजुर्व० । ६. ऋजुः ।
७. अष्टा० ५।२।३६॥ ८. दृष्टानामनुवाकानां संख्यां ।
९. आदि सूक्तपरिमाणं संख्यां क्रममेव च । १०. परि । ११. ०स ।
१२. 'ता' इत्यधिकम् । १३. इदमस्या । हृदयमस्या ।
१४. इयं पङ्क्तिः परित्यक्तान्यत्र ।

अनुवाकस्य नित्याध्ययने प्रयोजनमित्याह—

एकैकमनुवाकं तु खिलानि ब्राह्मणानि च ।
संवत्सरे संवत्सरे पठेदहरहः शुचिः ।।७।।

ब्रह्म कृण्वन्तः परिवत्सरीणम्[1] इति श्रुतेः ।।७।।

अस्य तु नित्याध्ययनस्य—

श्रावणस्य तु मासस्य पौर्णमास्यामुपक्रमः ।
समाप्य तर्पयेद् देवानृषीन् पितॄननुक्रमात् ।।८।।

देवान् प्रजापत्यदीन्[2] मन्त्रस्य । ऋषीन् शतर्च्यादिमहासूक्तान्तान् । पितॄन् सुमन्त्वादि प्रतिपुरुषं पितॄनित्यन्तान्[3] ।।८।।

तदर्थम्—

ऋग्वेद शैशिरीयायां संहितायां यथाक्रमम् ।
प्रमाणमनुवाकानां सूक्तैः श्रृणुत शाकलाः ।।९।।

शैशिरीयायाम् । शिशिरनाममहर्षिप्रोक्तायाम् । शिशिरतु समाप्यायामित्यन्ये[4] । शाकलस्य[5] संहितायामित्यर्थः । प्रमाणं निबोधनं[6] प्रतिपादनमित्यर्थः । शास्त्र[7] उक्तं हि—

प्रमाणं बोधनेयत्तामर्यादाशास्त्रहेतुषु ।
सम्यग्वक्तरि[8] च ।।[9] इति ।

अनुवाकानां सूक्तैः । सहेति शेषः । श्रृणुत हे शाकलाः ।।९।।

के ते ? सर्वेषां शाकलत्वमाप्रीद्वारेण वक्तुमाप्रीद्रष्टॄनाह[10]—

कण्वाङ्गिरोऽगस्त्यशुनका विश्वामित्रोऽत्रिरेव च ।
वसिष्ठकश्यपवाध्र्यश्वा जमदग्निरथोत्तरम्[11] ।।१०।।

आप्रीद्रष्टार एते । इदं शास्त्रं शाकलानामेव[12] संबन्धनम्[13] इत्यन्ये । जमदग्नि-

---

१. ऋ० ७।१०३।८।।
२. प्राजापत्यादेव ।
३. आश्व० गृह्य० ३।४।४-५।।
४. ०समाप्यमि० । ०समाप्यामि० ।
५. शाक्वरस्य ।।
६. बोधनं ।
७. शास्त्रे मुक्तं । 'शास्त्रम्' इति पाठोऽत्र युक्ततरकः स्यात् ।
८. 'सम्यगुक्तैरिवे च' इति कोशेषु । 'सम्यगुक्तावेव' इति शोधो मै० ।
९. वैजयन्ती ३५१।४६।।
१०. ०द्रष्टुमाह । ०द्रष्टॄमाह ।
११. तु०—आश्व० श्रौ० ३।२।७ नारायणवृत्तिः ।
१२. शाकलाय नामेव ।
१३. संबद्धम् ।

यथोत्तरम् । दशममाप्रीसूक्तं जमदग्निर्ददर्श । प्राजापत्ये पशौ सर्वेषामाप्रियो जामदग्न्य[1] इति सर्वे शाकलाः ।

श्लोकस्यास्य यथासंख्यं[2] सूक्तानि दश वै विदुः ।
न आ वहाग्न आ वहाद्य राजसीत्यग्निर्निनि च[3] ॥११॥

सुसमिद्धो न आ वह[4]। समिद्धो अग्न आ वह[5] । समिद्धो अद्य राजसि[6] । समिद्धो अग्निर्निहितः[7] ॥११॥

समित्समित्सु शोचिषे जुषस्व विश्वतस्तथा ।
इमां मे अद्य मन्विमा यथर्षिपक्ष आप्रियः[8] ॥१२॥

समित्समित सुमनाः[9] । समिद्धाय शोचिषे[10] । जुषस्व नः समिधमग्ने अद्य[11] । समिद्धो विश्वतस्पतिः[12] । इमां मे अग्ने समिधं जुषस्व[13] । समिद्धो अद्य मनुषो दुरोणे[14] ॥१२॥[15]

वसिष्ठशुनकौ विना समिद्धसर्वपक्षता[16] ।
जुषस्वादिद्वितीयया तनूनपाद्विरोधिता[17] ।
यजुःश्रुतौ[18] तथा श्रुतेः समिद्धसूक्तमध्यतः ॥१३॥
प्रजापतेः पशोः[19] सदा[20] भवेयुरद्य मन्विमाः[21] ।
इतीरितं हि बह्वृचैर्यथर्षि वेति सूत्रतः[22] ॥१४॥
अग्निमीळे त्रिसूक्तस्तु सुरूपैन्द्र चतुःसूक्तौ[23] ।
अग्निं सोमानमित्येतौ षट्कौ कस्येति सप्तकः ॥१५॥

---

१. तु०—आश्व० श्रौ० ३।२।८॥ २. ०ख्य ।
३. ०ग्निर्निहितः । ४. ऋ० १।१३॥ ५. ऋ० १।१४२॥
६. ऋ० १।१८८॥ ७. ऋ० २।३॥
८. द्र०—ऐत० ब्रा० २।४॥ शत० ब्रा० ३।८।१।२॥; ६।२।१।२८॥; ११।८।३।५॥; १३।२।२।१४॥; का० श्रौ० १९।६।१२; ७।१९॥ निरु० ८।४॥ ९. ऋ० ३।४॥
१०. ऋ० ५।५॥ ११. ऋ० ७।२॥ १२. ऋ० ९।५॥ १३. १०।७०।
१४. ऋ० १०।११०॥ १५. अतोऽग्रे श्लोकार्धपञ्चकवृत्तिर्नोपलभ्यते ।
१६ तु०—आश्व० श्रौ० ३।२।६॥
१७. जुषस्व द्वितीयया यजू याद्विरोधिनां । जुषस्व द्वितीयया यजू यद्विरोधिनं । तु०—आश्व० श्रौ० १।५।२१-२२॥
१८. ०श्रुतो । द्र०—वाज० सं० २९।२७॥ तै० ब्रा० ३।६।३।
१९. यथो । यशो । यशः । २०. यदा ।
२१. आश्व० श्रौ० ३।२।८॥ सायणभाष्य ऋ० १०।११०॥
२२. आश्व० श्रौ० ३।२।७॥ २३. चतुष्ककौ ।

अग्निमीळे त्रिसूक्तस्तु । अनुवाकविशेषः । सुरूपैन्द्र चतुःसूक्तौ । अनुवाकविशेष इत्यादि यथायोगमुत्तरत्रापि वेदितव्यम् । सुरूपकृत्नुमूतये[1] । एन्द्र सानसिं रयिम्[2] । अग्निं दूतम्[3] । सोमानं स्वरणम्[4] । कस्य नूनम्[5] ॥१५॥

त्वमग्ने पञ्चकं विद्यात् प्र वो यह्वमथाष्टकम् ।
अग्ने विवस्वदभि त्यं नू चित्तो सप्तकास्त्रयः ॥१६॥

पञ्चकम् । अनुवाकं पञ्चसूक्तम् । त्वमग्ने प्रथमो अङ्गिराः[6] । प्र वो यह्वम्[7] । अग्ने विवस्वद् अभि त्यं नू चिदिति ये त्रयोऽनुवाकाः सप्तसूक्तकाः । अग्ने विवस्वदुषसः[8] । अभि त्यं मेषम्[9] । नूचित् सहोजाः[10] ॥१६॥

पश्वा न नवकं विद्यादुप प्रयन्तो दशैकं च[11] ।
खैलिकानामनादेशो[12]ऽस्मिन् ग्रन्थेऽनुवाकानाम्[13] ॥१७॥

पश्वा न तायुम्[14] । उप प्रयन्तो अध्वरम्[15] । एकादशसूक्तं विद्यादित्येव । नन्वत्र[16] मध्ये खिलमार्षानुक्रमण्यादिवत्[17] किं[18] नोच्यत इत्याह—अस्मिन्ननुवाकानां ग्रन्थे खैलिकानामनुवाकानामनादेशः । अनुक्ता हि ॥१७॥

यस्तु चर्चायते वेदे तस्य संख्येति नः[19] श्रुतिः ।
प्र ये शुम्भन्ते नवकमिमं[20] द्वादशकं विद्यात्[21] ॥१८॥

योऽनुवाकश्चर्चायते सम्यगभ्यस्यते । चर्चेवाचरतीति क्यङ् । यद्वा चर्चयाभ्यसनेनायते । आभिमुख्येन बद्धः । यमु बन्धने क्तः । वेदे । वेदपारायणाध्ययने तस्य संख्या विज्ञेयेति । नः । अस्माकम् । श्रुतिः । उपदेशः । अतोऽत्रोत्तरत्रापि खिलवर्जमुच्यत इति भावः ।

प्र ये शुम्भन्ते जनयः[22] । इमं स्तोमम्[23] ॥१८॥

इन्द्रं मित्रं दशैवाथ नासत्याभ्यां तु पञ्चकम् ।
कदित्था षट् परः सप्ताग्निमा ध्वा जुवः षट्कम्[24] ॥१९॥

---

१. ऋ० १।४॥ २. ऋ० १।८॥ ३. ऋ० १।१२॥ ४. ऋ० १।१८॥
५. ऋ० १।२४॥ ६. ऋ० १।३१॥ ७. ऋ० १।३६॥
८. ऋ० १।४४॥ ९. ऋ० १।५१॥ १०. ऋ० १।५८॥
११. उप प्रयन्तो दशैवं च । विद्यादुपैकादशकं तथा ।
१२. द्र०—मैक्समूलरकृते प्राचीनसंस्कृतवाङ्मये पृ० १९४,१९७ (चौखम्बा सं०)।
१३. ऽनुवाकानामिह स्मृतः । १४. ऋ० १।६५॥
१५. ऋ० १।७४॥ १६. यत्र ! १७. तु०—का०सर्वा० ७।५ वेदार्थदीपिका।
१८. 'किमिति' इत्यधिकं कोशेषु । १९. न । २०. ०मिदं ।
२१. विदुः । ०के विदुः । २२. ऋ० १।८५॥ २३. ऋ० १।९४॥
२४. जुवष्षट्कं । जुवश्च षट् ।

इन्द्रं मित्रं वरुणम्[1]। अत्र दश सूक्तानि। नासत्याभ्यां बर्हिरिव[2]। कदित्था नॄन्[3]। अग्निमित्यपरोऽनुवाकः सप्तसूक्तकः। अग्निं होतारं मन्ये[4]। आ त्वा जुवो रारहाणाः[5]॥१९॥

वेदिषदे सप्तदशाबोधीत्यष्टौ सूक्तानि[6]।
कया त्रिपञ्चसूक्तस्तु युवोर्द्वादशकं विद्यात्[7]॥२०॥

वेदिषदे प्रियधामाय[8]। अबोध्यग्निर्ज्मः[9]। कया शुभा[10]। त्रिपञ्चसूक्तः। पञ्चदशसूक्त इति यावत्। युवो रजांसि[11]॥२०॥

इत्याद्ये मण्डले दृष्टाश्चत्वारो विंशतिश्चैव[12]।
गौतमादौशिजः कुत्सः परुच्छेपादृषेः परः।
कुत्साद् दीर्घतमा इत्येष तु बाष्कलकः क्रमः[13]॥२१॥

चत्वारो विंशतिश्चैव। अनुवाकाः। अथ बाष्कलकेऽस्य[14] विशेषमाद्यमण्डल आह। उप प्रयन्तो नासत्याभ्याम् अग्नि होतारम् इमं स्तोमं वेदिषद इति बाष्कलकः क्रम इत्यर्थः। उप प्रयन्त इमं स्तोमं नासत्याभ्याम् अग्नि होतारं वेदिषद इति शाकलकः क्रमः[15]। अत्रैवमुक्तेरुत्तरमण्डलनवकेऽनुक्रमविपर्यासः[16]॥२१॥

॥ इति प्रथमं मण्डलं समाप्तम् ॥

त्वं यो गणानामा ते दश तृतीय एकादशास्त्रयः परे।
सोमस्य मा तवसं द्वादशोक्तं प्र वो देवायेति सप्तदशकं तु विद्यात्॥२२॥

त्वमग्ने द्युभिः[17]। यो जात एव[18]। गणानां त्वा[19]। आ ते पितः[20]। गणानां तृतीये सूक्तानि दश। त्वं यो आ त इत्यन्ये त्रयोऽनुवाका एकादशसूक्तकाः।

॥ इति द्वितीयं मण्डलम् ॥

सोमस्य मा तवसम्[21]। प्रवो देवाय[22]॥२२॥

---

१. ऋ० १।१०६॥ २. ऋ०. १।११६॥
३. १।१२१॥ ४. ऋ० १।१२७॥ ५. ऋ० १।१३४॥
६. ०त्येषोऽष्टसूक्तकः। ७. विदुः। ८. ऋ० १।१४०॥
९. ऋ० १।१५७॥ १०. ऋ० १।१६५॥ ११. ऋ० १।१८०॥
१२. ०तिस्तथैव। तिस्तथा। १३. क्रमात्। १४. ०क अस्या।
१५. इयं व्याख्या त्यक्ता क्वचित्।
१६. द्र०—मैक्समूलरकृते प्राचीनसंस्कृतवाङ्मये पृ० २०४ (चौ० सं०) टिप्पणी।
१७. ऋ० २।१॥ १८. ऋ० २।१२॥ १९. ऋ० २।२३॥
२०. ऋ० २।३३॥ २१. ऋ० ३।१॥ २२. ऋ० ३।१३॥

इच्छन्ति त्वा नवेन्द्र मतिस्त्रिपञ्चको नवक इमं महे ।
त्वां ह्यग्ने दश भद्रं यन्नस्त्वेकादशकावुभाविभौ ॥२३॥

इच्छन्ति त्वा[१] । इन्द्रं मतिहृद आ वच्यमाना[२] । पञ्चपशक इत्यर्थः । इमं महे विदथ्याय[३] ।

॥ इति तृतीयं मण्डलम् ॥

त्वां ह्यग्ने सदमित्[४] । भद्रं ते अग्ने[५] । यन्न इन्द्रः[६] ॥२३॥

त्रयोदशायं प्र ऋभुभ्य ईरितोऽग्रं पिबेत्येष चापि त्रयोदश ।
अबाध्यग्निः समिधा चतुर्दशातः परोऽष्टादशकः प्र वेधसे ॥२४॥

प्र ऋभुभ्यो दूतमिव[७] । अग्रं पिबेत्येष चापि त्रयोदश । अग्रं पिबा मधूनाम्[८] ।

॥ इति चतुर्थं मण्डलम् ॥

अबोध्यग्निः समिधा[९] । प्र वेधसे कवये[१०] ॥२४॥

महि महे द्वादशको विदास्तथा रुद्रासः षोडश यत्त्रिपञ्चकः[११] ।
त्वं ह्यग्ने पञ्चदशं त्वमष्टौ वृषा मदो विंशतिर्यो रयिवस्तु षट्कः[१२] ॥२५॥

महि महे[१३] । विदा दिवो विष्यन्[१४] । तथा द्वादशक इति यावत् । आ रुद्रास इन्द्रवन्तः[१५] । यदद्य स्थः[१६] पञ्चदश ।

॥ इति पञ्चमं मण्डलम् ॥

त्वं ह्यग्ने प्रथमो मनोता[१७] । त्वमग्ने यज्ञानाम्[१८] । वृषा मद इन्द्रे[१९] । यो रयिवो रयिन्तमः[२०] ॥२५॥

द्विषड्ढुवे[२१] स्तुषेऽथ[२२] द्विसप्तकः षष्ठः षष्ठे मण्डले योऽनुवाकः ।
अग्निं नरः सप्तदशाथ षोडश त्वे ह[२३] प्र शुक्रा द्व्यधिका तु विंशतिः ॥२६॥

हुवे वो देवो[२४] द्वादश । स्तुषे नरा[२५] षष्ठे मण्डले यः षष्ठोऽनुवाकश्चतुर्दशसूक्तः ।

॥ इति षष्ठं मण्डलम् ॥

---

१. ऋ० ३।३०॥ २. ऋ० ३।३९॥ ३. ऋ० ३।५४॥
४. ऋ० ४।१॥ ५. ऋ० ४।११॥ ६. ऋ० ४।२२॥
७. ऋ० ४।३३॥ ८. ऋ० ४।४६॥ ९. ऋ० ५।१॥
१०. ऋ० ५।१५॥ ११. यत्रि० । यस्त्रि० । यत् । १२. रयिवः षट् ।
१३. ऋ० ५।३३॥ १४. ऋ० ५।४५॥ १५. ऋ० ५।५७॥
१६. ऋ० ५।७३॥ १७. ऋ० ६।१॥ १८. ऋ० ६।१६॥
१९. ऋ० ६।२४॥ २०. ऋ० ६।४४॥ २१. षढ्ढुवे । षट् हुवे ।
२२. द्विः षडस्तु य । २३. त्वे ह यत् । २४. ऋ० ६।५० ॥
२५. ऋ० ६।६२॥

अग्निं नरो दीधितिभिः[1] । त्वे ह यत् पितरः[2] । प्र शुक्रा[3] ॥२६॥

क ईं व्यक्ताः पञ्चदशोना विंशतिरप[4] स्वसुः पञ्चदश प्र वीरया ।
मा चिन् महाँ इन्द्र इन्द्रः सुतेषु पञ्चाथ सप्ताष्ट वयं द्विपञ्चकः ॥२७॥

क ईं व्यक्ता नरः[5] अप स्वसुरुषस[6] एकोनविंशतिः । प्र वीरया शुचयः[7] ।

॥ इति सप्तमं मण्डलम् ॥

मा चिदन्यद् वि शंसत[8] । अथ सप्त । महाँ इन्द्रो य ओजसा[9] । अष्ट । इन्द्र सुतेषु[10] । वयमु त्वामपूर्व्य[11] ॥२७॥

यो यजाति द्वादशेमे ह षट्कोऽग्ने दशैकादशको य इत्युत[12] ।
त्रयोदशा तू न इन्द्र क्षुमन्तमतः[13] परो दशको गौर्धयत्ययम् ॥२८॥

यो यजाति[14] । इमे विप्रस्य[15] । हकारः पूरणः । अग्न आ याह्यग्निभिः[16] । यो राजा चर्षणीनाम्[17] । उतेति पूरणः । आ तू न इन्द्र क्षुमन्तम्[18] । गौर्धयति मरुताम्[19] । विद्यादिति शेषः । यस्तमिति च । अष्टममिति च । अतः परो दशको गौर्धयतीत्यर्थः[20] । तमष्टममण्डलस्यान्तं विद्यात् । अतः पञ्चाशको गौर्धयत्ययमित्यन्ये पठन्ति ॥२८॥

॥ इत्यष्टमं मण्डलम् ॥

स्वादिष्ठया त्र्यष्टसूक्तः पवस्व त्रिंशत् सषट्कः परः सप्तकोऽया[21] ।
प्राष्टादशैकादशकः[22] प्र तेऽस्य प्रेषा सप्तैकादशकः सखायः ॥२९॥

स्वादिष्ठया मदिष्ठया[23] चतुर्विंशतिसूक्तः[24] । पवस्व दक्षसाधनः[25] । त्रिंशत् सषट्कः । स्त्रीत्वाभावश्छान्दसः[26] । षट्त्रिंशत्सूक्तकः । अया वीती परि स्रव[27] । प्र देवमच्छा[28] । प्र त आशवः[29] । अस्य प्रेषा हेमना[30] । सखाय आ नि षीदत[31] ॥२९॥

॥ इति नवमं मण्डलम् ॥

---

१. ऋ० ७।१॥ २. ऋ० ७।१८॥ ३. ऋ० ७।३४॥
४. ०दश ··ऊना विंश० । ०दशैकोनविंश० । पंचदशेको नु विंशतिपः ।
५. ऋ०. ७।५६ । ६. ऋ० ७।७१॥ ७. ऋ० ७।९०॥
८. ऋ० ८।१॥ ९. ऋ० ८।६॥ १०. ऋ० ८।१३॥ ११. ऋ० ८।२१॥
१२. इत्यथ । इत्था । १३. इन्द्र ··अतः (क्षुमन्तं' इति त्यक्तम्)।
१४. ऋ० ८।३१॥ १५. ऋ० ८।४३॥ १६. ऋ० ८।६०॥
१७. ऋ० ८।७०॥ १८. ऋ० ८।८१॥ १९. ऋ० ८।९४॥
२०. गौर्धयद्वित्यर्थः । २१. ०ज्याः । २२. ०कादश ।
२३. ऋ० ९।१॥ २४. ०तिः सू० । २५. ऋ० ९।२५॥
२६. स्त्रीत्वादाव० । २७. ऋ० ९।६१॥ २८. ऋ० ९।६८॥
२९. ऋ० ९।८६॥ ३०. ऋ० ९।९७॥ ३१. ऋ० ९।१०४॥

अग्ने बृहन् षोळशकस्त्रयोदश त्वष्टा प्र देवत्रेति चाष्टादशाच्छ[1] ।
अष्टाविदं षोळशकस्तु भद्राः सत्येन षट् सं नवेन्द्र त्रयोदश ॥३०॥

अग्ने बृहन्नुषसाम्[2] । त्वष्टा दुहित्रे[3] । प्र देवत्रा ब्रह्मणे[4] । अच्छ म इन्द्रम्[5] । इदमित्था रौद्रम्[6] । भद्रा अग्नेः[7] । सत्येनोत्तभिता[8] । सं जागृवद्भिः[9] । इन्द्र दृह्य[10] ॥३०॥

तमस्य द्यावापृथिवी द्व्यष्टकः परस्त्रयोविंशतिर्नासदासीत् ।
ऋग्वेदान्त्यो द्वादशकोऽनुवाकश्चत्वारिंशच्छास इत्थेति चास्मिन्[11]॥३१॥

तमस्य द्यावापृथिवी सचेतसा[12] । नासदासीद्[13] इत्येष परोऽनुवाकस्त्रयोविंशतिसूक्तकः । अस्मिन् मण्डले द्वादशक ऋग्वेदान्त्यो योऽनुवाकः शास इत्थेत्यादि तत्रानुवाके सूक्तानि चत्वरिंशत् । शास इत्था महाँ असि[14] ॥३१॥

॥ इति दशमं मण्डलम् ॥

अथ मण्डलेष्वनुवाकसंख्यामाह—

आद्ये[15] चतुर्विंशतिर्ह्यनुवाका अतः[16] परं मण्डलं यच्चतुष्कम्[17] ।
द्वे पञ्चके त्रीणि षट्कानि चैव दशाष्टमं सप्त नवमं द्वादशान्त्यम्[18]॥३२॥

यत् । तत्रेति शेषः । द्वितीयं मण्डलं यच्चतुरनुवाकम् । द्वे पञ्चके । अतः परमित्येव । अतः परे द्वे तृतीयचतुर्थमण्डले पञ्चानुवाके भवतः । पराणि त्रीणि मण्डलानि पञ्चमषष्ठसप्तमानि षडनुवाकानि । अष्टमम् । तत्र दशानुवाकाः सन्ति । नवमं यत् तत्र सप्तानुवाकाः । दशममन्त्यं मण्डलं यत् तत्र द्वादशानुवाकाः ॥३२॥

अथ मण्डलेषु सूक्तसंख्यामाह—

एकाधिका स्यान्नवतिः शतं च वदन्ति वै मण्डलमादितो यत् ।
चत्वारिंशत् त्रीणि चाहुर्द्वितीयं सूक्ते च षष्टिं च तृतीयमाहुः ॥३३॥

---

१. ०दशाछ दशाथ । दश ।
२. ऋ० १०।१॥ ३. ऋ० १०।१७॥ ४. ऋ० १०।३०॥
५. ऋ० १०।४३॥ ६. ऋ० १०।६१॥ ७. ऋ० १०।६९॥
८. ऋ० १०।८५॥ ९. ऋ० १०।९१॥ १०. ऋ० १०।१००॥
११. छास इत्या चास्मिन् । चत्वारिंशछास इत्थेति चास्मिन्नृग्वेदाते द्वादशकोऽनुवाकाः ।
१२. ऋ० १०।११३॥ १३. ऋ० १०।१२९॥ १४. ऋ० १०।१५२॥
१५. आद्यं । १६. ०तिरिह्यनुवाका अंतः ।
१७. यत्…अतः परं मण्डलचतुष्कं । १८. 'च' इत्यधिकम् ।

एकनवत्यधिकशतं सूक्तानि भवन्तीत्यर्थः । द्वितीयं त्रिचत्वारिंशत्सूक्तम् । द्वे सूक्ते । द्व्यधिकषष्टिरिति यावत् ॥३३॥

अष्टापञ्चाशदपि यच्चतुर्थं सप्ताधिकाशीतिरतः परं स्यात् ।
पञ्चाधिका सप्ततिरुत्तरं तु चत्वारि वासिष्ठमथो शतं च ॥३४॥

अपि तु यच्चतुर्थं तत्राष्टाधिकपञ्चाशत्[1] सूक्तानीत्याहुः । अतः परं स्यात् । अतः पञ्चमं मण्डलम् । पञ्चधिका सप्ततिरुत्तरं तु । उत्तरं षष्ठम् । वासिष्ठं सप्तमं मण्डलं चतुरधिकं शतं सूक्तम् ॥३४॥

द्वे चैव सूक्ते नवतिं च विद्यादथाष्टमं नवमं वै शतं स्यात्[2] ।
चतुर्दश त्वाहुरथाधिकान्यप्याद्ये[3] यदुक्तं दशमे तथैव ॥३५॥

अष्टमम् । द्विनवतिः[4] सूक्तानि यानि । नवमं मण्डलं शतं भवेत् । अथ[5] यानि चतुर्दश सूक्तानि[6] चात्राहुश्चतुर्दशाधिकशतं भवेदित्याहुरित्यर्थः अथाधिकानीति[7] ।

वष्टि भागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोः[8] ।

चतुर्दश त्वाहुरथाधिकानीत्यन्ये[9] पठन्ति । एकनवत्यधिकशतं सूक्तानि वदन्ति दशमे मण्डल इत्यर्थः ॥३५॥

अथ सर्वमण्डलसूक्तसंख्यामाह—

एतत् सहस्रं दश सप्त चैवाष्टावतो बाष्कलकेऽधिकानि[10] ।
तान् पारणे शाकले शैशिरीये[11] वदन्ति शिष्टा न खिलेषु विप्राः[12] ॥३६॥

एतत् सूक्तजालं सप्तदशाधिकं सहस्रं सूक्तानि । बाष्कलके[13] संहितापाठेऽतः[14] शाकलादधिकान्यष्टौ सूक्तानि पञ्चविंशत्यधिकसहस्रमित्यर्थः[15] । खिलेष्वनुवाका[16]

---

१. ०र्थात् । अष्ट० । ०र्थं तत् अष्ट ।
२. एतदन्तोऽर्धतृतीयः श्लोकस्त्यक्तः क्वचित् । ३. कानि त्वाद्ये ।
४. '०ति' इति कोशेषु । ५. अथो । इदं पदं त्यक्तमन्यत्र ।
६. शतानि । ७. 'अथो यानीति' इति कोशेषु ।
८. ०ल्लोपयमवास्योरु० ।
९. अन्येषां मते 'अपि' इति पदं त्यक्तं स्यादिति मैक्डानलः (टिप्पणी पृ० १९५) ।
१०. बाष्कलकोऽधिकारे । बाष्कलाधिकारो ।
११. पारण्ये शाकले शैशीरीय । तान् पारणे शाकले शैशिरे तु ।
१२. 'शैशिरीया वदंति शिष्टानखिलेषु विप्रा इति पठन्त्यन्ये' इति षड्गुरुशिष्यः ।
१३. बाष्कले । १४. ०पाठके० ।
१५. द्र०—मैक्समूलरकृत-प्राचीनसंस्कृतवाङ्मये—पृ०१९५(चौ०सं०) । १६. ०के ।

नेत्युक्तम्[1]। तद्वैस्पष्टयाय[2] पुनराह। तानुक्तानुवाकान्[3] शाकले शैशिरीये पारायणे वेदपारतीरकर्मसमाप्तौ। करणे ल्युट्। अन्नादिमोक्षान्तफलपारप्राप्तिहेतौ। शिशिर-शब्दाद् गहादिछात्[4] प्रोक्तायण्[5] स्वार्थे[6]। शिष्टाः परमहर्षयो[7] विप्रा मेधाविनः। शिष्टा अनुवाकान्[8] अस्मिन्न् शाकल एव वदन्ति न खिलेष्वित्यर्थः। अतः खिलानामनुवाको नोक्त इति भावः। तान् पारणे शाकले शैशिरीया वदन्ति शिष्टा न खिलेषु विप्रा इति पठन्त्यन्ये[9] ॥३६॥

सर्वमण्डलमिलितानुवाकसंख्यामाह—

पञ्चाशीतिर्दाशतये[10]ऽनुवाका दृष्टाः पुराणैर्ऋषिभिर्महात्मभिः।
यस्तानृग्विद्वेद चैवाप्यधीते स नाकपृष्ठं भजते ह[11] शश्वत् ॥३७॥

दाशतये[12]। दशमण्डलयोगिनि[13] वेदे। संख्याया अवयवे तयप्[14]। ततः स्वार्थेऽण्। ऋग्वित्। ऋगर्थवित्। वेदतोऽधीते सः। वेदिताऽध्येता च। नाकपृष्ठं स्वर्गम्। शश्वत् सदा। भजते भजेत। लिङर्थे लट्। ह प्रसिद्धौ। इतोऽमुं लोकमेत्य तस्मान्न च्यवते[15] हीत्यर्थः ॥३७॥

अध्यायानां चतुःषष्टिर्मण्डलानि दशैव तु।
वर्गाणां तु सहस्रे द्वे संख्याते च षळुत्तरे ॥३८॥

वर्गाः षडधिकद्विसहस्रमित्यर्थः ॥३८॥

सहस्रमेतत् सूक्तानां निश्चितं खैलिकैर्विना।
दश सप्त च पठ्यन्ते संख्यातं वै पदक्रमम् ॥३९॥

खिलरहितसूक्तानि सप्तदशाधिकसहस्रम्। संख्यातम्। पुरा महर्षिभिरिति शेषः। वयमपि तच्छाकल्यदृष्ट इत्यादिना[16] वक्ष्यामः ॥३९॥

एकच एकवर्गः[17] स्यादेकश्च नवकस्तथा।
द्वौ वर्गौ तु[18] द्वृचौ ज्ञेयौ त्र्यूनं तृचशतं स्मृतम् ॥४०॥

---

१. श्लोक १७। २. ०ष्टाय। ३. तानुवाकान्। तानुक्तानुवाकानां।
४. '०शब्दानुग्रहादिछान्' इति कोशेषु। तु०—अष्टा० ४।२।१३६॥
५. प्रोक्ता यण्। तु०—अष्टा० ४।३।१०१॥ ६. 'स्वार्थो' इति कोशेषु।
७. शिष्टा महर्षयः। ८. शिष्टाः अनुवाकाः। शिष्टानुवाका।
९. ०न्ये पठन्ति। १०. दाशतय्ये। ११. भजेतेह।
१२. '०तय्ये' इति कोशेषु।
१३. ०गीन। १४. अष्टा० ५।२।४२॥ १५. प्रच्यवते।
१६. 'दृष्टेत्या०' इति कोशेषु। द्र०—श्लोक ४५। १७. '०र्गं स्यात्' इति कोशेषु।
१८. 'तु' इति पदं त्यक्तं क्वचित्।

एकर्चः । जातवेदसे[1] । नवर्चं एको वर्गः । आपो हि ष्ठा मयोभुवः[2] । द्व्यृचौ । अग्ने त्वं नो अन्तमः[3] । आ याहि वनसा सह[4] । तृचवर्गाः सप्तनवतिः । उत त्यं चमसं नवम्[5] इत्यादि ॥४०॥

चतुष्कं शतमेकं च चत्वारः सप्ततिस्तथा ।
पञ्चकानां सहस्रं तु द्वे च सप्तोत्तरे शते[6] ॥४१॥

चतुर्ऋचवर्गजातं[7] चतुःसप्तत्यधिकशतम् । यदङ्ग दाशुषे त्वम्[8] इत्यादि । सप्ताधिकशतद्वयसहस्रं पञ्चका वर्गाः अग्निमीळे[9] इत्यादि ॥४१॥

त्रीणि शतानि षट्कानां चत्वारिंशत् षट् च[10] वर्गाः ।
शतमूनविंशतिः[11] सप्तकानां न्यूना[12] षष्टिरष्टकानाम् ॥४२॥

अश्विना यज्वरीरिष[13] इत्यादि । सप्तकानाम् । एकोनविंशत्यधिकशतं सप्तर्चाः । यच्चिद्धि सत्य सोमपा[14] इत्यादि । एकोनषष्टिरष्टकवर्गाः[15] । ऊना षष्ठिरष्टकानामित्यन्ये पठन्ति । इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्नित्यादि[16] ॥४२॥

ऋचां दश सहस्राणि ऋचां पञ्च शतानि च ।
ऋचामशीतिः पादश्च पारणं संप्रकीर्तितम्[17] ॥४३॥

सहस्राण्यृचामिति सम्बन्धानुकरणं छन्दोऽनुवाकानुकरणं पारणं वेदसमापनकर्मर्षिभिः सम्प्रकीर्तितम् । पादश्च भद्रं न[18] इति ॥४३॥

अर्धर्चानां सहस्राणामेकविंशतिकं तथा ।
शतद्वयं तु द्वात्रिंशत् सपादं मुनिभिः पुरा ॥४४॥

मुनिभिः पुरा । दृष्टमिति शेषः । द्वात्रिंशदधिकशतद्वयाधिकमेकविंशतिसहस्रमर्धर्चाः पादश्चैक इत्यर्थः ॥४४॥

शाकल्यदृष्टे पदलक्षमेकं सार्धं च[19] वेदे त्रिसहस्रयुक्तम् ।
शतानि चाष्टौ दशकद्वय च पदानि षट् चेति[20] हि[21] चर्चितानि ॥४५॥

---

१. ऋ० १।९९॥ २. ऋ० १०।९॥
३. ऋ० ५।२४॥ ४. ऋ० १०।१७२॥ ५. ऋ० १।२०६॥
६. 'शते' इति त्यक्तं क्वचित् । ७. चतुर्धा च । ८. ऋ० १।१।६॥
९. ऋ० १।१॥ १०. षट्कवर्गाः । षट्कवर्गः । चत्वारिंशश्चट्कवर्गाः ।
११. शतमूनं विंशतिः । शतमूनविंशकं । १२. न्यूनं द्विषष्टिर० ।
१३. ऋ० १।३॥ १४. १।२९॥ १५. अष्टवर्गाः ।
१६. ऋ० १।११॥ १७. पादश्चैतत् पारायणमुच्यते । १८. ऋ०१०।२०।१॥
१९. 'च' इति त्यक्तं क्वचित् । २०. चर्चे दश ।
२१. च । अन्यत्र 'हि' रहितः पाठः कोशेषु ।

शाकल्यदृष्टे वेदे चर्चितान्यभ्यस्तान्यधीतानि पदानि षड्विंशत्यधिकाष्टशत युक्तत्रिसहस्राधिकपञ्चाशत्सहस्राधिकशतसहस्रमित्यर्थः ॥४५॥

अथ क्रमसंख्यामाह—

एकं च शतसहस्रं दश च सहस्राणि सप्त[1] शतानि चर्चापदानि
ज्ञेयानि पदानि चान्यानि चत्वारि । चत्वारि वाव[2] शत-
सहस्राणि द्वात्रिंशच्चाक्षरसहस्राणि द्वात्रिंशच्चाक्षरसहस्राणि ॥४६॥

॥ इत्यनुवाकानुक्रमणी समाप्ता ॥

चर्चापदानि क्रमरूपेणाभ्यस्तानि पदानीत्यर्थः। चतुरधिकसप्तशतदशसहस्राधिकलक्षं क्रमसंख्येत्यर्थः। वावेति खल्वित्यर्थः[3]। द्वात्रिंशत्सहस्राधिकचतुर्लक्षमक्षराणीत्यर्थः। द्विरुक्तिः समाप्तिज्ञापनार्था। एष वा ऋग् एष वा अर्धर्च एष वै पदम्[4] एष वा अक्षरमित्यादि[5] सर्वेषां ब्रह्मरूपत्वेनोक्तेरारण्यके[6]। अत्रापि सर्वं सम्यक् संख्यातं भगवता शौनकेन बह्वृचसिंहेन वेदितव्यम् ॥४६॥

॥ इति षड्गुरुशिष्यविरचितानुवाकानुक्रमणीवृत्तिः समाप्ता ॥

---

१. 'च' इत्यधिकं क्वचित्।

२. वाच। च। चत्वारिंशत्सहस्राणि। 'वाव' इति त्यक्तमन्यत्र।

३. वसि खल्वित्यर्थः। सि खल्वित्यर्थः। 'वावेति पाठेऽपि स एवार्थः' इत्यधिकः पाठः कोशेषु। ४. पाद। ५. ऐत० आ० २।२।२।७-१०॥ ६. अत्य०।

अथ छन्दःसंख्या

एकपञ्चाशद् ऋग्वेदे गायत्र्यः शाकलेयके ।
सहस्रद्वितयं चैव[1] चत्वार्येव शतानि तु ॥१॥
त्रीणि शतानि सैकानि चत्वारिंशत् तथोष्णिहः ।
अनुष्टुभां शतान्यष्टौ पञ्चाशत् पञ्चसंयुता ॥२॥
बृहतीनां शतं ज्ञेयमेकाशीत्यधिकं बुधैः ।
शतानि त्रीणि पङ्क्तीनां द्वादशाभ्यधिकानि तु ॥३॥
पञ्चाशत् त्रिष्टुभः प्रोक्तास्तिस्रश्चैव ततोऽधिकाः ।
सहस्राण्येव चत्वारि विज्ञेयं तु शतद्वयम् ॥४॥
चत्वारिंशत् तथाष्टौ च तथा चापि शतत्रयम् ।
जगतीनामियं संख्या सहस्रं तु प्रकीर्तितम् ॥५॥
दशैवातिजगत्योऽपि तथा सप्त न संशयः ।
शक्वर्योऽपि तथैवोक्तास्तथा नव विचक्षणैः[2] ॥६॥
नव चैवातिशक्वर्यः षडष्टयः प्रकीर्तिताः[3] ।
अशीतिश्च चतस्रश्च[4] तथात्यष्टिऋचः[5] स्मृताः ॥७॥
धृतिद्वयं[6] विनिर्दिष्टमेकातिधृतिरेव च ।
एकपदास्तु षट् प्रोक्ता द्विपदा दश सप्त च ॥८॥
प्रगाथा बार्हता येऽत्र तेषां शतमुदाहृतम् ।
चतुर्नवतिरेवोक्तास्तद्वद्[7] द्वृचास्त्वसंशयः ॥९॥
काकुभानां तु पञ्चाशद् विज्ञेया पञ्चसंयुक्ता ।
महाबार्हत एवैक एवं सार्धं शतद्वयम् ॥१०॥
एवं दश सहस्राणि शतानां तु चतुष्टयम् ।
ऋचां द्व्यधिकमाख्यातमृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥११॥

॥ इति छन्दःसंख्या समाप्ता ॥

---

१. वैव । २. नवति च चक्षणैः । ३. षडष्टयः परिकीर्तिताः ।
४. अशीतिश्चतस्रश्च । अशीतिश्च तस्रश्च । ५. ०ष्टिऋचः ।
६. धृतिर्द्वयं । ७. द्वर्णा० ।

प्रथमं परिशिष्टम्

मैक्समूलरोद्धृताः षड्गुरुशिष्यकृतवेदार्थदीपिकोपोद्घातश्लोकाः

[द्र०—ए हिस्ट्री आफ एंश्येंट संस्कृत लिटरेचर, पृ० २१०-२१२; चौखम्बासंस्करणे]

भरद्वाजसुतो जज्ञे शुनहोत्रो महामुनिः ।
शौनहोत्रस्तस्य जज्ञे सर्वलोकस्य पश्यतः ॥
इन्द्रो जगाम प्रीत्यर्थमृषेर्यज्ञमपि स्वयम् ।
इन्द्रमेकाकिनं मत्वा जिघृक्षन्तो महासुराः ॥
परिवव्रुर्यज्ञवाटं तदिन्द्रोऽप्यन्वबुध्यत ।[1]
इन्द्रोऽपि यजमानस्य वेषमास्थाय[2] निर्गतः ॥
यजमानं पुनर्दृष्ट्वा जगृहुस्ते महासुराः ।
शौनहोत्रमिन्द्रबुद्ध्या यजनीयं ददर्श सः ॥
नाहमिन्द्रः स एवाज्ञा नाहमित्यनुवर्णयन् ।
मुक्तस्तैरसुरैरिन्द्र आहूयैवमुवाच ह ॥
गृणन् मादयसे यस्मात्तस्माद् गृत्समद[3] ऋषे ।
इन्द्रस्येन्द्रियमित्येतन्नाम्ना[4] सूक्तं भविष्यति ॥
त्वं तु भूत्वा भृगुकुले शुनकाच्छौनको भव ।
एतत्सूक्तयुतं पश्य द्वितीयं मण्डलं पुनः ॥
स इन्द्रचोदितो जातः पुनर्गृत्समदो मुनिः ।
सजनीययुतं[5] यो वै द्वितीयं मण्डलं महत् ।
ददर्श यस्मै चाचष्टे[6] सत्रे द्वादशवार्षिके ।
वेदव्यासप्रसादेन रोमहर्षणनन्दनः ।
उग्रश्रवा व्यासशिष्यः कर्ममध्ये महर्षये ।
महाभारतमाख्यानं हरिवंशकथान्वितम् ॥
वेदव्यासैकविज्ञेयं[7] महागुणगणान्वितम् ।

---

१. 'अवबुध्यत' इति पाठान्तरम् । २. 'वेषं' इति पा० । वेशम् ?
३. 'गृत्समदो' इति पा० । ४. '०त नाम्ना' इति पा० ।
५. ऋ० २।१२॥ तत्र 'स जनास इन्द्रः' इत्यभ्यस्यते । ६. 'वाचस्ते' इति पा० ।
७. '०से क०' इति पा० ।

हरिप्रियं श्रुतिसुखं कर्ममध्ये महर्द्धिमत् ॥
आसीद् गृहपतिर्यो वै नैमिषारण्यवासिनाम् ।
शतानीकाय राज्ञे यो जनमेजयसूनवे ॥
उपानयद् विष्णुधर्मान्[१] साक्षात्कारकरान्[२] हरेः ।
स शौनको मुनिगतो[३] श्रूयमाणो महायशाः ॥
द्वितीयं मण्डलं दृष्ट्वा[४] श्रुतभारतसंहितः[५] ।
संसाराब्धिमहापोतविष्णुधर्मप्रवर्त्तकः ॥
एकविंशतिशाखस्य[६] वह्वृचस्य महर्षिभिः ।
काल्पितः[७] कल्पितारोऽभूद् ऋग्वेद इव पारगः ॥
शाकलस्य संहितैका वाष्कलस्य तथापरा ।
ते संहिते समाश्रित्य ब्राह्मणान्येकविंशतिः ॥
ऐतरेयकमाश्रित्य तदेवान्यैः प्रपूरयन् ।
कल्पसूत्रञ्चकाराद्यं[८] महर्षिगणपूजितः[९] ॥
शौनकस्य तु शिष्योऽभूद् भगवान् आश्वलायनः ।
स तस्माच्छ्रुतसर्वज्ञः सूत्रं कृत्वा न्यवेदयत्[१०] ।
प्रवोधपरिशुद्धयर्थं शौनकस्य प्रियं त्विति ।
सहस्रखण्ड स्वकृतं सूत्रं ब्राह्मणसन्निभम् ॥
शिष्याश्वलायनप्रीत्यै शौनकेन विपाटितम् ।
उक्तं तत्तत्कृतं सूत्रमस्य वेदस्य चास्त्विति ॥
शौनकीया दश ग्रन्थास्तदा ऋग्वेदगुप्तये ।
आर्ष्यनुक्रमणीत्याद्या छान्दसी दैवती तथा ॥
अनुवाकानुक्रमणी सूक्तानुक्रमणी तथा ।
ऋक्पादयोर्विधाने च[११] बार्हद्दैवतमेव च ॥
प्रातिशाख्यं शौनकीयं स्मार्तं दशममुच्यते ।
स सूत्रदशकं ज्ञात्वा तथा[१२] साकृतगोत्रज्ञः[१३] ॥
शौनकस्य प्रसादेन कर्मज्ञः समपद्यत ।

---

१. '०द्धि धर्मात्' '०द्वृ धर्मान्' इति पा० ।
२. '०कराम्' इति पा० ।
३. ?
४. 'दृष्टा' इति पा० ।
५. '०हिता' इति पा० ।
६. '०खास्य' इति पा० ।
७. '०नः' इति पा० ।
८. '०द्य' इति पा० ।
९. '०गुण०' इति पा० ।
१०. '०यन्' इति पा० ।
११. 'न' इति पा० ।
१२. 'त्वया' इति पा० ।
१३. '०त्रजः' '०त्रज' इति पा० ।

कात्यायनमुनिर्मेने त्रयोदशकमत्र तु ॥
शौनकीयं च दशकं तच्छिष्यस्य त्रिकं तथा ।
द्वादशाध्यायकं सूत्रं चतुष्कगृह्यमेव[1] च ।
चतुर्थारण्यकं चेति ह्याश्वलायनसूत्रकम् ॥
सशिष्यशौनकाचार्यत्रयोदशकविन्मुनिः ॥
वाजिनां सूत्रकृत् साम्नामुपग्रन्थस्य कारकः ।
स्मृतेश्च कर्त्ता श्लोकानां भ्राजमानां च[2] कारकः ॥
अथर्वणां निर्ममे यः सम्यग् वै ब्राह्मकारिकाः ।
महावार्त्तिकनौकारः पाणिनीयमहार्णवे ॥
यत्प्रणीतानि वाक्यानि भगवाँस्तु पतञ्जलिः[3] ।
व्याख्यच्छान्तनवीयेन[4] महाभाष्येन[5] हर्षितः ॥
योगाचार्यः स्वय कर्ता योगशास्त्रनिदानयोः ।
एवङ्गुणगणैर्युक्तः कात्यायनमहामुनिः ॥
तपोयोगान्निर्ममे यः सर्वानुक्रमणीमिमाम् ।
सशिष्यशौनकाचार्यसर्वग्रन्थार्थवर्त्तनात् ॥
प्राहुर्बह्वृच्सिंहास्तु सर्वानुक्रमणीमिमाम् ।
... ... ॥

———

१. 'चातुष्क०' इति पा० । २. पार्षदस्य ?
३. 'तदञ्जलिः' इति पा० । ४. '०छान्तयवीयेत' '०छान्तपनीयेव' इति पा० ।
५. '०भाष्येण' '०भाग्येन' वा ?

द्वितीयं परिशिष्टम्

सर्वानुक्रमणी-परिभाषाप्रकरणस्थ (३-११) वेदार्थदीपिकायां षड्गुरुशिष्योद्धृतानां छन्दउदाहरणभूतानां

मन्त्राणां सूची

ऋग्वेदस्य

१।१।१	गायत्री	४।१
१।२	गायत्री निचृत्	३।४
१।८	विराड् गायत्री	३।५
७।४	(पूर्वरूपव्यूहः)	३।६
१०।१.	अनुष्टुप्	६।१
११।१	अनुष्टुप्	६।१
१७।४	गायत्री पादनिचृत्	४।४
२३।१९	पुरउष्णिक्	५।२
३५।९	जगती निचृत्	३।५
४०।१	बृहती	७।१
४७।१	बृहती	११।२
४७।२	सतोबृहती	११।२
५७।४	जगती	९।८
८०।१	पङ्क्तिः	८।१
८१।१	पङ्क्तिः	८।१
८९।६	विराट्स्थाना	९।५
९४।१	जगती	१०।१
९४।२	जगती	९।२
१०५।८	यवमध्या	९।१०
१२०।२	भुरिग् गायत्री	३।४
१२०।३	काविराट्	६।५
१२०।४	नष्टरूपा	६।६
१।१२०।५	तनुशिरा	५।५
.१२०।७	विष्टारबृहती	७।५
१२०।८	कृत्यनुष्टुप्	६।३
१२०।९	विराड् अनुष्टुप्	६।८
१२२।५	विराड्रूपा	९।६
१२२।६	विराड्रूपा	९।६
१२७।१	अत्यष्टिः	११।६
१२७।६	अतिघृतिः	११।६
१३३।६	घृतिः	११।६
१६२।६	त्रिष्टुप्	९।३
१६२।१२	त्रिष्टुप्	९।२
१७५।१	न्यङ्कुशिरा, स्कन्धोग्रीवो वा, उरोबृहती वा	७।३
१८७।१	अनुष्टुब्गर्भा	५।७
१८७।११	बृहती	७।९
१९१।१०	महापङ्क्तिः	१०।३
१९१।१३	महाबृहती	९।९
२।७।६	(यकारव्यूहः)	३।६
११।१	विराट्स्थाना	९।५
२२।१	अष्टिः	११।६
२२।३	अतिशक्वरी	११।६

१०।२३।५	अभिसारिणी त्रिष्टुप्	६।४	१३३।१	शक्वरी	११।६
२६।४	उष्णिक्	५।८	१३४।१	महापङ्क्तिः	१०।३
५६।६	महापङ्क्तिः	१०।३	१४०।१	विष्टारपङ्क्तिः	८।६
१०३।६	(पूर्वरूपव्यूहः)	३।६	१४०।६	उपरिष्टाज्ज्योतिः	६।८
१०५।२	उष्णिक् पिपीलिकमध्या	५।६	१५७।१	द्विपदा	८।८
११७।७	(सवर्णदीर्घव्यूहः)	३।६	१७२।१	द्विपदा	८।८
१२६।१	उपरिष्टाद्बृहती	७।४	१७२।३	संस्तारपङ्क्तिः	८।८

वाजसनेयिसंहितायाः

३।६	अत्युक्तम्	११।६	२१।४३	उत्कृतिः	११।६
८।१०	प्रतिष्ठा	११।६	३१।४२	विकृतिः	११।६
१६।८२	मध्येज्योतिः	६।८	५८	अभिकृतिः	११।६

तैत्तिरीयब्राह्मणस्य

३।५।६।१	संकृतिः	११।६

तैत्तिरीयारण्यकस्य

४।२१।१	कृतिः	११।६	४।४४।३२	आकृतिः	११।६

तृतीयं परिशिष्टम्

षड्गुरुशिष्योद्धृतानां ग्रन्थानां ग्रन्थकाराणां च सूची

[उद्धृतसंदर्भाः कोष्ठकेषु संख्यायन्ते पुरतः, ततो मण्डलसूक्तसंख्यया वेदार्थदीपिका निर्दिश्यते । परि०=कात्यायनसर्वानुक्रमणीवेदार्थदीपिका-परिभाषाप्रकरणम् । अनु०=अनुवाकानुक्रमणीवृत्तिः]

अनुक्रमण्यः

१. अनुवाकानुक्रमणी

(श्लोक ३२) ८। उपोद्घाते

१०। उपोद्घाते

(श्लोक ४३-४४) १०।२०

२. आर्षानुक्रमणी

१।२४,९९,१००,१०५; २।१;

३।३१,३६,३८; ५।१,१८;

ब्राह्मणानि

भगवद्गीता

मनुः

महाभारतम्

संहिताः

२. तैत्तिरीया

(२।२।२।३) ४।३
(२।६।६।१) १०।५०

३. वाजसनेयी

(३।९) परि० १।१६
(८।१०) परि० १।१६
(१६।५३-५४) परि० २।१३
(१९।८२) परि० ६।८
(२१।४२) परि० १।१६
(२१।४३,५८) परि० १।१६
(३६।२४) परि० १।१६

४. सामवेदीया

(१।१।२।२।७) ४।३
(१।५।१।२।६) ४।३
(२।३।१।२२।१) परि० ३।५

सूत्राणि

१. पिङ्गलछन्दःसूत्रम्

(३।४-६) परि० ३।१०
(३।११) परि० ४।५
(३।२६) परि० ८।३
(३।३३) परि० ७।९
(३।५२-५४) परि० ६।८
(४।१-४) परि० १।१६
(अन्त्यसूत्रम्) १०।१९१

परि० १।१६ उद्धृतसंदर्भस्य कश्चिदंशः सांप्रतिकपिङ्गलछन्दःसूत्रे नोपलभ्यते ।

२. आश्वलायनगृह्यसूत्रम्

(१।५।४) १।९०
(१।१५।३) ३।३६
(२।३।४) १०।३४
(३।२।८) अनु० १०
(३।४।४-५) अनु० ८
(३।६।३-४) १०।१६१
(३।७।७) १०।१६५
(३।१०।७-८) १०।१८५
(३।१०।९) २।४३
(३।१२।१७) ६।४७
(४।८।४३-४४) १०।१९१

३. आश्वलायनश्रौतसूत्रम्

(१।१२।१३) परि० ३।६
(२।८।७) १।१२९
(२।१३।७) १।७९
(२।१४।११-१२) १०।१२१
(२।१७।१४) ७।१००
(२।१७।१५) १०।१२१
(३।१।१०-११) ३।८
(३।२।५) १।१३
(३।२।८) अनु० १०
(३।८।१) ७।१००; १०।१२१
(३।१३।१३-१४) ७।१००
(४।६।३) १०।१८३
(४।९।४) २।४१
(४।१०।६) ७।१००
(४।१३।७) ६।४४
(४।१५।२) ५।७६
(५।८।१) १।१५
(५।१०।८०) १।१३९
(५।१६।२) ३।३६
(५।१७।१) ७।५१
(६।२।९) परि० ५।८
(६।५।१७-१८) १।५०
(७।६।२-३) २।४१
(८।१।८) २।३७
(८।७।२४) परि० ८।८; १।१३९
(८।८।४) ७।१
(८।८।५) ७।३४; ७।५६

(८।९।५)	२।४१	(१०।८।५)	१।१६२
(८।१०।५)	१।१३९	(१०।८।७)	१।१६२
(८।९।१)	७।९०	(१२।१०।८)	९।५
(८।१२।२४)	१।६५	(१२।१५।१२-१३)	१०।१९१

चतुर्थं परिशिष्टम्

षड्गुरुशिष्यवर्णितानाम् इतिहासानां सूची

(मण्डलसूक्तसंख्यया निर्देशः)

अगस्त्यो[1] मैत्रावरुणिः १।१६६
अपाला (त्वग्दोषरहिता विहितेन्द्रेण) ८।९१
आसङ्गस्तत्पत्नी च शश्वती (लिङ्गपरिवर्त्तनम्) ८।१
उर्वशी[1] मैत्रावरुणौ च १।१६६; उर्वशी पुरूरवा ऐलश्च १०।९५
कक्षीवान् दैर्घतमस उशिक्प्रसूतः १।११६
गाथी[1] (इन्द्रः) कुशिकस्यैषीरथेः पुत्रः, पिता च विश्वामित्रस्य ३। उपोद्घाते
गौपायनाः[1] पुरोहिता असमाते राज्ञः १०।५७-६०
पायुर्भारद्वाजः पारशिखान् चायमान-प्रस्तोकाभ्यां जापयति ६।७५
प्रगाथो[1] घौरो ज्योष्ठभ्रातुः कण्वस्य पुत्रत्वं प्राप्तः ८।१
मरुतो दैत्या रुद्रपुत्रत्वं प्राप्ताः २।३३
वसिष्ठो[1] मैत्रावरुणिः १।१६६
वसुक्र[1] ऐन्द्रस्तत्पत्नी चेन्द्रेण सह संवदेते १०।२८
वाक् ससर्परी विश्वामित्रश्च ३।५३
वामदेवो गर्भस्थ इन्द्रादितिभ्यां सह संवदते ४।१८
विकुण्ठासुरी[1] सम्पन्नेन्द्रस्य माता १०।४७
विश्वामित्रो वाक् च ३।५३
शक्तिर्वासिष्ठो[1] विश्वामित्रप्रयुक्तरक्षोभिर्दग्धः ७।३२

---

१. सर्वानुक्रमण्यामपि संक्षेपतो वर्णितः।

शुनःशेप आजीगर्त्तिर्देवैर्यूपान् मोचितो हरिश्चन्द्रं राजानं गतरोगं विधाय विश्वामित्रपुत्रत्वं प्राप्तः १।२४

श्यावाश्वोऽर्चनानसः पुत्रो राज्ञो रथवीतेः कन्यां लब्धवान् ५।६१

सरमा[1] बृहस्पतिगा अन्वेषयति १०।१०८

सव्यः[1] (इन्द्रः) अङ्गिरसः पुत्रोऽजायत १।५१

सुहोत्र-शुनहोत्र-नर-गर्ग-ऋजिश्वानः[1] पञ्च भारद्वाजाः, भरद्वाजो बार्हस्पत्यो भरतेन गृहीतो दत्तपुत्रविधिना ६।५२

सौचीकोऽग्निः[1] १०।५०

पञ्चमं परिशिष्टम्

सर्वानुक्रमणी निर्दिष्ट-सूक्तप्रतीक-सूची

(मण्डलसूक्तसंख्यया निर्देशः)

अक्षीभ्याम् १०।१६३

अगन्म ७।१२

अग्न आ ८।६०

अग्न ओजिष्ठम् ५।१०

अग्ना यः ६।१४

अग्निम् (ईळे) १।१; (दूतम्) १।१२; (होतारम्) १।१२७; (नरः) ७।१; (हिन्वन्तु) १०।१५६

अग्निं वः ७।३

अग्निं स्तोमेन ५।१४

अग्निं होतारम् ३।१९

अग्निः सप्तिम् १०।८०

अग्निना ८।३५

अग्निं तम् ५।६

अग्निम् अस्तोषि ८।३९

अग्निम् उषसम् ३।२०

अग्निरिन्द्रः १०।६५

अग्निरुक्थे ८।२७

अग्निर्होता (पुरोहितः) ३।११; (नः) ४।१५

अग्नीषोमौ १।९३

अग्ने (विवस्वत) १।४४; (सहन्तम्) ५।२३; (पावक) ५।२६; (सुतस्य) ५।५१; (शर्धन्तम्) ५।५६; (स) ६।३

अग्ने अच्छा १०।१४१

अग्ने जुषस्व ३।२८

अग्ने तमद्य ४।१०

अग्ने तव १०।१४०

अग्ने त्वम् ५।२४

अग्ने दिवः ३।२५

---

१. सर्वानुक्रमण्यामपि संक्षेपतो वर्णितः ।

अया वीती ९।६१
अया सोमः ९।४७
अरण्यानि १०।१४६
अरायि १०।१५३
अर्चन्तः ५।१३
अर्वाक् ६।३७
अविता ८।३६
अश्वम् १।२७
अश्वावति १।८३
अश्विना १।३
अश्विनौ ५।७८
असत् सु १०।२७
असर्जि (रथ्यः) ९।३६; (वक्वा) ९।९१
असावि (सोम) १।८४; (देवम्) ७।२१; (सोमः) ९।८२; (सोमः पुरुहूत) १०।१०४
असृग्रन् ९।४६
असृग्रम् ९।७
अस्तभ्नात् ८।४२
अस्तीदम् ३।२९
अस्तु श्रौषट् १।१३९
अस्तेव १०।४२
अस्मा इदु १।६१
अस्मै ८।९६
अस्मा ऊ षु ८।४१
अस्माकम् २।३१
अस्मिन् नः १०।३८
अस्य १।१६४
अस्य प्रत्नाम् ९।५४
अस्य प्रेषा ९।९७
अस्य मे २।३२
अहम् १०।१२५

अहं दाम् १०।४९
अहं भुवम् १०।४८
अहं मनुः ४।२६
अहश्च ६।९
अहेळमानः ६।४१
आ गन्ता ८।२०
आ गावः ६।२८
आ गोमता ७।७२
आग्निं न १०।२१
आ घ ८।४५
आ चर्षणिप्राः १।१७७
आ चिकितान ५।६६
आ जनम् १०।६०
आ तु १।५
आ तू नः (इन्द्र) ३।४१; (इन्द्र वृत्रहन्) ४।३२, (इन्द्र क्षुमन्तम्) ८।८१
आ ते (पितर्) २।३३; (मनः) ७।२५
आ त्वा (वहन्तु) १।१६; (जुवः) १।१३४; (रथम्) ८।६८; (गिरः) ८।९५; (अहर्षम्) १०।१७३
आ दक्षिणा ९।७१
आदित्यानाम् ७।५१
आदित्यासः ७।५२
आ देवः ७।४५
आ धेनवः ५।४३
आ नः (भद्राः) १।८९; (इळाभिः) १।१८६; (इन्द्रः) ४।२०; (गन्तम्) ५।७१; (देव) ७।३०; (विश्वाभिः) ८।८; (देवानाम्) १०।३१
आ नः पवस्व ९।३५

षष्ठं परिशिष्टम्

सर्वानुक्रमण्यनुवाकानुक्रमणीवेदार्थदीपिकासु प्रयुक्तानां विशिष्टपदानां सूची

[मण्डलसूक्तसंख्याया निर्देशः । अनु० = अनुवाकानुक्रमणी । परि० = सर्वानुक्रमणीपरिभाषाप्रकरणम् । पदस्य वेदार्थदीपिकामात्रवर्त्तमानत्वं सूक्ष्ममुद्रणाक्षरैः संकेत्यते । उद्धृतसन्दर्भस्थपदम् उद्धरणचिह्नाभ्यां निर्दिश्यते । आख्यातपदानां यथाप्रयुक्तरूपाण्यत्रानुक्रम्यन्ते, सुबन्तानां तु प्रायः प्रातिपदिकरूपाणि । ऋषिदेवताछन्दोनामानीह न संकल्यन्ते, सातवलेकरादिभिः प्रदर्शितत्वात् ।]

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सप्तमं परिशिष्टम्

ऋग्वेदस्य ऋक्संख्या

[लेखकः—पं० श्री युधिष्ठिरो मीमांसकः]

सुविदितमेवैतद् वैदिकवाङ्मयजुषां यदासन् कदाचिदृग्वेदस्यैकविंशतिः संहिताः। तासु सम्प्रत्येकैव संहिता समुपलभ्यते। प्राचीनपरम्परासंरक्षकाणां भारतीयविदुषां जागरूकप्रयत्नेन अतिप्राचीनकालादियमविकृतैवोपलभ्यते। तत्रोपसार्धदशसहस्रर्क्परिमाणायां संहितायां नैकोऽपि वर्णो विकृतिं प्राप, ऋचां नैयूनाधिक्यस्य तु का कथा? एवं परमप्रयत्नेन संरक्षितायामप्यृक्संहितायां तदृक्परिमाणे प्राचीना अर्वाचीनाश्च प्रायेण सर्वेऽपि वैदिकवाङ्मयविदो मिथो विप्रवदन्ते। तथाहि—

शौनकोऽनुवाकानुक्रमण्यां १०५८० ऋचः पादश्चैकः; छन्दःसंख्यापरिशिष्टकारः १०४०२ ऋचः; सर्वानुक्रमणीटीकाकारो जगन्नाथः १०५५२ ऋचः; चरणव्यूहव्याख्याता महिदासो बालखिल्यसहिताः १०५५२ ऋचः, बालखिल्यरहिताः १०४७२, तदुद्धृतश्लोकानुसारं १०४१९ ऋचः; ऋग्भाष्यरचयिता वेङ्कटमाधवः १०४०२ ऋचः; स एव द्विपदापक्षे १०४८० ऋचः; स्वामी दयानन्द १०५८९ ऋचः, परं तदुल्लिखिते प्रतिमण्डलयोगे संहत्य १०५२१ ऋचः; अध्यापको मैकडानलः १०४४२ ऋचः, स एव द्विपदापक्षे १०५६९ ऋचः[1], ८-८-१९१९ तिथ्यङ्कितपत्रानुसारं[2] १०५६५; पण्डितसत्यव्रतः १०५२२; हरिप्रसादो वैदिकमुनिश्च १०४४० ऋच इति संगिरते।

किमत्र वैमत्ये कारणम्, कियत्यश्चर्क्सहितायां वस्तुत ऋच इत्यस्मिन् निबन्धे विवेचयामः।

शतपथ ऋचां परिमाणमेवमुल्लिखितम्—'स ऋचो व्यौहत द्वादशबृहतीसहस्राणि, एतावत्यो ह्यृचो याः प्रजापतिसृष्टाः' [१०।४।२।२३] इति।

एतदनुसृत्य द्वादशबृहतीसहस्राणामृचां (१२०००×३६)=४३२००० चतुर्ल-

---

१. कात्यायन-सर्वानुक्रमण्या आमुखस्य १८ तमे पृष्ठे।

२. पत्रमिदं मैकडानलाध्यापकेन पण्डितभगवद्दत्ताय प्रेषितम्। तदीये 'वैदिक वाङ्मय का इतिहास' नाम्नो ग्रन्थस्य प्रथमे भागे २४१ पृष्ठे (सं० २) मुद्रितं द्रष्टव्यम्। इहाप्युत्तरत्र उद्धरिष्यते।

क्षाणि द्वात्रिंशत्सहस्राणि चाक्षरमानं जायेत । तच्च शौनकीयानुवाकानुक्रमण्यापि संवदति । वर्तमानायामृक्संहितायां क्षैप्रप्रश्लेषाभिनिहितसन्धीनां व्यूहे कृतेऽपि ३९७२६५ त्रिलक्षाणि सप्तनवतिसहस्राणि पञ्चषष्टयधिकद्विशतान्येवाक्षराणि भवन्ति । अतो जायते संदेहः—किमियं शातपथी ऋगक्षरमात्रा दशतय्या एवर्चामुत वेदचतुष्टयान्तर्वर्त्तिनीनां सर्वासामृचामिति ?

अत्रैवं पश्यामः—शतपथस्योक्तप्रकरण ऋग्यजुःसाम्नामेवाक्षरमानमुच्यते, नाथर्वाङ्गिरसाम् । वैदिकवाङ्मये यत्र क्वचिदपि ऋग्यजुःसाम्नां त्रयाणामेवोल्लेखस्तत्र ऋगादीनि पदानि न वेदपराणि, अपि तु मन्त्रविशेषपराण्येव । यथोक्तं जैमिनिना—**'यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था सा ऋक्, गीतिषु सामाख्या, शेषे यजुःशब्दः'** [मी० २।१। ३५-३७] इति । अत एवं संभाव्यते—उक्ता शातपथी ऋगक्षरगणना वेदचतुष्टयान्तर्गतानां सर्वासामेवर्चाम् । तत्रैतावान् सन्देहोऽवशिष्यते यच्छौनकेनानुवाकानुक्रमण्यां पारायणे १०५८० अशीत्यधिकपञ्चशतोत्तरदशसहस्रमृचः पादश्चैक इति ऋङ्मानमुक्त्वा शतपथवत् ४३२००० चतुर्लक्षाणि द्वात्रिंशत्सहस्राणि चाक्षराणीत्यक्षरमानमुक्तम्, तत्तु ऋग्वेदीयर्चामेव कथमुपपद्यत इति देवा एव वेदितुमर्हन्ति ।

ऋक्संहितान्तर्वर्तिनीनामृचां संख्यामुपक्रम्य विदुषां वैमत्यं प्रागुपदर्शितम् । तत् किं वास्तविकमुत गणनापद्धतिभेदमूलकमुत भ्रमप्रमादादिजन्यमिति सम्प्रति विचार्यते—

विशिष्टा ऋग्गणना-पद्धतिः

दृश्यन्ते हि दशतय्यां काश्चनेदृश्य ऋचो याः कदाचिद् द्विपदारूपेण गण्यन्ते, कदाचिच्च चतुष्पदारूपेण । तासां द्विपदात्वेन चतुष्पदात्वेन च परिगणने संख्यावश्यं भिद्येत । अतस्सैव तावद्विवेच्यते—

सन्ति ऋग्वेद आहत्य १५७ सप्तपञ्चाशदुत्तरशतं द्विपदा ऋचः । तासु १७ सप्तदश नित्याः, १४० चत्वारिंशदुत्तरशतं च नैमित्तिकाः । इमाश्चत्वारिंशदुत्तरशतमृचो यज्ञे शंसनादिषु द्विपदात्वेन विनियुज्यन्ते । तथा च ब्राह्मणं भवति—'द्विपदाः शंसति' इति । सूत्र्यते चाश्वलायनेन—'पश्वा न तायुमिति द्वैपदम्' [८।१२] इति । एता एवाध्ययनकाले चतुष्पदा भवन्ति । तदुक्तमृक्सर्वानुक्रमण्याम्—'द्विद्विपदास्त्वृचः समामनन्ति' [उपोद्घाते] इति ।

षड्गुरुशिष्यः सूत्रमिदमित्थं व्याचख्यौ—"ऋचोऽध्ययने त्वध्येतारो द्वे-द्वे-द्विपदे एकैकामृचं कृत्वा समामनन्ति समामनेयुः अधीयीरन् । म्ना अभ्यासे, लिङर्थे लेट्, पाघ्रादिना शपि मनादेशः । द्वे द्विपदे यासां ता ऋचो द्विद्विपदाः । समामनन्तीति वचनाच्छंसनादौ न भवन्ति । तेन 'पश्वा न तायुम् [ऋ० १।६५] इति द्वैपदमिति' शंसने दशर्चत्वम्, आसां चाध्ययने तु पञ्चर्चत्वं भवति" इति ।

अयमेवाभिप्रायः प्रथममण्डलान्तर्गतपञ्चषष्टितमसूक्तव्याख्याने सायणेनाप्युपवर्ण्यते—'तत्र पश्वेत्यादीनि षट् सूक्तानि द्वैपदानि। तेष्वध्ययनसमये द्विपदे द्वे द्वे ऋचौ चतुष्पदामेकैकां कृत्वा समाम्नायते। अयुतसंख्यासु तु याऽन्त्यातिरिच्यते, सा तथैवाम्नायते। प्रायेणार्थोऽपि द्वयोर्द्विपदयोरेक एव, प्रयोगे तु ताः पृथक् पृथक् शंसनीयाः। सूत्र्यते हि—पश्वा न तायुम् (ऋ० १।६५) इति द्वैपदम् (आश्व० ८।१२) इति।'

चरणव्यूहटीकाकारो महिदासोऽप्याह—'हवन एकैका, अध्ययने द्वे द्वे आमनन्ति' [पृष्ठ १९][1] इति। यज्ञे शंसनं निमित्तं प्राप्य एता द्विपदा भवन्ति, अत एव नैमित्तिका द्विपदा उच्यन्ते, न तु स्वभावसिद्धा द्विपदाः। एतेनासां चतुष्पदात्वमेव वास्तविकं स्वरूपमित्युक्तं भवति। अर्थोऽप्यासां चतुष्पदानामेव संगच्छते, न द्विपदानाम्।

काश्च ता नैमित्तिकाश्चत्वारिंशदुत्तरशतं द्विपदा इति विवक्षायां महिदास आह—

'पश्वा न तायुम् [१।६५।१-१०] दश, रयिर्न [१।६६।१-१०] दश, वनेषु [१।६७।१-१०] दश, श्रीणन् [१।६८।१-१०] दश, शुक्रः शुशुक्वान् [१।६९।१-१०] दश, वनेम पूर्वीः [१।७०।१-१०] दश, अग्ने त्वं नः [५।२४।१-४] चत्वारि, अग्ने भव [७।१७।१-६] षट्, प्र शुक्रैतु [७।३४।१-१०] दश, राजा राष्ट्राणाम् [७।३४।११-२०] दश, क ईं व्यक्ता [७।५६।१-१०] दश, बभ्रुरेको [८।२९।१-१०] दश, परि प्र धन्व [९।१०९।१-१०] दश, तं ते सोतारः [९।१०९।११-२२] द्वादश, इमा नु कम् [१०।१५७।१-४] चत्वारि, आ याहि वनसा [१०।१७२।१-४] चत्वारि, इति नैमित्तिकद्विपदाश्चत्वारिंशदुत्तरशतम् (१४०)' [पृष्ठ १८] इति।

नैमित्तिकेतराः सप्तदश नित्या द्विपदा उपलेखसूत्रे[2] परिगण्यन्ते।

इदमत्रावधेयम्—प्रतिसूक्तमृक्संख्यानिर्देशे कात्यायनेन ऋक्सर्वानुक्रमण्यामिमाः १४० चत्वारिंशदुत्तरशतं नैमित्तिका द्विपदा ऋचो द्विपदात्वेनैव निर्दिष्टाः।

मैक्समूलरीय ऋक्संस्करणे द्विपदा ऋचः

त्रिंशदुत्तरैकोनविंशतितमे (१९३०) वैक्रमाब्दे (सन् १८७३ ई०) मैक्स-

---

१. इयं पृष्ठसंख्या 'चौखम्बा संस्कृत सीरिज बनारस' इत्यत्र १९३२ क्रैस्ताब्दे मुद्रितस्य महिदासभाष्यसहितस्य चरणव्यूहसूत्रस्य ज्ञेया। एवमुत्तरत्रापि सर्वत्र चरणव्यूहस्य पृष्ठसंख्याऽस्यैव संस्करणस्य विज्ञेया।

२. तथा चाह महिदासः—आसां संख्या उपलेखायाम्। चरणव्यूहभाष्यं पृष्ठ १८। पूर्वोक्तमेव संस्करणम्।

मूलरेणातिपरिश्रमेण संस्कृत्य ऋग्वेदस्य प्रथमं संस्करणं प्रकाशितम् । विद्यमानास्वपि कतिपयासु महतीषु भ्रान्तिषु तदत्युत्तमं संस्करणमित्यत्र नास्ति विवादावसरः ।

तत्र मैक्समूलरेण प्रथममण्डले पञ्चषष्टितमसूक्तादासप्ततितमं षष्टिर्नैमित्तिका द्विपदा ऋचश्चतुष्पदीकृत्य त्रिंशन् मुद्रिताः, प्रतिचतुष्पदमृचि च मन्त्रसंख्या निर्दिष्टा । पञ्चमे मण्डले चतुर्विंशतितमस्य सूक्तस्य चतस्रो द्विपदाश्चतुष्पदीकृत्य मन्त्रद्वयं मुद्रितम् । तत्र च प्रथमस्यान्ते १।२ एका द्वे च, द्वितीयस्यान्ते ३।४ तिस्रश्चतस्रश्च संख्या निवेशिताः । शिष्टेषु मण्डलेषु परिशिष्टाः षट्सप्ततिर्नैमित्तिका द्विपदा द्विपदात्वेनैव मुद्रिताः । एवं नैमित्तिकद्विपदानामृचां मुद्रणे मैक्समूलरेण त्रयो विकल्पाः समाश्रिताः । तत्र प्रथमः—आद्यमण्डलान्तर्गताः (सू० ६५-७०) षष्टिर्नैमित्तिका द्विपदाश्चतुष्पदीकृत्य मुद्रिताः, तथैव च तासु त्रिंशत्संख्या निवेशिता । द्वितीयः—पञ्चममण्डलस्य (सूक्त २४) चतस्रो नैमित्तिका द्विपदाश्चतुष्पदीकृत्य मुद्रिताः, संख्या च प्रतिमन्त्रान्ते द्विपदानुसारिण्येव द्वे द्वे (१।२, ३।४) विधृता । तृतीयः—अवशिष्टाः षट्सप्ततिर्नैमित्तिका द्विपदा द्विपदारूपेणैव मुद्रिता इति । इत्थमनुमिनुमो यन्मैक्समूलरेण नैमित्तिकद्विपदानां स्वरूपमेव सम्यङ् नाज्ञायि ।

एतदेवोक्तदोषदूषितं मैक्समूलरीयमृक्संस्करणं प्रमाणीकृत्योपयुञ्जाना बहव आधुनिका विद्वांस ऋक्परिगणने विभ्रान्ता इत्यनुपदं वक्ष्यामः ।

अनुवाकानुक्रमण्युक्ता ऋक्संख्याः

शौनकेनानुवाकानुक्रमण्यामृक्संख्या द्विरलेखि । तत्र तावत् प्रतिवर्गान्तर्गत-ऋक्संख्यानुसारं वर्गान् निदर्शयन्नाह—

एकर्चं एकवर्गः (१) स्यादेकश्च (१) नवकस्तथा ।
द्वौ (२) वर्गौ तु द्वृचौ ज्ञेयौ त्र्यूनं तृचशतं (९७) स्मृतम् ॥४०॥
चतुष्कं शतमेकं च चत्वारः सप्ततिस्तथा (१४७) ।
पञ्चकानां सहस्रं तु द्वे च सप्तोत्तरे शते (१२०७) ॥४१॥
त्रीणि शतानि षट्कानां चत्वारिंशत् षट् च (३४६) वर्गाः ।
शतमूनविंशतिः (११९) सप्तकानां न्यूनाषष्टिर् (५९) अष्टकानाम् ॥४२॥

एषा गणनैव विस्पष्टं प्रतिपत्तव्या—

प्रतिवर्गमृक्संख्या		वर्गसंख्या		समस्तऋक्संख्या
१	×	१	=	१
२	×	२	=	४
३	×	९७	=	२९१
४	×	१७४	=	६९६

प्रतिवर्गमृक्संख्या		वर्गसंख्या		समस्तऋक्संख्या
५	×	१२०७	=	६०३५
६	×	३४६	=	२०७६
७	×	११९	=	८३३
८	×	५९	=	४७२
९	×	१	=	९
योगः		२००६		१०४१७

एवमाहत्यर्ग्वेदे (२००६) षडधिकद्विसहस्रं वर्गाः, (१०४१७) सप्तदशाधिकचतुःशतोत्तरदशसहस्रमृचो भवन्ति। सैषा ऋक्संख्या शाकलचरणान्तर्गतायाः शंशिरीयसंहिताया बोध्या, 'तान् पारणे शाकले शैशिरीये वदन्ति (३६)' इत्युपक्रम्योक्तवर्गसंख्यानिर्देशात्। अत्र वालखिल्या ऋचो न संकलिताः, न चापि नैमित्तिका द्विपदा द्विपदात्वेन परिगणिताः। वर्तमानायामृक्संहितायामपि बालखिल्या ऋचो विहाय वर्गाः (२००६) षडुत्तरद्विसहस्रमेव परं मन्त्रसंख्या तु भिद्यते, तत्र मन्त्रा (१०४०२) द्व्यधिकचतुःशतोत्तरदशसहस्रसंमिता एवोपलभ्यन्ते। एतत् पञ्चदशमन्त्राधिक्यं शाखाभेदकृतमित्यनुमिनुमः। न चानुवाकानुक्रमण्यां पञ्चदशमन्त्राधिक्यं दृष्ट्वा संज्ञानसूक्तस्थाः पञ्चदश मन्त्रा अत्र संकलिता इत्यूहनीयम्। तेषां संकलने हि तत्सूक्तस्य चत्वारो वर्गा अपि संगृहीताः स्युः। तथा सति वर्गसंख्या षडधिकद्विसहस्रस्थाने दशाधिकद्विसहस्रं भवेत्। अतः क एते पञ्चदश मन्त्राः, कुत्र कुत्र चैते पठिता इति न शक्यते ज्ञातुम्, तथाविधस्य निर्देशस्याभावात्। तदनन्तरं च—

ऋचां दश सहस्राणि ऋचां पञ्च शतानि च।
ऋचामशीतिः पादश्च पारणं संप्रकीर्तितम्॥

इत्यनेन श्लोकेन १०५८० अशीत्यधिकपञ्चशतोत्तरदशसहस्रमृचः पादश्चैक इति पारणे ऋक्संख्यां दर्शयति।

इयं संख्या पूर्वनिर्दिष्टसंख्यातो नितरां भिद्यते। तत्रैवं समन्वयः—अस्मिन् श्लोके पारणशब्देन तत्रभवाञ्छौनकाचार्यः शाकलचरणान्तर्वर्तिसर्वशाखागतानामृचां परिमाणं प्रतिपादयति। तथा चोक्तं लौगाक्षिस्मृतौ—

ऋचां दश सहस्राणि ऋचां पञ्च शतानि च।
ऋचामशीतिः पादश्च पारायणविधौ खलु॥
पूर्वोक्तसंख्यायाश्चेत्तु सर्वशाखोक्तसूत्रगाः।
मन्त्राश्चैव मिलित्वैव कथनं चेति तत्पुनः॥ इति
['वैदिक वाङ्मय का इतिहास' ग्रन्थे उद्धृतौ, भाग १, पृ० १३४]

शौनकोक्तमन्त्यमृङ्मानं चरणव्यूहपरिशिष्टेऽपि निर्दिश्यते। तथा हि—

ऋचां दश सहस्राणि ऋचां पञ्च शतानि च।
ऋचामशीतिः पादश्चैतत् पारायणमुच्यते ॥ [पृष्ठ १४] इति।

श्लोकमेनं विवृण्वन् महिदासः १०५८० अशीत्यधिकपञ्चशतोत्तरदशसहस्रमृचः पादश्चैक इत्यृङ्मानमित्थमुपपादयाञ्चकार—

'एतत् पारायणं बालखिल्यैर्विना संख्यातम्। बालखिल्यानि पारायणे न सन्ति' [पृ० १७]।

'अथाध्ययने ऋक्संख्योच्यते—षण्णवत्यधिकचतुःशतदशसहस्राणि (१०४९६), ता नैमित्तिकद्विपदाश्चत्वारिंशदुत्तरशतसहिता दशसहस्राणि (षट्षष्ट्यधिकपञ्च शतानि) १०५६६, संज्ञानमुशना वदत् सूक्तस्य पञ्चदश ऋच एकीकृत्य १०५८० एवं पारायणे ऋक्संख्या। ऋचां दशसहस्रणीति वचनस्य संख्या पूर्णा भवतीत्यर्थः। एका उर्वरिता, सा 'भद्रं नो अपि वातय मनः' [ऋक् १०।२०।१] इति पादाधिक्यम्" [पृ० २१] इति।

सन्त्यृग्वेदे कतिपया ऋचो यासु त्रयोऽर्धर्चाः श्रूयन्ते ताश्च महिदासेन चरणव्यूहटीकायां (पृष्ठ १९,२०) चतुर्नवतिः परिगणिताः[1]। तासामध्ययने द्वयोरर्धर्चयोरेकामृचं कृत्वा परिशिष्टमेकमर्धर्चं चैकामृचं मत्वा परिगणनं क्रियते। तथा सति चतुर्नवतिऋचामष्टाशीत्युत्तरं शतमृचः संपद्यन्ते। तदेवमृचां योगः—१०४०२ द्वयधिकचतुःशतोत्तरदशसहस्रमृचो बालखिल्यरहिताः ९४ चतुर्नवतिसंख्या च त्र्यर्धर्चानामृग्द्वयकल्पनयोत्पन्ना, नैमित्तिकद्विपदानां द्विपदारूपेण परिगणनाद् विवृद्धा ७०

---

१. आसां परिगणनमाह—'अग्निं होतारम्' (अष्ट० २, अ० १, वर्ग १२, एवमेवोत्तरत्रापि) पञ्च, 'स हि शर्धो न' (२।१।१३) षड् 'अयं जायत' (२।१।१४) पञ्च, 'विश्वो विहायाः' (२।१।१५) तिस्रः, 'यं त्वं रथम्' (२।१।१६) पञ्च 'प्र तद् वोचेयम्' (२।१।१७) षट्, 'इन्द्र पाह्युप नः' (२।१।१८) पञ्च, 'इमां ते वाचम्' (२।१।१९) चत्वारि, 'स नो नव्येभि' (२।१।१९) वर्जम्। 'इन्द्राय हि द्यौः' (२।१।२०) सप्त, 'त्वया वयम्' (२।१।२१) षट्, 'अवर्म ह' (२।१।२२) एका, 'वनोति हि' (२।१।२२) एका, 'आ त्वा जुवो' (२।१।२३) षट्, 'स्तीर्णम्' (२।१।२४) पञ्च, 'इमे वां सोमा' (२।१।२५) एका, 'इमे ये ते सु वायो वा' (२।१।२५) एका, 'प्र सुज्येष्ठम्' (२।१।२६) षट्, 'ऊती देवानाम्' (२।१।२६) वर्जम्'। 'सुषुमायातम्' (२।२।१) त्रीणि, 'प्र प्र पूष्णः' (२।२।२) चतुष्कम्, 'अस्तु श्रौषट्' (२।२।३) चत्वारि, 'शुचिभिर्नः' (२।२।३) वर्जम्। 'वृषन्निन्दु' (२।२।४) पञ्च, 'ये देवासो' (२।२।४) वर्जम्। 'तवत्यन्नर्यम् (२।६।२८) एका, 'सखे सखायम्' (३।४।१२) एका, 'अया रुचा' (७।५।२३) त्रीणि, एतास्त्रीणि त्रीण्यर्धर्चा ऋचा हवनीयाश्चतुर्नवतिसंख्या। इति त्रीण्यर्धंच ऋग्घवने। अध्ययने अर्धर्चद्वयेन ऋगेका, अर्धर्चेनैकैव ऋग्द्वये कर्तव्य इत्यर्थः। चरणव्यूह पृष्ठ १९,२०।

सप्ततिसंख्या, संज्ञानसूक्तं च पञ्चदशर्चम्। एवं १०५८१ एकाकीत्यधिकपञ्चशतोत्तरदशसहस्रमृचः संजाताः। तत्र—'भद्रं नो अपि वातय मनः' [ऋ० १०।२०।१] इत्येकपदा ऋक्।

महिदासोक्तोपपत्तौ स्तो द्वे भ्रान्ती। तत्र प्रथमा—महिदासेनात्र—'अध्ययने ऋक्संख्योच्यते' इत्युक्त्यापि नैमित्तिका त्रिपदा द्विपदात्वेन परिगणिताः। न च ता अध्ययने द्विपदात्वेन गण्यन्ते, किन्तर्हि चतुष्पदात्वेनेत्युक्तं पुरस्तात्। सिद्धान्तितं च तेन स्वयमेवान्यत्र—'हवन एकैका, अध्ययने द्वे द्वे' इति, 'तास्त्वृचोऽध्ययने चतुष्पदाः कृत्वेत्यर्थः' [पृष्ठ १९] इति च। द्वितीया च—अनुवाकानुक्रमण्यां शौनकेन या १०४१७ सप्तदशाधिकचतुःशतोत्तरदशसहस्रमृचः पारायणे परिगणितास्तासु संज्ञानसूक्तस्थपञ्चदशर्चां सन्निवेशो नास्तीत्युक्तं पुरस्तात्। अतोऽत्र संज्ञानसूक्तगतानामृचां संकलनमपि चिन्त्यम्।

छन्दःसंख्यापरिशिष्टोक्ता ऋग्गणना

अस्ति कस्याश्चिदृक्शाखायाः एकादशश्लोकात्मकं छन्दःसंख्यासंज्ञकं परिशिष्टम्। तत्र चेमे श्लोकाः—

एकपञ्चाशद् ऋग्वेदे गायत्र्यः शाकलेयके।
सहस्रं द्वितयं चैव चत्वार्येव शतानि तु ॥१॥
त्रीणि शतानि सैकानि चत्वारिंशत्तथोष्णिहः।
अनुष्टुभां शतान्यष्टौ पञ्चाशत् पञ्चसंयुताः ॥२॥
बृहतीनां शतं ज्ञेयमेकाशीत्यधिकं बुधैः।
शतानि त्रीणि पङ्क्तीनां द्वादशाभ्यधिकानि तु ॥३॥
पञ्चाशत् त्रिष्टुभः प्रोक्तास्तिस्रश्चैव ततोऽधिकाः।
सहस्राण्येव चत्वारि विज्ञेयं तु शतद्वयम् ॥४॥
चत्वारिंशत्तथाष्टौ च तथा चापि शतत्रयम्।
जगतीनामियं संख्या सहस्रं तु प्रकीर्तितम् ॥५॥
दशैवातिजगत्योऽपि तथा सप्त न संशयः।
शक्वर्योऽपि तथैवोक्तास्तथा नव विचक्षणैः ॥६॥
नव चैवातिशक्वर्यः षडष्टयः प्रकीर्तिताः।
अशीतिश्च चतस्रश्च तथात्यष्टिऋचः स्मृताः ॥७॥
धृतिद्वयं विनिर्दिष्टमेकातिधृतिरेव च।
एकपदास्तु षट् प्रोक्ता द्विपदा दश सप्त च ॥८॥
प्रगाथा बार्हता येऽत्र तेषां शतमुदाहृतम्।
चतुर्नवतिरेवोक्तास्तद्वद् [1]द्वृचास्त्वसंशयाः ॥९॥

---

१. द्वृचशब्दे पाणिनीयव्याकरणेन साक्षादप्रतिपादितोऽपीकारलोपः पृषोदरादित्वाद्

काकुभानां तु पञ्चाशद् विज्ञेयाः पञ्चसंयुताः ।
महाबार्हत एवैक एवं सार्धशतद्वयम् ॥१०॥
एवं दशसहस्राणि शतानां तु चतुष्टयम् ।
ऋचां द्वयधिकमाख्यातमृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥११॥ इति

एष्वन्त्यं विहाय दशसु श्लोकेषु गायत्र्यादिच्छन्दोऽनुसारं या ऋक्संख्या परिगणिता, तदनुसारम्—

गायत्र्यः—२४५१ एकपञ्चाशदधिकचतुःशतोत्तरद्विसहस्रम् । उष्णिहः—३४१ एकचत्वारिंशदधिकं त्रिशतम् । अनुष्टुभः—८५५ पञ्चपञ्चाशदधिकाष्टशतम् । बृहत्यः—१८१ एकाशीत्यधिकैकशतम् । पङ्क्तयः—३१२ त्रीणि शतानि द्वादश च । त्रिष्टुभः—४२५३ चत्वारि सहस्राणि द्वे शते त्रिपञ्चाशच्च । जगत्यः—१३४८ अष्टचत्वारिंशदधिकत्रिशतोत्तरैकसहस्रम् । अतिजगत्यः—१७ सप्तदश । शक्वर्यः—१९ एकोनविंशतिः । अतिशक्वर्यः—९ नव । अष्टयः—६ षट् । अत्यष्टयः—८४ चतुरशीतिः । धृती—२ द्वे । अतिधृतिर्—१ एका । एकपदाः—६ षट् । द्विपदाः—१७ सप्तदश । बार्हताः प्रगाथाः—१९४ चतुर्नवत्यधिकशतम् । काकुभाः प्रगाथाः—५५ पञ्चपञ्चाशत् । महाबार्हतः प्रगाथः—१ एकः ।

एषु २५० सार्धद्विशतप्रगाथा द्वृचस्तेषां ५०० पञ्चशतमृचः । तत्संकलय्यैकादशे श्लोके १०४०२ द्वयधिकचतुःशतोत्तरदशसहस्रमृचः शाकलेयक ऋग्वेदे परिसंख्याताः ।

एतदृक्संक्यापरिसंख्यानविषये पण्डितसत्यव्रतसामश्रमिणा स्वीय ऐतरेयालोचन एवमलेखि—

'छन्दःसंख्योल्लिखितोक्तसर्वसंकलनसंख्या तु प्रतिच्छन्दःसंख्यातोऽपि विरुद्धैव प्रतीयते । तद्यथा तत्रोक्तं श्लोकैः—गायत्र्यः २४५१, उष्णिहः ३४१, अनुष्टुभः ८५५, बृहत्यः १८१, पङ्क्तयः ३१२, त्रिष्टुभः ४२५३, जगत्यः १३४८, अतिजगत्यः १७, शक्वर्यः ९, अतिशक्वर्यः ९, अष्टयः ६, अत्यष्टयः ८४, धृत्यौ २, अतिधृतिः १, द्विपदाः १७, एकपदाः ६, बार्हतप्रगाथाः १९४, ककुप्प्रगाथाः ५५, महाबार्हतप्रगाथः १ । तदेवं तदुक्तप्रतिच्छन्दःसंख्यानां संकलनया १०१४२ (द्विचत्वारिंशदधिकशतोतरदशसहस्रम्) ऋचः स्युः । पूर्वंप्रदर्शितश्लोकतस्तु गम्यन्ते १०४०२ (द्वयधिकचतुःशतोत्तरदशसहस्रम्) । तदत्र प्रायः सर्वत्र संकलनभ्रमोऽस्माभिर्ग्रन्थदृष्ट्या प्रमाणित एव' [पृ० १४३] इति ।

अत्र महापण्डितस्यापि सामश्रमिमहाभागस्य द्विविधो भ्रमोऽभूत् । प्रथमः—

द्रष्टव्यः । तस्य च विकल्पाद् द्वयृचशब्दोऽप्युपपद्यते । ऋेश्च रेफेकारयोर्नित्ये लोपे तृच इत्येव भवति ।

षष्ठश्लोकस्योत्तरार्धे 'तथा' पदं द्विरुक्तम् । तत्राद्यं पूर्वार्धगताया अतिजगतीगणनाया निर्देशकम्, अपरं प्रागुक्ताया दशसंख्यायाः समुच्चायकम् । तत्रातिजगतीवच्छक्वरीछन्दांस्यपि गणनीयानीत्यभिप्रेयते । सामश्रमिमहोदयेन पुनस्तदपरिज्ञायैकोनविंशतिस्थाने नवैव शक्वर्यः परिगणिताः । द्वितीयश्च—नवमे श्लोके विस्पष्टं प्रगाथाः द्वृचा उक्ताः । अतस्तेषां २५० सार्धद्विशतप्रगाथानां पञ्चशतमृचः संपद्यन्ते । ऋक्सर्वानुक्रमण्याः परिभाषाप्रकरणेऽपि—'बृहतीसतोबृहत्यौ बार्हतः, ककुप् चेत् पूर्वा काकुभः, महाबृहतीमहासतोबृहत्यौ महाबार्हतः' इत्यादिसूत्रैर्व्यक्तं द्वृचानां प्रगाथत्वमुच्यते । भगवता पाणिनिनाऽपि—'सोऽस्यादिरिति च्छन्दसः प्रगाथेषु' (अ० ४।२।५५) इति सूत्रयता प्रगाथानामनेकर्चत्वं प्रत्यपादि । तदविज्ञायैव सामश्रमिणा सार्धद्विशतप्रगाथानां सार्धद्विशतर्च एव परिगणिताः ।

पण्डितहरिप्रसादोऽपरानामा वैदिकमुनिरपि स्वीये वैदिकसर्वस्वग्रन्थे इत्थमेवाविचार्य सामश्रमिणमनुससार ।

छन्दःसंख्यापरिशिष्टोक्तगणनायां चत्वारिंशदुत्तरशतं नैमित्तिका द्विपदा ऋचश्चतुष्पदीकृत्य सप्तसप्ततिर्मताः । यास्त्वत्र सप्तदश द्विपदाः स्मर्यन्ते, ता नित्या द्विपदाः । इत्थं द्विपदापक्षे सप्तत्यृचो द्विगुणीकृत्यः परिगणने १०४७२ द्विसप्तत्यधिकचतुःशतोत्तरदशसहस्रमृचो भवन्ति । अत्र बालखिल्यानामशीतिऋचां सन्निवेशो न विद्यते । कदाचिच्छन्दःसंख्यापरिशिष्टं शाकलचरणान्तर्गतायास्तादृशशाखायाः स्याद्, यस्यां बालखिल्या ऋचो न स्युः । शैशिरीयशाखायास्तु नेदं संभवतीति विस्पष्टमेव, यतोऽनुवाकानुक्रमण्यनुसारं तत्र पञ्चदशर्चोऽधिकाः (१०४१७) विद्यन्ते ।

प्राध्यापकमैकडानलेन १२७ द्विपदाः परिगणिताः । तेन छन्दःसंख्यापरिशिष्टोक्तानां द्विपदानां १७ संख्यां दृष्ट्वा (या नित्यद्विपदानां वर्तते) कल्पितं यदत्र १७ संख्यायां मध्यवर्ती २ द्वयङ्को नष्टः ।[1]

ऋक्सर्वानुक्रमण्युक्ता ऋक्संख्या

अस्ति कात्यायनीयर्क्सर्वानुक्रमण्या द्विविधः पाठः । एकत्र बालखिल्यसूक्तानामृषिदैवतच्छन्दसां निर्देशो नोपलभ्यतेऽपरत्र च दृश्यते । तत्र सर्वानुक्रमणीव्याख्याता षड्गुरुशिष्यः प्रथमं पाठमनुससार, पण्डितजगन्नाथस्तु द्वितीयम् । तत्र प्रथमपाठानुसारं बालखिल्यऋचो विहाय कात्यायनोक्तानां प्रतिसूक्तर्क्संख्यानां संकलने (१०४७२) द्विसप्तत्यधिकचतुःशतोत्तरदशसहस्रमृचो भवन्ति । द्वितीयपाठानुसारं बालखिल्यानामृचां परिगणने (१०५५२) द्विपञ्चाशदधिकपञ्चशतोत्तरदशसहस्रमृचः सम्पद्यन्ते । अयमेव च सर्वानुक्रमणीटीकाकृतो जगन्नाथस्य पक्षः । अत्रोभयथा पाठेऽपि नैमित्तिका द्विपदा द्विपदारूपेण परिगणिताः । चरणव्यूहव्याख्याता महिदासोऽप्याह—

१. द्र०—कात्यायनसर्वानुक्रमणी प्राक्कथन पृष्ठ १७ ।

'बालखिल्यसहिता सर्वानुक्रमणीयमन्त्ररूपी संख्या उच्यते द्विपञ्चाशदधिक-पञ्चशतदशसहस्रम् १०५५२ । बालखिल्यव्यतिरिक्तसंख्या तु द्विसप्तत्यधिक-चतुःशतदशसहस्रमृक् १०४७२ । एतत्सख्या नित्यद्विपदानैमित्तिकद्विपदासहिता [पृ० १७] इति ।

वेङ्कटमाधवीया ऋग्गणना

वैक्रमाब्दस्य द्वादशशताब्द्यां लब्धजनिमा वेङ्कटमाधव ऋग्वेदस्य लघुभाष्यस्य[1] पञ्चमाष्टकस्य पञ्चमाध्यायस्योपोद्घात ऋग्वेदीयर्चां संख्यामित्थं निर्दिदेश—

शतैश्चतुर्भिरधिकमयुतं गणितं मया ।
द्वे च यान्यतिरिच्येते द्विपदाश्चात्र संगताः ॥२१॥
पृथग् यदा तु गणनं द्विपदानां तदाधिकाः ।
चतुःशतादशीतिश्च वाक्यं च ग्रहवानयम् ॥२२॥

अर्थात् ऋग्वेदे १०४०२ द्वयधिकचतुःशतोत्तरदशसहस्रमृचः सन्ति । यदा तु द्विपदाः पृथग्गण्यन्ते तदा १०४८० अशीत्यधिकचतुःशतोत्तरदशसहस्रमृचो भवन्ति ।

अत्र द्विपदापक्ष ऋचः परिगणयन् बभ्राम माधवः । तथा हि—द्वयधिकचतुःशतोत्तरदशसहस्रे (१०४०२) ऋक्षु केवलं चत्वारिंशदुत्तरशतं नैमित्तिका द्विपदा ऋच एव चतुष्पदीकृत्य सप्ततिः परिगणिताः, अतो द्विपदापक्षे शिष्टा सप्ततिसंख्येव परिवर्धनीया। वेङ्कटमाधवेन त्वष्टसप्ततिसंख्या वर्धिता । अतो मन्यामहे तेन द्वयधिक-चतुःशतोत्तरदशसहस्रे (१०४०२) नित्यनैमित्तिकानां १५७ द्विपदानामेकां विहाय षट्पञ्चाशदधिकशतर्चां चतुष्पदीकृता अष्टसप्ततिसंख्या परिगणितेति मतं स्यात् । सप्तपञ्चाशदुत्तरशतर्क्षु द्विपदासु सप्तदश नित्या द्विपदास्ता ह्युभयथाऽपि परिगणने न भिद्यन्ते, अवशिष्टाश्चत्वारिंशदुत्तरशतं द्विपदा एव द्विपदापक्षे चतुष्पदापक्षे च संख्याभेदं जनयन्ति । अतो द्विपदापक्षे सप्ततिसंख्यैव परिवर्धनीया, नाष्टसप्ततिरिति दिक ।

---

१. वेङ्कटमाधवेनर्ग्वेदस्य द्वे भाष्ये विरचिते । प्रथमं लघु, अपरं बृहत् । लघुभाष्यस्य डाक्टरलक्ष्मणस्वरूपेण सम्पादितस्य त्रयो भागाः प्रकाशिताः । बृहद्भाष्यस्याड्यारनगराद् द्वयोः खण्डयोः प्रथमाष्टकं प्रकाशितम् । इदं बृहद्भाष्यमतिपाण्डित्यपूर्णम् । लघुभाष्यस्य प्रत्यध्याय-मादौ ये विषयाः संक्षेपत उपन्यस्तास्तेऽस्मिन् भाष्ये विस्तरशो व्यवहृताः । अस्य बृहद्भाष्यस्यैक एव त्रुटिबहुलो हस्तलेख उपलब्धः । बृहद्भाष्यस्य रचयिता अपरो माधव इति तत्संपादकः प्रतिजानीते, परं तन्मिथ्या । निघण्टुटीकाकारेण वेङ्कटमाधवनाम्नोद्धृतानां पाठानामत्र दर्शनात्, लघुभाष्यस्योद्धरणे 'प्रथमभाष्यम्' इति विशेषणस्य निदर्शनाच्च (द्र०—निघण्टुव्याख्या १।१४।१८) । अत्र विस्तरशो विचारः श्रीपण्डितभगवद्दत्तविरचिते 'वैदिकवाङ्मय का इतिहास' ग्रन्थस्य प्रथमभागस्य द्वितीयखण्डे (पृ० ३५-३७) द्रष्टव्यः ।

एतदनन्तरमृग्वेदस्य वर्गसंख्यां निदर्शयन्नेवमृक्संख्यामाह—

एकर्चं एको वर्गः स्याद् द्वृचौ द्वौ नवकावुभौ ।
एकोनं स्यात् त्रिकशतं चतुष्कं पञ्चसप्ततिः ॥२३॥
अधिकं च शतं वर्गाश्चतुःपञ्चाशदष्टकाः ।
एकविंशशतं प्राहुः सप्तकानां च वैदिकाः ॥२४॥
शतानि त्रीणि षट्कानां चत्वारिंशत् त्रयस्तथा ।
पञ्चकानां सहस्रं च द्वे शते नवकं तथा ॥२५॥

एषा वर्गसंख्या तदनुसारिणी चर्क्संख्येत्थमवगन्तव्या—

प्रतिवर्गमृक्संख्या		वर्गसंख्या		ऋक्संख्या
१	×	१	=	१
२	×	२	=	४
३	×	९९	=	२९७
४	×	१७५	=	७००
५	×	१२०९	=	६०४५
६	×	३४३	=	२०५८
७	×	१२१	=	८४७
८	×	५४	=	४३२
९	×	२	=	१८
योगः		२००६		१०४०२

एवमृग्वेदे षडधिकद्विसहस्रं वर्गाः, द्व्यधिकचतुःशतोत्तरदशसहस्रमृचश्च परिसंख्याताः ।

तदनन्तरमनुवाकानुक्रमण्युक्तर्गणनां दूषयन्नाह—

ऋचां दशसहस्राणि ऋचां पञ्चशतानि च ।
ऋचामशीतिः पादश्च पाठोऽयं न समञ्जसः ॥

एतेन प्रतीयते माधवोऽनुवाकानुक्रमण्युक्तपरिगणनाप्रकारं नावबुबुधे, अन्यथा तद्गणनां नादूदुषत् ।

महिदासीया ऋग्गणना

महिदासेन स्वीये चरणव्यूहव्याख्याने ऋक्संख्या विस्तरशो न्यरूपि । तत्र तेन द्विपदापक्षे बालखिल्यसहिता १०५५२ द्वापञ्चाशदधिकपञ्चशतोत्तरदशसहस्रमृचः, बालखिल्यैर्विना १०४७२ द्वासप्तत्यधिकचतुःशतोत्तरदशसहस्रमृचः, द्विपदापक्षाभावे

च वालखिल्यरहिता १०४०२ द्व्यधिकचतुःशतोत्तरदशसहस्रमृचः परिगणिता इत्युक्तं पुरस्तात् । एतस्मिन्नेव प्रकरणे (पृ० २४,२५) प्रतिवर्गवर्संख्यानुसारेण वर्गसंख्या-प्रतिपादकान् कांश्चिच्छ्लोकानुदाजहार । तथा हि —

एकर्च एकवर्गश्च एकर्च नवकस्तथा ।
द्वौ वर्गौ तु द्वृचो ज्ञेयौ ऋक्त्रयस्य शतं स्मृतम् ॥
चतुर्ऋचां पञ्च सप्तत्यधिकं च शतं तथा ।
पञ्चर्चं तु द्विशतकं सहस्रं रुद्रसंयुतम् ॥
पञ्चचत्वार्यधिकं षड्ऋचां तु शतत्रयम् ।
सप्तऋचां शतं ज्ञेयं विंशतिश्चाधिका स्मृताः ॥
अष्टऋचां तु पञ्चाशत् पञ्चाधिकास्तथैव च ।
दशाधिकद्विसहस्राः पञ्चशाखासु निश्चिताः ॥
वर्गाः संज्ञानसूक्तस्य चत्वारश्चात्र मीलिताः ।
एवं पारायणे प्रोक्ता ऋचां संख्या न न्यूनतः ॥

एषु प्रतिपादिता वर्गसंख्या ऋक्संख्या चैवं विस्पष्टमवगन्तव्या—

प्रतिवर्गर्क्संख्या		वर्गसंख्या		ऋक्संख्या
१	×	१	=	१
२	×	२	=	४
३	×	१००	=	३००
४	×	१७५	=	७००
५	×	१२११	=	६०५५
६	×	३४५	=	२०७०
७	×	१२०	=	८४०
८	×	५५	=	४४०
९	×	१	=	९
योगः		२०१०		१०४१९

एवमाहृत्य २०१० दशाधिकद्विसहस्रं वर्गाः, १०४१९ एकोनविंशत्यधिकचतुः-शतोत्तरदशसहस्रमृचः संपद्यन्ते । एषा वर्गसंख्या ऋक्संख्या च शाकलचरणान्तर्गतानां पञ्चानां शाखानाम्, अत्र संज्ञानसूक्तस्य चत्वारो वर्गाः पञ्चदशर्चश्चापि संकलिताः । तदभावे १०४०४ चतुरधिकचतुःशतोत्तरदशसहस्रमृचो भवन्ति । एषा छन्दःसंख्या-परिशिष्टप्रतिपादितायाः संख्यायाः साकाशाद् द्व्यधिका । तच्चाधिक्यं शाखान्तरकृतं द्रष्टव्यम् ।

आस्माकीना वर्गगणना ऋक्संख्या च

ऋक्संख्यागणनाय शौनकवेङ्कटमाधवमहिदासैर्वर्गान्तर्गतर्चोऽनुसृत्य वर्गाः संख्याताः। तत्रैतेषां वर्गपरिसंख्याने महान् भेदो वर्तते। एषु कस्य समञ्जसा वर्गसंख्येति परिज्ञानायास्माभिरपि सूक्ष्मेक्षिकया वर्गाः संख्याताः। आस्माकीना वर्गगणना एभ्यो नितरां विसंवदतीति स्वीयवर्गगणनापरिशुद्धयै (१) द्विपदापक्षे (२) नैमित्तिकद्विपदाश्चतुष्पदीकृत्य, (३) बालखिल्यानां दश वर्गान्न्यूनीकृत्य त्रिधा पुनर्वर्गाः परिगणिताः। एवं त्रिधा परिगणनेऽपि नैवास्माभिः स्वीयगणनायां कश्चिद्दोष उपलब्धः। सा चेत्थं त्रिधा वर्गगणना—

(१) नैमित्तिका द्विपदा द्विपदारूपेण परिगणय्य प्रत्यष्टकं बालखिल्यसहिता वर्गसंख्या एवं वेदितव्या—

अ०	एकर्चः	तृचः	चतु०	पञ्च०	षड्०	सप्त०	अ०	नव०	दश०	एका०	द्वाद०	योग
१	१	१२	२२	१७३	४२	५	४	...	५	१	...	२६५
२	...	१७	१५	१२४	४६	१२	७	...	...	...	...	२२१
३	...	४	१६	१३५	४१	२०	९	...	...	...	...	२२५
४	...	१२	२६	१५८	२९	१५	१०	—	...	...	...	२५०
५	—	१३	१७	१३८	४०	२०	७	...	३	...	...	२३८
६	...	११	२८	२०७	५८	१६	१०	...	१	...	...	३३१
७	—	८	३६	१५६	३३	१०	२	१	१	...	१	२४८
८	...	२३	२१	१२०	५२	२४	६	—	...	...	...	२४६
योगः	१	१००	१८१	१२११	३४१	१२२	५५	१	१०	१	१	२०२४
बालखिल्य— वर्गाः	—	२	६	१०	...	...	...	...	...	—	...	१८
बालखिल्य— रहितवर्गाः	१	९८	१७५	१२०१	३४१	१२२	५५	१	१०	१	१	२००६

वर्गान्तर्गतर्क्संख्यानुसारं समस्तस्यर्ग्वेदस्य वर्गसंख्या ऋक्संख्या चेत्थं ज्ञेया—

प्रतिवर्गर्क्संख्या		वर्गसंख्या		समस्तर्क्संख्या
१	×	१	=	१
२	—	...	=	...
३	×	१००	=	३००
४	×	१८१	=	७२४
५	×	१२११	=	६०५५

प्रतिवर्गर्क्संख्या		वर्गसंख्या		समस्तर्क्संख्या
६	×	३४१	=	२०४६
७	×	१२२	=	८५४
८	×	५५	=	४४०
९	×	१	=	९
१०	×	१०	=	१००
११	×	१	=	११
१२	×	१	=	१२
योगः		२०२४		१०५५२

(२) चत्वारिंशदुत्तरशतं नैमित्तिकद्विपदाश्चतुष्पदीकृत्यैव वर्गसंख्या ऋक्संख्या च वेद्या—

प्रतिवर्गर्क्संख्या		वर्गसंख्या		समस्तर्क्संख्या
१	×	१	=	१
२	×	२	=	४
३	×	१०१	=	३०३
४	×	१८०	=	७२०
५	×	१२२०	=	६१००
६	×	३४३	=	२०५८
७	×	१२१	=	८४७
८	×	५५	=	४४०
९	×	१	=	९
योगः		२०२४		१०४८२

अस्मिन् परिगणने वर्गसंख्या तु सैव २०२४ चतुर्विंशत्युत्तरद्विसहस्रम्, परं मन्त्रसंख्यायां नैमित्तिकद्विपदानां चतुष्पदीभावे सप्ततिसंख्याया न्यूनता जायते।

(३) यदा तु चतुष्पदापक्षे बालखिल्यानामृचामष्टादशवर्गा अशीतिर्ऋचश्च परिहीयन्ते तदेयं वर्गसंख्या ऋक्संख्या च बोध्या—

प्रतिवर्गमृक्संख्या		वर्गसंख्या		समस्तऋक्संख्या
१	×	१	=	१
२	×	२	=	४
३	×	९९	=	२९७

प्रतिवर्गमृक्संख्या		वर्गसंख्या		समस्तऋक्संख्या
४	×	१७४	=	६९६
५	×	१२१०	=	६०५०
६	×	३४३	=	२०५८
७	×	१२१	=	८४७
८	×	५५	=	४४०
९	×	१	=	९
योगः		२००६		१०४०२

सम्प्रति शौनक-माधव-महिदासानामस्माकं च वालखिल्यरहितानां वर्गाणां संख्यापरिगणने यो भेदस्तद्विवृत्त्यै सर्वेषामपि वर्गान्तर्गतर्क्संख्यानुसारं वर्गाः परिसंख्यायन्ते—

प्रतिवर्गर्क्संख्या	शौनकीया	वेङ्कटमाधवीया	आस्माकीना	महिदासीया
१	१	१	१	१
२	२	२	२	२
३	९७	९९	९९	१००
४	१७४	१७५	१७४	१७५
५	१२०७	१२०९	१२१०	१२११
६	३४६	३४३	३४३	३४५
७	११९	१२१	१२१	१२०
८	५९	५४	५५	५५
९	१	२	१	१
योगः	२००६	२००६	२००६	२०१०

इदमत्रावधेयम्—शौनकादीनां वर्गसंख्याने बालखिल्या ऋचो न संख्यायन्ते, न च नैमित्तिका द्विपदा द्विपदारूपेण। अतोऽस्माभिस्तत्पक्षीया एव स्वीया वर्गसंख्याऽत्र निर्दिष्टा। सर्वश्चैष वर्गसंख्याभेदोऽवान्तरशाखाभेदकृत एवेत्यनुमिनुमः। महिदासीया वर्गसंख्या तु शाकलचरणान्तर्गतानां पञ्चानां शाखानामिति स एव विस्पष्टं जगाद।

दयानन्दसरस्वतीस्वामिना परिसंख्याता ऋक्संख्या

दयानन्दसरस्वतीस्वामिना स्वीयर्ग्वेदभाष्यस्योपोद्घाते (पृष्ठ ४३२-४३७) ऋग्वेदान्तर्गतानामृचां परिगणनमकारि। तत्र प्रतिमण्डलं या ऋक्संख्याः परिसंख्यातास्तासामयं योगः—

१९७६+४२९+६१७+५८९+७२७+७६५+८४१+१७२६+१०९७+१७४५=१०५२१।

अत्र प्रतिमण्डलर्क्संख्यायां लेखकप्रमादाद् द्वे अशुद्धी बभूवतुः । तत्रैका—अष्टममण्डलान्तर्गतविंशतितमसूक्तमन्त्राणां षड्विंशतिसंख्यास्थाने षट्त्रिंशत् संख्या लिखिता । तेन तन्मण्डलीयर्ग्योगोऽपि १७१६ षोडशाधिकसप्तशतोत्तरैकसहस्रस्थाने १७२६ षड्विंशत्यधिकसप्तशतोत्तरैकसहस्रं संजातः । द्वितीया—नवममण्डलस्य प्रतिसूक्तनिर्दिष्टसंख्यायोगकाले दृष्टिदोषात् काचिद् एकादश संख्या परित्यक्ता । तेन तद्योगोऽपि ११०८ अष्टाधिकशतोत्तरैकसहस्रस्थाने १०९७ सप्तनवत्यधिकैकसहस्रं बभूव । इमौ दोषौ परिमृज्य सकलर्क्संख्या १०५२२ द्वात्रिंशत्यधिकपञ्चशतोत्तरदशसहस्रं संपद्यते ।

अयमृचां योगो मैक्समूलरीयर्क्संस्करणानुसारं विद्यते । तदीयर्क्संस्करणे च ये दोषास्ते पुरस्तात् प्रतिपादिताः । अतोऽत्रापि प्रथममण्डलान्तर्गताः षष्टिर्नैमित्तिका द्विपदाश्चतुष्पदीकृत्य त्रिंशत् परिगणिताः । एतद्दोषपरिमार्जने कृते सैव १०५५२ द्विपञ्चाशदधिकपञ्चशतोत्तरदशसहस्रमृक्संख्या संपद्यते ।

प्रतिमण्डलमृक्संख्यामुक्त्वा सर्वपरिगणनां ब्रुवन् स्वामिदयानन्दसरस्वत्याह—'दशसहस्राणि पञ्चशतानि एकोननवतिश्च १०५८९ मन्त्रा सन्तीति वेद्यम् ।' (द्र०—पृ० ४३७ रा० ला० क० ट्र० संस्करणम्) ।

एषा संख्या प्राङ्निर्दिष्टर्क्संख्यातो नितरां भिद्यते । न च तद्भेदे किञ्चित् कारणमुक्तम् । अतो मन्यामहे, अत्रापि लेखकप्रमाद एव कारणं स्यात् । स चेत्थम्—प्रतिमण्डलमुक्तानामृक्संख्यानां कृत्स्नं योगं कुर्वता लेखकेनैकविंशत्यधिकपञ्चशतोत्तरदशसहस्रसंख्या अङ्कैः १०५२१ निर्दिष्टा । तदनु स्वामिभिस्तस्मिन्नस्पष्टाङ्कैर्लिखिते योगे एकाङ्को नवाङ्कत्वेन, द्वयङ्कोऽष्टाङ्कत्वेन (१०५८९) चावबुद्धयाक्षरेषु—'दशसहस्राणि पञ्चशतानि एकोननवतिश्च मन्त्राः' इत्येवं सर्वं ऋग्योगोऽलेखि । नागर्यां लिप्यामेतयोरङ्कयोरस्पष्टलेखने प्रायेणैतादृशो भ्रमो जायते । तेन—'दशसहस्राणि पञ्चशतानि एकोननवतिश्च मन्त्राः' इति लेखो लेखकपाठकभ्रममूलक एव ।

पण्डितभगवद्दत्तमहोदयः स्वीये वैदिकवाङ्मयैतिह्ये स्वामिदयानन्दनिर्दिष्टा विभिन्नर्क्संख्यासमन्वयं प्रतिपादयन्नाह—

'यदि स्वामिदयानन्दस्य १०५२१ ऋग्गणनायां नैमित्तिकद्विपदानामर्धासु सप्ततिसंख्यासु पञ्चममण्डलस्य चतुर्विंशसूक्तस्य द्विगुणत्वेन परिगणितां द्विसंख्यां परिहायाष्टषष्टिसंख्याया योगः क्रियेत, तर्हि १०५८९ संख्योपपद्यते' [भा० १, पृ० १३७] ।

वस्तुतः पण्डितभगवद्दत्तमहोदयेनापि नैतदवगतं यन्मैक्समूलरीयऋक्संस्करणे

कति ऋचो द्विपदारूपेण मुद्रिताः, कति च चतुष्पदारूपेण। यदि ह्यस्य ज्ञानमभविष्यत्तर्हि न स एवमवक्ष्यत्। यतो हि मैक्समूलरीये संस्करणे षट्सप्ततिर्द्विपदा द्विपदारूपेणैव मुद्रिताः। अतो नैव तासां पुनर्द्विगुणीभावो युज्यते।

एवं चैतद् भाष्यकृतोक्तयोः १०५२१ तथा १०५८९ संख्ययोः सामञ्जस्यं नोपपद्यते। वस्तुत उभयोरपि योगयोर्लेखकगणकप्रमाद एव कारणम्।

अध्यापकमैकडानलस्य ऋग्गणना

अध्यापकमैकडानलेन स्वसम्पादिताया ऋक्सर्वानुक्रमण्या उपोद्घाते ऋग्वेदस्य ऋग्गणनामधिकृत्य विस्तरेण लिखितम्। तत्र तस्य बह्व्यो भ्रान्तयः संजाताः। तद्यथा--

प्रथमा--मैकडानलस्य प्रतिछन्दोऽनुसारं परिगणितानामृचां सर्वयोगः १०४४२ द्विचत्वारिंशदधिकचतुःशतोत्तरदशसहस्रं भवति। तत्र द्विपदां योगः १२७ सप्तविंशत्युत्तरैकशतम्, प्रथममण्डले चैकत्रिंशद् द्विपदाः परिगणिताः। ऋक्सर्वानुक्रमण्यनुसारं प्रथममण्डले पञ्चषष्टितमसूक्तादासप्ततितमसूक्तमेकषष्टिर्द्विपदाः सन्ति। मैक्समूलरेणाऽऽद्यमण्डलस्थाः षष्टिर्द्विपदाश्चतुष्पदीकृत्य त्रिंशन्मन्त्रा मुद्रिता इत्युक्तं पुरस्तात्। मन्यामहे मैकडानलो मैक्समूलरीये ऋग्वेदे चतुष्पदीकृतास्त्रिंशदृचो भ्रान्त्या द्विपदा मत्वा त्रिंशदेव द्विपदासु परिगणितवान्, (एका तत्र नित्यद्विपदा रूपा)। सर्वानुक्रमण्याश्च सम्पादनं विदधत् सर्वानुक्रमण्यां मैक्समूलरीयसंस्करणे चाद्यमण्डलान्तर्गतानां पञ्चषष्टितमादासप्ततितमं षण्णां सूक्तानां परस्परमृक्संख्याभेदं दृष्ट्वाऽपि मैक्समूलरीयं दोषं नावगतवान्।

द्वितीया--छन्दःसंख्यापरिशिष्टे सप्तदश द्विपदा निर्दिष्टाः। मैकडानलेन द्विपदानामृचां योगः सप्तविंशत्युत्तरशतमुक्तः (१७ नित्याः + ३० प्रथमे मण्डले + ८० अन्यमण्डलस्थाः)। अनयोः संख्ययोर् (छन्दःसंख्योक्तायां स्वीयायां च) आद्यन्तयोरङ्कयोः साम्यं (आदावेकाङ्कोऽन्ते सप्ताङ्कः) दृष्ट्वा मैकडानल ऊहितवान्--नूनं छन्दःसंख्यापरिशिष्टे द्विपदायोगे मध्यवर्ती द्व्यङ्को नष्ट इति (अर्थात् १२७ स्थाने कथञ्चित् प्रमादात् १७ संख्या निर्दिष्टा)। महदाश्चर्यम्! यन्मैकडानल इदमपि नावबुबुधे, यच्छन्दःसंख्यापरिशिष्ट उक्ता सप्तदशसंख्या नित्यानां द्विपदानामस्तीति। अतो मन्यामहे-मैकडानलो द्विपदानां नित्यनैमित्तिकभेदमपि नावबुबुध इति।

तृतीया--मैकडानलो निर्दिशति यत्--'ऋग्वेदस्य शाकलसंहितायामृचां पूर्णयोगो १०४४२ द्वाचत्वारिंशदधिकचतुःशतोत्तरदशसहस्रं जायते। छन्दःसंख्यापरिशिष्टे तु १०४०२ द्व्यधिकचतुःशतोत्तरदशसहस्रमृच उक्ताः' [ऋक्सर्वा० भूमिका पृ० १७]।

छन्दःसंख्यापरिशिष्टे यदृङ्मानमुक्तं तत्र १४० चत्वारिंशदुत्तरमेकशतं द्विपदाश्चतुष्पदीकृताः सप्ततिः परिगणिताः। तासां द्विपदापक्षे १०४७२ द्वासप्तत्यधिकचतुःशतोत्तरदशसहस्रं योगो जायत इत्यवोचाम पुरस्तात्। मैकडानलीये ऋग्योगे प्रथममण्डलस्थद्विपदायोगे त्रिंशत्संख्याया अशुद्धिर्वर्तत इत्यप्यनुपदमुक्तमेव। तस्याः परिशोधने विहिते मैकडानलस्य सर्वयोगोऽपि १०४७२ द्वासप्तत्यधिकचतुःशतोत्तरदशसहस्रमेव भवति। सभाव्यते छन्दःसंख्यापरिशिष्टस्य ऋग्गणनाप्रकारं नावगतवान् मैकडानलः।

चतुर्थी—तदग्रे च मैकडानल आह—'१२७ सप्तविंशत्यधिकैकशतद्विपदानां द्विगुणीभावे मदीयो योगः (१०४४२+१२७=) १०५६९ एकोनसप्तत्यधिकपञ्चशतोत्तरदशसहस्रं सपद्यते' [ऋक्सर्वा० भूमिका० पृ० १८]।

अत्र मैकडानल ऋक्सर्वानुक्रमण्या—**'द्विर्द्विपदास्त्वृचः समामनन्ति'** इति सूत्रस्यार्थमवधीर्य द्विपदात्वेन परिगणिता अप्यृचः पुनर्द्विगुणीकृतवान्। वस्तुतोऽध्ययनकाले चतुष्पदीकृता एवर्चो यज्ञकाले (द्विपदापक्षे) द्विगुणीक्रियन्ते, न तु द्विपदा एव।

पञ्चमी—एतद्विषयकस्य पण्डितभगवद्दत्तीयपत्रस्योत्तरं परिददत् मैकडानल आह— 'ऋग्वेदस्य पञ्चममण्डलस्य चतुर्विंशतितमस्य सूक्तस्य द्वे द्विपदे सर्वानुक्रमण्यामेव कथं द्विगुणीकृते इति न ज्ञायते ...कथमपि तयोः पुनर्द्विगुणीकरण नोचितं प्रतिभाति। तथा सति मदीय ऋचां योगः १०५६९ एकोनसप्तत्यधिकपञ्चशतोत्तरदशसहस्रस्थाने १०५६५ पञ्चषष्टयधिकपञ्चशतोत्तरदशसहस्रं भविष्यति'' [वैदिकवाङ्मयस्येतिहासः, भाग १, पृष्ठ १३६ उद्धृतम्]।

---

1. I am unable to look into the question why the two dvipadas of V. 24 are doubled in the text of the Sarvanukramni (1,2।3,4।) unless it is intended to express that they are treated as sacrificial, and not as recited dvipads (cp. commentary on introduction $ 12, 10. where 1.65 is quoted). In any case it seems wrong to re-double the two dvipadas of V. 24. This would make my total 10.565. The commentator of the caranavyvha, according to a marginal note I made long ago in my edition of the Sarvanukramni gives the total 10,552 only 13 less than my total (counting the Valkilyas); in another place in the same com. 10, 566 is given as the total, counting the 140 naimittikadvipadas, only 1 more than my corrected total. If the 1 odd pada is here counted as 1 verse, the total would be exactly the same.

अत्र यद् द्विपदयोः पुनर्द्विगुणीकरणमुक्तं, तदपि नैव क्षोदक्षमम्। एतस्या भ्रान्तेर्मूलमपि मैक्समूलरीयमृक्संस्करणमेव। यतो हि तत्र (५।२४) चतस्रो द्विपदाश्चतुष्पदीकृत्य द्वे ऋचे मुद्रिते, मन्त्रसंख्या तु प्रतिमन्त्रं द्विर्द्विर्निर्दिष्टा। सर्वानुक्रमण्यां चतस्र एव द्विपदा उक्ताः। अतः—'सर्वानुक्रमण्यामेव द्वे द्विरदे कथं द्विगुणीकृते' इति वचनं भ्रममूलकमेव।

षष्ठी—पुरस्तान्निर्दिष्टे पत्रोद्धरणे मैकडानलः पञ्चममण्डलस्य चतुर्विंशतितमसूक्तस्य पुनर्द्विगुणीभावे स्वकीयमृग्योगं संशोधयन् चतुःसंख्या न्यूनीकृत्य १०५६९ स्थाने १०५६५ उक्तवान्। अत्रेदं चिन्त्यम्, यद् द्वयोर्द्विपदयोः पुनर्द्विगुणीभावं संशोधयता द्विसंख्यैव न्यूनीकर्तव्या ऽऽसीन्न तु संख्याचतुष्टयम्। तथा सति १०५६९ स्थाने १०५६७ ऋचां योगस्तेन वक्तव्यो न तु १०५६५।

सत्यव्रतसामश्रमिण ऋग्गणना

पण्डितसत्यव्रतसामश्रमिणा 'ऐतरेयालोचने' ऋग्गणनामधिकृत्य बहु प्रपञ्चितम्, तत्र च स बहुधा बभ्राम। छन्दःसंख्यापरिशिष्टोक्तर्क्संख्याने या तस्य भ्रान्तिः सा पुरस्तात् प्रदर्शिता। ततोऽन्याऽत्र प्रदर्श्यंते—

ऐतरेयालोचने सामश्रमिणोक्तम्—'अस्मत्परिगणनया त्वाश्वलायनसंहितायां १०५२२ ऋचो दृश्यन्ते' इति। तदग्रे च—'तद् बालखिल्यसहिताः १०५२२ ऋचः श्रूयन्त इति त्वस्माभिः सुनिश्चितम्' [ऐतरेया० पृ० १४३] इति।

उपलभ्यमाना ऋक्संहिता नाश्वलायनी, अपि तु शाकलचरणस्यैव काचिदियं शाखेत्यत्र नास्ति कस्यापि विदुषो वैमत्यम्। आश्वलायनी शाखा तु शाकलचरणाद् बहिर्भूता स्वतन्त्रा संहितेति नाविदितं वैदिकविदुषाम्। अत एतस्या आश्वलायनी-नाम्ना निर्देशो भ्रान्तिमूलक एव। यच्चात्र सामश्रमिणा ऋग्वेदस्य सकलर्ग्योगः १०५२२ उक्तः, सोऽपि मैक्समूलरीयर्क्संस्करणानुसारी। तत्र प्रथममण्डलस्थाः षष्टिर्नैमित्तिका द्विपदाश्चतुष्पदीकृत्य त्रिंशन्मुद्रिताः, अवशिष्टास्तु द्विपदात्वेनेत्युक्तं पुरस्तात्। अतोऽत्रापि सामश्रमिणः सुनिश्चिता अपि संख्या दुर्निश्चितैव बभूव। वस्तुतस्तु द्विपदापक्षे १०५५२ सुनिश्चिता संख्या विज्ञेया, यथोक्ता पुरस्तादस्माभिः।

हरिप्रसादस्य ऋग्गणना

पण्डितहरिप्रसादेन 'वेदसर्वस्व' ग्रन्थे (पृ० ६५-६८) ऋक्संख्याविषये

The question of the treatment of the 94 verses consisting of 3 ardharcas should be taken into consideration in calculating totals: when sacrificial, 3 ardharcas count as one verse, if recited, as two verses.

किञ्चिदलेखि। तत्र प्रायः सामश्रमिणोऽनुकृतिरेव। तेन सामश्रमिणो ये दोषास्ते तत्र वर्तन्त एव। अयं तु तत्र विशेषः—

हरिप्रसादो वेदसर्वस्वस्य ६७ सप्तषष्टितमे पृष्ठ आह—'चरणव्यूहटीकाकारेण महिदासेन ऋग्वेदे १०४७२ द्वासप्तत्यधिकचतुःशतोत्तरदशसहस्रमृच उक्ताः। सषा संख्या नैमित्तिकद्विपदासहिता वर्तते। तासां च १४० चत्वारिंशदधिकं शतं संख्या विद्यते। अतो यदि १४० चत्वारिंशदधिकशतं संख्या न्यूनीक्रियेत तर्हि ऋग्वेदस्य १०३३२ द्वात्रिंशदधिकत्रिशतोत्तरदशसहस्रमृक्संख्याऽवशिष्यते' इति।

अत्र सर्वासामपि १४० चत्वारिंशदधिकशतानां नैमित्तिकद्विपदानां न्यूनीकरणं नाम तस्य महान् भ्रमः। किमेता ऋग्वेदस्यावयवा न सन्ति, यदेताः सर्वा अपि निष्कास्यन्ते? वस्तुतोऽत्र चतुष्पदापक्षे १४० चत्वारिंशदधिकशतसंख्याया अर्धा ७० सप्ततिसंख्यैव न्यूनीकरणीया।

उपसंहारः

अनेन ऋक्संख्याविमर्शेनावगम्यते यन्माधव-मैक्समूलर-मैकडानल-सत्यव्रत-सामश्रमिप्रभृतयो नित्यनैमित्तिकद्विपदानां स्वरूपमेव नावबुबुधिरे। तदनवबोधादेव च ऋग्वेदस्य ऋग्गणनायामेते बहुधा बभ्रमुः, अन्यांश्च भ्रमयाञ्चक्रुः।

तदेवमृक्सर्वानुक्रमणीमनुसरन् यज्ञप्रक्रियायां नित्यनैमित्तिकद्विपदासहिताः सवालखिल्या १०५५२ द्विपञ्चाशदधिकपञ्चशतोत्तरदशसहस्रमृचो भवन्ति। ता एव चाध्ययनकाले १४० चत्वारिंशदधिकशतानां नैमित्तिकानां द्विपदानां चतुष्पदीभावे १०४८२ द्व्यशीत्यधिकचतुःशतोत्तरदशसहस्रं जायन्ते। नैवास्यामृक्संहितायां महति सुदीर्घे काले एकाक्षरवर्णमात्रस्यापि भेदः समजनि ऋचां नैयूनाधिक्यस्य तु कथैव का? यः कश्चिदपि प्राचीनानामर्वाचीनानां च विदुषां मते ऋक्संख्याभेदः समुपलभ्यते, स सर्वोऽपि ऋग्गणनाप्रकारभेदात् शाखाभेदात् तत्तद्विदुषामज्ञानाद्वा दृश्यते, न तु वास्तविकः, इत्यलमतिपल्लवितेन॥

———

संशोधन-पत्रम्

पृष्ठ-पङ्क्ती	अशुद्धम्	शुद्धम्
६।३	भवता	भगवता
८।१५	अभ्याधाव०	अभ्यधाव०
९।७	०सम्बन्धिन्य	०सम्वन्धिन्यः
१०।८	स्यर०	स्युर०
१४।४	०शरक्षरा	शदक्षरा
१५।१५	पयोज	पर्योज
१६	द्रुवन्नः	द्र्वन्नः
१७	ब्रहेन्द्र	ब्रह्मेन्द्र
१६।४	सप्तवग	सप्तवर्गो
१७।१०	पादस्य[८]	पादस्य[७]
१८।१८	षट्सप्तका०	षट्सप्तैका०
१९।२	यस्यास्त्रय	यस्यास्त्रयः
२०।२४	नोल्लिखते	नोल्लिखिते
२२।५	०दाहृतिः[६]	०दाहृतिः[४]
२४।३	यस्या	यस्याः
२५।७	स्वन्धग्रीवी	स्कन्धोग्रीवी
२६।१३	क्वचिन्नका०	क्वचिन्नवका०
	क्वचिति	क्वचिदिति हि
२७।२०	०पङ्क्ति	०पङ्क्तिः
२९।८	जागत सूक्त०	जागतसूक्त०
३०।१३	०दहृतिः	०दाहृतिः
१८	मध्ये ज्योति०	मध्येज्योति०
३१।१७	विराट् पूर्वा	विराट्पूर्वा
३३।१७	बृहतीरथाने	बृहतीस्थाने
३५।४	शक्वरी पादाः	शक्वरीपादाः
३६।६	०राभिकृति०	०रभिकृति०
३८।११	०न्यस्भादृषे०	०न्यस्मादृषे०
३९।१४	०शब्दः	०शब्दः
४०।१	युज्जन्ती०	युञ्जन्ती०
२१	का० सर्वा०	का० सर्वा० परि०
४१।१५	शिष्टाजगत्यः	शिष्टा जगत्यः
४३।३	सूक्त प्रतिज्ञा०	सूक्तप्रतिज्ञा०
४८।१३	नवेत्पेव	नवेत्येव
४९।२	त्यामग्नि०	त्यामाग्नि०
११	आग्नेय्यो	आग्नेय्यौ
१३	दवी	दैवो
५१।४	पञ्चदादन्या	पञ्चदशका-दन्या
५	०शब्दादादणो	०शब्दादणो
५३।२०	०वान्य	०वान्या
५५।१३	मध्यस्थ०	मध्यमस्थ०
१५	पुरोळशम्	पुरोळाशम्
५६।४	०सोभौ	सोमौ
१६	०च्छवत्	०च्छश्वत्
५८।११	०देवर्त्यं	०देवत्यं
५९।९	वरुणामित्रा०	वरुणमित्रा०
६०।११	०नोरुषश्च	०नोरुषसश्च
१२	०मधर्चो	०मर्धर्चो
६२'१८	०नुवेषणीयम्	०न्वेषणीयम्
६६।६	तुह्यादि सूत्रतः	तुह्यादिसूत्रतः
६६।२३	५.	४.
२४	४.	५.
६८।१	त्व	त्वं
१२	पक्तिः	पङ्क्तिः

पृष्ठ-पङ्क्ती	अशुद्धम्	शुद्धम्
६९।१७	वश्वदेवं	वैश्वदेवं
७१।१६	०दशोषसाय	०दशौषसाय
७४।१०	सूक्त	सूक्तं
७५।२१	इन्द्राग्नो	इन्द्राग्नी[14]
७६।२३	'ईळे	३. 'ईळे
७७।८	तत्समीप	तत्समीपं
१४	०जलभिषिक्ता	०जलाभिषिक्ता
७८।११	का विराड्	काविराड्
१३	०क्षरसख्य०	०क्षरसंख्य०
१९	षङ्गताः	षड्गताः
२२	भुरिगाय०	भुरिग्गाय०
७९।१५	०नोपस्यं	०नोषस्थं
८०।७	०क्रमण्येतरा०	०क्रमण्यन्तरा०
१४	सर्वमत्यष्टं	सर्वमात्यष्टं
८३।१५	वार्हपत्या	वार्हस्पत्या
८४।१२	०भन्त्यैन्द्री	०भमन्त्यैन्द्री
८५।९	त्रिमूर्थानिम्	त्रिमूर्धानिम्
२१	मत्रावरुण	मैत्रावरुणं
२३	दीर्घतमाः[1]	दीर्घतमाः[3]
८६।१३	दीर्घतमाः[1]	दीर्घतमाः[1]
८८।१८	०दिकर्क	०दिकर्क्
९१।२६	१०.६।१।८७	१०. अष्टा० ६।१।८७
९२।१४	तृतं	तृचं
१८	त्रिष्टप्	त्रिष्टुप्
९३।९	पूर्वी	पूर्वीः
१७	युवोदेशा०	युवोर्दशा०
९६।११	अङ्गिरसः	आङ्गिरसः
९८।१८	इन्द्रः	इन्द्रः[1]
१९	वय	वयं

पृष्ठ-पङ्क्ती	अशुद्धम्	शुद्धम्
९९।२२	१।२३।८	२।२३।८
१००।१५	०पृथिव्येका	०पृथिव्यैका
१०१।१	०निवृत्त्यथम्	०निवृत्त्यर्थम्
१०२।१९	सवम्	सर्वम्
२२	गारूप०	गोरूप०
१०४।६	सका	सैका
१०५।५	वश्वदेव	वैश्वदेवी
८	यूपैकदशिन्या	यूपैकादशिन्या
१०९।१४	कता	कर्तो
११०।२०	इन्द्रश्चेषे०	इन्द्रश्चेत्येषे०
११३।६	प्रयन्धि०	प्रयन्धी०
११६।४	दुदुर्वं	ददुर्वे
१२०।१	वश्वानराय	वैश्वानराय
	वश्वा०	वैश्व०
१५	श्चष्टम्याः	श्चाष्टम्याः
१२१।२२	सोमस्य	सोमक्रस्य
१२३।१२	एत्रेकादश	एवैकादश
१२४।९	मनु०	मनुः
१०	वात्मान	वात्मानं
१३	०नो देवतात्वं	नोदेवतात्वं
१२५।१	युजेन्द्रा०	युजैन्द्रा०
२०	०शाभव वे	०शार्भवं वै
१२८।३	०भकादश	०भैकादश
१३०।२	०मात्रेय	०मात्रेय
१३२।९	०मित्यक्ते०	०मित्युक्ते०
१३३।२३	प्लतत्वं	प्लातत्वं
१३८।७	प्राजपत्यः	प्राजापत्यः
१४२।१८	सता बृहती	सतोबृहती
१४४।३	तरन्त पुरु०	तरन्तपुरु०
८	०नामनं	०नामानं
१४५।३	मनो०	मनो०

पृष्ठ-पङ्क्ती	अशुद्धम्	शुद्धम्
१४८।६	व	वै
१५२।१६	विराट् पूर्वा०	विराट्पूर्वा०
२२	नवेव०	नवैव०
१५४।२०	तृत या पञ्च०	तृतीया-पञ्च०
१५७।५	द्वितीयन्द्री	द्वितीयैन्द्री
१६१।३	इतस्या	इत्यस्या
५	०पञ्चचस्य	०पञ्चचंस्य
१६४।४	०त्वासस्त्रे	०त्वासंस्त्रे०
१६५।१८	न्वन्द्रं	न्वैन्द्रं
१६७।१८	पञ्चैन्द्रासोमम्	पञ्चैन्द्रा-सौमम्
१६७।२०	तृच	तृचं
१६८।३	०वकोना	०वैकाना
६	हस्तघ्न	हस्तघ्नं
१३	यथावा	यथावां
१७१।१६	वश्वा०	वैश्वा०
१७२।४	०धिकेन्द्रं	०धिकैन्द्रं
१७३।१७	सूक्त	सूक्तं
१७५।१९	सवादः	संवादः
११	स्तुतवान	स्तुतवान्
	विद्यतो	विद्युतो
१८१।६	तत	तत्
१८४।५	०मुत्तर	०मुत्तरं
१८५।३	वष्णवं	वैष्णवं
१८६।९	तृच	तृचं
१७	०सहृष्टान्	संहृष्टान्
१८९।१४	दान	दानं
२२	द्वितीयचतुर्थ्यौ	द्वितीया-चतुर्थ्यौ
१९०।२१	०ज्ञानर्थम्	०ज्ञानार्थम्

पृष्ठ-पङ्क्ती	अशुद्धम्	शुद्धम्
१९३।१९	०छन्दावा०	०छन्दोवा०
१९५।९	इद	इदं
१९६।१७	वयश्व	वैयश्व
२०१।१	त्रष्टुभ०	त्रैष्टुभ०
२०३।४	०वहत्यर्थः	०बृहतीत्यर्थः
२०५।२४	मत्रवरुणि०	मैत्रावरुणि०
२०८।२५	एकह्यु०	एकद्यु०
२१०।२	ह्यक्तम्	ह्युक्तम्
२१५।१३	ह्यचुक्तम्	ह्युक्तम्
२१८।७	सामदेव०	सोमदेव०
११	०वाहौ	०वाहो
२२२।८	भागर्वो	भार्गवो
२१	जगदग्नि०	जमदग्नि०
२२५।६	त्रिष्टप	त्रिष्टुप्
१२	ऋषो	ऋषभो
१९	दैधतमस	दैर्घतमसः
२२६।१२	जागती	जागतम्
२२८।१५	०शदाद्य	०शदाद्यं
२३०।७	षड	षड्
१५	पर्वतनाक्षा०	पर्वत-नारदा०
२३१।१९	पूर्वायाः (?)	पूर्वस्याः
२३४।९	पष्ठ्य०	षष्ठ्य०
२३६।१८	मृत्युर्देवता मात्यव	मृत्युर्देवता मात्यंध्य
२४१।६	दान	दानं
१८	कियते	क्रियते
२४२।२	०चतुदश्यौ	०चतुर्दश्यौ
२४३।१७	०न्दत्व	०न्द्रत्वं
२४७।४	मातषां	सातैषां
२४८।२	मृत्यार०	मृत्योर०

पृष्ठ-पङ्क्ती	अशुद्धम्	शुद्धम्
२४९।८	सतोबृहतो	सतोबृहती
२५०।११	०वन्त	०वन्तं
२५३।३	०भस्तिृ-	०भस्तृ-
२५४।२०	रीयम्	नरीयम्
२५५।१५	०बृहत्यन्त	०बृहत्यन्तं
२५	कद्रवाः	कद्र्वाः
२५६।१३	कदाचिन	कदाचिन्
१७	जर्णिः	जूर्णिः
	०स्वित्य द्या०	०स्वित्याद्या०
२५७।४	पेक्ष्य	प्रेक्ष्य
२५८।२	देवरु०	देवैरु०
१५	द्व	द्वे
२५९।७	वखानसः	वैखानसः
२१	भर्म्यश्त्रो	भार्म्यश्वो
२६१।७	सुमित्रा	सुमित्रो
१२	बुद्धय् नु०	बुद्धयनु
२६२।३	भूतांशा	भूतांशो
२६२।१४	चैवम	चैवम्
१६	०तनैन्द्रेण	०तेनेन्द्रेण
२६५।४	आग्नं	आग्नेयं
२७१।१५	०न्यरम्मदो	०न्यैरम्मदो
२७२।९	०नुष्टुभ	०नुष्टुभं
२७९।९	सौय	सौर्यं
२८४।४	कृण्वण्तः	कृण्वन्तः
११	ऋग्वेद	ऋग्वेदे
२८५।२	शाकलाः।	शाकलाः ॥१०॥
२८८।२	०भाविभौ	०भाविमौ
३	०पशक	०दशक
२९०।१०	चत्र्वारिंशत्	चत्वारिं-शत्
२९२।२१	एकच	एकर्चं
	एकवगः	एकवर्गः
२९३।२२	०द्वय	०द्वयं

रामलाल कपूर ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित वा प्रसारित ग्रन्थ

१. **ऋग्वेदभाष्य** (संस्कृत हिन्दी; ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका सहित)—प्रतिभाग सहस्राधिक टिप्पणियां, १०-११ प्रकार के परिशिष्ट और सूचियां।
प्रथम भाग ३५-००, द्वितीय भाग ३०-००, तृतीय भाग ३५-०० ।

२. **यजुर्वेदभाष्य-विवरण**—ऋषि दयानन्दकृत भाष्य पर पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु कृत विवरण। प्रथम भाग १००-००, द्वितीय भाग ४०-०० ।

३. **अथर्ववेदभाष्य**—श्री पं० विश्वनाथ जी वेदोपाध्याय कृत । ११-१३ काण्ड ३०-००; १४-१७ काण्ड २४-००; १८-१९ वां काण्ड २०-००, बीसवां काण्ड २०-०० ।

४. **ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका**—पं० युधिष्ठिर मीमांसक द्वारा सम्पादित एवं शतशः टिप्पणियों से युक्त । साधारण जिल्द २५-००, पूरे कपड़े की ३०-००

५. **तैत्तिरीय-संहिता**—मूलमात्र, मन्त्रसूची सहित । साजिल्द ४०-००

६. **तैत्तिरीयसंहिता-पदपाठः**—दाक्षिणात्यपाठानुसारी । बृहद् आकार में। पृष्ठ संख्या ६७० । केवल ५०० प्रतियां छपी हैं। बढ़िया कागज, सुन्दर पक्की सुनहरी जिल्द । १००-००

७. **माध्यन्दिन (यजुर्वेद) पदपाठः**—शुद्ध एवं सुन्दर संस्करण । २५-००

८. **गोपथ ब्राह्मण (मूल)**—सम्पादक श्री डा० विजयपाल जी विद्यावारिधि। सर्वाधिक शुद्ध और सुन्दर संस्करण । मूल्य ४०-००

९. **कात्यायनीय ऋक्सर्वानुक्रमणी**—(ऋग्वेदीया) षड्गुरुशिष्य विरचित संस्कृत टीका सहित । डा० मैक्डानल ने टीका का संक्षेप छापा था । हमने टीका का पूरा पाठ प्रथम बार छापा है । विस्तृत भूमिका और अनेक परिशिष्टों से युक्त ।
मूल्य १००-००

१०. **ऋग्वेदानुक्रमणी**—वेङ्कट माधवकृत । इस ग्रन्थ में स्वर छन्द आदि आठ वैदिक विषयों पर गम्भीर विचार किया है । व्याख्याकार—श्री डा० विजयपाल जी विद्यावारिधि । उत्तम-संस्करण ३०-००; साधारण २०-०० ।

११. **वैदिक-छन्दोमीमांसा**—पं० युधिष्ठिर मीमांसक । नया संस्करण २०-००

१२. **वैदिक-स्वर-मीमांसा**—युधिष्ठिर मीमांसक । नया संस्करण २५-००

१३. शतपथब्राह्मणस्थ अग्निचयन-समीक्षा—लेखक पं० विश्वनाथ जी वेदोपाध्याय। मूल्य ४०-००

१४. वैदिक-जीवन—लेखक—पं० विश्वनाथ वेदोपाध्याय मूल्य १६-००

१५. उरु-ज्योति—डा० श्री वासुदेवशरण अग्रवाल लिखित वेदविषयक स्वाध्याय योग्य निवन्धों का संग्रह। सुन्दर छपाई पक्की जिल्द। मूल्य १६-००

१६. ANTHOLOGY OF VEDIC HYMNS—Swami Bhumananda Sarasvati. मूल्य ५०-००

१७. बौधायन-श्रौत-सूत्रम्—(दर्शपूर्णमास प्रकरण)—भवस्वामी तथा सायण कृत भाष्यसहित (संस्कृत) ४०-००

१८. दर्शपूर्णमास पद्धति—पं० भीमसेन कृत, भाषार्थ सहित। २५-००

१९. कात्यायनगृह्यसूत्रम्—(मूलमात्र) अनेक हस्तलेखों के आधार पर हमने उसे प्रथम वार छापा है। सम्पा० युधिष्ठिर मीमांसक। २०-००

२०. श्रौतपदार्थ-निर्वचनम्—(संस्कृत) अग्न्याधान से अग्निष्टोम पर्यन्त आध्वर्यव पदार्थों का विवरणात्मक ग्रन्थ। विना जिल्द ३४-००; सजिल्द ४०-००।

२१. संस्कार-विधि—शताब्दी संस्करण, ५६० पृष्ठ, सहस्राधिक टिप्पणियां, १२ परिशिष्ट। मूल्य लागतमात्र १५-००, राज-संस्करण २०-००। सस्ता संस्करण मूल्य ५-२५, सजिल्द ७-५०।

२२. वेदोक्त संस्कार-प्रकाश--लेखक--श्री पं० वालाजी विट्ठल गांवस्कर मूल्य २५-००

२३. अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेध पर्यन्त श्रौत यज्ञों का संक्षिप्त परिचय— मूल्य १०-००

२४. वैदिक-नित्यकर्मविधि—सन्ध्यादि पांचों महायज्ञ तथा बृहद् हवन के मन्त्रों की पदार्थ तथा भावार्थ व्याख्या सहित। लेखक—यु० मी०। मूल्य ३-५०, सजिल्द ५-००।

२५. शिक्षासूत्राणि—आपिशल-पाणिनीय-चान्द्र शिक्षा-सूत्र। मूल्य ६-००

२६. निरुक्त-श्लोकवार्त्तिकम्—केरलदेशीय नीलकण्ठ गार्ग्य विरचित। एक मात्र मलयालम लिपि में ताडपत्र पर लिखित दुर्लभ प्रति के आधार पर मुद्रित। सम्पादक—डा० विजयपाल विद्यावारिधि। मूल्य १००-००

२७. निरुक्त-समुच्चय--आचार्य वररुचि विरचित (संस्कृत)। मूल्य १५-००

२८. अष्टाध्यायी—(मूल) शुद्ध संस्करण। ३-५०

२९. अष्टाध्यायी-भाष्य—(संस्कृत तथा हिन्दी) श्री पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु कृत। प्रथम भाग ३०-००, द्वितीय भाग २५-००, तृतीय भाग ३०-००।

३०. धातुपाठ—धात्वादिसूचि सहित, सुन्दर शुद्ध संस्करण। ३-००

३१. वामनीयं लिङ्गानुशासनम्--स्वोपज्ञ व्याख्यासहितम्। ८-००

३२. **संस्कृत पठन-पाठन की अनुभूत सरलतम विधि**—लेखक--श्री पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु। प्रथम भाग १०-००, द्वितीय भाग (यु० मी०) १०-००

३३. **The Tested Easiest Method of Learning and Teaching Sanskrit (First Book)**—यह पुस्तक श्री पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु कृत 'विना रटे संस्कृत पठन-पाठन की अनुभूत सरलतम विधि' भाग एक का अंग्रेजी अनुवाद है। अंग्रेजी भाषा के माध्यम से पाणिनीय व्याकरण में प्रवेश करने वालों के लिये यह आधिकारिक पुस्तक है। कागज और छपाई सुन्दर, सजिल्द २५ ००

३४. **महाभाष्य**--हिन्दी व्याख्या (द्वितीय अध्याय पर्यन्त) पं० युधिष्ठिर मीमांसक कृत। प्रथम भाग ५०-००, द्वितीय भाग अप्राप्य, तृतीय भाग २५-००

३५. **उणादिकोष**--ऋ० द० स० कृत व्याख्या, तथा पं० यु० मी० कृत टिप्पणियों, एवं ११ सूचियों सहित। अजिल्द १०-००, सजिल्द १२-००

३६. **संस्कृत-धातुकोश**--पाणिनीय धातुओं का हिन्दी में अर्थ निर्देश। सं० युधिष्ठिर मीमांसक १०-००

३७. **सस्कृत व्याकरण-शास्त्र का इतिहास**—लेखक—युधिष्ठिर मीमांसक। आदिकाल से विक्रम को २० वीं शती तक सभी व्याकरण प्रवक्ताओं और उनके व्याख्याताओं का क्रमवद्ध विस्तृत इतिहास तीन भागों में मूल्य १२५-०० मात्र।

३८. **अष्टाध्यायीशुक्लयजुःप्रातिशाख्ययोर्मतविमर्शः**—डा० विजयपाल विरचित पीएच० डी० का महत्त्वपूर्ण शोध-प्रबन्ध (संस्कृत)। सुन्दर छपाई उत्तम कागज वढ़िया जिल्द सहित। ५०-००

३९. **ध्यानयोग-प्रकाश**—स्वामी दयानन्द सरस्वती के योग विद्या के शिष्य स्वामी लक्ष्मणानन्द कृत। सजिल्द १६-००

४०. **आर्याभिविनय (हिन्दी)**—स्वामी दयानन्द। गुटका सजिल्द ४-००

४१. **विष्णुसहस्रनाम-स्तोत्रम् (सत्यभाष्य-सहितम्)**–पं सत्यदेव वासिष्ठ कृत संस्कृत और हिन्दी में विस्तृत आध्यात्मिक वैदिक भाष्य(४ भाग)। प्रति भाग १५-००

४२. **शुक्रनीतिसार**–व्याख्याकार श्री स्वा० जगदीश्वरानन्द जी सरस्वती। विस्तृत विषय सूची तथा श्लोक-सूची सहित। मूल्य ४५-००

४३. **विदुर-नीति**–युधिष्ठिर मीमांसक कृत प्रतिपद पदार्थ और व्याख्या सहित। बढ़िया कागज, पक्की सुन्दर जिल्द। ३६-००

४४. **मीमांसा-शाबर-भाष्य**—आर्षमतविमर्शिनी हिन्दी व्याख्या सहित। व्याख्याकार—युधिष्ठिर मीमांसक। प्रथम भाग ४०-००; द्वितीय ३०-००; तृतीय भाग ५०-००; चौथा भाग ४०-००। पांचवां भाग अभी छप रहा है।

४५. **नाडीतत्त्वदर्शनम् (संस्कृत हिन्दी)**—ले०—पं० सत्यदेव वासिष्ठ ३०-००

पुस्तक-प्राप्ति-स्थान

रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़ (सोनीपत-हरयाणा)-१३१०२१

